मृत्तिका-उद्योग

हिन्दी-समिति-ग्रन्थमाला—२०

मृत्तिका-उद्योग

लेखक
श्री हीरेन्द्रनाथ बोस

प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग
उत्तर प्रदेश

प्रथम संस्करण
१९५८

मूल्य
आठ रुपये

मुद्रक
पं० पृथ्वीनाथ भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, वाराणसी

प्रकाशकीय

भारत की राजभाषा के रूप में हिन्दी की प्रतिष्ठा के पश्चात् यद्यपि इस देश के प्रत्येक जन पर उसकी समृद्धि का दायित्व है, किन्तु इससे हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों के विशेष उत्तरदायित्व में किसी प्रकार की कमी नहीं आती। हमें संविधान में निर्धारित अवधि के भीतर हिन्दी को न केवल सभी राजकार्यों में व्यवहृत करना है, उसे उच्चतम शिक्षा के माध्यम के लिए भी परिपुष्ट बनाना है। इसके लिए अपेक्षा है कि हिन्दी में वाङमय के सभी अवयवों पर प्रामाणिक ग्रन्थ हों और यदि कोई व्यक्ति केवल हिन्दी के माध्यम से ज्ञानार्जन करना चाहे तो उसका मार्ग अवरुद्ध न रह जाय।

इसी भावना से प्रेरित होकर उत्तर प्रदेश शासन ने हिन्दी समिति के तत्त्वावधान में हिन्दी वाङमय के सभी अङ्गों पर ३०० ग्रन्थों के प्रणयन एवं प्रकाशन के लिए पंचवर्षीय योजना परिचालित की है। यह प्रसन्नता का विषय है कि देश के बहुश्रुत विद्वानों का सहयोग इस सत्प्रयास में समिति को प्राप्त हुआ है जिसके परिणाम-स्वरूप थोड़े समय में ही विभिन्न विषयों पर उन्नीस ग्रन्थ प्रकाशित किये जा चुके हैं। देश की हिन्दी-भाषी जनता एवं पत्र-पत्रिकाओं से हमें इस दिशा में पर्याप्त प्रोत्साहन मिला है जिससे हमें अपने इस उपक्रम की सफलता पर विश्वास होने लगा है।

प्रस्तुत ग्रंथ हिन्दी-समिति-ग्रंथमाला का २०वाँ पुष्प है। हिन्दी में औद्योगिक विज्ञान सम्बन्धी आधुनिक साहित्य की बड़ी कमी है। श्री बोस की यह रचना इसी अभाव की पूर्ति के लिए किया गया आशिक प्रयास है जो सर्वथा संस्तुत्य है। मृत्तिका-उद्योग सम्बन्धी विविध पहलुओं का इसमें सुन्दर विवेचन किया गया है। ऐसा करते समय विद्वान् लेखक ने अपने गंभीर अध्ययन से ही नहीं, तीस

वर्ष के अपने विस्तृत अनुभव से भी प्रचुर सहायता ली है। ऐसी स्थिति में हमें पूरी आशा है कि पुस्तक हिन्दी के पाठकों के लिए, विशेषकर उन लोगों के लिए यथेष्ट उपयोगी प्रमाणित होगी, जो मिट्टी की विभिन्न वस्तुओं का आजकल के वैज्ञानिक तरीके पर निर्माण करना चाहते हैं। इसी दृष्टि से हम इसे प्रकाशित कर रहे हैं।

भगवतीशरण सिंह
सचिव, हिन्दी समिति

प्राक्कथन

मृत्तिका-उद्योग विषय पर यह पुस्तक मुख्यत उन भारतीय मिट्टियों के प्रकार तथा गुणों के आधार पर लिखी गयी है, जो इस विशाल देश के विभिन्न भागों में प्राप्य हैं। पुस्तक विशेष रूप से उन लोगों के लिए लिखी गयी है, जो विभिन्न प्रकार की मृद्-वस्तुओं का आधुनिक वैज्ञानिक ढग पर निर्माण सीखना चाहते हैं। वर्तमान मृत्तिका-उद्योग उस काल से बहुत आगे बढ चुका है, जब कि गुप्त सूत्र तथा कार्य-कुशलता केवल एक विशेष वर्ग के व्यक्तियों में ही बाप-दादों से चली आती थी। आधुनिक मृत्तिका-उद्योग की कार्य-कुशलता विभिन्न मिट्टियों के विशेष गुणों के अनुसार मिट्टी को विभिन्न प्रकार की मृद्-वस्तुओं मे परिवर्तित करने की वैज्ञानिक विधियों के पूर्ण ज्ञान पर निर्भर करती है।

आधुनिक मृद्-वस्तुओं के सफल उत्पादन में विभिन्न प्रकार की समस्याएँ सामने आती हैं। इनमें विभिन्न इजीनियरिंग सम्बन्धी तथा अर्थशास्त्र सम्बन्धी समस्याएँ भी हैं। अत. एक ही पुस्तक में मृत्तिका-उद्योग सम्बन्धी सभी पहलुओं का विस्तृत वर्णन करना सम्भव नहीं है।

इस पुस्तक के लिखने मे मृद्-उद्योग के अधिक महत्त्वपूर्ण पहलुओं को पाठकों के समक्ष रखने का प्रयास किया गया है। सूचनाएँ तथा आँकडे ऐसे दिये गये हैं, जो विशेष रूप से भारतीय कारीगरों के लिए उपयोगी हैं। इस पुस्तक में सूचनाएँ तथा आँकडे देते समय लेखक ने अपने इस क्षेत्र के ३० वर्ष से अधिक के अनुभव तथा खोजों का पूर्ण उपयोग किया है।

वर्तमान समय में किसी भी एक मनुष्य के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह केवल अपने अनुभव के आधार पर किसी आधुनिक औद्योगिक विज्ञान पर पुस्तक लिख सके। अत लेखक ने इस पुस्तक के लिखने में विभिन्न विदेशी वैज्ञानिक पत्रिकाओं तथा कलकत्ता से प्रकाशित होनेवाली 'इण्डियन सिरेमिक्स'

नामक मासिक पत्रिका से प्राप्त, इस विषय सम्बन्धी सूचनाओं तथा नवीनतम खोजों का उपयोग किया है। पुस्तक का आकार अधिक न बढ़ने पाये, इस कारण पत्रिकाओं से प्राप्त सूचनाओं को संक्षेप में लिख दिया है, परन्तु उनके लेखक का नाम तथा उस पत्रिका का वर्ष लिख दिया गया है, जिससे, जो पाठक इस विषय में और अधिक ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखते हों वे विभिन्न विदेशी पत्रिकाएँ तथा इस समय वाराणसी से प्रकाशित होनेवाली 'जरनल आफ इण्डियन सेरेमिक सोसाइटी' नामक पत्रिका को पढ़ सकें।

मैं उत्तर प्रदेशीय सरकार की 'हिन्दी-समिति' के प्रति आभार प्रकट करता हूँ, जिसने मुझे यह पुस्तक लिखने का अवसर दिया। राष्ट्रभाषा हिन्दी में औद्योगिक विज्ञान सम्बन्धी आधुनिक साहित्य का अभाव दूर करने की दिशा में उत्तर प्रदेशीय सरकार का यह एक प्रशंसनीय प्रयास है।

अन्त में मैं अपने प्रिय विद्यार्थी श्री रमेशदत्त शर्मा एम० एस-सी० टेक० (प्रीवियस) के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिन्होंने हिन्दी में यह पुस्तक लिखने में मेरी विशेष सहायता की है।

काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय,
वाराणसी।
जुलाई, १९५८

हीरेन्द्रनाथ बोस

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पचम अध्याय

षष्ठ अध्याय

सप्तम अध्याय

अष्टम अध्याय

नवम अध्याय

दशम अध्याय

एकादश अध्याय

द्वादश अध्याय

त्रयोदश अध्याय

चतुर्दश अध्याय

पञ्चदश अध्याय

परिशिष्ट

चित्र-सूची

चित्र		पृष्ठसंख्या

चित्र	पृष्ठसंख्या
५१ ड्रेसलर सुरग भट्ठी	. ३६४
५२ वैंजवुड उत्तापदर्शी	३६७
५३ सेंगर शंकु के टेढे होने की विभिन्न अवस्थाएँ	. ३७०
५४ होल्ड शाफ्ट दड उत्तापदर्शी	. ३७१
५५ वुलरचक्र के लिए आकुचन प्रमापी	३७१
५६ एक विद्युत् प्रतिरोध उत्तापमापी	. ३७३
५७ तापीय युग्म उत्तापमापी	. ३७६
५८ फेरी विकिरण उत्तापमापी	. ३७८
५९ फेरी प्रकाश उत्तापमापी	३८१
६० वैंज प्रकाश उत्तापमापी	३८२
६१. श्वेन वर्गीकरण उपकरण	. ४०८

मृत्तिका-उद्योग

प्रथम अध्याय

मिट्टी की विभिन्न सामग्रियाँ

गन्दे कीचड़ के रूप में हम मिट्टियों से भली-भाँति परिचित हैं। जब हम गीले खेतों में चलते हैं, तो यह कीचड़ हमारे पैरों में चिपक जाता है। परन्तु हममें से कितने जानते हैं कि यह गन्दा कीचड़ बहुत-सी ऐसी उपयोगी वस्तुओं के रूप में बदला जा सकता है, जो हमारे जीवन के लिए अत्यावश्यक हैं। मिट्टियाँ, प्रकृति में, शुद्ध व अशुद्ध दोनों रूपों में पायी जाती हैं। शुद्ध मिट्टी रंग में श्वेत होती है और पकाने के पश्चात् श्वेत या मक्खनी रंग की हो जाती है। अशुद्ध मिट्टी बादामी या भूरे रंग की होती है और पकाने के पश्चात् उसका रंग लाल तथा हल्के बादामी से लेकर गहरे बादामी रंग तक में बदल जाता है। मिट्टियों का यह रंग उनमें उपस्थित अपद्रव्यों पर निर्भर करता है। इन शुद्ध तथा अशुद्ध मिट्टियों से इतने प्रकार की सामग्रियाँ बनायी जाती हैं कि हम सोच भी नहीं सकते कि आज के समय में कोई मानव उनके बिना भी रह सकता है।

हम मिट्टी की ईंटों से बने घर में रहते हैं। यह घर बर्फ, वर्षा, ताप, ठण्डक और आँधी-तूफान से हमें बचाने के लिए मिट्टी के खपड़ों से पाटे जाते हैं। कुछ मकानों के फर्श पर मिट्टी की सुदृढ़ टालियाँ लगायी जाती हैं। कुछ मकानों में सजावट के लिए दीवारों पर भी विभिन्न आकृतियों की श्वेत तथा रंगीन टालियाँ लगायी जाती हैं। आधुनिक स्नानागार तथा शौचालय की दीवारों पर भी हम श्वेत चिक्कन-प्रलेपित टालियों को लगी हुई देखते हैं। इनके कारण ने सरलता-पूर्वक साफ किये जा सकते हैं और स्वच्छ अवस्था में रखे जा सकते हैं। आधुनिक मकानों के शौचालयों में मलत्याग-पात्र, मूत्रत्याग-पात्र और हाथ-मुँह धोने के पात्र रहते हैं। ये सब भी मिट्टी के बने होते हैं। आजकल हमारे घरों से मिट्टी के नलों द्वारा ही गन्दा पानी निकाला जाता है और इस प्रकार हम गन्दे पानी की दुर्गन्ध, मक्खी-मच्छरों के उपद्रव और बीमारियों के प्रकोप से बच जाते हैं।

अपने दैनिक जीवन में हम मिट्टी के पात्रों में भोजन बनाते तथा खाते हैं। ठीक प्रकार से बने मिट्टी के बर्तन, धातुओं के बर्तनों की अपेक्षा भोजन रखने तथा भोजन करने के लिए अधिक अच्छे होते हैं।

घर में बिजली लगाने के लिए स्विच व क्लिट आदि बिजली के अचालक पदार्थों के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। ये सब मिट्टी के बने होते हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान को बिजली ले जाने के लिए मिट्टी के बने विद्युत्-रोधक (Insulator) बहुत बड़ी सख्या में प्रयुक्त होते हैं। रेडियो-प्रचरण में प्रयुक्त होनेवाले विशेष प्रकार के विद्युत्-रोधक भी, दूसरे खनिजों के साथ मिली मिट्टी से ही बनाये जाते हैं।

रासायनिक कारखानों तथा प्रयोगशालाओं में अम्ल और क्षार रखने, सक्षारक पदार्थों के गरम करने, अम्लीय तथा क्षारीय द्रवों को पम्प करने तथा दूसरे बहुत-से कार्यों के लिए मिट्टी के बने छोटे या बड़े पात्र प्रयोग में लाये जाते हैं। इन विशेष प्रकार के मृत्पात्रों के बिना प्रयोगशालाओं में अन्वेषण-कार्य या कारखानों में रासायनिक पदार्थों व औषधों का निर्माण यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जायगा। इन कार्यों के बिना मानव सभ्यता का विकास करना या वर्तमान जीवन-स्तर को ही स्थिर रखना कठिन होगा।

जो मिट्टियाँ कम तापक्रम पर नहीं गलतीं उनका प्रयोग अग्नि-ईंटों, घरियों (Crucibles), बन्द भट्ठियों (Muffles) और काँच पिघलाने के पात्र बनाने में होता है। छोटे या बड़े आकार की अग्नि-ईंटों का प्रयोग उच्च तापक्रमवाली भट्ठियों के बनाने में होता है। घरियों का प्रयोग ताँबा, पीतल, सोना, चाँदी आदि धातुओं के पिघलाने में होता है। काँच तथा मृत्पात्रों के लिए चिक्कन-प्रलेपनों के पिघलाने में भी घरियाँ प्रयुक्त की जाती हैं। बन्द भट्ठी का प्रयोग इस्पात-यन्त्रों पर पानी चढ़ाने में, काँच-कलईवाले पात्रों तथा चिक्कन-प्रलेपित मृत्पात्रों के पकाने में होता है। इन दुर्गल या तापसह मृत्पात्रों के बिना कोई भट्ठी बनाना या ऐसे पदार्थों का निर्माण करना सम्भव न होगा जिनके निर्माण में उच्च तापक्रम पर गरम करने की आवश्यकता पड़ती हो।

सीमेण्ट भी, जो मकान, सड़क और बाँध आदि बनाने में बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है, मिट्टी और चूने से बनता है। सीधे मिट्टी से बननेवाली इन वस्तुओं के अतिरिक्त दूसरे बहुत-से ऐसे उद्योग है जिनमें मिट्टी किसी न किसी

रूप में प्रयोग में लायी जाती है। इनमे से कुछ ये हैं—कागज, कार्डबोर्ड तथा वस्त्र-उद्योग। कुछ वर्णकों के निर्माण, जैसे अल्ट्रामैराइन नील, रबड उद्योग मे भारवर्द्धक (Filler) के रूप मे और थोडी मात्रा मे औषध तथा सौन्दर्य-प्रसाधक पदार्थों के निर्माण मे।

कुम्भकारी तथा कुलाल-विज्ञान को अग्रेजी भाषा मे सेरेमिक्स (Ceramics) कहा जाता है। विद्वानों का ऐसा विचार है कि पारिभाषिक शब्द सेरेमिक (Ceramic) यूनानी (ग्रीक) शब्द केरामिक (Keramic) से बना है जिसका अर्थ होता है कुम्हार की कला। वर्तमान समय मे यह शब्द उन सब वस्तुओं के लिए, जिनमे मिट्टी का प्रयोग हुआ हो और उच्च तापक्रम द्वारा पकायी गयी हों, प्रयुक्त होता है। सयुक्त राज्य अमेरिका में सीमेण्ट, चूना, काँच तथा काँचकलई के बर्तन-उद्योग 'सेरेमिक' शब्द के अन्दर आ जाते हैं। परन्तु यूरोप में यह उचित नही समझा जाता। इस पुस्तक मे तापसह पदार्थों (जिनमे किसी सीमा तक मिट्टी सयोजक-कारक (Binding agent) के रूप मे प्रयोग की जाती है) सहित मृत्तिका-उद्योग की सभी शाखाओं पर विचार होगा। मिट्टी की कला मानवीय कलाओं मे सबसे पुरानी है। स्वभावत इस कला के क्रमबद्ध विकास का पता लगाना बहुत ही कठिन है। आगे के पृष्ठो मे एशिया तथा यूरोप की मिट्टी कला के विभिन्न भागों के विकास का केवल सक्षिप्त इतिहास देने का प्रयास किया गया है।

ऐसा विचार है कि प्राचीन मिस्रवासी ही ऐसे लोग थे जिन्होंने मिट्टी के पदार्थों का सर्वप्रथम प्रयोग किया था। पकी मिट्टी के बर्तन, जो मृतकों के लिए सामग्री रखने के उद्देश्य से बनाये गये थे, सेमफाइट काल (५,००० ई० पू० से ३,००० ई० पू०) की कब्रों में पाये गये हैं। कुछ नील नदी की घाटी के नीचे पायी गयी ईंटें लगभग दस हजार वर्ष पूर्व बनायी गयी समझी जाती है। बाद में इन लोगों ने मिट्टी के चिकन-प्रलेपित बर्तन बनाने की कला का पता लगाया जिसके अवशेष उनके पिरामिड तथा मन्दिरो में अभी तक देखने को मिलते हैं। बाद के समय की विकसित मृत्तिका-कला में पात्र प्राय पतले चिकन-प्रलेपन से प्रलेपित एव आसमानी या पीले हरे रग से रँगे हुए है। कहीं-कहीं मिट्टी ही रंगीन है, परन्तु उसने प्राय रगन छोड दी है।

असीरिया तथा बेबीलोनिया के निवासी बहुत प्राचीन काल से विभिन्न रंगों से रंजित पक्की मिट्टी के बर्तन प्रयोग करते थे। हेरोडोटस (Herodotus) का कहना है कि मीडिया (Media) में एकबातना (Ecbatana) की दीवारें सात रंगों से रँगी हुई थी। खोरसाबाद में असीरिया के महलों के स्थान पर हुई खुदाई में एक इक्कीस फुट लम्बी तथा पाँच फुट ऊँची दीवार मिली थी जिसमें सामने की पूरी दीवार में रँगी हुई ईंटो द्वारा मनुष्य, जानवर तथा पेड़ों की आकृतियाँ बनी थी। पेरिस के लूवर (Louvre) अजायबघर में रखे हुए निनेवा तथा बेबीलोन की मिट्टी-कला के नमूनों का निर्माण-काल ५०० ई० पू० अनुमान किया जाता है।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि फारस-निवासियों ने यह कला असीरियनों से सीखी और इसे सुधार कर पूर्णता की सीमा तक पहुँचाने में सफल हुए। फारस की प्राचीन मिट्टी-वस्तुएँ अधिक बालू-मिश्रित पदार्थों से बनायी गयी थी। इस पर पारदर्शक क्षारीय चिक्कन-प्रलेपन लगाया गया था, जिससे अधिक चमक दीखती थी। बर्तन प्राय. पीले और नीले, थोड़े उठे हुए प्रलेपन द्वारा अलंकृत किये जाते थे।

भारतवर्ष में मिट्टी की वस्तुएँ विभिन्न रूपों में बहुत ही प्राचीन काल से प्रयुक्त होती आयी हैं। नवीन खुदाइयों से पता चलता है कि बर्तन बनाने की कला यहाँ ४,००० वर्ष पूर्व ही काफी उन्नत दशा में थी। इसमें कोई सन्देह नही कि सिन्ध की घाटी में हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में हुई खुदाइयों में पायी गयी वस्तुएँ एशिया माइनर की सुमेर सभ्यता की (जो ३०००–४००० ई० पू० के समय की बतायी जाती है) वस्तुओं से काफी समानता लिये हुए हैं। इन मिट्टी की वस्तुओं तथा किश (Kish) के मिट्टी के बर्तनों में समानता है। हम्मूराबी के (Hammurabi's) समय के मन्दिर के नीचे टूटे हुए टुकड़ों में एक बिल्कुल वैसी ही मुहर मिली है जैसी कि हड़प्पा और मोहनजोदड़ो के टूटे टुकड़ों में पायी गयी है।

वेदों के स्तोत्रों में (२०००–३००० ई० पू०) भी मिट्टी-कला का उल्लेख किया गया है। परन्तु छठी तथा नवी ई० पू० शताब्दी के बीच बने इस सम्बन्ध में मनु के नियम काफी स्पष्ट हैं। भारतवर्ष में सभी स्थानों पर मिट्टी के बर्तन प्रयोग में लाये जाते हैं तथा कुम्हार हिन्दू-समाज की कर्मणा जातियों में से एक है। इतिहास से पूर्व भारतवर्ष की लाल, बादामी तथा काले रंग की मिट्टी-

पात्र में बिना चिक्कन-प्रलेपन की हुई जो चमकदार ऊपरी सतह है, वह वर्तमान रूपों में, चित्रकारी तथा कारीगरी में, बहुत श्रेष्ठ है।

पंजाब के अम्बाला जिले में रूपर की हाल की खुदाई में भूरे रँगे हुए बर्तन मिले हैं। ये काले रंग की डिजाइन-सहित भूरे रंग की मिट्टी-कला का एक प्रसिद्ध भाग हैं। पुरातत्त्ववेत्ताओं का विचार है कि इस प्रकार के चित्रों-सहित मिट्टी की वस्तुएँ उन प्राचीन मनुष्यों द्वारा बनायी गयी हैं, जिन्होंने सिन्ध की घाटी में हड़प्पा को लगभग २००० ई० पू० छोड़ा था और रूपर के आसपास ७०० ई० पू० तक बस गये थे। इस विशेष प्रकार के मिट्टी के बर्तन पंजाब तथा उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भागों में कई और स्थानों पर भी पाये गये हैं।

उत्तर प्रदेश में कन्नौज की खुदाई में भी इस प्रकार के भूरे बर्तन निकले हैं। पुरातत्त्ववेत्ताओं के विचार में इस प्रकार की मिट्टी-कला प्रारम्भिक आर्य-काल की है और उत्तर भारत के मथुरा, हस्तिनापुर, कुरुक्षेत्र, इन्द्रप्रस्थ आदि कई स्थानों पर भी पायी गयी है। ये मिट्टी के पात्र सम्भवतः १००० ई० पू० से ५०० ई० पू० के बीच के काल में बने हुए हैं।

यद्यपि भारत में इतिहास के पूर्वकाल में ही पकी मिट्टी के बर्तन बनते थे, परन्तु चिक्कन-प्रलेपित वस्तुओं का निर्माण इसी हाल की शताब्दी से प्रारम्भ हुआ है।

एम० रूजलेट (M. Rousselet) के अनुसार महलों, मन्दिरों तथा किलों पर स्मरणार्थ सजावट के लिए काँचीय प्रलेप का प्रयोग पाँचवीं से ग्यारहवीं शताब्दी तक होता था और इसके नमूने ग्वालियर, कन्नौज, देहली, चित्तौड़ तथा उज्जैन में फैले हुए मिलते हैं। ईंटों पर यह काँचीय प्रलेप सम्भवतः धातु व क्षार से बना हुआ और पतला विपक्कनेवाला तथा अर्द्ध पारदर्शक है। वे प्रायः गहरे पीले, हरे नीले, हरे पीले, नारंगी या बैंगनी रंगों द्वारा चमकदार तथा शुद्ध रंगों से रँगे जाते थे।

फारस के ढंग के अनुसार चिक्कन-प्रलेपित खपड़े (Tiles), गौड़ (Gour) की खुदाई में निकले हैं। गौड़ ११वीं तथा १३वीं शताब्दी के बीच बंगाल की राजधानी था।

पंजाब में चिक्कन-प्रलेपित पात्रों का निर्माण चंगेज खाँ के समय (१२०६-

१२२७ ई० तक) से प्रारम्भ होता है। इस मृत्तिका-उद्योग की विशेषताएँ आकृतियों मे सादगी, सजावट तथा रगो की सुन्दरता में सीधापन एवं अधिकार है।

सिन्ध-स्थित हैदराबाद में काँचित मृत्पात्रो की जो कला पायी जाती है वह चीन के कुछ मनुष्यों के कारण है, जिन्हें वहाँ का एक अमीर उस जिले में बसाने के लिए लाया था। हैदराबाद के काशीगर लोग अपने को उन्ही का वंशज मानते हैं।

उत्तर प्रदेश के तीन छोटे कस्बो—चुनार, खुर्जा तथा निज़ामाबाद ने स्थानीय मिट्टियो का प्रयोग करते हुए तीन विशेष प्रकारो की मिट्टी-कला का विकास किया है। चुनार मे मिट्टी की वस्तुएँ कुम्हारो द्वारा पकायी जाती हैं तथा वे गगा नदी द्वारा जमा की हुई मिट्टी का प्रयोग करते हैं। व्यापारी इन वस्तुओं को कुम्हारो से इकट्ठा करके इन पर रगीन, अपारदर्शक चिक्कन-प्रलेपन लगाकर दुबारा पका लेते हैं और इस प्रकार चिक्कन प्रलेपित वस्तुएँ तैयार हो जाती हैं।

खर्जा मे वस्तुएँ स्थानीय साधारण लचीली मिट्टी से बनाते हैं, परन्तु उनके ऊपर श्वेत प्रलेप की एक सफेद तह लगा देते हैं जो बाद की रगीन सजावट के लिए पृष्ठभूमि का कार्य करती है। उसके पश्चात् वस्तुओ पर एक पारदर्शक चिक्कन प्रलेपन लगाते हैं जिसमें से सफेद पृष्ठभूमि पर की गयी रगीन सजावटें दीखती हैं।

निजामाबाद की मिट्टी-कला उपर्युक्त दो कलाओ से इस बात में भिन्न है कि इस पर किसी चिक्कन-प्रलेपन का प्रयोग नही होता। वस्तु की ऊपरी सतह बनाते समय इतनी चिक्कनी कर दी जाती है कि वह पकाने के पश्चात् बिना किसी चिक्कन-प्रलेपन के ही चमकती है। ये वस्तुएँ प्राय. ऊपरी सतह पर खुदे हुए नक्शों द्वारा सजायी जाती हैं जिन्हें बाद में पारे तथा टीन या पारे तथा सीसे के मिश्रण से भर दिया जाता है।

बंगाल के बरहामपुर तथा उत्तर प्रदेश के लखनऊ में मिट्टी-उद्योग के कलात्मक भाग का काफी सीमा तक विकास हुआ है। नक्शे इतने साफ होने हैं तथा कार्य इतनी उत्तमता से किया जाता है कि ये वस्तुएँ ससार की सबसे अच्छी निर्माण-शाला की वस्तुओं से मुकाबला कर सकती हैं, परन्तु पदार्थों की अच्छाई तथा सफाई मे अभी काफी सुधार होना शेष है।

भारतवर्ष की और प्रकार की मिट्टी-कलाओ के बीच अज़ीमगढ (पश्चिमी पाकिस्तान) की काली तथा रजत मिट्टी कला, कोटा (राजस्थान) तथा अमरोहा

की तूलिका से रँगी सुनहली मिट्टी की कला, एव सिन्ध तथा पंजाब की चिकन-प्रलेपित मिट्टी की कला का उल्लेख किया जा सकता है।

ये वस्तुएँ प्राय नदियो द्वारा जमा की हुई मिट्टी से बनायी जाती हैं। यह मिट्टी स्वभावत अशुद्ध होती है। भारतवर्ष मे सफेद मिट्टी की वस्तुएँ बनाने का कारखाना सरकारी सहायता से ग्वालियर मे श्री डी० सी० मजूमदार द्वारा प्रारम्भ हुआ था। श्री मजूमदार ने आधुनिक मिट्टी-उद्योग की शिक्षा जापान तथा यूरोप मे प्राप्त की थी।

स्पेन मे मिट्टी-उद्योग अरब-निवासियों तथा मूरों द्वारा प्रारम्भ किया गया था। मूरो ने मिट्टी की वस्तुओं को नये प्रकार से विकसित किया, जो चिकन-प्रलेपन के ऊपर धातविक चमक के कारण फारस की मिट्टी की वस्तुओं से भिन्न थी। इस प्रकार की धातविक चमकवाली दीवारों की टाली के नमूने स्पेन की पुरानी मस्जिद मे अब भी देखे जा सकते हैं। ईसाइयो की इस देश पर विजय से इस विकसित उद्योग को काफी धक्का लगा, परन्तु इटली-निवासी इस कला को मूरों से सीखने में भाग्यशाली निकले और अपने देश तक इस कला को ले गये।

१५वी शताब्दी के अन्त में लूकाडेला रोबिया (Lucadella Robia) नामक इटली के कलाकार ने टिन-आक्साइड मिलाकर एक नये अपारदर्शक चिकन-प्रलेपन का आविष्कार किया। इन बर्तनों का नाम स्पेन के मेजोरिका नामक द्वीप के नाम के पीछे मेजोलिका रखा गया था। मेजोरिका द्वीप मूरो के समय मिट्टी की कला के लिए बहुत प्रसिद्ध था। मेजोलिका वस्तुओं का निर्माण इटली से दूसरे बहुत-से देशों में फैल गया। फ्रांस देश के फेन्जा (Faenza) नामक स्थान से नूतन शब्द फेआन्स (Faience) निकला। वर्तमान समय में फेआन्स शब्द उन तमाम चिकन-प्रलेपित मिट्टी की वस्तुओं के लिए प्रयुक्त होता है जिन्हें अंग्रेजी में 'अर्दनवेयर' (Earthenware) कहा जाता है।

ग्रेट ब्रिटेन में पायी जानेवाली सर्वप्राचीन, ज्ञात मिट्टी की कला मेल्टिक काल से प्रारम्भ होती है। रोमन विजय के बाद मिट्टी की वस्तुएँ बनाने की कला मे सुधार हुआ था, परन्तु आग्ल-नार्मन विजय के पश्चात् यह पुन प्रारम्भिक स्थिति में पहुँच गयी और यह स्थिति सत्रहवी शताब्दी तक चलती रही। सत्रहवी शताब्दी के प्रारम्भ-काल में स्टैफर्डशायर में यह उद्योग काफी विकसित अवस्था में था।

आजकल स्टैफर्डशायर वर्तमान इँग्लैंड के मिट्टी-उद्योग का मुख्य केन्द्र है। प्रारम्भ में मिट्टी की वस्तुएँ बनाने के लिए दो अत्यावश्यक पदार्थ थे—मिट्टी और लकड़ी। ये दोनों साथ-साथ देश के बहुत-से भागों में काफी प्रचुर माना में पाये जाते थे। इस कारण मध्यकाल में कुम्हार एक स्थान पर केन्द्रीभूत न हो सके, वरन् देश के सभी भागों में फैले रहे। परन्तु कोयले का ईंधन के स्थान पर प्रयोग होने से तथा कोयले और मिट्टी दोनों के उत्तरी स्टैफर्डशायर में सरलतापूर्वक मिलने से इस कला के कलाकारों की संख्या स्टैफर्डशायर के आसपास बढ़ने लगी और सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक यह इँग्लैण्ड के मिट्टी-उद्योग का सबसे बड़ा केन्द्र हो गया।

सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में इँग्लैण्ड के मिट्टी-उद्योग में शीघ्रता से जो सुधार हुए वे विदेशी प्रभाव के कारण थे। अधिक श्रेय डेनमार्क के दो एलर (Eler) भाइयों को है जिन्होंने उद्योग की कार्य-कुशलता में बहुत-से सुधार किये।

कुम्हारों में सबसे प्रसिद्ध जोसिया वैजवुड (Josia Wedgwood) का जन्म एक बहुत ही पुराने कुम्हार-परिवार में हुआ था। वह तेरह बच्चों में सबसे छोटा था और जब वह केवल ९ वर्ष का था तभी से उसने अपने भाई टामस (Thomas) के नीचे कुम्हारी चाक पर काम करना प्रारम्भ कर दिया था। परन्तु दायें घुटने में चोट के कारण उसे चाक को छोड़कर उद्योग के दूसरे विभागों में जाने को विवश होना पड़ा। सन् १७५४ ई० में वह टामस ह्वील्डन फर्म का साझेदार हो गया और साझेदारी के पाँच वर्ष में ही अपना स्वतन्त्र कारखाना खोल दिया। सन् १७५९ ई० में उसने बर्सलेम (Berslem) में एक छोटा-सा मकान किराये पर लिया और कारखाना खोल दिया। इस छोटे-से कारखाने को विश्व के मिट्टी-उद्योग मे सुधार करने का काफी श्रेय है। मलाई रंग की वस्तुओं के बनाने में सफलता के कारण सन् १७६५ ई० में उसे जार्ज तृतीय की पत्नी रानी शार्लोट (Charlot) का शाही संरक्षण प्राप्त हो गया। ये मलाई रंग के बर्तन बाद में 'क्वींसवेयर' कहलाये। अपने अथक परिश्रम और धैर्ययुक्त परीक्षणों के प्रति अनुराग के कारण उसे बहुत शीघ्र ही सफलता मिली। उसने सन् १७६९ ई० में ईट्रूरिया (Etruria) नामक स्थान में एक बड़ा कारखाना स्थापित किया जो अब भी उसके वंशजों के अधिकार में है। प्रचलित 'क्वींस-वेअर' के अतिरिक्त नया कारखाना काले बासाल्ट पात्रों के लिए भी प्रसिद्ध

हो गया। ये काले बासाल्ट पात्र बिना चिक्कन-प्रलेपित कड़ी मिट्टी से निर्मित (Stoneware) होते थे जो अलङ्कृत बर्तनों तथा आकृतियों के लिए उपयोगी थे। जैसपार पात्र (Jaspar ware) प्राय सफेद उठी हुई सजावट से बनते हैं। वेजवुड ३ जून सन् १७९५ ई० में मर गया।

वेजवुड की सफलता ने तात्कालिक कुम्हारों में प्रतिस्पर्धा को जन्म दिया। उसके बाद की तीव्र स्पर्धा के कारण उद्योग का, कारीगरी तथा कार्य-कुशलता दोनों के क्षेत्र में, काफी विकास हुआ। इस स्पर्धा के परिणाम-स्वरूप एक विशेष प्रकार की मिट्टी की वस्तुओं का आविष्कार हुआ जिसको अंग्रेजी में 'अर्दनवेयर' कहा जाता है। ये वस्तुएँ अच्छी तरह पकायी गयी होती हैं और अन्दर की ओर सरन्ध्र होती हैं तथा बाहर की सतह पर एक नये प्रकार का बोरो-सिलीकेट चिक्कन-प्रलेपन लगा होता है। इस प्रकार की मिट्टी-कला में बड़ी सफलता के कारण ही यूरोप तथा अमेरिका के अधिकतर प्रगतिशील देशों में इस की फैक्टरियाँ स्थापित हुई थीं।

जर्मनी तथा यूरोप के बहुत-से भागों में सर्वप्रथम मिट्टी की वस्तुएँ पाषाण-युग में सेल्ट्स (Celts) द्वारा बनायी गयी थीं। १७वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में इटली की मैजोलिका वस्तुओं की कार्य-कुशलता जर्मनी तथा यूरोप के दूसरे देशों में फैल गयी। जर्मनी में मेजोलिका वस्तुओं का बनना हालैण्ड के डैनील बेहागेल (Daniel Behagel) द्वारा सन् १६६१ ई० में प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार की वस्तुएँ १८वीं शताब्दी के अन्त तक चलती रहीं। बाद में इँगलैण्ड के श्वेत मृत्पात्र (Fine-earthenware) यूरोप के बाजार में इतनी अधिकता से आने लगे कि मैजोलिका वस्तुओं को इँगलैण्ड के श्वेत मृत्पात्रों के लिए बाजार छोड़ देना पड़ा। जर्मनी में इन नयी प्रकार की वस्तुओं को 'श्टाइन गुत' (Stein gut) कहा जाने लगा।

कड़ी मिट्टी-वस्तुएँ

(STONEWARE)

जर्मनी में १४वीं शताब्दी से ही एक विशेष प्रकार की मिट्टी-वस्तुओं के बनाने का आविष्कार हुआ। इन वस्तुओं को प्राय कड़ी मिट्टी-वस्तुएँ कहा जाता है। ये वस्तुएँ मुख्यत. राइनलैण्ड (Rhineland) में पायी जानेवाली,

जलने पर मासल (Buff) रंग की हो जानेवाली मिट्टी से बनायी जाती थी। दूसरी वस्तुओं से भिन्न, इस प्रकार की वस्तुएँ पूर्णरूपेण काँचीय तथा रन्ध्रहीन होती थी और इन पर साधारण नमक से चिक्न-प्रलेपन किया जाता था। बाद में हुए विकासों के कारण वर्तमान कडी मिट्टी-वस्तुओं तथा स्वास्थ्य-सम्बन्धी मिट्टी-वस्तुओं का जन्म हुआ। कडी मिट्टी-वस्तुओं को भारी रासायनिक उद्योग (Heavy chemical industries) के शीघ्र विकास का काफी श्रेय है। इँग्लैण्ड में साधारण नमक द्वारा चिक्न-प्रलेपन सर्वप्रथम एलर भाइयो द्वारा १७वीं शताब्दी के अन्त में प्रारम्भ हुआ था। १८वीं शताब्दी के मध्य तक इँग्लैण्ड में कडी मिट्टी-वस्तुओं का अविराम निर्माण प्रारम्भ हो गया था। इसके लिए वे श्वेत मिट्टी का प्रयोग करते थे जो इँग्लैण्ड में सर्वप्रथम सन् १७२० ई० में खोजकर निकाली गयी थी। १९वीं शताब्दी में रासायनिक कडे मिट्टी-बर्तन, परनाला, अम्लपात्र आदि के विकास तथा माँग के कारण रगीन मिट्टी का प्रयोग पुनर्जीवित हो उठा। वर्तमान शताब्दी में भारत में कडी मिट्टीवाले बर्तनों के बहुत-से कारखाने प्रारम्भ हो गये हैं जिनका मुख्य उत्पादन साधारण नमक द्वारा चिक्न-प्रलेपित पानी निकालने की नालियाँ, अचार-मुरब्बे के पात्र, स्वास्थ्य-सम्बन्धी मृत्पात्र और अम्लपात्र है।

पोरसिलेन

चीन-निवासियों ने २०० ई० पू० में नये प्रकार की मिट्टी की वस्तुओं का बनाना प्रारम्भ किया। इसमें वे शुद्ध श्वेत मिट्टी काउलिंग (Kauling) तथा एक नये पत्थर का, जिसे पी-टुन्ज़ी (Pe-tun-tse) कहा जाता है, प्रयोग करते थे। चीन की मिट्टी-कला बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अरब व्यापारियों द्वारा चीनी चाय के साथ यूरोप में पहुँची थी। इन अरब व्यापारियों ने भूमध्य सागर के बन्दरगाहों, विशेष कर इटली के बन्दरगाहों, से निरन्तर व्यापार की स्थापना की थी। सन् १२९८ ई० में प्रसिद्ध यात्री मार्कोपोलो ने अपने चीन के वर्णन में वहाँ की प्रसिद्ध मिट्टी-कला को बताने के लिए पोरसिलेन शब्द का प्रयोग किया था। बाद में जैसे-जैसे चीन की मिट्टी-कला के नमूने यूरोप में अधिकाधिक जाने लगे वैसे ही वैसे इस पोरसिलेन शब्द का प्रयोग मिट्टी की एक विशेष प्रकार की वस्तुओं तक ही सीमित हो गया, जो श्वेत, अल्प पारदर्शक तथा काचीय होती हैं तथा जिनपर एक विशेष प्रकार का मुलायम श्वेत चिक्न-प्रलेपन दिया जाता है।

सुदूर पूर्व के इस पदार्थ की श्रेष्ठता तथा महत्त्व को जानकर यह स्वाभाविक था कि यूरोप में इटली-निवासी ही सर्वप्रथम अपने देश मे पोरसिलेन बनाने का प्रयास करें। लन्दन के विक्टोरिया और अल्बर्ट अजायबघरों के संग्रहों में सबसे प्राचीन नमूनों के विषय में सोचा जाता है कि वे सन् १५७५ से १५८५ ई० के बीच फ्लोरेन्स (Florence) में मेडीसी (Medici) परिवार की संरक्षकता मे बने थे। इस नकली पोरसिलेन के गुण चीनी पोरसिलेन से भिन्न थे। कारण यूरोप के निवासी मिट्टी तथा काँच के मिश्रण का प्रयोग करते थे। मिट्टी और काँच के मिश्रण का प्रयोग करने का कारण इन लोगों का यह विश्वास था कि पोरसिलेन पारदर्शक काँच और अपारदर्शक मिट्टी की वस्तुओं के बीच का एक पदार्थ है।

इस क्षेत्र मे अगला कदम फ्रासीसी लोगो ने उठाया और बताया जाता है कि सन् १७६३ ई० मे रुआँ (Rouen) के निकट सेण्ट सेवरे (St. Sevre) का फिआन्स बनानेवाला लुई पोटरेट (Louis Poterat) चीन-जैसी पोरसिलेन बनाने में सफल हुआ। उसके थोड़े दिन बाद ही वैसी ही वस्तुएँ पेरिस के पास सेण्ट क्लाउड (St. Cloud) के फिआन्स कारखाने मे बनने लगीं।

यह प्रारम्भिक फ्रासीसी पोरसिलेन वास्तव में काँच था, जो पूर्णतः पिघलाया नही जाता, परन्तु उसमें दुग्ध-जैसी अल्प पारदर्शकता उत्पन्न कर दी जाती है। बाद की दो शताब्दियों में बहुत-से वैज्ञानिकों की गवेषणाओं द्वारा प्रसिद्ध सीवरेस पोरसिलेन (Sevres Porcelain) का आविष्कार हुआ जो अल्प-पारदर्शकता तथा सजावट के रंगों की संख्या में चीन की सबसे सुन्दर पोरसिलेन के बराबर ठहरती थी।

जर्मनी में कुम्हारो ने नही, वरन् कीमियागरो ने पोरसिलेन के संगठन का पता लगाया। सन् १७०९ ई० में एक कीमियागर के पुत्र जान फ्रेडरिक बौटकर (John Frederic Bottcher) ने एक संगठन का पता लगाया, जो चीनी पोरसिलेन से बिलकुल मिलता था। जब इस आविष्कार का समाचार फ्रेडरिक अस्टम प्रथम के पास पहुँचा तो सेक्सोनी के प्रधान ने बौटकर को दूसरे कारीगरों के सहित माइसेन (Meissen) के पास एलबरेख्तबर्ग (Albrechts berg) के किले में बन्द कर दिया। बौटकर तथा इन कारीगरों से किसी भी किये हुए आविष्कार के भेद को न बताने की शपथ ले ली गयी थी। बौटकर केवल ३५ वर्ष की अवस्था में ही, सन् १७१९ ई० में, मर गया। कुछ ही समय में विभिन्न सुयोग्य प्रबन्धकों के कारण इस किले के कारखाने में बनी वस्तुएँ सारे यूरोप में इतनी

प्रसिद्ध हो गयी कि कठोर नियन्त्रण के होते हुए भी बहुत-से कारीगर किसी तरह छिपकर भाग गये और उनकी सहायता से जर्मनी में बहुत-से स्थानों पर नये कारखाने खुल गये। सन् १७५९ ई० में और फिर सन् १७६१ ई० में जर्मनी के महान् फ्रेडरिक ने एलवरेस्तवर्ग के कारखाने को लूटा। अत. कुछ समय तक कारखाना बिलकुल वन्द कर दिया गया। बौटकर तथा उसके उत्तराधिकारियो के सांचे, नमूने, मुख्य-मुख्य कारीगर तथा लेख-प्रमाण फ्रेडरिक अपने साथ वर्लिन ले गया था।

वर्लिन की राजकीय पोरसिलेन फैक्टरी की स्थापना का श्रेय जॉन आरनेस्ट गोत्सकोवस्की (John Ernest-Gottskowski) को है। गोत्सकोवस्की एक वैंकर था जिसने सन् १७६१ ई० में कारखाना खोला। फ्रेडरिक ने इस कारखाने को सारा सामान और कारीगर, जिन्हें वह अपने साथ माइसेन कारखाने से लाया था, भेज दिया था। दो वर्ष वाद सन् १७६३ ई० में फ्रेडरिक ने कारखाने को स्वय अपने हाथ मे ले लिया। यही कारखाना बाद में वर्लिन का राजकीय कारखाना हो गया। वर्लिन का यह कारखाना दूसरे राजकीय कारखानों की भांति लाभदायक व्यापार न था। अत इस वर्लिन पोरसिलेन को वेचने के लिए बहुत-से चतुरतापूर्ण तरीकों का उपयोग किया जाता था।

वर्लिन की पोरसिलेन खरीदने के लिए यहूदियों पर अधिक दवाव डाला गया था। राजकीय पोरसिलेन का एक पूरा सेट खरीदे विना कोई यहूदी विवाह का प्रमाणपत्र नही पा सकता था। साथ ही वर्लिन की लाटरियों को प्रतिवर्ष इस पोरसिलेन के मूल्य के लगभग ५० हजार मार्क्स (सिक्के) वाँटने पड़ते थे। तो भी जव कारखाने के वैज्ञानिक तथा यन्त्रकला-विज्ञान आदि क्षेत्रों की ओर ध्यान दिया गया तो वर्लिन के इस कारखाने ने ससार के पोरसिलेन-उद्योग के विकास में वड़ी सहायता पहुँचायी।

महान् वैज्ञानिक डाक्टर हेरमान अगस्त सैगर (जन्म १८३९ ई०) उन व्यक्तियों में से एक थे, जिन्हे जर्मनी के मिट्टी-उद्योग के शीघ्र विकास का श्रेय है। उन्होने केवल इस विषय पर स्वय ही बहुत-सा कार्य नहीं किया, वरन् अपने पीछे छात्रों का एक ऐसा समूह भी छोड़ा जिनकी गणना अब तक मिट्टी-कला के महान् विशेषज्ञों में है। मृद्-उद्योग को उनकी सबसे बड़ी देन पाइरोस्कोप है, जिससे मिट्टी की वस्तुओं का भट्ठी के अन्दर तापक्रम नापा जाता है। उसके नाम के पीछे उसे सैगर शंकु (Segar Cone) कहते हैं।

वास्तव में मैंगर अग्रनेता थे जिन्होंने प्रथम बार मार्ग दिखाया, जिस पर उन सभी व्यक्तियों को चलना चाहिए जो इस उद्योग पर कुछ अधिकार प्राप्त करना चाहते हैं।

१८ वीं शताब्दी के मध्य में इंग्लैण्ड के कुम्हार भी चीन-जैसी मिट्टी की वस्तुएँ बनाने के लिए श्वेत पदार्थों की खोज में व्यस्त थे। इंग्लैण्ड में वास्तविक पोरसिलेन बनाने का प्रथम सफल प्रयास विलियम कुकवर्दी (William Cookworthy) का था। उसने सन् १७५५ ई० में कार्नवाल में चीनी मिट्टी तथा चीनी पत्थर का पता लगाया था। यद्यपि उस समय फ्रास-जैसी काँच-पोरसिलेन बनाने के पदार्थ तथा विधि ये लोग जानते थे, परन्तु देशवासी कुम्हारों ने अपने स्वतन्त्र प्रयोग उस समय तक नहीं छोड़े जब तक कि १८ वीं शताब्दी के अन्त से कुछ ही पूर्व स्टोक-आन-ट्रेण्ट में अस्थि-राख सहित एक नया संगठन न निकल आया।

यह नयी अस्थि पोरसिलेन बोन चाइना (Bone china) के नाम से विख्यात हो गयी और तब से बहुत-से देशों में इसका अनुकरण हुआ है। उपर्युक्त अनेक देशों में विभिन्न प्रकार की निकली हुई पोरसिलेनों को मुख्य तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

१. फेल्सपैथिक या आदि पोरसिलेन—इस प्रकार की पोरसिलेन सर्वप्रथम चीन में तथा बाद में जर्मनी, फ्रास तथा दूसरे यूरोपीय देशों में बनी थी।

२. काँचीय या कृत्रिम पोरसिलेन—यह सर्वप्रथम सफलतापूर्वक इटली और फ्रास में बनायी गयी थी। उसके बाद दूसरे यूरोपीय देशों में इसका अनुकरण किया गया। इसका मुख्य भाग मुलायम होता है और काँच के समान आसानी से छोटे-छोटे टुकड़ों में टूट जाता है।

३. अस्थि पोरसिलेन अथवा बोन चाइना—यह सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में बनी और फिर दूसरे देशों को ले जायी गयी। इसके मुख्य भाग में हड्डी की राख होती है और कठोरता तथा टूटने में यह प्रथम दो के बीच की है।

यूरोप-निवासियों द्वारा प्रारम्भ करने से पूर्व भारतवर्ष में वास्तविक पोरसिलेन का इतिहास अप्राप्य है। सन् १८२९ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने आदेश दिया कि भारतवर्ष में भी श्वेत मृत्पात्र बनाने की ओर उचित प्रयास किया जाय। मेडिकल कालेज कलकत्ता की प्रयोगशाला में कहलगाँव (Kolgong-Bihar) आदि स्थानों की विभिन्न मिट्टियों का परीक्षण हुआ। उन पर चिक्कन-प्रलेप करने

के बहुत से प्रयोग किये गये। बिहार के भागलपुर जिले में कहलगाँव के निकट पथरघट्टा में पोरसिलेन बनाने का प्रथम कारखाना सन् १८६० ई० में खुला। डाक्टर बॉल (Ball) ने इस कारखाने का वर्णन करते हुए लिखा है—"इस कारखाने ने स्टैफर्डशायर में बनी वस्तुओं के समान चीनी वर्तन, वैज्ञानिक कार्यों के लिए पोरसिलेन पात्र तथा श्रेष्ठ पेरियान (Parian) आदि वस्तुएँ बनायी हैं।"

वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भिक भाग में आधुनिक स्तर पर मिट्टी की वस्तुओं का कारखाना कलकत्ता में प्रारम्भ हुआ था। यह कारखाना श्री ऐस० देव द्वारा प्रारम्भ किया गया था और उन्होंने ही इसका प्रबन्ध किया था। श्री देव ने जापान, इँग्लैण्ड तथा जर्मनी में शिक्षा प्राप्त की थी। यहाँ की बनी वस्तुएँ उच्च श्रेणी की होती हैं। इस कारखाने ने इस तथ्य को सिद्ध कर दिया है कि भारतवर्ष में भी केवल स्थानीय कच्चे पदार्थों से ही उच्च श्रेणी की मिट्टी की वस्तुएँ बनायी जा सकती हैं। भारतवर्ष का यह प्रथम पोरसिलेन का कारखाना अब एशिया के बड़े कारखानों में से एक हो गया है। बंगलोर का पोरसिलेन का कारखाना १९३१-३३ ई० में मैसूर राज्य की सरकार द्वारा प्रारम्भ हुआ। यह कारखाना भी उन्हीं विशेषज्ञ श्री ऐस० देव द्वारा बनवाया गया था जिन्होंने पोरसिलेन का प्रथम कारखाना कलकत्ता में १९०५-१९०८ ई० में बनवाया था। यह कारखाना मुख्यत. पोरसिलेन के विद्युत्-रोधक (Insulator) बनाता है। सन् १९३६ ई० में हेर राइत्ज नामक जर्मन विशेषज्ञ ने कारखाने का कार्य-भार ले लिया था परन्तु सन् १९३९ ई० में द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ होने पर ब्रिटिश सरकार ने हेर राइत्ज को एक स्थान पर नजरबन्द कर दिया। आजकल भारतवर्ष में बहुत-सी जलविद्युत् योजनाओं के कार्यान्वित होने से विद्युत्-रोधक की माँग बहुत बढ़ गयी है। अत बंगलोर के इस पोरसिलेन कारखाने का विस्तार तथा इसकी पुनर्व्यवस्था एक जापानी कम्पनी द्वारा हो रही है। इस कारखाने का उत्पादन उच्च श्रेणी के २,५०० टन तक विद्युत्-रोधक प्रतिवर्ष हो जाने की आशा है। इसके साथ-साथ काफी संख्या में विभिन्न घरेलू उपयोग की पोरसिलेन-वस्तुएँ भी बनने की आशा है।

बाद में भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों पर दूसरे कारखाने भी खुले, जिनमें से अधिकांश के प्रबन्धक लेखक द्वारा प्रशिक्षित, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्र हैं। मिट्टी की वस्तुओं की माँग क्रमश बढ़ रही है। अत. वर्तमान माँग पूरी करने के लिए कई और नये कारखाने सरलतापूर्वक खोले जा सकते हैं।

तापसह वस्तुएँ

(REFRACTORY WARES)

यद्यपि अग्नि-ईंटो या दुर्गल ईंटो (Fire bricks) का प्रयोग श्वेत मिट्टी की वस्तुओ के बनने के काल से ही होता आया है, परन्तु तापसह वस्तुओं का अविराम उत्पादन १९वी शताब्दी से प्रारम्भ हुआ है। ऐसा कहा जाता है कि इस उद्योग का प्रादुर्भाव इंग्लैण्ड मे हुआ, परन्तु यूरोप के अन्य उत्पादक देशों ने बाद मे काफी उन्नति की है।

भारतवर्ष मे बंगाल के रानीगंज मे सन् १८५९ ई० में स्थापित मेसर्स बर्न ऐण्ड कम्पनी द्वारा अग्नि-ईंटे बनायी जाती थी। सन् १८७५ ई० मे कलकत्ता टकसाल की भट्ठियो मे कुछ अग्निमिट्टियो का परीक्षण हुआ था, जहाँ पर काफी नमूने परीक्षण मे पूर्ण सफल रहे। इस कम्पनी का जबलपुर का कारखाना सन् १८९० ई० में प्रारम्भ हुआ था और बहुत वर्षो तक यह कम्पनी अग्नि-ईंटे बनाकर रेलवे कारखानो की भट्ठियो को देती रही। यह कम्पनी अपने समय की एकमात्र कम्पनी थी जो अग्नि-ईंटो मे विशेषता प्राप्त कर रही थी। सन् १९०९ ई० मे जमशेदपुर के निकट 'टाटा आइरन ऐण्ड स्टील वर्क्स' की स्थापना से उच्च श्रेणी की अग्नि-ईंटो तथा दूसरी तापसह वस्तुओं की माँग इतनी तेजी से बढी कि बहुत-से नये कारखाने खुल गये, जो विभिन्न प्रकार की उच्च तापसह वस्तुओं को भारतीय कच्चे माल से बनाते हैं।

मिट्टी की वस्तुओं का वर्गीकरण

समय-समय पर विभिन्न प्रकार की मिट्टी की वस्तुएँ बनने से यह आवश्यक हो गया कि विभिन्न मिट्टी की वस्तुओ को एक-सी विशेषता वाले वर्गो मे बाँट दिया जाय।

बाउरी (Bourry) ने मिट्टी की विभिन्न वस्तुओ को दो भागो में विभाजित किया है—(१) सरन्ध्र वस्तुएँ तथा (२) रन्ध्रहीन वस्तुएँ। बाद में इनको पाँच और उपभागो में मिट्टी मिश्रण-पिण्ड तथा चिक्कन-प्रलेपन के आधार पर विभाजित किया है।

बाउरी वर्गीकरण को मानते हुए लेखक ने तमाम मिट्टी की वस्तुओं को निम्नलिखित पाँच भागों में बाँटना ठीक समझा है—

१. पकी मिट्टी (Terra cotta)—इस पारिभाषिक शब्द का अर्थ होता है

'पकायी हुई मिट्टी' और वर्तमान समय में उन सब मिट्टी की वस्तुओं के लिए प्रयुक्त होता है जो बिना चिकन-प्रलेपन के तथा सरन्ध्र हैं। साधारण ईंटें, छत के खपड़े तथा दूसरी चिकन-प्रलेपन-रहित वस्तुएँ, जो साधारण कुम्हारों द्वारा बनायी जाती हैं, इस वर्ग में आती हैं। ये वस्तुएँ प्राय पकाने पर लाल या बादामी रंग की हो जानेवाली मिट्टी से बनती हैं तथा दूसरे वर्गों की वस्तुओं की अपेक्षा कम तापक्रम पर पकायी जाती हैं।

२. चिकन-प्रलेपित मृत्पात्र (Earthenware)—इस वर्ग में सफेद या रंगीन मिट्टी से बनी सभी सरन्ध्र वस्तुएँ आती हैं, परन्तु इन पर सदैव चिकन-प्रलेपन की परत चढी रहती है। इसमे फ्रास का फिआन्स, जर्मनी का स्ताइन गुत तथा दूसरी ऐसी वस्तुएँ जैसे मेजोलिका, आइरन स्टोन, फ्लिण्टवेअर आदि और जलने पर लाल हो जानेवाली मिट्टी से बने, बादामी, काले, चिकन-प्रलेपन से प्रलेपित तथा कथित रॉकिंघम पात्र (Rockingham ware) आते हैं। भारतवर्ष में ग्वालियर तथा चुनार की मिट्टी की वस्तुएँ इस वर्ग में आती हैं।

३. कड़ी मिट्टी-वस्तुएँ (Stoneware)—ये काँचीय अपारदर्शक मिट्टी की वस्तुएँ होती हैं। जलने पर श्वेत हो जानेवाली मिट्टी या रगीन मिट्टी से बनायी जाती हैं। सफेद वस्तुएँ पोरसिलेन की भाँति प्राय चिकन-प्रलेपन से ढँकी रहती हैं। परन्तु रगीन वस्तुओं पर प्राय. साधारण नमक का चिकन प्रलेपन रहता है।

४. पोरसिलेन (Porcelain)—इस वर्ग में सभी श्वेत, अपारगम्य तथा चिकन-प्रलेपन से ढके मिट्टी के पात्र आते हैं। ये काफी पतले होने पर अल्प पारदर्शक होते हैं। ये वस्तुएँ सदैव शुद्ध श्वेत चीनी मिट्टी से बनायी जाती हैं। वस्तुओं के मिश्रण-पिण्ड (Body) को बहुत ही उच्च तापक्रम पर काँचीय किया जाता है।

५. तापसह वस्तुएँ (Refractories)—ये अग्नि-मिट्टियों से या उच्च तापसह पदार्थों से बनायी और बहुत ही ऊँचे तापक्रम पर पकायी जाती हैं। ये बिना चिकन प्रलेपन के तथा सरन्ध्र रहती हैं। ये भट्ठियों के बनाने में, धातुओं तथा काँच के गलाने आदि में प्रयुक्त होती हैं।

भारतवर्ष में विभिन्न प्रकार के मृत्पात्रों के बनाने में काम आनेवाली मिट्टियाँ तथा खनिज काफी अधिकता से पाये जाते हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् इन खनिजों की अधिकाधिक खोज जारी है और विभिन्न स्थानों पर नये भण्डार मिले हैं। हमारी वर्तमान सरकार ने मृद्-उद्योग के विकास में विशेष रुचि दिखायी है,

और इस प्रसग मे भारत के केन्द्रीय भारी उद्योग मंत्री श्री मनुभाई एम० शाह के भाषण की कुछ पंक्तियो का उद्धरण अप्रासगिक न होगा। यह भाषण उन्होंने ९ फरवरी सन् १९५७ ई० को इण्डियन सेरेमिक सोसाइटी की २१ वी साधारण वार्षिक सभा में मोरवी में दिया था।

"हम मृद्-उद्योग तथा पोरसिलेन के क्षेत्र मे स्वास्थ्य-सम्बन्धी पात्रो, प्रलेपित टालियो तथा खपडो, बडी मिट्टी-नल तथा विद्युत्-रोधको के विकास पर अधिक जोर दे रहे हैं। यद्यपि इस उद्योग की अधिकतर वस्तुएँ बडे कारखानो में ही बनती हैं, परन्तु घरेलू उपयोग की तथा कलात्मक महत्त्व की बहुत-सी चीजें हाथ से भी बन सकती हैं। यही एक क्षेत्र है जिसमें दोनो स्तरो के सम्मिलित उत्पादन का कार्यक्रम बहुत महत्त्वपूर्ण है।" निम्नलिखित सारणी मे विभिन्न वस्तुओ की वर्तमान वार्षिक उत्पादन-क्षमता, लाइसेंस-प्राप्त बढ़नेवाली क्षमता तथा वह उत्पादन-अन्तर जो पूरा करना है, दिया गया है।

इस सारणी मे सभी उत्पादन टनो मे दिये गये हैं।

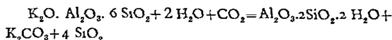
वस्तुनाम	वर्तमान वार्षिक उत्पादन-क्षमता	लाइसेन्स-प्राप्त बढ़नेवाली क्षमता	प्रस्तावित बढ़नेवाली क्षमता	१९६०-६१ तक सम्पूर्ण प्राप्य क्षमता	१९६०-६१ तक आवश्यकता पूर्ति के लिए आवश्यक संपूर्ण क्षमता
बर्तन	१६,८९६	१४,४२०	२,७२४	३४,०४०	२४,५००
स्वास्थ्य सम्बन्धी पात्र	२,६४०	४,३२०	३,७६०	१०,७२०	८,०००
प्रलेपित टालियाँ	४,१०४	३,२६५	१,३८०	८,७४९	८,०००
बडे मिट्टी-नल	५७,४२४	३३,८१०	१३,२००	१,०४,४३४	८०,०००
कडे मिट्टी-जार	९,३६७	२८८	१०८	९,७६३	२१,३८०
उच्च तनाव विद्युत्-रोधक	८००	४,९८०	—	५,७८०	८,०००
न्यून तनाव विद्युत्-रोधक	५,४२४	११०,६०	३९६	१६,८८०	८,०००
दूसरी पोरसिलेन की विभिन्न विद्युत् की वस्तुएँ	—	१२	१५०	१६२	—
अन्य	६००	५४०	६६	१,२०६	२,१२०
योग	९७,२५५	७२,६९५	२१,७८४	१,९१,७३४	१,६०,०००

द्वितीय अध्याय

मिट्टियाँ तथा खनिज पदार्थ

मिट्टियाँ—मिट्टी को लैटिन भाषा में आरगाइल (Argile) कहते हैं। यह शब्द उन सूक्ष्मकणीय खनिज पदार्थों के लिए प्रयुक्त होता है जो बहुत-से खनिजो से मिलकर बने हो तथा जिनके मुख्य गुण प्रधानत तीन हो —(१) गीले होने पर लचीलापन, (२) सूखने पर आकृति को धारण रखने की क्षमता, (३) गरम करने पर पूर्व आकार को बिना खोये ही कठोर हो जाना।

मिट्टी की उत्पत्ति—मिट्टी आग्नेय चट्टानो का विच्छेदित पदार्थ है। ये चट्टानें मुख्यत. एल्यूमिना (Al_2O_3) तथा रेत से बनी होती हैं। चट्टानें प्राकृतिक साधनो द्वारा विच्छेदित होकर अतिसूक्ष्म कणोवाले लचीले या अर्द्ध लचीले पिण्ड में बदल जाती हैं। जब मूल चट्टान में चूना, मैगनीशिया, लोहा आदि अपद्रव्य होते हैं तो विच्छेदन से अशुद्ध मिट्टी मिलती है। फेल्सपार युक्त चट्टान (Fels pathic Rock) से अपेक्षाकृत शुद्ध श्वेत मिट्टी मिलती है जिसे केओलिन (Kaolin) कहते हैं। यह चट्टानो का विच्छेदन स्पष्ट रूप से किस प्रकार होता है, यह अभी गवेषणा का विषय बना हुआ है। विच्छेदन में होनेवाली क्रियाएँ इतनी जटिल हैं कि उनका केवल अपूर्ण ज्ञान ही प्राप्त हो सका है। विच्छेदन द्वारा चट्टान के शुद्ध मिट्टी में परिवर्तित हो जाने को केओलीनीकरण (Kaolinization) कहते हैं। चट्टानोंके विच्छेदन में होनेवाली क्रिया को सरलतम ढग से निम्न समीकरण द्वारा दर्शाया जा सकता है—



$$K_2O.\ Al_2O_3.\ 6\ SiO_2 + 2\ H_2O + CO_2 = Al_2O_3.2SiO_2.2\ H_2O + K_2CO_3 + 4\ SiO_2$$

पोटैशियम कार्बोनेट वर्षा के पानी में घुलकर, रमकर, निकल जाता है और सिलीका (SiO_2) मिट्टी के साथ मिला रहता है, जैसा कि लगभग सभी मिट्टियों में हम पाते हैं।

केओलिन बनने की विधि की परिकल्पना के अनुसार चट्टान पर निम्नलिखित चीजों की क्रियाएँ होती है —

१ तल पर प्राकृतिक साधनों की।
२ धँसान तथा दलदल के ऊपर से नीचे जानेवाले पानी की।
३ कार्बन डाई आक्साइड सहित नीचे से ऊपर चढ़नेवाले पानी की।
४ गन्धकाम्ल घोल तथा हाइड्रोजन सल्फाइड।
५ जल-विश्लेषण (Hydrolysis)।

चट्टान के तल का प्राकृतिक साधनो द्वारा विच्छेदन, केओलीनीकरण की सर्वप्राचीन व्याख्या है। यह व्याख्या अब भी भूगर्भशास्त्र की सभी पाठय पुस्तकों में मिलती है। जिस गहराई तक चट्टानों का तल-विच्छेदन होता है वह भिन्न-भिन्न होती है। कुछ भागों मे, विशेष कर प्राचीन जगलों के नीचे, यह काफी गहराई तक जा सकती है। खुली चट्टानो में यह गहराई अस्तित्वहीन हो सकती है। स्वभावत जोड की सीमा तथा विशेषता, जलवायु-सम्बन्धी विशेषताओं, चट्टानों की बनावट एव खनिज सम्बन्धी विशेषताओं का तल-विच्छेदन की गहराई पर प्रभाव पडता है। एक बात, जिसे प्रत्येक प्रेक्षक सोचने को विवश होता है, यह है कि श्वेत प्रायमिक मिट्टी पाये जानेवाले क्षेत्र फेल्सपार चट्टानों (जिनसे यह मिट्टी बन सकती थी) के पाये जानेवाले क्षेत्र के अनुपात में बहुत कम हैं। अब हम जानते हैं कि प्रायः इस प्रतिकारक (Agent) द्वारा केओलीनीकरण नही होता। ग्रेनाइट (Granite) तथा दूसरी फेल्सपार-युक्त चट्टानों के प्राकृतिक विच्छेदन से प्राप्त मिट्टियों के गुण भिन्न होते हैं। चूँकि तल-विच्छेदन तनु अम्लों द्वारा होता है और यह विधि भी ओषदीकारक है। अत नीचे की चट्टान में लोहा तथा मैगनीशिया का अनुपात बढ जाता है। जहाँ केओलिन तल के प्राकृतिक विच्छेदन से बनी मालूम होती है वहाँ यह सम्भव है कि दलदल का पानी ही केओलिन बनने का कारण हो, भले ही इस पानी के अस्तित्व के चिह्न अब मिट गये हो।

दलदल व धँसान के नीचे के पानी में श्वेत केओलिन बनाने की क्षमता तो मालूम होती है, परन्तु इस विधि में केओलीनीकरण को नीचे की ओर अधिक दूरी तक ले जाने की क्षमता नहीं मालूम पडती। फिर भी जर्मनी मे केओलीनीकृत अग्नि-चट्टान तथा बादामी कोयले की तहें साथ-साथ पायी जाती हैं। इससे इन तहों में केओलीनीकरण की सामर्थ्य होने का विश्वास दृढ होता है। अधिकतर मनुष्य

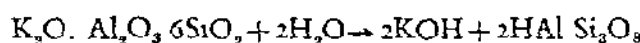
धँसान पानी सिद्धान्त का समर्थन इस कारण करते हैं कि इस पानी में कार्बनिक पदार्थ, ह्यूमिक (Humic) अम्ल तथा सम्बन्धित अम्ल और कार्बोनिक अम्ल रहते हैं जिससे अवकारक गुण आ जाता है। अत नीचे की चट्टान में लोहे तथा मैगनीशिया की मात्रा कम हो जाती है। कुछ केओलिनो, यथा हले (Halle) केओलिन में लाल और भूरा रग मिलता है। यह रंग कार्बनिक पदार्थों के कारण होता है जो गरम करने पर जलकर दूर हो जाता है। यह रग दलदल-जल से भी उत्पन्न किया जा सक्ता है।

तल के नीचे केओलीनीकरण से प्राप्त मिट्टी में एल्यूमिना की मात्रा अधिक होती है, कारण तल के ऊपर जो प्राकृतिक विच्छेदन होता है उस मिट्टी से कुछ मृत्सार (Clay-substance) धुल जाता है और सिलीका अधिक रह जाती है। कभी-कभी ही कार्बन-डाई-आक्साइट-युक्त चढनेवाला पानी स्थानीय केओलीनी-करण का कारण होता है। यह व्याख्या केओलिन उत्पत्ति के अधिकतर स्थानों पर लागू नही की जा सक्ती। गैगेल (Gagel) और स्ट्रेम (Stremme) ने इस विधि के उदाहरण-स्वरूप कार्ल्सबाद के निकट ग्रीस हृयूबेल (Greiss hubler) पर ग्रेनाइट के केओलीनीकरण का वर्णन किया है। इस स्थान पर व दूसरे स्थान मेडीरा (Madeira) में कैनीक्ल (Canical) पर भी मूल ग्रेनाइट का लौह अश कुछ भागो से कम होकर कुछ भागो पर अधिक हो गया है। परन्तु पोटाश, सोडा तथा चूना काफी मात्रा में कम हो गया है। स्टाल (Stahl) के अनुसार दलदल जल से बनी केओलिन में जो हरा, बादामी तथा भूरा रग मिलता है वह सोते के अम्लीय पानी से बनी केओलिन में नही मिलता।

गन्धकाम्लयुक्त पानी कभी-कभी केओलीनीकरण का कारण होता है। यदि गन्धकाम्ल घोल ऊपर चढता हुआ हो तो नीचे रसने की अपेक्षा क्रिया समझने में कम कठिनाई होगी। कारण ऊपर से नीचे रसने की अवस्था में यह स्पष्ट नही होता कि केओलिन लौह धत्वों से मुक्त कैसे हो जायगी। यह निश्चित है कि तनु गन्धकाम्ल फेलसपार पर क्रिया करेगा और यह सम्भावना है कि यह क्रिया केओलीनी-करण की ओर एक प्रभावशाली प्रतिकारक (एजेण्ट) के रूप में कार्य करे। पर इस सिद्धान्त के समर्थन के लिए और भी पूर्णरूपेण परीक्षण की आवश्यक्ता है।

इसमें कोई सन्देह नही कि जल-विश्लेषण फेलसपार के विच्छेदन का एक महत्त्व-पूर्ण साधन है। परन्तु जल-विश्लेषण के साथ-साथ भास्मिक (Basic) पदार्थों को अलग करने का कोई साधन होना चाहिए। और्थोक्लेज फेलसपार पानी में जल-विश्लेपित

हो जाता है तथा इसका थोड़ा-सा भाग पानी में घुल जाता है। यह घोल फेनोलथैलीन आदि सूचकों की ओर क्षारीय होता है। स्पष्टता का ध्यान रखते हुए फेल्सपार के जल-विश्लेषण की क्रिया आदर्श सूत्र द्वारा इस प्रकार दर्शायी जा सकती है—



$$K_2O.\ Al_2O_3\ 6SiO_2 + 2H_2O \rightarrow 2KOH + 2HAl\ Si_3O_8$$

इस प्रकार पोटैशियम हाइड्रोक्साइड, कार्बन डाई-आक्साइड से क्रिया करके कार्बोनेट या बाई कार्बोनेट बना सकता है या दूसरे अम्लों के साथ क्रिया से लवण बना सकता है जो औयोक्लेज या जल-विश्लेषण से बने अस्थायी यौगिक ($HAl\ Si_3O_8$) से अधिक घुलनशील होंगे। अस्थायी यौगिक ($HAl\ Si_3O_8$) न्यूनाधिक मात्रा में केओलिन व सिलीका बनाता हुआ विच्छेदित हो जाता है। यह सिलीका, स्फटिक (Quartz) या रेत के रूप में रहता है।



$$2\ HAl\ Si_3O_8 + H_2O \rightarrow Al_2O_3\ 2\ SiO_2.\ 2\ H_2O + 4SiO_2$$

फेल्सपार के विच्छेदन से प्राप्त पोटैशियम हाइड्रोक्साइड कुछ केओलिन से क्रिया करके मस्कोवाइट (Muscovite) अर्थात् अभ्रक बना सकता है।

दूसरे बहुत-से पदार्थों की तरह केओलिन भी बहुत-सी विधियों में से किसी एक के द्वारा बन सकती है। इन सब विधियों में ठंडा या गरम पानी और कार्बोनिक अम्ल भाग लेते हैं। व्यावहारिक दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण धँसान तथा दलदल केओलिन हैं। कारण इसमें लौह की मात्रा कम है। लौह अवकृत होकर घुलकर निकल जाता है। दूसरी विधियों द्वारा बनी हुई केओलिनों में, जिनमें हवा नहीं निकाल दी जाती, लौह शीघ्रता से जलयोजित कलिल (Colloidal-Hydrate) के रूप में रह जाता है और केओलिन का मूल्य घटा देता है।

मिट्टियाँ मुख्यतः दो भागों में बाँटी जा सकती हैं—

(१) **प्राथमिक मिट्टियाँ** (Primary or Residual clays) जैसे लेटेराइट (Laterite), केओलिन या चीनी मिट्टियाँ।

(२) **गौण मिट्टियाँ** (Secondary clays) या ढोयी हुयी मिट्टियाँ जैसे अग्नि-मिट्टी, बॉल-मिट्टी (Ball clay), शेल (Shales), लोम (Loams) तथा लोज (Loes) आदि।

प्राथमिक मिट्टी वह मिट्टी है जो उसी मूल स्थान पर पायी जाय जहाँ वह मूल चट्टान के विच्छेदन द्वारा बनी थी। इन मिट्टियों के रंगों में काफी भिन्नता रहती है।

जब प्राथमिक मिट्टी पानी, वर्षा, वर्फ तथा वायु आदि के द्वारा मूल स्थान से दूसरे स्थान पर ले जायी जाती है तब वह गौण मिट्टी कहलाती है। गौण मिट्टियाँ प्राय (सदैव नही) प्राथमिक मिट्टियों की अपेक्षा अशुद्ध होती हैं। गौण मिट्टी की तहें प्राय पानी मे तैरनेवाली मिट्टी के नीचे जमकर बैठ जाने से बनती हैं। अतः प्राथमिक मिट्टियो से गौण मिट्टियाँ परत-अलगाव द्वारा सरलता से पहचानी जा सकती हैं। प्राय गौण मिट्टियों का नीचे की चट्टान से, जिस पर वे जमा होती हैं, कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता। परन्तु प्राथमिक मिट्टियो में वह होता है। अत यह भी पहचान का एक साधन है।

लेटेराइट—यह एक विशेष प्रकार की प्राथमिक मिट्टी होती है जो बौक्साइट चट्टान से तल-विच्छेदन द्वारा बनती है। इसमें सिलीका का अधिक भाग दूर हो जाता है तथा एल्यूमिनियम और लोहे के हाइड्रोक्साइड मुख्य रूप से रहते हैं। जिन परिवर्त्तनो से यह बनी होती है वे स्थानीय विशेषताओं पर आधारित रहते हैं।

दो विशेष प्राथमिक लेटेराइट के सगठन नीचे दिये जाते हैं। प्रथम का उत्पत्ति-स्थान अमेरिका तथा दूसरी का भारतवर्ष में ही नाल्हाटी (Nalhati) है। भारत में उस लेटेराइट मिट्टी को, जिसमें लौह अधिक हो, मोरम (Morum) कहा जाता है। यह प्रधानत. सडक वनाने तथा रेलवे प्लेटफार्म पर डालने के काम आती है और गीली होने पर बहुत चिपकनेवाली होती है, परन्तु सूखने पर बहुत ही कठोर हो जाती है।

	अमेरिका की लेटेराइट	नाल्हाटी की लेटेराइट
सिलीका	३५ १४	३८·२
टिटेनियम आक्साइड	०·७	×
एल्यूमिना	४०·१२	४३·३८
फेरिक आक्साइड	४·१२	२·१२
कैलशियम आक्साइड	०·४५	४ ४३
मैगनीशियम आक्साइड	०·२१	०·५३
पानी	१७ ८४	११·८५
अघुलनशील पदार्थ	१·४८	×
योग	१००.०६	१००.५१

केओलिन—केओलिन चीनी शब्द कार्उलिंग (Kauling) का बिगड़ा रूप है जिसका अर्थ होता है ऊँचा टापू। कार्उलिंग एक पहाड़ का भी नाम है जो चीन में जाऊ-चाऊ-फू (Jau-Chau-Fu) के निकट है। यहाँ की मिट्टी प्राचीन चीन-निवासी पोरसिलेन वर्तन बनाने के काम में लाते थे।

अब यह शब्द प्राय उन प्राथमिक मिट्टियों के लिए प्रयुक्त होता है जो साधारणत रंग में श्वेत हों तथा ऐसी चट्टानों से बनी हों जिनकी रचना पूर्णत फेल्सपार या ऐसे ही दूसरे खनिजों से हुई हो और इन चट्टानों में लौह आक्साइड बिलकुल नहीं हो या बहुत ही कम हो। इन मिट्टियों में दूसरे जलयोजित एल्यूमिनो सिलीकेट के साथ-साथ केओलीनाइट (Kaolinite) खनिज की अधिक मात्रा रहती है। इंग्लैण्ड में कार्नवाल तथा डेवोन नामक स्थानों से प्राप्त विच्छेदित ग्रेनाइट को धोने से जो श्वेत मिट्टी मिलती है उसी को चीनी मिट्टी (China clay) कहा जाता है। अमेरिका में केओलिन शब्द कुछ श्वेत गौण मिट्टियों के लिए भी प्रयोग किया जाता है, जैसे—दक्षिणी कैरोलीना (Carolina) तथा जार्जिया (Georgia) की श्वेत मिट्टियाँ। व्यावहारिक दृष्टि कोण से केओलिन और चीनी मिट्टी समान हैं जिनका, संगठन प्राय इस प्रकार है—

सिलीका	४६ प्रतिशत
एल्यूमिना	४० ,,
पानी	१४ ,,
इसका सूत्र है—	$Al_2O_3 2SiO_2 . 2H_2O$.

केओलिन धोना—एकदम खोदकर निकाली हुई केओलिन में सिलीका तथा अविच्छेदित चट्टान होती है। मिट्टी का उपयोग तभी हो सकता है जब रेत और दूसरे कठोर कणों को पानी से धोकर मिट्टी से अलग कर दिया जाय। जर्मनी तथा इंग्लैण्ड में प्रयुक्त होनेवाली दो विभिन्न केओलिन धोने की विधियों का वर्णन नीचे दिया जाता है —

१. **इंग्लैण्ड की विधि**—इंग्लैण्ड की मुख्य मिट्टी की तहें इंग्लैण्ड के दक्षिणी पश्चिमी भाग में हैं और कार्नवाल तथा डीवॉन के सूबे मुख्य रूप से मिट्टी की मूल्यवान् खदानों के लिए प्रसिद्ध हैं। मिट्टी की तह पृथ्वी के ऊपरी तल से १० से २० फुट नीचे मिलती है। मिट्टी की तह के ऊपर के भाग को ओवर बर्डन (Over-Burden) कहा जाता है तथा मिट्टी निकालने से पूर्व इसे दूर कर देना चाहिए।

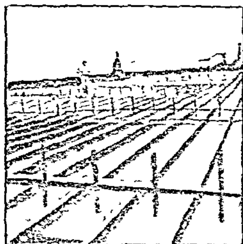
केओलिन-युक्त विच्छेदित चट्टान को हाथ की कुदाल की सहायता से तोड़ देते हैं या बारूद द्वारा उड़ा देते हैं। इसमें लगी हुई मिट्टी को पानी की शक्ति-शाली फुहार से धोते हैं। चूँकि विभिन्न परतों में विभिन्न प्रकार की मिट्टी होती है, अत: ठीक ढग से विभिन्न परतों को अलग-अलग धोना चाहिए तथा बाद में उन्हें इस प्रकार मिलाना चाहिए कि उत्पादित मिट्टी रग, गुण आदि में एक ही स्तर की रहे। इस सबके लिए अनुभव की आवश्यकता है।

मिट्टी धोये हुए पानी की सब धाराएँ मुख्य नाली में इकट्ठी होती हैं। इस नाली से यह पानी एक उथले हौज में जमा होता है जिसे 'सैण्ड पिट' कहा जाता है। इस हौज मे पानी में तैरनेवाले कुछ भारी कण नीचे बैठ जाते हैं। इसके पश्चात् मिट्टी-पानी पम्प द्वारा खान के ऊपर पहुँचाया जाता है। इस मिट्टी-पानी में रेतकण तथा अभ्रककण काफी मात्रा में तैरते रहते हैं। यहाँ मिट्टी-पानी की धारा ताज़े पानी की दूसरी धारा मे मिला दी जाती है। इस प्रकार मिट्टी-पानी की धारा और पतली हो जाती है तथा उसका वेग भी बढ जाता है। धारा का वेग इस कारण बढाते हैं कि प्राय मिट्टी शुद्ध करने का कारखाना खान से दूर होता है और यह मिट्टी-पानी वहाँ नलों द्वारा पहुँचाया जाता है। धारावेग अधिक होने से इस बीच में मिट्टी के कण जमकर नलों में नीचे नही बैठ पाते। इस धाराद्रव में लगभग ३ प्रतिशत ठोस रहते हैं। यह मिट्टी-पानी-धारा मिट्टी-शोधक कारखाने के पास पहुँचकर एक लम्बे-चौड़े हौज में गिरती है जिसे माइका (Mica) कहते हैं।

माइका लम्बा तथा उथला, लगभग २०० फुट लम्बा, हौज होता है। यह पाँच या छ भागों मे विभाजित होता है। प्रत्येक भाग पूर्ववाले भाग से कुछ नीचा होता है। प्रत्येक भाग को पुन. १८-२० इच चौडी, १ फुट गहरी, उथली, नालियों में विभाजित किया जाता है। मिट्टी-पानी-धारा इन नालियों में मन्द गति से (लगभग ५० फुट प्रति मिनट) बहती है। धारा का वेग उत्पादित मिट्टी के कण-आकार के अनुसार घटाया-बढाया जाता है। माइका में धारा के प्रवेश-स्थान पर ही रफ ड्रैग (Rough Drag) कहा जानेवाला दूसरा हौज होता है जो लगभग २५ फुट लम्बा, १०-१२ फुट चौडा और ३ फुट गहरा होता है। मिट्टी-पानी-धारा के माइका में पहुँचने से पूर्व ही इन रफ ड्रैगों में सूक्ष्मकणीय रेत बैठ जाती है और माइका में केवल अभ्रक के सूक्ष्म कण तथा मिट्टी के अपेक्षाकृत बड़े कण बैठ जाते

हैं। यहाँ जमकर बैठनेवाला पदार्थ उत्पादित मिट्टी का लगभग २०-३० प्रतिशत होता है और कागज, पेण्ट, वस्त्र आदि उद्योगों में प्रयोग किया जाता है।

अब परिशोधित मिट्टी युक्त पानी एक गढ़े में गिरता है। यह गढ़ा शंकु आकार का एक सीमेण्ट-निर्मित कुआँ होता है जिसका ऊपरी व्यास १५-२० फुट तथा गहराई १० फुट होती है। नीचे तली पर लगभग एक इंच चौड़ा एक छिद्र होता है जो आवश्यकतानुसार घटाया-बढ़ाया जा सकता है। यहाँ मिट्टी-पानी वेगहीन होने से मिट्टी के कण नीचे बैठ जाते हैं और बैठी हुई गीली मिट्टी इस छिद्र द्वारा निकाल ली जाती है। इन गढ़ों की विभिन्न ऊँचाइयों पर छिद्र होते हैं जिनमें होकर मिट्टी के नीचे बैठ जाने पर साफ पानी निकाला जा सके। यह पानी पुनः खानों में प्रयुक्त होता है।



चित्र १. इंग्लैण्ड की खान में माइका का दृश्य

इस गीली मिट्टी में प्राय: २५ प्रतिशत ठोस पदार्थ रहते हैं। इस गीली मिट्टी को नलों में बहाकर बहुत दूर सुखानेवाली भट्ठियों के पास ले जाते हैं। इंग्लैण्ड में गीली मिट्टी ले जानेवाली एक पाइप-लाइन लगभग ५ मील लम्बी १२ इंच व्यास-वाली है। सुखानेवाली भट्ठियों के पास यह गीली मिट्टी एक बड़े आयताकार हौज में गिरती है जिसे जमाव हौज (Settling tank) कहा जाता है। यहाँ मिट्टी नीचे बैठ जाती है और पानी ऊपर आ जाता है। हौज की दीवारों से इकट्ठा हुआ पानी बाहर निकाल दिया जाता है। अब मिट्टी काफी गाढ़ी होती है और इसमें लगभग ५० प्रतिशत ठोस पदार्थ रहते हैं। इस गाढ़ी मिट्टी को खुली हुई लम्बी भट्ठी में चढ़ाया जाता है जहाँ भट्ठी की आग द्वारा गरम करके मिट्टी सुखा ली जाती है।

ये भट्ठियाँ जमाव हौज के निकट ही, कुछ नीचे धरातल पर, बनायी जाती हैं जिससे जमाव हौजों से ट्रकों द्वारा मिट्टी सरलतापूर्वक भट्ठियों में पहुँचायी जा सके। ये भट्ठियाँ लगभग १२० फुट लम्बी, २०-२५ फुट चौड़ी होती हैं। भट्ठी का फर्श अग्नि-मिट्टियों की टालियों से ढँका रहता है तथा उसके नीचे गैस बहने के लिए नालियाँ रहती हैं। फर्श के नीचे एक सिरे की ओर आग जलायी जाती है तथा गरम गैसें भट्ठी के फर्श के नीचे की नालियों में होकर दूसरी ओर चिमनी द्वारा बाहर निकल जाती हैं। इन भट्ठियों में गाढ़ी मिट्टी लगभग ६ इंच मोटी फैला दी जाती है और काफी सूख जाने पर छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में बाहर निकाल ली जाती है। इस सूखी मिट्टी में पानी ८-१० प्रतिशत तक रहता है।

२ जर्मन विधि—जर्मनी में केओलिन धोने की विधि में इँग्लैण्ड की विधि की अपेक्षा यन्त्रों का अधिक उपयोग होता है। जर्मनी में केओलिन यन्त्रशक्ति से खानों से निकाली जाती है और ट्रकों द्वारा भण्डारगृह में ले जायी जाती है। भण्डार-गृह में यह मिट्टी एक क्षैतिज मिश्रण-कुण्ड में गिरायी जाती है, जिसमें एक शक्ति-शाली मिश्रक भी लगा रहता है। इसमें पानी डालकर मिश्रक द्वारा मिट्टी मिला-कर निकाली जाती है। यह मिट्टी-पानी कुण्ड की दीवारों में बने छिद्रों द्वारा निकाल लिया जाता है और रेत तथा दूसरे पदार्थ कक्ड आदि मिश्रण-कुण्ड में ही रह जाते हैं। इन कक्डों आदि को समय-समय पर कुण्ड से बाहर निकाल लिया जाता है।

इस मिश्रण-कुण्ड से निकलनेवाला मिट्टी-पानी एक दूसरे हौज में गिरता है जहाँ बड़े कणवाली रेत को जमकर नीचे बैठ जाने दिया जाता है। हौज से रेत को छिद्रयुक्त बाल्टियों वाले रहट की सहायता से निकाल लिया जाता है और निकली हुई रेत गाड़ियों द्वारा बाहर ले जायी जाती है। इस हौज से मिट्टी-पानी पास में बने हुए दो बड़े हौजों में गिरता है। इन हौजों में धारा-वेग कम हो जाने से रेत के सूक्ष्म कण भी नीचे बैठ जाते हैं। यहाँ से हाथ की हेंगी द्वारा रेत समय-समय पर हटा दी जाती है।

इन हौजों के ऊपरी किनारों से मिट्टी-पानी इँग्लैण्ड-विधि की माइका-जैसी नालियों में जाता है। इनमें रेत के सूक्ष्मतम कण तथा अभ्रक-कण बैठ जाते हैं और समय-समय पर हटा दिये जाते हैं।

इसके पश्चात् मिट्टी-पानी जमाव हौजों में जाता है जहाँ मिट्टी को नीचे बैठ

जाने दिया जाता है। स्वच्छ पानी साइफन की सहायता से फिर पानी के हौज में भेज दिया जाता है जहाँ से इसे भण्डारगृह के पास बने ताजे पानी के हौज में पम्प द्वारा भेज देते हैं।

जमाव हौज से प्राप्त गीली मिट्टी जल-निष्कासन यन्त्र (Filter Press) में पम्प की सहायता से भेजी जाती है। इसमें मिट्टी को दबाकर पानी निकालकर कड़ी पटियों के रूप में ले आते हैं। जल-निष्कासक से प्राप्त भीगी पटियों को सुखानेवाले कमरों में लकड़ी के तख्तों पर सुखाया जाता है। सुखानेवाले कमरों को वाष्प-नलों द्वारा गरम करते हैं। पूरा कारखाना इस प्रकार बनाया जाता है कि केवल जल-निष्कासकों की संख्या बढ़ाकर ही उत्पादन बढ़ाया जा सके।

भारतवर्ष में मिट्टी धोने के छोटे कारखानों में मिट्टी धोने की विधि बहुत सरल है। विच्छेदित ग्रेनाइट चट्टानें हाथ द्वारा खोदी और चूर्ण की जाती हैं। इसके पश्चात् चूर्ण इतने काफी पानी से धोया जाता है कि मिली हुई कंकड़ी, रेत आदि से मिट्टी घुलकर निकल जाय। तब मिट्टी-पानी कम चौड़ी, परन्तु लम्बी नालियों में होकर ले जाया जाता है। यहाँ रेत के बड़े कण तथा कंकड़ आदि नीचे बैठ जाते हैं। इसके पश्चात् छोटे-छोटे जमाव हौजों में मिट्टी को बैठ जाने दिया जाता है। आधुनिक कारखानों में इन हौजों से प्राप्त गीली मिट्टी पम्प द्वारा लोहे के जल-निष्कासकों में भेजकर छोटी-छोटी पटियों के रूप में दबा दी जाती है। बाद में इन पटियों को धूप में सुखाते हैं। जिन कारखानों में जल-निष्कासक नहीं हैं वहाँ जमाव हौजों से ही गीली मिट्टी निकालकर खुली धूप में सुखाते हैं। इसी कारण ऐसे कारखाने वर्षाकाल में बन्द रखे जाते हैं। कुछ मिट्टियाँ धोने पर भी हलके पीले रंग की रहती हैं। इन मिट्टियों पर थोड़ा नील दिया जाता है। इससे पीला रंग समाप्त या कम हो जाता है। इसके लिए एक छोटा-सा 'नीलघर' मादका से जमाव-हौजों की ओर जानेवाली नाली के ऊपर बनाया जाता है। साइफन या किसी दूसरी विधि से नील का घोल नीलघर से एक निश्चित गति से मिट्टी की बहनेवाली धारा में गिराया जाता है। यह नील घुली हुई मिट्टी को उसी प्रकार और भी सफेद बनाता है जिस प्रकार धोबी कपड़ों पर नील देकर उन्हें और अधिक सफेद लगने-वाले बना देता है।

केओलिन-शोधन—वॉ० श्वेरिन (V. Schwerin) की गवेषणाओं के आधार

पर कार्ल्सवाद के निकट मिट्टी शुद्ध करने की एक नयी विधि निकाली गयी है। यह विधि इस सिद्धान्त पर आधारित है कि पानी में तैरते मिट्टी-कणों पर ऋण (−) आवेश होता है तथा स्फटिक, पाइराइटीज़ आदि रहनेवाले अपद्रव्यो के कणो पर या तो धन (+) आवेश रहता है या मिट्टी कणो की अपेक्षा कम ऋण आवेश रहता है। हाइड्रोक्साइल आयन ऋण आवेशवाले मिट्टीकणों की धन ध्रुव की ओर जाने की गति बढ़ा देती है। घुलनशील लवणों की उपस्थिति इस क्रिया में विषमता उत्पन्न कर देती है। चेकोस्लोवाकिया में कार्ल्सवाद के निकट चोडोव (Chodov) मे स्थित इलेक्टरो ओसमोसिस लिमिटेड नामक कम्पनी ने इस सिद्धान्त का मिट्टी शुद्ध करने मे उपयोग किया है।

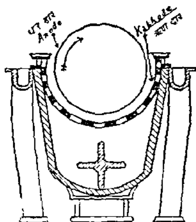
इस विधि में खान से निकली केओलिन लगभग ५-६ गुने पानी के साथ मिलाकर आवश्यक सोडियम सिलीकेट घोल के साथ अच्छी तरह यहाँ तक मिलायी जाती है कि मिट्टी काफी पतले कीचड के रूप मे आ जाय। सोडियम सिलीकेट मिट्टी के मिले हुए कणो को अलग-अलग कर देता है। अब यह पतली मिट्टी कम चौडी नालियो में बहायी जाती है। जहाँ बडे कणवाली अशुद्धियाँ बैठ जाती हैं। अब इस मिट्टी-पानी को एक जमाव-कुण्ड में भेजा जाता है जहाँ पर बडे कणवाली मिट्टी का थोडा भाग जमकर नीचे बैठ जाता है। यहाँ से मिट्टी-पानी का अधिकाश भाग विद्युत्-रसाकर्षण यन्त्र (Electro-Osmosis-Plant) मे ले जाया जाता है। इस रसाकर्षण यन्त्र में मिट्टी-पानी पर विद्युत्-धारा की क्रिया से केओलिन के सूक्ष्मतम कण धन ध्रुव पर लसलसी मिट्टी के रूप में जमा होते हैं और अपद्रव्य या तो पानी में ही रह जाते हैं या ऋण ध्रुव पर जमा हो जाते हैं। यह अपद्रव्य एक यन्त्र द्वारा निरन्तर हटाये जाते रहते हैं।

विद्युत्-रसाकर्षण यन्त्र में एक सीसा धातु का बेलन होता है जो धीरे-धीरे पृथ्वी के समानान्तर धुरी पर एक नाँद में घूमता है। इस नाँद में मिट्टी-पानी आता है। बेलन का निचला भाग इस मिट्टी-पानी में डूबा रहता है। बेलन के डूबे हुए भाग के चारों ओर एक अर्द्ध वृत्ताकार पीतल की जाली का ऋण द्वार होता है। बेलन स्वय धन द्वार का काम करता है।

मिट्टी-पानी इन दो द्वारो के बीच बहाया जाता है। मिट्टी-पानी के बहाव की दिशा विद्युत्-धारा के बहाव की दिशा पर लम्ब रूप होती है। प्रयोग की जानेवाली

विद्युत्-धारा की वोल्टता ११० वोल्ट तथा शक्ति ०·०१ एम्पियर प्रतिवर्ग सेण्टीमीटर होती है। नाँद में दो लकडी के शक्तिशाली विलोडक लगे रहते हैं जिससे नाँद में मिट्टी के जमकर बैठ जाने की सम्भावना न रहे।

लगभग १० मिलीमीटर मोटी एक शुद्ध मिट्टी की तह (२०-२५% पानी सहित) बेलन के पृष्ठभाग पर जम जाती है जिसे चाकू द्वारा टूकों में भरकर जल-निष्कासकों की क्रिया को पहुँचा दी जाती है। जल-निष्कासकों द्वारा यह गीली मिट्टी पटियों के रूप में दबा दी जाती है। इसके बाद उत्तप्त सुरंग में सुखा लेते हैं।



चित्र २ विद्युत्-रसाकर्षण यन्त्र

विद्युत्-रसाकर्षण यन्त्र से निकला हुआ पानी पुन मिट्टी धोने के काम में लाया जाता है। एक यन्त्र द्वारा लगभग ९०० किलोग्राम प्रतिदिन बहुत ही श्रेष्ठ केओलिन निकल सकती है। यन्त्र में लगभग २०० किलोवाट प्रतिघण्टा विद्युत् खर्च होती है।

उपर्युक्त प्रकार के बेलन-युक्त विद्युत्-रसाकर्षण यन्त्र के स्थान पर एक विशेष प्रकार के जल-निष्कासक यन्त्र भी इसी कार्य के लिए प्रयोग किये जा सकते हैं। यह जल-निष्कासक भी साधारण ढंग से लगाये जाते हैं। केवल अन्तर इतना होता है कि इनकी थालियों में कठोर सीसे के धन द्वार, छिद्रयुक्त पीतल की प्लेट के ऋण द्वार तथा विद्युत्-धारा बहाने के लिए पृथक्कृत तार लगे रहते हैं। पम्प की सहायता से मिट्टी-पानी जल-निष्कासक में भेजा जाता है। मिट्टी-पानी की यन्त्र में जाते समय की गति यन्त्र से निकले हुए पानी के अनुसार होती है। जैसे ही जल-निष्कासक पूरा भर जाता है और मिट्टी में पानी की मात्रा लगभग २० प्रतिशत होती है तभी विद्युत्-धारा का बहना बन्द कर दिया जाता है तथा जल-निष्कासक यन्त्र खोलकर मिट्टी की पटियाँ बाहर निकाल ली जाती हैं। ये रसाकर्षण जल-निष्कासक यन्त्र अधिक दबाव पर काम नहीं करते। अत इनके आकार के बनाये जाने

में लचीलापन बहुत कम है। अधिक लचीली मिट्टियों में सबसे महत्त्व-पूर्ण इँग्लैण्ड की बॉल-मिट्टी (Ball-clay) है। बॉल-मिट्टी में लचीलापन बहुत ही सूक्ष्म कणो, कार्बनिक पदार्थों तथा घुलनशील लवणों की उपस्थिति के कारण है। ठीक प्रकार से धुली केओलिन की सूक्ष्मता इस क्रम की हो कि २०० नम्बर की चलनी से पूरा पदार्थ छनकर निकल जाय और कम से कम ९० प्रतिशत मिट्टी २ फुट प्रति घंटा वेगवाली पानी की धारा द्वारा बहकर चली जाय।

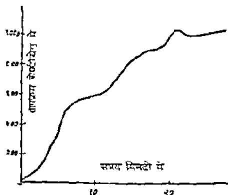
केओलिन मे घुलनशील रगों और घुलनशील लवणो को अवशोषित करने तथा उन्हे धारण करने का एक विशेष गुण है। चीनी मिट्टी पर तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की क्रिया नही होती, पर उबलते हुए गन्धकाम्ल की निरन्तर क्रिया से मिट्टी विच्छेदित हो जाती है। सैंगर द्वारा उपस्थित मिट्टियो के रेशनल विश्लेषण (Rational-Analysis) का आधार चीनी मिट्टी पर सान्द्र गन्धकाम्ल की क्रिया ही है, परन्तु इँग्लैण्ड के मैलर (Mellor) ने जर्मनी में उपर्युक्त विश्लेषण की साधारण मान्यता के विरुद्ध निम्नलिखित कारण बताये हैं। अभ्रक कुछ मिट्टियों का मौलिक अंश होता है और अभ्रक के सूक्ष्म कण व्यावहारिक रूप में सान्द्र गन्धकाम्ल द्वारा सदैव ही विच्छेदित हो जाते हैं। मृत्सार को मिट्टी में उपस्थित फेल्सपार की हानि बिना घुलाना भी कठिन है। गन्धकाम्ल की क्रिया किसी सीमा तक स्फटिक के कणों पर भी प्रभाव डालती है। इस प्रकार गन्धकाम्ल की क्रिया कराने के पश्चात् क्षार की क्रिया से कुछ स्फटिक-कण भी दूर हो सकते हैं।

८००° से ९००° सें० तक गरम करने पर चीनी मिट्टी हलके गुलाबी रंग का कठोर सरन्ध्र पिण्ड बन जाती है जिस पर अम्लों की क्रिया सरलतापूर्वक होती है। इस गुलाबी रग का कारण यह है कि मिट्टी में उपस्थित लौह यौगिक, गरम करने पर, फेरिक आक्साइड के रूप में अलग हो जाते हैं और इस फेरिक आक्साइड का रंग लाल है। शुद्ध चीनी मिट्टी को १,१००° सें० पर गरम करने से काफी कठोर श्वेत, अकाचीय परन्तु घना पिण्ड प्राप्त होता है। यह पिण्ड शीघ्रता से पानी नहीं सोखता यद्यपि जीभ द्वारा परीक्षा में यह सरन्ध्र मालूम होता है। इस अवस्था में इस पिण्ड पर अम्लो की क्रिया नही होती।

साधारणत चीनी मिट्टी को अगलनीय माना जा सकता है। कारण इसका गलन ताप १७७०° सें० से अधिक है। यदि मिट्टी मे चूना या सिलीका किसी

अनुपात में मिला दियें जायें तो मिश्रण का गलनाङ्क कम हो जाता है। बड़े पिण्डों, जैसे ईंटों में, अधिक तापसहना (Refractoriness) होती है। कारण पिण्ड में ताप धीरे-धीरे घुसता है। केवल चीनी मिट्टी ही भट्ठियों के अस्तर (lining) आदि के लिए सन्तोषजनक नहीं है, कारण इसमें ससंजक बल (Cohesive-force) नहीं होता। साथ ही चीनी मिट्टी की बनी ईंटें अधिक काल तक बार-बार गरम होना व ठंडा होना तथा कोयले की महीन धूलि का मक्षारक प्रभाव सहन नहीं कर सकतीं।

११०° से० तक गरम करने से साधारण चीनी मिट्टी का लगभग ५-६ प्रतिशत पानी उड़ जाता है और आगे लगभग ६०० ° से० तक गरम करने से रवे का केलासन जल अलग होना प्रारम्भ हो जाता है। ८००° से० पर केलासन जल पूरी तरह अलग हो जाता है। लगभग ९००° से० पर एनहाइड्राइड (Anhydride), मुक्त एल्यूमिना और मुक्त सिलीका में विच्छेदित हो जाता है। लगभग ११००° से० तक गरम करने पर सिलीका और एल्यूमिना सयोग कर सिलीमेनाइट (Sillimanite — Al_2O_3 $2SiO_2$) बनाते हैं, परन्तु इस तापक्रम से अधिक तापक्रम पर एक नया यौगिक बनता है जिसे मूलाइट (Mullite) कहते हैं। मूलाइट का सगठन-सूत्र $3Al_2O_3 . 2SiO_2$ है। कुछ विशेषज्ञों का विचार है कि अकेलासीय अवस्था में ९००° से० पर ही मूलाइट बनना प्रारम्भ हो जाता है, परन्तु जैसे-जैसे तापक्रम ११००° से० के ऊपर पहुँचता है मूलाइट केलास बनना प्रारम्भ हो जाते हैं।



चित्र ३. केओलिन पर ताप-प्रभाव का रेखाचित्र

यदि केओलिन गरम करने पर तापक्रम का बढ़ाना दिखाने के लिए एक रेखा-चित्र खींचा जाय तो पता चलता है कि तापक्रम समान रूप से नहीं बढ़ता। लगभग ६००° से० के निकट वक्र (Curve), तथा कुछ समय तक अक्ष के समानान्तर हो जाता

है। इससे पता चलता है कि दिया हुआ ताप केओलिन के केलास जल को निकालन में व्यय हो रहा है। ९००° सें० पर वक्र पुन अक्ष के समानान्तर हो जाता है, जब कि मिट्टी एनहाइड्राइड मुक्त सिलीका, मुक्त एल्यूमिना तथा मुक्त लौह आक्साइड में विच्छेदित होती है। इसी कारण श्वेत मिट्टी इस अवस्था में गुलाबी रंग की हो जाती है। अम्लो और क्षारो का प्रभाव शीघ्र होने लगता है। ऊँचे तापक्रम पर वक्र एकदम उठता है जो इस समय उष्माक्षेपक क्रिया का सूचक है। यह उष्माक्षेपक क्रिया सम्भवत एल्यूमिना और सिलीका के मिलकर सिलीमेनाइट या मूलाइट बनने के कारण होती है। मिट्टी में अपद्रव्य उपस्थित रहने की अवस्था में इन विशेष परिवर्तनों को देखने तथा पहिचानने में कठिनाई होती है।

केओलिन के उपयोग—चीनी मिट्टी या केओलिन मृत्पात्र बनाने के अतिरिक्त कागज बनाने, कपडा छापने, फिटकरी तथा अल्ट्रामैरीन नामक रगों के बनाने में बहुत प्रयोग की जाती है। केओलिन धोने से प्राप्त सूक्ष्मकणीय अभ्रक साधारण कागज तथा पेपरबोर्ड आदि में भार प्रदान करने के लिए प्रयोग की जाती है।

भारत में केओलिन के उत्पत्ति-स्थान—भारत के बहुत-से स्थानों पर विभिन्न गुणोंवाली शुद्ध व अशुद्ध केओलिनें मिलती हैं। इनमें से कुछ खानों का वर्णन इस प्रकार है—

१. आसाम में गैरो, खासी तथा जयन्तिया पहाडो पर और लखीमपुर, शिलांग एव ब्रह्मकुण्ड जिलों में केओलिनें मिलती हैं। ये श्वेत मिट्टियाँ न्यूनाधिक सिलीकामय हैं।

२ बंगाल में सक्कम नदी के निकट दार्जिलिंग जिले में केओलिन मिलती है। वर्दवान, बीरभूमि तथा बाँकुरा जिले में भी श्वेत या लगभग श्वेत मिट्टियाँ मिलती हैं, परन्तु ये मिट्टियाँ श्वेत पोरसिलेन पात्र बनाने के लिए उपयोगी नहीं हैं।

३. बिहार में केओलिन की खानें सबसे अधिक हैं और इनसे निकलनेवाली मिट्टियाँ भी उत्कृष्ट कोटि की हैं। बिर की महत्त्वपूर्ण अच्छी खानें, भागलपुर जिले मे समुक्यिा तथा पथरघट्टा, सन्थाल परगना जिले में मगलन्हाट व तलझारी एवं मुँगेर जिले मे भीभुलतला और झाझा है। इन महत्त्वपूर्ण खानों के अतिरिक्त दूसरे स्थानों पर कुछ छोटी-छोटी खाने भी हैं जैसे राजमहल पहाडियों मे काटङ्गी, करनपुर, दोधनी आदि। मुँगेर शहर के निकट नवाडीह और पीर पहाड में भी हैं। *राँची जिले में कुछ कम शुद्ध श्वेत मिट्टी की खाने है।*

उत्तर प्रदेश केओलिन की खानों के क्षेत्र में बिहार के बराबर सौभाग्यशाली नहीं है। कुछ स्थान, जहाँ पर श्वेत मिट्टी पायी जाती है, निम्नलिखित हैं।

नैनीताल, अल्मोड़ा और मिर्ज़ापुर के निकट जलने पर श्वेत होनेवाली मिट्टियों की कुछ खानें हैं। बाँदा जिले में लखनपुर के पास श्वेत मिट्टी की खान है, परन्तु उनमें पीले गेरु की तह भी मिली हुई है। मिट्टी श्वेत तथा लचीली है। ठीक तरह से पकाने पर मिट्टी का उपयोग कड़ी मिट्टी-वस्तुओं के बनाने में किया जा सकता है, परन्तु इससे दूधिया श्वेत मृत्पात्र नहीं बन सकते।

दिल्ली में नयी दिल्ली से लगभग १० मील की दूरी पर कुसुमपुर में मिट्टी की खानों में मिट्टी प्राप्त की जाती है। एक दूसरी ऐसी ही खान अलवर के पहाड़ों में लोदा नदी के पास बुचारा में है।

जम्मू-काश्मीर में श्वेत मिट्टी की खानें, विशेष कर जम्मू प्रान्त के चक्कर सगर-मार्ग और सलाल स्थानों में हैं। ये मिट्टियाँ बौक्साइट खानों की निचली तह में पायी जाती हैं, अतः सदैव रंग में श्वेत और शुद्ध नहीं होतीं।

दक्षिणी भारत में श्वेत केओलिन की बहुत-सी अच्छी खानें हैं। इनमें से कुछ बेल्गाँव, रत्नागिरि, 'कैसल रॉक' बम्बई राज्य में हैं। बंगलोर, मैसूर तथा ट्रावनकोर-कोचीन में स्थित कारखाने उच्च कोटि के पोरसिलेन पात्र बनाने में वहाँ की स्थानीय केओलिन का ही प्रयोग करते हैं।

मद्रास में श्वेत मिट्टी जिन जिलों में मिलती है वे ये हैं—चेंगलीपत, गोदावरी और गन्टूर, नेलौर, दक्षिणी कनारा, दक्षिणी अर्काट, बेलारी, कुडापा, कर्नूल आदि।

उड़ीसा में बहुत-से स्थानों पर केओलिन की अच्छी खानें हैं। कटक जिले में नारज और ब्राह्मन बिल, पुरी जिले में खारी मुण्डिया और बरथाली मुण्डिया हैं। गंजाम जिले में श्वेत चीनी मिट्टी बहुत-से स्थानों पर मिलती है जैसे गुन्दारन्ध, पोलोमारा और बुगुदा। सम्भलपुर जिले में केओलिन, दियामर, धाचा मरआ, पहर-सिगीरा में मिलती है। श्वेत मिट्टी सरायकेला, रायगढ़ और मयूरभंज के बहुत-से स्थानों में भी पायी जाती है। कुछ भारतीय केओलिनों के विश्लेषण नीचे दिये जाते हैं—

केओलिन	सिलीका	एल्यूमिना	फेरिक-आक्सा इड	कैलशि यम आ-क्साइड	मैगनीशि-यम आ-क्साइड	क्षार	हानि
मंगलहाट (बिहार)	४६·५६	३७·५२	१·७३	० ५९	०·३६	०·५८	१२·२१
पथरघट्टा (बिहार)	४७ ५४	३७·१८	१ २६	०·८४	१·०२	०·३५	१२·१२
समुकिया (बिहार)	४७ १४	३८ ५६	१ ०१	० ५३	०·२२	०·४७	१३·३२
कैसेल रॉक (बम्बई)	५३ ८०	३२·६०	१·५०	१·३०	—	—	१०·८०
ट्रावनकोर	४६·१०	३९ ५०	१ २०	—	—	—	१४·२०
चितल दुर्ग (मैसूर)	४४ ४२	३८·९०	१·५३	१·२९	० ०१	—	१३·१८
रान्सीपुर (बडोदा)	४६·२५	३७ ७०	०·५३	०·३२	०·२५	०·४३	१३·८०
बांदा (उत्तर-प्रदेश)	४३·९२	४१ १२	० ७२	—	—	०·५३	१३·७३

गौण मिट्टियाँ—गौण मिट्टियाँ अपने मूल उत्पत्ति-स्थान पर नहीं पायी जाती, वरन् कुछ प्राकृतिक साधनो द्वारा अपने वर्तमान स्थान को ले आयी जाती है। एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हुए भौतिक तथा रासायनिक परिवर्त्तनो के कारण प्राय गौण मिट्टियाँ प्राथमिक मिट्टियों की अपेक्षा अधिक लचीली होती है। प्रकृति में बहुत प्रकार की गौण मिट्टियाँ पायी जाती हैं, परन्तु मुख्य रूप से मृद्-उद्योग में काम आनेवाली गौण मिट्टियों को तीन विभिन्न भागों में बाँटा जा सकता है। यह विभाजन इन मिट्टियो की तापसहृता के आधार पर किया गया है। ये वर्गीकरण निम्नलिखित हैं—

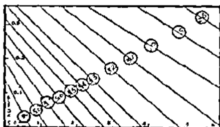
१ **तापसह या दुर्गल मिट्टियाँ**—इन मिट्टियों में पकाते समय उच्च तापक्रम को सहन करने की विशेषता होती है। वास्तव में सभी प्राथमिक शुद्ध मिट्टियाँ इस वर्ग में आ जाती है, परन्तु इस वर्ग की सबसे महत्त्वपूर्ण मिट्टियो को अग्नि-मिट्टियाँ कहा जाता है। इन अग्नि-मिट्टियो का गलनाङ्क अधिक होता है और ये कोयले की खान के नीचे पायी जाती हैं। किसी पदार्थ की तापसहृता को केवल तापक्रम द्वारा प्रकट करना उचित नही है, कारण तापसहृता पर ताप देने की अवस्थाओं का भी प्रभाव पडता है। उदाहरणार्थ सिलीका या विशुद्ध बालू साधारणत: अत्यधिक तापसह होती है, परन्तु भट्ठी मे कोयले की राख की उपस्थिति में सिलीका ईंट शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। एक तापसह ईंट, जो बिना किसी भार के उच्च ताप सह सकती है, उस तापक्रम से बहुत कम तापक्रम पर ही टूट जायगी, यदि गरम करते

के समय उस पर बड़ा भार रख दिया जाय। अपने कार्य के लिए हम लोग उस पदार्थ को तापसह पदार्थ कहेंगे जो ऑक्सीकारक वातावरण में बिना दबाव या भार के १५८०° सें० तक गरम करने पर पिघलने का कोई बाहरी चिह्न न प्रकट करे, साथ ही गरम करते समय तापक्रम भी १०° सें० प्रति मिनट के हिसाब से बढ़ रहा हो।

मिट्टी की तापसहता और रासायनिक संगठन के बीच सम्बन्ध मालूम करने के बहुत-से प्रयास किये गये हैं, पर शुद्ध मिट्टियों के अतिरिक्त ये प्रयास सफल नहीं हुए। बर्टलैण्ड (Bertland) ने मिट्टी में एल्यूमिना के प्रतिशत और उसकी तापसहता के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के लिए बहुत-से प्रयोग किये, परन्तु वह केवल यही पता लगा पाया कि जिन मिट्टियों में एल्यूमिना का अधिक प्रतिशत रहता है, वे ही अधिक तापसह होती हैं। इसके अतिरिक्त और कुछ पता नहीं लग सका।

इस दिशा में सबसे सफल प्रयास लडविग (Ludwig) का है जिसने यह मान लिया कि मिट्टियों में द्रावक पदार्थ ठोस घोल के रूप में रहते हैं जिनमें मिट्टी घोलक का काम करती है। एल्यूमिना को इकाई बनाते हुए उसने मिट्टियों का संगठन सूत्र XRO. Al_2O_3. Y SiO_2. के रूप में रखा। इस सूत्र में RO सम्पूर्ण क्षारीय पदार्थों को प्रकट करता है। X और Y के बीच रेखाचित्र खींचने पर उसने एक चार्ट पाया जिसमें सेगर शंकु की सीमाएँ बतलाती हुई कर्ण रेखाएँ खींची गयी थीं। इस प्रकार मिट्टी का कोई संगठन ऐसी किन्हीं दो रेखाओं के बीच पड़ता है। वह उन रेखाओं पर लिखे सेगर शंकुओं के तापक्रमों के बीच किसी तापक्रम पर पिघल जायगा।

यह चार्ट अधिक तापसह मिट्टियों के गलनाङ्क निर्धारित करने में सहायक है, परन्तु सम्पूर्ण क्षार RO, ६ प्रतिशत से अधिक हो तो इस चार्ट पर विश्वास नहीं किया जाता। इस चार्ट को अधिक क्षेत्रों में अनुपयोगिता का कारण यह है कि अग्नि-मिट्टियाँ समान पदार्थ नहीं होतीं और द्रावक भी पूरे पदार्थ में समान रूप से वितरित नहीं होता। इस कारण हम उसे ठोस घोल नहीं मान सकते जो कि चार्ट का आधार है। इस चार्ट से पता चलता है और व्यवहार में भी इसकी पुष्टि होती है कि एल्यूमिनियम को छोड़कर लगभग सभी धातुओं के आक्साइडों का या मिलावा का अनुपात बढ़ाने से अग्नि-मिट्टी की



चित्र ४ मिट्टियों का गलनाङ्क-निर्धारक चार्ट

तापसहता कम हो जाती है। धातु आक्साइड के कण-आकार का तापसहता पर विभिन्न प्रभाव पड़ता है। बड़े कणवाले आक्साइड का प्रभाव सूक्ष्म कणवाले उसी आक्साइड की अपेक्षा कम होगा अर्थात् धातु आक्साइड के कण बड़े होने पर मिट्टी का गलनांक अधिक कम नहीं होगा।

अग्नि-मिट्टियाँ—ये मिट्टियाँ अधिक तापसह तथा लचीली होती हैं जो प्राय. पत्थर के कोयले की खानों के नीचे पायी जाती है। ये मिट्टियाँ अधिक एल्यूमिनामय मिट्टी से लेकर अधिक सिलीकामय मिट्टी तक सगठन में भिन्न-भिन्न होती है। ये मिट्टियाँ विभिन्न कार्यों के लिए तापसह वस्तुएँ बनाने के काम आती है। ये मिट्टियाँ प्राय रग में हरी, भूरी, ठोस, घनी तथा विभिन्न सीमा की कठोरता लिये रहती हैं। वातावरण मे खुली छोड़ देने से इन मिट्टियों के टुकडे-टुकडे हो जाते हैं और पानी सोखने पर लचीली मिट्टी में बदल जाती हैं। कुछ भूगर्भ शास्त्र वेत्ताओं का विश्वास है कि प्राचीन काल मे ये मिट्टियाँ पृथ्वीतल की साधारण मिट्टियाँ थी जिन पर पेड़-पौधे उग आये जो आगे चलकर इस मिट्टी के ऊपर कोयला की तह बन गये। इन पुरानी मिट्टियो पर पेड उगने के कारण उनके क्षार दूर हो गये और मिट्टियाँ तापसह बन गयी। दूसरे विशेषज्ञो का कहना है कि वास्तविक अग्नि-मिट्टियाँ कोयले की निचली परत के ओपदीकरण से बनी हैं। इस सिद्धान्त का आधार यह है कि कोयले की राख और अग्नि-मिट्टी का रासायनिक सगठन लगभग समान पाया जाता है। इसके आगे भी उनका तर्क है कि यदि ये विशेष मिट्टियाँ मूल रूप मे पृथ्वी के धरातल की साधारण मिट्टियाँ थी तो निचली तह में ऊपरी तह की अपेक्षा चूना आदि दूसरे क्षारो की मात्रा अधिक होनी चाहिए तथा जैसे-जैसे ऊपर आते जायँ मिट्टी शुद्ध होती जानी चाहिए, पर ऐसा नही पाया जाता।

एक ही खान के विभिन्न भागों की अग्नि-मिट्टियाँ एक-सी नहीं होती। सभी अग्नि-मिट्टियो मे केओलिन की अपेक्षा सिलीका अधिक होती है, परन्तु बॉल-मिट्टियो की अपेक्षा क्षार कम होते हैं। प्राय दूसरे अपद्रव्यो के साथ मुक्त सिलीका भी इनमे होती है जिसका मिट्टी के गुणो पर काफी प्रभाव पड़ता है।

अग्नि-मिट्टी की श्रेष्ठता का पता लगाने मे रासायनिक विश्लेपण का कम महत्त्व है। रासायनिक विश्लेपण से केवल द्रावकों, सिलीका तथा एल्यूमिना प्रतिशत का पता चल सकता है। तापसहता गरम करने के आधार पर निश्चित करनी चाहिए। इसके लिए मिट्टी को त्रिपार्श्ववाले शङ्कु के आकार का बना लेते हैं। इस शंकु की

(आ) २००-३५० नम्बर की चलनी के बीच के कण।

(इ) कलिल आकार तक के सूक्ष्मतम कण।

प्रथम वर्ग के कण मिट्टी पकाने पर उनमें काले या बादामी चिह्न डाल देते हैं। भट्ठियों में इस प्रकार मिट्टी की ईंटें प्रयोग करने पर ये लौहकण धातुमल बनाते हैं और अलग हो जाते हैं। उनसे ईंट का जीवन भी कम हो जाता है। इस प्रकार के लौह अपद्रव्य विद्युत्-चुम्बक द्वारा अलग किये जा सकते हैं। उसके लिए शक्तिशाली विद्युत्-चुम्बक की आवश्यकता होगी, कारण लौह यौगिक लोहे की धातु की अपेक्षा बहुत ही कम चुम्बकमय होते हैं। शुद्ध लोहे की अपेक्षा पाइराटीज़ या माक्षिक में ०·२३ प्रति शत तथा सीडेराइट में १·८२ प्रति शत चुम्बक शक्ति होती है। यह पता लगाया जा चुका है कि इन कणों को ४००° से ६००° से० तक गरम करके बहुत महीन चूर्ण में पीस लेने से सर्वाधिक चुम्बकीय आकर्षण उत्पन्न होता है। कण जितने ही सूक्ष्म होंगे चुम्बकीय आकर्षण उतना ही अधिक होगा। यह मिट्टी घूमनेवाली भट्ठियों में उत्पादक गैस को जलाकर निस्तापित की जाती है।

जब द्वितीय वर्ग के लौह अपद्रव्यवाली मिट्टी पकायी जाती है तो लौह यौगिक के कण मिट्टी की अपेक्षा बहुत कम तापक्रम पर ही पिघल जाते हैं और छोटे-छोटे धब्बों के रूप में फैल जाते हैं। इन धब्बों का आकार मूल आकार का कई गुना बड़ा होता है और ये धब्बे उसी प्रकार फैलते हैं जैसे सोख्ता कागज पर रोशनाई फैलती है। यह अपद्रव्य फिल्म फ्लोटेशन की विधि से दूर किये जा सकते हैं। इसी प्रकार की विधि प्रायः निकिल, ताँबे या सीसे की अयस्कों (ores) में धातु का अनुपात बढ़ाने में प्रयोग की जाती है। लौह यौगिक भी इस विधि से प्रभावित होते हैं। मिट्टी चूर्ण तथा पानी में, जब चीड़ का तेल, क्रीओज़ोट तेल (creosote-oil) मिट्टी का तेल आदि डालकर घोटा जाता है तो मिट्टी में उपस्थित लौह यौगिक पर झाग के रूप में तैरने लगते हैं और अलग कर लिये जाते हैं। मिट्टी या रेत के कण इस तैल पानी के पायस (emulsion) से प्रभावित नहीं होते। अतः रेत व मिट्टी तली में बैठी रह जाती हैं। एक टन मिट्टी के लिए ४०० गैलन पानी, एक पाइण्ट समान अनुपातवाले मिट्टी के तेल और क्रीओज़ोट तेल के मिश्रण का प्रयोग किया जा सकता है।

तृतीय वर्ग के अपद्रव्य अधिकतर लोहे के आक्साइड होते हैं। यह मिट्टी में इतने समान रूप से मिले रहते हैं कि किसी व्यापारिक विधि द्वारा नहीं दूर किये

है। यह जली लकडी पत्थर का कोयला बनने की कई दशाओं को पार कर चुकी होती है। ये लिगनाइट के टुकडे हाथ द्वारा अलग किये जाते है। डैफॉनशायर में मिट्टी की खानें प्राय ६०-८० फुट की गहराई तक होती है। खदान की तली तक कुआँ के आकार का एक गड्ढा खोद लेते है तथा मिट्टी हाथ की कुदाली से खोदी जाती है। मिट्टी के टुकडे गड्ढे के मुँह के पास ही ऊँचे ढेरो के रूप मे इकट्ठे कर दिये जाते है और तुषार-वर्षा आदि के द्वारा प्राकृतिक विच्छेदन के लिए छोड़ दिये जाते है। कुछ पुराने खान-विशेषज्ञों का कहना है कि एक रात का पाला व वर्षा वर्षों के ढँके रखने से अधिक लाभकारी है। गर्मियो मे मिट्टी के ढेर को नम रखने के लिए प्राय इस पर पानी छिडक्ते है। मृत्तिका-उद्योग मे बॉल-मिट्टी खान से निकालकर सीधी प्रयोग की जाती है। इसे प्रयोग से पूर्व धोकर शुद्ध नही करना पडता।

रासायनिक सगठन मे बॉल-मिट्टी चीनी मिट्टी से बहुत भिन्न नही है सिवाय इसके कि बॉल-मिट्टी मे क्षारो तथा लोहे की अधिक मात्रा रहती है। पकाने पर बॉल-मिट्टी अधिक काँचीय होती है और उतनी श्वेत नही हो पाती जितनी कि चीनी मिट्टी। साधारण बॉल-मिट्टी पूरी सूखी होने पर लगभग ६-१० प्रतिशत तक भार में कम हो जाती है और रक्त उष्मा तक गरम करने पर १५-२० प्रतिशत तक भार में और कम हो जाती है। बॉल-मिट्टी मे प्राय. ३-४ प्रतिशत कार्बन लिगनाइट या वनस्पति से उत्पन्न किसी दूसरे कार्बनिक पदार्थ के रूप में रहता है, परन्तु विश्लेपण में इसे इस रूप मे कभी-कभी ही प्रकट करते है।

दुर्गल या तापसह और गलनशील मिट्टियो मे भेद समझने के लिए कुछ विभिन्न प्रकार की मिट्टियों के विश्लेपण नीचे दिये जाते है।

कुछ गौण मिट्टियो के विश्लेपण—

मिट्टियाँ	सिलीका	एल्यूमिना	फेरिक-आक्साइड	कैलशियम आक्साइड	मैगनीशियम आक्साइड	क्षार	निस्तापन से हानि
१	४७ ५५	३७ ८७	१ ०५	० २१	०·०९	१ २८	१२ ५८
२	४९ १२	३५ ७३	० ५६	० १८	०·२४	१·८६	११·९२
३	६३ ४०	२४ ५०	१ ३०	० ४०	०·१०	१·६०	८ ५०
४	६१ २०	२५ ४७	१ ४४	० १३	×	१·४१	१०·२५
५	५३ ९८	२९ ४७	३·०७	० २८	०·३५	१·६२	१०·१०

वेण्टोनाइट के दो विशिष्ट विश्लेषण यहाँ दिये जाते हैं, प्रथम गुलाबी वेण्टोनाइट के धुले हुए नमूने का है, दूसरा बिना धुली साधारण वेण्टोनाइट का है।

	(१)	(२)
सिलीका	५१ ५६	५०·३३
टिटैनियम आक्साइड	०·७८	—
एल्यूमिना	१३ ४२	१६·४२
फेरिक आक्साइड	३ २२	२·४२
कैलशियम आक्साइड	२ ०४	१·३९
मैगनीशियम आक्साइड	४·९४	४·१०
पोटैशियम आक्साइड	०·३८	१·००
सोडियम आक्साइड	० २४	०·१२
पानी	२३ ४६	२३·९५
योग	१००·०४	९९·७३

३ **सहज गलनीय** (Fusible) **मिट्टियाँ**—ये मिट्टियाँ प्राय. अपेक्षाकृत कम तापक्रम पर ही गल जाती हैं और आकार खो देती हैं। इनमें से कुछ मिट्टियाँ पोरसिलेन तापक्रम से पूर्व पूर्णरूपेण नही गलती और साधारण मृत्पात्र बनाने तथा खपडे बनाने में लाभदायक होती हैं। अधिक साधारण नमूने साधारण ईंटों के बनाने में काम आते हैं। इन मिट्टियों में प्राय. सिलीका (अधिकतर मुक्त रूप में) तथा द्रावको, जैसे चूना, लोहा, सोडा, पोटाश आदि की मात्रा अधिक रहती है। यह द्रावक रक्त ऊष्मा पर सयोग करके गलनीय सिलीकेट वनाते हैं जो अधिक तापक्रम पर गरम करने से पिघल जाते हैं।

इन सहज गलनीय मिट्टियो के रंग काफी भिन्न होते हैं। पकी हुई मिट्टी लाल या नारगी से लेकर पीले रग तक की या फिर बादामी या हरे-पीले रग की होती है। यह रगो की भिन्नता मिट्टी में उपस्थित लौह यौगिको तथा चूना मैगनीशिया आदि दूसरे पदार्थों की मात्रा पर निर्भर करती है। वहुत-सी मिट्टियो से बढ़िया पात्र बन सकते हैं यदि उन्हें एकदम ठीक तापक्रम तक गरम किया जाय। इसी ठीक तापक्रम तक गरम करने की सफलता पर ही मिट्टी का व्यापारिक मूल्य निर्भर करता है। साधारण मिट्टियो से उत्कृष्ट पात्र बनाने के लिए मिट्टी-कणो का समान आकार व रगभिन्नता का सन्तोषजनक होना आवश्यक है।

उत्तर भारत में साधारण मृद्-उद्योग के लिए गंगा की धारा से इकट्ठी हुई मिट्टी, मिट्टी पाने का एक अच्छा साधन है। बिहार में भागलपुर के पास गंगा द्वारा जमा की हुई मिट्टी के विश्लेषण से निम्नलिखित परिणाम प्राप्त हुए हैं—

	(१)	(२)
सिलीका	५७ १८	६४ ५३
एल्यूमिना	११ ७१	१३·२८
फेरिक आक्साइड	८·७४	६ ४६
कैलशियम आक्साइड	७ ८३	२·७२
मैगनीशियम आक्साइड	१ ८९	०·८७
पोटैशियम आक्साइड	१ ४४	
सोडियम आक्साइड	३ ८९	५ ३२
हानि	७ ७५	६ ८३
	९९ ९३	१००·०१

(१) भागलपुर की गंगा मिट्टी का विश्लेषण है तथा (२) अधिकतर ग्रामीण कुम्हारों द्वारा प्रयोग की जानेवाली एक तालाब की मिट्टी का विश्लेषण है।

यह भागलपुर की मिट्टी १०००° से० से नीचे पकाने पर गहरे लाल रंग की हो जाती है और लगभग १० प्रतिशत पानी सोख लेती है, परन्तु १०४०° से० पर आकार खोना प्रारम्भ कर देती है। इस पर चिक्कन-प्रलेपन अच्छा होता है और छत के खपड़े तथा साधारण चिक्कन-प्रलेपित मृत्पात्र बनाने के लिए उपयोगी है। साधारण मृत्पात्रों के बनाने में जलने पर लाल होनेवाली मिट्टी के पकाने के तापक्रम का परास (मध्यमान या रेंज) बहुत ही कम है। अतः पकाने की क्रिया बहुत ही सावधानीपूर्वक करनी चाहिए। जब इन साधारण मिट्टियों में लगभग १०-२० प्रतिशत अच्छी अग्नि-मिट्टी मिला दी जाती है तो पकाने के तापक्रम का परास काफी अधिक हो जाता है और पक्के बर्तन की ध्वनि में भी काफी सुधार हो जाता है।

शेल (Shales)—यह प्रकृति द्वारा कड़ी हो गयी मिट्टी है जो ऊपर की तहों के भार के दबाव से दबकर बहुत ही संपीडित हो गयी है। इस प्रकार की मिट्टियाँ प्रायः परतवाली तहों में मिलती हैं। इनका स्थान कठोर तथा नर्म मिट्टियों के बीच

रहता है। शैल मिट्टियाँ बनावट में बहुत भिन्न होती हैं। इनका उपयोग बनावट के आधार पर ही विभिन्न कार्यों के लिए किया जाता है।

लोम (Loames)—इसमें मिट्टी, रेत तथा वनस्पति मोल्ड (Moulds) रहते हैं। अमेरिका मे यह प्राय टाँली व ईंटो के बनाने में प्रयोग की जाती है।

लोइज (Loess)—ये जलधारा-द्वारा जमा की हुई अशुद्ध मिट्टियाँ हैं जो प्राय चूनेदार (Calcarious) होती हैं। ये मिट्टियाँ प्रायः पानी द्वारा जमा की जाती हैं, परन्तु किसी समय में हवा द्वारा भी बनायी गयी हो सकती है। अमेरिका की मिस्सिसिपी नदी की घाटी में ये मिट्टियाँ बहुत प्रचलित हैं और साधारण ईंटे बनाने मे काम आती हैं। लोइज मिट्टियो का रग पीले से बादामी तक होता है। गगा नदी की घाटी की धारावाली मिट्टी इस श्रेणी में आती है तथा साधारण ईंटें बनाने मे प्रयुक्त होती है।

मिट्टीयों में अपद्रव्य—अपद्रव्यो के विचार से मिट्टी में सिलीका निम्नलिखित रूपो से रहती है—

१ जलयोजित (Hydrated) सिलीका।

२. मुक्त सिलीका, यथा स्फटिक, बालू पत्थर (Sand-Stone), चकमक पत्थर आदि।

३. सिलीकेट या सयोग की हुई सिलीका यथा फेल्सपार, अभ्रक आदि।

जलयोजित सिलीका प्राय कलिल जेल के रूप में रहती है और इसे कलिल सिलीका कहा जा सकता है। कार्बनिक कलिल जेल तथा सिलीका कलिल जेल में यही अन्तर है कि सिलीका कलिल जेल मिट्टी के लचीलेपन को बढाता नही है।

मुक्त सिलीका मिट्टी में अधिकतर अकेलास सिलीका, यथा चकमक पत्थर, चेर्ट (Chert), काल्केडोनी (Calcadony) आदि के रूप में रहती है या स्फटिक तथा रेत आदि के रूप में केलासीय सिलीका के रूप में रहती है। अकेलास सिलीका अच्छी मिट्टियो में नही पायी जाती। बालू शब्द स्फटिक क्वार्टजाइट (Quartzite) या दूसरे अधिक सिलीका-मय खनिजो के छोटे कणो के लिए प्रयुक्त होता है।

किसी बालू या रेत का मृद्-उद्योग में मूल्य उसमें उपस्थित सिलीका की प्रतिशत मात्रा पर निर्भर करता है। शुद्धतम रेत में शत-प्रतिशत सिलीका होती है। पर कुछ रेतों में केवल ४० प्रतिशत ही सिलीका अर्थात् सिलीकान आक्साइड (SiO_2) रहता

है। फेल्सपार या अभ्रकमय (Felspathic and micaceous) बालू से पात्र में क्षारों की मात्रा अधिक हो जाती है जिससे पके हुए पात्र के गुणों मे काफी अन्तर आ सकता है जैसे पात्र कम तापक्रम पर ही काँचीय हो सकता है, पकने से पूर्व ही अपना आकार खो सकता है। जब शुद्ध रेत नहीं मिलती हो तो अभ्रकमय रेत की अपेक्षा फेल्सपारमय रेत का प्रयोग किया जाता है। ऐसा इस कारण है कि अभ्रकमय रेत के कण पतले होने के कारण ताप द्वारा सरलता से प्रभावित होते हैं, यद्यपि स्वयं अभ्रक फेल्सपार की अपेक्षा ऊँचे तापक्रम पर गलता है। शुद्धतम मिट्टी मे रेत मिलाने से उसकी तापसहता कम हो जाती है। कारण मुक्त सिलीका एल्यूमिना के साथ संयोग करके सिलीको एल्यूमिनो सुद्राव (Eutectic) बनाता है। सन् १८८० ई० में सैगर ने दर्शाया कि ९० प्रतिशत सिलीका और १० प्रतिशत एल्यूमिना मिलकर १६५०° सें० पर गलनेवाला सुद्राव मिश्रण बनते हैं। बोवेन (Bowen) और ग्रेग (Greig) ने सन् १९२४ ई० में दिखाया कि सिलीका एल्यूमिना के सुद्राव मिश्रण में ९४.५ प्रतिशत सिलीका तथा ५.५ प्रतिशत एल्यूमिना होती है जो १५४५° सें० पर गल जाता है। शीघ्रता से ठंडा करने पर गला पदार्थ एकाध मूलाइट केलास को बनाते हुए सादे काँच में बदल जाता है। परन्तु धीरे-धीरे स्वतः ठंडा होने से यह गला पदार्थ मूलाइट और क्रिस्टोबेलाइट (Crystobalite) के कणों में बदल जाता है।

संक्षेप में लचीली मिट्टी में सिलीका की उपस्थिति, मिट्टी का लचीलापन, सिकुड़न, ऐंठने व चटकने की धारणा एवं तनन-क्षमता तथा चापशक्ति को घटाती है। साथ ही रेत के कारण पात्र को पकाने के बाद रन्ध्रता और आकस्मिक तापक्रम-परिवर्तनों को सहने की शक्ति बढ़ती है।

क्षार—मिट्टी में क्षार घुलनशील लवणों या अघुलनशील यौगिकों के रूप में हो सकता है। मिट्टी में क्षार की उपस्थिति के निम्नलिखित प्रभाव हैं—

(अ) गलनशीलता में वृद्धि।

(आ) सुखाने पर या पकाने पर पात्रों की सतह पर छादनी या नोनी का उत्पन्न होना।

(इ) पानी के साथ मिलाने पर मिट्टी का लचीलापन कम करना। अतः पात्र ढालने में सरलता उत्पन्न करना।

सबसे अधिक साधारण रूप में मिट्टी में क्षार, आल्कली, एल्यूमिनो सिलीकेट यथा फेल्सपार अभ्रक आदि के रूप मे रहते हैं। यद्यपि विश्लेषण में क्षार सदैव पोटैशियम आक्साइड (K_2O) तथा सोडियम आक्साइड (Na_2O) के द्वारा ही प्रकट किये जाते हैं, परन्तु यह आक्साइड इस रूप मे मिट्टी में बहुत ही कम मिलते हैं। तापसह मिट्टी में राख व क्षारो की कुछ मात्रा रहने से उसकी शक्ति बढ जाती है, कारण क्षार व राख मिट्टी कणों को जोडकर रखते हैं, अत मिट्टी को मजबूत पिण्ड में बदल देते हैं। कभी-कभी पकाते समय अधिक तापक्रम आने पर क्षारों का कुछ अंश वाष्प बनकर उड जाता है और पदार्थ अधिक तापसह हो जाता है।

सर्वाधिक साधारण रूप में अभ्रक मस्कोवाइट या पोटाश अभ्रक के रूप में मिट्टी में रहती है। यह पोटाश व एल्यूमिना का द्विगुण सिलीकेट (Double Silicate) है तथा मोटे रूप से इसे सूत्र $K_2O, 3 Al_2O_3 6SiO_2$ द्वारा दर्शाया जा सकता है। रीक ने इसका द्रवणाक १३९५° सें० पाया था। तापसह मिट्टियो के गलने पर अभ्रक का प्रभाव १२००° सें० से पूर्व कभी-कभी ही अनुभव करने योग्य होता है, परन्तु जब अभ्रक-कण बहुत ही सूक्ष्म हो तो बहुत कम तापक्रम पर ही प्रभाव होना प्रारम्भ हो जाता है।

मूरे (Morey) और बौवेन ने १९२५ ई० में दिखाया कि सोडियम मेटा सिलीकेट ($Na_2O. SiO_2$) तथा मुक्त सिलीका के मिश्रण से बहुत-से सुद्राव मिश्रण बनते हैं। ७७ भाग $Na_2O. SiO_2$ और २३ भाग सिलीका का मिश्रण ८४०° सें० पर पिघलता है, जब कि ५३ भाग $Na_2O. SiO_2$ तथा ४७ भाग SiO_2 का मिश्रण ६९३° सें० पर ही पिघलता है। सोडियम मेटा सिलीकेट का द्रवणाक १०८८° सें० है।

कार्बनिक यौगिक—यदि मिट्टी में इनकी उपस्थिति हो भी तो ५ प्रतिशत से अधिक नही होनी चाहिए, अन्यथा मिट्टी शायद ही कभी कार्योपयोगी होती है। मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों के प्रभाव निम्नलिखित हैं —

(१) पकाने के पूर्व तथा पश्चात् भिन्न रग।

(२) ह्यूमस के कारण लचीलेपन में वृद्धि।

(३) पकाने के पश्चात् मिट्टी की रन्ध्रता में वृद्धि।

(४) गीली अवस्था में पानी का अधिक अवशोषण, परिणाम-स्वरूप अधिक सिकुड़न।

(५) मिट्टी पकाने में ईंधन का कम लगना, विशेष कर जब लिगनाइट जैसे कार्बनिक पदार्थों की उपस्थिति हो जो स्वयं जलकर ईंधन का काम करते हैं।

कार्बनिक पदार्थों की उपस्थिति में लौह आक्साइड पर कार्बनिक पदार्थों का शक्तिशाली अवकारक प्रभाव होता है, जो काफी बाधक है क्योंकि अवकृत लौह आक्साइड सिलीका से संयोग कर धातुमल बनाते हैं। अतः धातुमल बनने से पूर्व ही कार्बन को अधिक आक्सीजन की उपस्थिति में जला डालने में काफी सावधानी की आवश्यकता है।

चूना तथा मैगनीशिया—मिट्टी में यौगिक प्रायः कार्बोनेट या सल्फेट के रूप में रहते हैं। मिट्टी में इन यौगिकों की मात्रा अधिक सीमा तक मिट्टी के प्रकार पर निर्भर करती है। मिट्टी पर चूना तथा मैगनीशिया की क्रिया बहुत ही पेचीदी है और क्रिया का वास्तविक रूप अभी तक स्पष्ट नहीं ज्ञात हो सका है।

रीक द्वारा मिट्टी पर चूने का प्रभाव दिखाया जा चुका है। उनके अनुसार ३५ प्रतिशत चूना मिट्टी का गलनाङ्क कम करके १२३०° से० कर देता है, परन्तु चूने का प्रभाव मिट्टी में उपस्थित दूसरे द्रावकों के कारण बदला जा सकता है। जब चूने के साथ-साथ क्षार भी उपस्थित हो तो मिट्टी का गलनाङ्क उतना कम हो जाता है जिस पर मिट्टी गलकर काँच जैसा पदार्थ बन जाती है। कारण जिस तापक्रम पर पोटास के सिलीकेट व उनके एल्यूमिनो सिलीकेट बनते हैं वह तापक्रम चूने के सिलीकेट व एल्यूमिनो सिलीकेट बनने के तापक्रम से कम होता है। ये गले हुए पदार्थ दूसरे पदार्थों के लिए घोलक या विलायक का काम करते हैं।

रैन्किन और राइट (Wright) ने १९१५ ई० में दिखाया कि चूने तथा मुक्त सिलीका के संयोग से बहुत-से यौगिक बनते हैं। लगभग १२००° से० पर मेटा सिलीकेट या उल्सटोनाइट (Wollastonite $CaO\ SiO_2$) प्रकट होता है। ५४·५ भाग चूना तथा ४५·५ भाग सिलीका संयोग करके $3CaO.\ 2\ SiO_2$ यौगिक बनता है जो १४५५° से० पर पिघलता है।

रीक के अनुसार ४५ प्रतिशत मैगनेसाइट ($Mg\ CO_3$) मिट्टी का गलनाङ्क १३००° से० कर देता है, परन्तु इसकी अधिक मात्रा से तापसहता बढ़ जाती है।

रैन्किन और मर्विन (Merwin) ने १९१८ ई० में पता लगाया कि २०·३ भाग MgO, १८·३ भाग Al_2O_3 और ६१·४ भाग SiO_2 मिलकर १३४५° से०

पर पिघलनेवाला सुद्राव मिश्रण बनाते हैं । फर्ग्यूसन (Ferguson) और मर्विन ने १९१९ ई० में ३० ६ भाग चूना, ८ भाग मैगनीशियम आक्साइड और ६१/४ भाग सिलीका से एक १३२०° से० पर गलनेवाला सुद्राव मिश्रण बनाया ।

मैगनीशिया और मैगनेसाइट मिट्टी की सिकुडन बढाते हैं तथा मिट्टी का लचीलापन घटा देते हैं, परन्तु ऐसे मिश्रण से बने पात्र पकाते समय अच्छी सीमा तक अपनी आकृति नही खोते। मिट्टी में चूना या खडिया अधिक रहने पर मिट्टी के गलन-ताप का परास घट जाता है। अत इस मिश्रण से बने पात्र बडी सरलता से आवश्यकता से अधिक पक जाते हैं । ऐसा लगता है कि पिघला हुआ मैगनीशिया यौगिक काफी श्यान तथा चिपचिपा होता है, जब कि चूने का इसी प्रकार का यौगिक काफी पतला और बहनेवाला द्रव होता है जो सरलता से आसपास के कणों से क्रिया कर सकता है।

मिट्टी में चूने की उपस्थिति का विशेष प्रभाव पात्र पकाने के पश्चात् उसके रग पर पडता है। जो मिट्टी काफी लोहे के कारण पकाने पर लाल हो जाती है उसी मिट्टी में यदि चूना मिलाकर अवकारक वातावरण मे पकाया जाय तो मासल रग की हो जायगी। अधिक तापक्रम पर पहले पीली हरी, फिर हरी हो जायगी। लोहा, चूना तथा सिलीका के साथ सयोग करके लाइम आयरन सिलीकेट बनाता है। अत चूने तथा रेत की उपस्थिति मे लोहे के कारण उत्पन्न लाल रग प्राय कम हो जाता है। अन्त मे हरा रग चूना तथा फेरस सिलीकेट के पूर्ण विकास के कारण होता है। यह रग साधारण काँच में काफी स्पष्ट रूप से रहता है। लोहा चूने के साथ फेरिक अवस्था में संयोग नही करता जिससे अविराम भट्ठी में से पात्र प्राय मासल रग की धारी सहित लाल रग के या लाल रग की धारी सहित मासल रग के होते हैं, कारण अविराम भट्ठी मे वातावरण आक्सीकारक होता है।

लौह यौगिक—सभी प्राकृतिक मिट्टियो मे लौह यौगिक निश्चित रूप से मिलते हैं तथा मिट्टी शुद्ध करने में सर्वाधिक सावधानतापूर्ण प्रयास के बाद भी मिट्टी से पूरा लोहा दूर करने में सफलता नही मिलती। मिट्टी मे उपस्थित लोहे के मुख्य यौगिक दो प्रकार के आक्साइड (न्यूनाधिक जलयोजित अवस्था में), कार्बोनेट और सल्फाइड होते हैं ।

सौसमन (Sosman) और मर्विन ने १९१६ ई० में पता लगाया कि चूने तथा लोहे के आक्साइडो के बीच १०२३° से० पर गलनेवाले सुद्राव मिश्रण का संगठन, ८ प्रतिशत चूना तथा ९२ प्रतिशत फेरिक आक्साइड है ।

लचीलापन—मिट्टी का लचीलापन उसका वह गुण है जिसके कारण मिट्टी बिना चटके बाहरी बल की उपस्थिति में अपनी आकृति बदल लेती है। दूसरे शब्दों मे उस पदार्थ को लचीला कहते हैं जो गूँधा जा सके या जिसे दबाव द्वारा इच्छित आकृति दी जा सके और दबाव हटाने के बाद भी वह उसी आकृति में रहे।

इस साधारण परिभाषा के अनुसार अधिक्तर धातुएँ लचीले ठोस हैं जिनकी आकृति बदलने के लिए अधिक दबाव की आवश्यक्ता पड़ती है। मिट्टियों में लचीलापन उनमें पानी डालने के पश्चात् ही आता है। प्रत्येक प्रकार की मिट्टी को अपना अधिकतम लचीलापन उत्पन्न करने के लिए पानी की एक निश्चित मात्रा की आवश्यक्ता होती है। अधिक पानी डालने पर मिट्टी चिपकने लगती है और कम पानी रहने पर लचीलापन कम होता है और आकृति देने के लिए अधिक दबाव की आवश्यकता होगी। अधिकतम लचीलापन उत्पन्न करने के लिए आवश्यक पानी को, लचीलेपन का पानी (Water of Plasticity) कहा जाता है। इस लचीलेपन के पानी की मात्रा मिट्टी के प्रकार पर निर्भर करती है। यदि आकृति देनेवाला दबाव बढा दिया जाय तो इस लचीलेपन के पानी की मात्रा कम हो जायगी। जे० डब्ल्यू० मेलर (J. W. Mellor) ने १९२२ ई० में पता लगाया कि श्वेत मृत्पात्रों के बनाने में दबाव १ से २०० किलोग्राम प्रति वर्ग सेण्टीमीटर बढाने से आवश्यक पानी की मात्रा २६.४ प्रतिशत से कम होकर ५.६ प्रतिशत हो जाती है। यह पानी मिट्टी के लचीलेपन बढने से भी बढ जाता है।

समय-समय पर मिट्टी के लचीलेपन के कारण की व्याख्या करने के बहुत से प्रयास किये गये हैं, परन्तु उनमे से कोई पूर्ण सन्तोषजनक नही है। लचीलेपन के विभिन्न प्रस्तावित सिद्धान्त इस प्रकार हैं—

(अ) मिट्टी-कणों का आकार और आकृति।

(आ) मिट्टी-कणो की समष्टि (Aggregation)।

(इ) मिट्टी-कणो का पानी के प्रति आकर्षण।

(ई) घुलनशील लवणो तथा कार्बनिक कलिल पदार्थों की उपस्थिति।

(उ) मिट्टी के कलिल कणो पर पानी का प्रभाव।

ह्वीलर (Wheeler) ने सन् १८९६ ई० मे पता लगाया कि स्फटिक और चूना पत्थर को महीन कर २०० न० की चलनी से छानने पर उनमें थोड़ा लचीलापन

है कि फ्लोरिडा की केओलिन सोडियम हाइड्रोक्साइड को ०·२५ प्रतिशत तक पूरी तरह सोख सकती है। ऐसले (Asley) ने मिट्टियो की इस अवशोषण-शक्ति का उनके लचीलेपन ज्ञात करने में उपयोग किया है।

रोहलैण्ड (P. Rohland) ने १९०२ ई० में कहा कि लचीली मिट्टियाँ लचीलेपनरहित अवेलासीय कणो से मिलकर बनी हैं जिनके चारो ओर कलिल जेल की झिल्ली होती है। जब अधिकतम लचीलापन विकसित हो जाता है तब यह झिल्ली पानी से सपृक्त हो जाती है। जब मिट्टी सूखी होती है तब कलिल पदार्थ कठोर हो जाता है और उसका श्लेषीय (Gelatinous) गुण नष्ट हो जाता है, जिससे ठोस कण एक दूसरे के ऊपर उतनी सरलता से नहीं फिसल सकते जितनी सरलता से कि गीली अवस्था में। दूसरी ओर यदि पानी अधिक मिलाया गया है तो चारो ओर के पदार्थ में ठोस कण तैरने लगते हैं और मिट्टी तरल हो जाती है। उसने और भी प्रस्ताव रखा कि पदार्थ के जल-विश्लेषण की सीमा पर भी लचीलापन निर्भर है। इस प्रकार केओलिन मे, जिसमें शायद कुछ ही जल-विश्लेषण होता हो, कम लचीलापन है जब कि अधिक लचीली बॉल-मिट्टी में जल-विश्लेषण बहुत अधिक होता है। मिट्टी में होनेवाले जल-विश्लेषण की सीमा मुख्यत मुक्त क्षार की उपस्थिति, काफी उच्च तापक्रम तथा क्रिया होने के समय पर निर्भर करती है। मेलर ने पता पता लगाया कि यदि ३००° से० पर पानी के साथ दबाव की उपस्थिति में पिसे हुए फेल्सपार या कान्दिश पत्थर या पके हुए मृत्पात्रो के चूर्ण को कई दिन तक गरम किया जाय तो उनके कणों पर एक श्लेषीय परत जम जाती है जिसके कारण उनमें थोडा लचीलापन आ जाता है। क्षारो की अनुपस्थिति में यह क्रिया स्पष्ट नहीं होती।

बोल (G. A. Bole) ने १९२२ ई० में कहा कि मिट्टियो में लचीलापन मिट्टीकण के चारो ओर के कलिल पदार्थ की अवशोषित झिल्ली के कारण होता है। मिट्टी के कण ऋण आवेशवाले तथा झिल्ली धन आवेशवाली होती है। जब कोई ऐसा शक्तिशाली विद्युद्विश्लेष्य (Electrolyte) मिट्टी में मिलाया जाता है जिस पर मिट्टी के कण-जैसा ही आवेश हो तो झिल्ली शक्तिशाली आयन द्वारा अवशोषित कर ली जाती है और मिट्टी के कण छूट जाते हैं। झिल्ली के कण, जो अब तक अवशोषित कलिल झिल्ली से जुडे हुए थे, समान आवेश होने के कारण एक दूसरे को दूर हटाते हैं। मिट्टी के गाढे घोल की श्यानता कम होकर पदार्थ में अधिक तरलता उत्पन्न होगी। जब कलिल

गीला करने के लिए उतने ही अधिक पानी की आवश्यकता होगी और मिट्टी अधिक लचीली होगी।

जब गीली मिट्टी का पिण्ड सूख जाता है तो चपटे कण ससक्ति-बल के कारण एक दूसरे के निकट आ जाते हैं और एक दूसरे से उसी तरह चिपट जाते हैं जिस तरह दो काँच की चद्दरें एक दूसरे के ऊपर रखने से चिपक जाती हैं। जब सुखाते समय मिट्टी-कण पास आ जाते हैं तो मिट्टी कुछ सिकुड जाती है और जब सूखने के पश्चात् कण चिपट जाते हैं तो सूखा पिण्ड पूर्व की अपेक्षा अधिक कठोर हो जाता है। जब मिट्टीकण अति सूक्ष्म होते हैं तो उनमें ससक्ति-बल अधिक होता है और मिट्टी का पिण्ड सुखाने के पश्चात् और भी कठोर हो जाता है, जैसा कि अधिक लचीली मिट्टियों में देखा जाता है। अत. अधिक सूक्ष्म कणवाली मिट्टी कम लचीली मिट्टी की अपेक्षा, लचीलेपन के लिए अधिक पानी लेती है, सूखने पर अधिक सिकुड़ती है और सूखने के पश्चात् अधिक कठोर हो जाती है।

लचीलेपन का नापना—मिट्टियों के लचीलेपन नापने की समस्या का कोई बहुत सन्तोषजनक हल नहीं निकला है। समय-समय पर बहुत-सी विधियाँ प्रस्तावित की गयी हैं, परन्तु उनमें से अधिक के विरुद्ध कोई-न-कोई आक्षेप उठ चुका है।

सबसे अधिक प्रयोग में आनेवाली विधि में जो आज भी प्रयोग की जाती है, मिट्टी के लचीलेपन का स्पर्श से अनुमान लगाया जाता है और मिट्टी को अधिक लचीली या अल्प लचीली की श्रेणियों में वर्गीकृत कर देते हैं। एक अनुभवी व्यक्ति यह कार्य काफी सन्तोषजनक ढग से कर सकता है।

यन्त्र द्वारा लचीलापन नापने के लिए बिशोफ (Bischof) ने प्रस्ताव रखा कि लचीली मिट्टी को एक चौडे सिलिण्डर के छिद्र में से दबाव के साथ निकाला जाय जब तक कि इस प्रकार बनी पेन्सिल स्वत न टूट जाय। मिट्टी की बनी पेंसिल की लम्बाई टूटते समय जितनी ही अधिक होगी वह मिट्टी उतनी ही अधिक लचीली होगी।

किसी मिट्टी के अधिकतम लचीलेपन को ज्ञात करने के लिए लान्गेन बैक (Langen beck) और ग्राउण्ट (Grount) ने विकाट की सुई (Vicats needle) के प्रयोग को प्रस्तावित किया है। ग्राउण्ट ने सन् १९०५ ई० में ७ वर्ग सेण्टीमीटर क्षैतिज काट की विकाट की सुई को आधे मिनट में ४ सेण्टीमीटर की गहराई तक घुमाने के लिए आवश्यक शक्ति भार द्वारा नापी।

(ग) औसत लचीलापन या वह दशा जिसमें मिट्टी सर्वाधिक कार्योपयोगी होती है और चिपकनी नही होती। इस अवस्था मे मिट्टी धातुओ पर नही चिपकेगी।

(घ) बेलन सीमा। इस अवस्था मे मिट्टी को आधार-तल पर हाथ द्वारा रगडकर उसके तार नही बनाये जा सकते। कार्योपयोगी अवस्था की यह निचली सीमा है।

(ङ) वह अवस्था जिसमें गीली मिट्टी के कण दबाव लगाने पर जुडे बिना नही रह सकते।

दूसरी और चौथी अवस्थाओ में पानी की मात्रा निर्धारित की जाती है और अन्तर को मिट्टी के लचीलेपन-अङ्क के रूप मे प्रकट करते हैं।

इन पानी की मात्राओ को निर्धारित करने के लिए ५ ग्राम मिट्टी को १२० नम्बर की चलनी मे छानकर चूर्ण में बदल देते हैं। इस चूर्ण को पोरसिलेन की तश्तरी मे रखकर उसमे इतना पानी डाला जाता है कि मिट्टी लेई या गारे जैसी बन जाय। इसके बाद इसे एक सेण्टीमीटर मोटी परत में फैला देते हैं। एक त्रिभुजाकार भाग इस गारे मे से काट लिया जाता है। अब तश्तरी को हाथ से जल्दी-जल्दी थपथपाते हैं। तत्पश्चात् इतनी मिट्टी और डालते हैं कि पिण्ड इतना कडा हो जाय कि कठिनता से साथ-साथ बह सके। अब पानी की मात्रा निर्धारित की जाती है। बेलन-सीमा निर्धारित करने के लिए कडी अवस्था मे मिट्टी कागज पर डोरे बनाने के लिए बेली जाती है। इसके बाद इसमें इतनी मिट्टी और डाली जाती है कि मिट्टी का डोरा चटक जाय। इस समय फिर पानी की मात्रा निर्धारित करते हैं। यह मात्रा बेलन-सीमा बताती है।

इस विधि में व्यक्तिगत कुशलता अधिक निहित है तथा एक ही मिट्टी विभिन्न व्यक्तियो द्वारा परीक्षा करने पर भिन्न अङ्क देती है।

मेलर द्वारा १९२२ ई० में सिरञ्जर व एमरी (Stringer and Emery) विधि का वर्णन किया गया है। इस विधि मे लचीली मिट्टी से दो सेण्टीमीटर व्यास की एक गोली बनायी जाती है। इस गोली को एक काँच के तख्ते पर रख ऊपर से एक पिस्टन द्वारा दबाया जाता है। इस पिस्टन की ऊपर-नीचे की गति नापी जा सकती है। पिस्टन को धीरे-धीरे इतना दबाया जाता है कि गोली दबकर चटक जाय।

अब अगर P (पी) गीली मिट्टी का लचीलापन बताये, R (आर) पिस्टन का वह अधिकतम दबाव बताये जिसे गोली सहन कर सकी है और S (एस) विकृति की

वह मात्रा है जो गोली में चटकने से पूर्व आयी थी तो A (ए) और B (बी) को नियताङ्क मानकर यह समीकरण प्राप्त होता है—

$$P = K (R+A) (S+B)$$

यदि एक ही यन्त्र सदैव प्रयोग किया जाय तो K, A तथा B का मान मालूम करना आवश्यक नहीं है और हम निम्नलिखित समीकरण प्रयोग कर सकते हैं—

$$P = R \times S$$

हॉल (Hall) ने इस विधि का विरोध किया है, कारण एक ही मिट्टी से हर बार एक ही परिणाम पाना कठिन होगा क्योंकि पानी की विभिन्न मात्राओं से लचीलापन भिन्न हो जायगा।

ह्विटमोर ने १९३५ ई० में मिट्टियों का लचीलापन नापने की एक नयी विधि निकाली। इस विधि में एक उपकरण द्वारा एक निश्चित भार का पिस्टन प्रयोग किया जाता है। इस पिस्टन के नीचे का भाग अर्द्ध गोले के आकार का होता है। इस पिस्टन को लचीली मिट्टी के पिण्ड पर निश्चित समय तक रखकर पिस्टन की पिण्ड में धँसान नापी जाती है। अपने निरीक्षणों के आधार पर उसने यह सूत्र निकाला—

$$d = a \times t \times p$$

यहाँ d=निश्चित समय में धँसने की दूरी है।

a तथा t अर्द्धगोले में प्रयुक्त भार, अर्द्धगोले के व्यास तथा मिट्टी के गुणों पर निर्भर हैं।

p=मिट्टी के लचीलेपन की नाप है।

ह्विटमोर का कहना है कि अर्द्धगोलाकार पिस्टन-भाग को धँसाने में कोई ऐसी बाधा नहीं होती जैसी कि चपटे पिस्टन को धँसाने में होती है। बड़े कण चपटे पिस्टन के किनारों पर धँसने में बाधा डालते हैं।

मिट्टियों पर विद्युद्विश्लेष्य का प्रभाव—जैसा कि पूर्व ही कहा जा चुका है, मिट्टियाँ, प्राकृतिक साधनों द्वारा चट्टानों के विच्छेदन से बनी हैं, जिनमें से घुलनशील भाग निकल गया है। इस प्राथमिक मिट्टी पर पानी की निरन्तर अधिककालीन क्रिया से कुछ अघुलनशील भाग कलिल पदार्थ में बदल गया है। अर्थात् कण इतने सूक्ष्म हो गये

है कि पानी में काफी समय तक आलम्बन रूप में रहेंगे और बड़े कणों की भाँति जमकर बैठ नही जायँगे। इस कलिल पदार्थ की किसी मिट्टी में मात्रा, मुख्य रूप से उसके पूर्व इतिहास और पानी के क्रियाकाल पर निर्भर करती है। इँग्लैण्ड में चीनी मिट्टी धोने की पुरानी विधि से (जिसमें मिट्टी पानी के साथ नलो द्वारा मीलो ले जायी जाती है) जर्मनी की शीघ्रतापूर्ण विधि की अपेक्षा अधिक लचीली मिट्टी मिलती है। बॉल-मिट्टियों में, जिन पर अधिक काल तक पानी की क्रिया होती रही थी, चीनी मिट्टी की अपेक्षा अधिक कलिल पदार्थ रहता है। मिट्टी मे उपस्थित कलिल पदार्थ कार्बनिक तथा अकार्बनिक दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं। कलिल घोल तथा वास्तविक घोल की पहचान एक शक्तिशाली प्रकाश-पुंज भेजकर की जाती है। ऐसा करने पर कलिल घोल गँदला दीखेगा और वास्तविक घोल पूर्ण स्वच्छ दीखेगा। कलिल पदार्थ अल्ट्रा फिल्ट-रेशन द्वारा अलग किये जा सकते हैं। इसके लिए कलिल जिलेटिन या जानवर की झिल्ली का प्रयोग किया जाता है।

जब अम्ल, किसी धातु का अम्लीय लवण या साधारण नमक, किसी कलिल घोल में डाले जाते हैं तो सूक्ष्म कण स्कदित (Coagulate) हो जाते हैं और कलिल जेल बनकर नीचे बैठ जाते हैं। इस परिवर्तन को कलिल का ऊर्ण्यन (Flocculation or Agglomeration) कहते हैं। जब अमोनिया या क्षारो के हाइड्रोक्साइड, कार्बोनेट, सिलीकेट या बोरेट को थोडी मात्रा मे कलिल जेल में डाल दिया जाता है तो इसकी उलटी क्रिया होती है अर्थात् जेल घुलकर कलिल घोल बन जाती है। कलिल जेल से कलिल घोल बनने की क्रिया को विहनन (Deflocculation or peptization) कहते है। इस कार्य में प्रयुक्त होनेवाले रासायनिको को विद्युद्विश्लेष्य कहा जाता है।

जो लवण अम्लीय (H^+) या भास्मिक (OH^-) आयनों में विच्छेदित हो जाते हैं ऊर्ण्यन या विहनन का कारण बन सकते हैं। अमोनियम क्लोराइड, मैगनी-शियम सल्फेट और बोरेक्स को जब काँच कलई में विद्युद्विश्लेष्य की तरह प्रयोग किया जाता है तो ये ऊर्ण्यन करके काँच कलई के बैठने मे सहायता करते हैं।

जब मिट्टी शुद्ध पानी मे आलम्बित की जाती है तो यह साधारण सूचको से कोई क्रिया नहीं करती, परन्तु जब थोड़ी-सी मात्रा में क्षार डाल दिया जाता है तो इससे मिट्टी के कणों का आकीर्णन (Dispersion) बढ़ जाता है। मिट्टी-पानी आलम्बन

की श्यानता कम हो जाती है। इस क्रिया की व्याख्या इस सिद्धान्त द्वारा की जाती है कि ऋण (–) आवेशवाले मिट्टी कण समान आवेशवाले (OH^-) हाइड्रॉक्साइड आयन द्वारा दूर हटाये जाते हैं। यह OH^- आयन माध्यम का आकीर्णन बढा देता है या मिट्टी कणो का विह्नन उत्पन्न करता है। यह आकीर्णन क्षार की एक निश्चित मात्रा तक बढता ही जाता है, पर उससे अधिक क्षार होने पर आकीर्णन कम हो जाता है या दूसरे शब्दो मे मिट्टी का ऊर्ण्यन प्रारम्भ हो जाता है। हॉल ने १९२३ ई० मे पता लगाया कि विभिन्न मिट्टियो का अधिकतम विह्नन बिन्दु पी० एच (PH) ११ और १२ के बीच होता है।

जब ढलाई मे प्रयोग होनेवाले मिट्टी-घोले को कुछ समय तक रखने की आवश्यकता हो तो अनुभव से यह पता चला है कि यदि मिट्टी-घोला बनाते समय अधिक विह्नन के लिए आवश्यक क्षार प्रयोग किया गया है तो ऊर्ण्यन की प्रवृत्ति पायी जाती है, परन्तु यदि इससे अधिक क्षार का प्रयोग किया जाय तो ऊर्ण्यन नही होता। इस तथ्य की व्याख्या इस सिद्धान्त द्वारा की जाती है कि क्षार का कुछ भाग मिट्टी-कणो द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है तथा ये मिट्टी-कण पानी और क्षार की अधिककालीन क्रिया से और अधिक छोटे भागो में टूट जाते हैं। विद्युद्विश्लेष्य का भी कुछ भाग मिट्टी में उपस्थित घुलनशील लवणों (विशेष कर सल्फेट) से रासायनिक क्रिया करके खर्च हो सकता है।

जब मिट्टी-घोले में कोई अम्ल या धातु का अम्लीय लवण डाला जाता है तो उलटी क्रिया होती है। मिट्टी के सूक्ष्म कण आपस मे स्कन्दित हो जाते हैं और अपने बीच काफी पानी इकट्ठा कर लेते हैं। इससे मिट्टी की श्यानता तथा लचीलापन बढ जाता है। एक सीमा तक पहुँचने पर मिट्टी के कण जमकर शीघ्रता से बैठने प्रारम्भ हो जाते है। हॉल ने पता लगाया कि बहुत-सी मिट्टियों की जमकर बैठने की अधिकतम गति २·७ से ४ पी. एच (PH) तक होती है। इन सीमाओं में इतना बडा अन्तर विभिन्न मिट्टियो में उपस्थित कलिल की अधिक विभिन्न प्रकृतियो के कारण होता है। अम्ल डालकर मिट्टियों का लचीलापन बढाने के सिद्धान्त का उपयोग विशेष कर पोरसिलेन उद्योग मे अल्प लचीली मिट्टियो की कार्योपयोगिता बढाने के लिए किया जाता है।

रक्षक कलिल—जिलेटिन, गोंद, टैनिन या डेक्सट्रिन जैसे पदार्थ जब मिट्टी आलम्बन में डाले जाते हैं तो ये यौगिक सरलतापूर्वक पानी मे आकीर्णित हो जाते हैं तथा मिट्टी कणो के चारो ओर इन कलिल पदार्थों की एक परत चढ जाती है जिसके

कारण अम्ल या अम्लीय लवणों की क्रिया अब मिट्टी में उपस्थित कलिल पर आगे नहीं होती। अत इन पदार्थों को 'रक्षक कलिल' कहते हैं। रक्षक कलिल मिट्टी घोले का विहनन भले ही न कर सकें पर ये दूसरे अम्लीय प्रकृतिवाले पदार्थों द्वारा घोले का ऊर्ण्यन या जमकर नीचे बैठना रोक देते हैं। जो मिट्टी-घोला अधिक समय तक छोड देने पर स्कदिन हो जाता है, वह टैनिक या गैलिक ऐसिड मिलाने पर स्कदित नही होगा। अत. ये पदार्थ रक्षक कलिल पदार्थ के रूप मे प्रयोग किये जाते हैं।

कलिल की इन विशेषताओं का मिट्टियों के शुद्ध करने में तथा ढलाई के लिए मिट्टी घोला तैयार करने में उपयोग किया जाता है। मिट्टी का ढलाई-घोला बनाने में थोडी-सी विद्युद्विश्लेष्य की मात्रा डालकर उसे पतला कर लिया जाता है। ठीक प्रकार से बने ढलाई-घोले में इतना कम पानी लगता है कि बिना विद्युद्विश्लेष्य के इतने कम पानी मे केवल कडी कीचड ही बनेगी। किसी विशेष मिट्टी मे प्रयोग किये जानेवाले विद्युद्विश्लेष्य का प्रकार और उसकी मात्रा वास्तविक प्रयोग द्वारा निश्चित की जाती है। मिट्टी में घुलनशील लवणो की उपस्थिति इस प्रकार मिट्टी-घोला बनाने में बाधा डालती है।

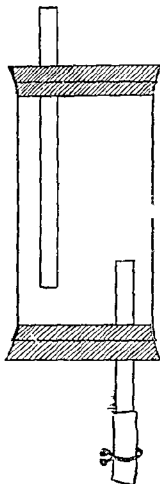
विद्युद्विश्लेष्य का निर्धारण—किसी मिट्टी या मिट्टियों के मिश्रण से ढलाई मिट्टी-घोला तैयार करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रयोग द्वारा उस विद्युद्विश्लेष्य का प्रकार व उसकी ठीक मात्रा निर्धारित की जाय जो मिट्टी-घोले को अधिकतम तरलता या बहाव प्रदान कर सके। उत्पन्न बहाव का परिमाण मिट्टी के श्यानता-परिवर्तन पर निर्भर करता है। मिट्टी की श्यानता नापने के लिए बहुत से उपकरण व बहुत-सी विधियाँ प्रस्तावित की गयी हैं। कार्य में सरलतम तथा सरलता से प्राप्त होनेवाले उपकरण का वर्णन यहाँ दिया गया है।

इस उपकरण मे एक फुट लम्बी १ ५ इच चौडी काँच की नली के दोनों सिरों पर कार्क लगा रहता है। ऊपर के कार्क मे $\frac{1}{8}$ इच व्यासवाली एक कम चौडी काँच की नली लगी रहती है और नीचे के कार्क में एक ऐसी ही कम चौडी नली लगी रहती है। निचली कम चौडी नली के नीचे के सिरे पर एक रबड नली जुडी रहती है। रबडी नली के निचले सिरे पर एक चिमटी (Pinch-cock) लगी रहती है।

परीक्षण के लिए मिट्टी में पहले लगभग ६० प्रतिशत पानी मिलाकर उसे गाढे घोले के रूप में परिवर्तित कर लिया जाता है। उसके पश्चात् विद्युद्विश्लेष्य की बहुत

थोड़ी मात्रा (० ०५ प्रतिशत) घोले में डालकर कुछ समय तक अच्छी तरह मिलाया जाता है। अब घोल कुछ पतला ज्ञात होता है। यह पतला घोल श्यानतामापक (Viscometer) में भर दिया जाता है और नीचे की नली में चिमटी खोलकर बहने दिया जाता है। चौड़ी नली के पार्श्व में लगे दो चिह्नों के बीच बहाव का समय ज्ञात कर लिया जाता है। उसके बाद घोल में और अधिक विद्युद्विश्लेष्य मिलाकर बहाव का समय पूर्ववत् ज्ञात कर लिया जाता है। इस प्रकार प्रयोग कई बार दुहराया जाता है। अधिक विद्युद्विश्लेष्य डालने से बहाव समय कम होते-होते न्यूनतम होकर फिर बढ़ना प्रारम्भ हो जाता है।

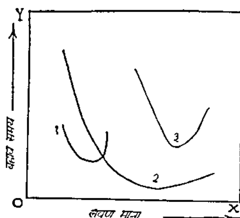
विद्रवनकरण में सोडियम कार्बोनेट व सोडियम सिलीकेट के विशेष अन्तर का समय-समय पर विभिन्न व्यक्तियों द्वारा अध्ययन किया गया है तथा उसका वर्णन भी किया गया है। साधारण श्वेत मृत्पात्रों तथा पोरसिलेन के पात्रों को बनाने के लिए मिट्टी-घोल्ल बनाने में सोडियम सिलीकेट अधिक तरलता उत्पन्न करता है और सोडियम कार्बोनेट की अपेक्षा कम Na_2O की मात्रा से हो करता है। यदि सिलीकेट में सिलीका का अनुपात अधिक हुआ तो घोल पुनः शीघ्रता से जम जाता है। वेब (Web) को १९३४ ई० में विश्वास था कि अधिकतम तरलता उत्पन्न करनेवाले सिलीकेटों का सगठन Na_2O. 2·3 to 2·5 SiO_2 होता है।



चित्र ५. मिट्टी-घोले के लिए श्यानतामापक (विस्कोमीटर)

व्यवहार में सोडियम कार्बोनेट, सोडियम सिलीकेट और कास्टिक सोडा का,

प्रयोग मिट्टी का ढलाई घोला बनाने में अधिक होता है। उनके गुणों में अलग-अलग अन्तर चित्र ६ के रेखाचित्रों से देखा जा सकता है।



चित्र ६ विभिन्न विद्युद्विश्लेष्यों का प्रभाव

(१) कास्टिक सोडा।

(२) सोडा कार्बोनेट।

(३) सोडा सिलीकेट।

जब सोडा कार्बोनेट मिट्टी के गाढ़े घोल में मिलाया जाता है तो इस लवण की बहुत थोड़ी-सी मात्रा के मिलाने से ही घोला पतला हो जाता है, परन्तु बाद में किसी सीमा तक और अधिक मात्रा बढ़ाने से घोल और अधिक पतला नहीं होता। यह दशा उसी लवण के दो-चार बार और मिलाने पर भी रहती है तथा उसके पश्चात् जैसा कि रेखाचित्र २ में दिखाया गया है, घोला फिर गाढ़ा होना प्रारम्भ हो जाता है।

कास्टिक सोडा का प्रभाव सोडा कार्बोनेट के प्रभाव से बिलकुल भिन्न है। कास्टिक सोडा की बहुत थोड़ी-सी मात्रा गाढ़े घोले को काफी तरल बना देती है और मिट्टी की स्थिर अवस्था भी अल्प काल तक ही रहती है। उसके बाद पतला घोला बहुत शीघ्रता से गाढ़ा होना प्रारम्भ कर देता है, जैसा कि रेखाचित्र १ में इन सब दशाओं को स्पष्ट दिखाया गया है।

रेखाचित्र ३ मिट्टी के गाढ़े घोले पर केवल अकेले सोडा सिलीकेट का प्रभाव दिखाता है। यह सोडा कार्बोनेट की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से तरलता उत्पन्न करता है, परन्तु उतनी शीघ्रता से नहीं जितनी कि कास्टिक सोडा से होती है। घोले का स्थिर काल भी कास्टिक सोडा की भाँति कम है, पर लवण की अधिकता घोल को कास्टिक सोडा की अपेक्षा धीरे-धीरे, परन्तु सोडा कार्बोनेट की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से गाढ़ा कर देती है।

अम्ल प्रभाव (Souring)—गीली मिट्टी का लचीलापन बढ़ाने के लिए

इसे नम व ठंडी जगह में कुछ दिनों तक रखा जाता है जिससे उस पर प्राकृतिक प्रभाव हो सके। इस विधि की सम्भावित क्रिया में कार्बनिक पदार्थों के विच्छेदन से तनु अम्ल घोल बनते हैं। ये अम्ल मिट्टी के सूक्ष्म कणों का ऊर्णन करके लचीलेपन को बढ़ाने की प्रवृत्ति रखते हैं। यदि मिट्टी में क्षारों की मात्रा अधिक हुई तो इस विधि द्वारा मिट्टी के लचीलेपन में वृद्धि सीमित या समाप्त हो सकती है। सेगर ने प्रस्ताव रखा कि यदि किसी मिट्टी में क्षारों की मात्रा अधिक हो तो थोड़ी मात्रा में पुराना सिरका (Vinegar) या तनु ऐसेटिक एसिड मिला देना चाहिए। इससे मिट्टी-कणों पर अम्ल-क्रिया अच्छी तरह होती है। कारण मिट्टी के क्षार सिरका से उदासीन हो जाते हैं।

रोहलैण्ड ने नियम निकाला कि अम्ल-क्रिया ठंडे वातावरण में होनी चाहिए, कारण मूलरूप में यह एक कलिल क्रिया है, परन्तु स्पुरियर (H Spurrier) और वाट्स (A S Watts) का विचार है कि अम्ल-क्रिया के समय ८०°-९०° फारेन हाइट तापक्रम को प्राथमिकता देनी चाहिए। पुराने कुम्हारों का विचार है कि जल-निष्कासन यन्त्र द्वारा छानी गयी और गरम भट्ठी द्वारा शीघ्रता से सुखायी गयी मिट्टी का लचीलापन कम होता है, परन्तु सुखानेवाले कड़ाहों में धीमी आँच से सुखायी गयी मिट्टी का लचीलापन अधिक होता है।

ग्लिक और बेकर (Glick and Baker) के प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि इस विधि द्वारा मिट्टी का लचीलापन बढ़ाने में जीवाणु महत्त्वपूर्ण भाग लेते हैं। एक मिट्टी का मिश्रण लिया गया जिसमें प्रारम्भ में कई प्रकार के जीवाणु थे। कुछ मास के पश्चात् देखा गया कि उसमें जीवाणु कम प्रकार के रह गये हैं, परन्तु उनकी संख्या बहुत अधिक बढ़ गयी है तथा मोल्ड और ईस्ट (Yeast) की अनुपस्थिति भी पायी गयी। इन अन्वेषकों के अनुसार जीवित जीवाणुओं के विकास का सर्वोत्तम तापक्रम ८५° फ है और यह पता लगा था कि लगभग एक मास तक लचीलेपन में क्रमशः विकास होता है, उसके बाद लचीलेपन का विकास घट जाता है।

मिट्टियों का लचीलापन, कलिल जेल, एल्यूमिना, गरम स्टार्च, डैक्सट्रिन, जिलेटिन, ग्लाईकोजन या दूसरे एन्जाइमों (Enzymes) और टैनिन मिलाने से बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार का कृत्रिम या तथाकथित लचीलापन प्राकृतिक लचीलेपन से बिलकुल भिन्न है। प्राकृतिक लचीलेपन में थोड़ी-सी वृद्धि पीसने तथा पानी के साथ

काफी समय तक गूँधने से हो जाती है। पानी के गूँधने से मिट्टी-पदार्थों में जल-विश्लेषण हो जाता है।

प्राकृतिक प्रभाव (Weathering)—इस विधि में मिट्टी पर वातावरण अर्थात् सूर्य, वर्षा, पाला, बर्फ और हवा आदि की क्रिया होने दी जाती है। बारी-बारी से गरम व ठंडे होने से मिट्टी कण सूक्ष्म कणों में टूट जाते हैं और पानी की निरन्तर अधिककालीन क्रिया से जल विश्लेषित होकर अधिक कलिल पदार्थ बनाते हैं, और इस प्रकार मिट्टी का लचीलापन बढ़ जाता है। प्राकृतिक क्रियाएँ मिट्टी में अपद्रव्यों को भी कम करती हैं। मिट्टी में उपस्थित अघुलनशील लौह-लवण, पानी और हवा की क्रिया द्वारा घुलनशील हो जाते हैं। वर्षा द्वारा ये घुलनशील लवण घुलकर निकल जाते हैं और मिट्टी अधिक तापसह तथा समांग हो जाती है। एक अग्नि-मिट्टी के प्राकृतिक क्रियाओं से पूर्व और पश्चात् के निम्नलिखित आपेक्षिक अध्ययन से प्राकृतिक क्रियाओं का प्रभाव स्पष्ट हो जायगा।

	प्राकृतिक क्रियाओं के	
	पूर्व	पश्चात्
सिलीका	६४·६२	६४·७
एल्यूमिना	२१·६५	२२·९
फेरिक आक्साइड	१·४८	१·३
कैलशियम आक्साइड	१·९८	१·०
क्षार	१·६२	०·७
हानि	८·५२	९·५
योग	९९·८७	१००·१

जिन मिट्टियों में प्राकृतिक क्रियाओं द्वारा अपद्रव्य विशेष मात्रा में कम नहीं होते उन मिट्टियों में भी अपद्रव्यों के हानिकर प्रभाव काफी कम हो जाते हैं। लौह तथा दूसरे अपद्रव्य इस क्रिया से बहुत ही सूक्ष्म कणों में विभाजित हो जाते हैं और पूरे पिण्ड में समान रूप से फैल जाते हैं। इसको पकाने पर इनकी उपस्थिति से कोई हानि नहीं होती।

फेल्सपार—फेल्सपार कुछ खनिजों के वर्ग का नाम है। ये खनिज चट्टानों के महत्त्वपूर्ण अवयव होते हैं। आग्नेय चट्टानों में उपस्थित लगभग ६० प्रतिशत खनिज फेल्सपार होते हैं। इनका साधारणतया मान्य सूत्र $RO.\ Al_2O_3.6SiO_2$ है,

जल-विश्लेपण होकर आल्कली सिलीकेट बनता है। जब औथोंक्लेज को पानी के साथ महीन पीसा जाता है तो अमोनियम लवण, चूना या जिप्सम-जैसे पदार्थों के मिलाने से पानी में घुलित क्षार की मात्रा बढ़ जाती है। फेल्सपार पर प्राकृतिक प्रभाव बहुत शीघ्र पड़ते हैं तथा इस क्रिया में सर्वसाधारण अन्तिम उत्पादन स्फटिक और केओलिन हैं, परन्तु दूसरे जलयोजित एल्यूमिनियम सिलीकेट भी बनते हैं।

सैगर के अनुसार पोरसिलेन पकाते समय फेल्सपार में भास्मिक गुण रहते हैं और इस तापक्रम पर क्षारो के साथ अति सतृप्तीकरण दिखाते हैं। यदि पिण्ड में स्फटिक न हो तो यह क्षार मिट्टी से क्रिया करके न तो काँचीय पदार्थ ही बनाते हैं और न चमक ही उत्पन्न करते हैं, परन्तु यदि स्फटिक हो तो यह स्फटिक क्षार से क्रिया करता है और पोरसिलेन की काँचीय और चिकने होने की विशेषता प्रकट होती है।

कुछ औथोंक्लेज़ फेल्सपार के विश्लेपण नीचे दिये जाते हैं—

औथोंक्लेज़ का प्रकार	सिलीका	एल्यू-मिना	लौह आक्सा-इड	चूना	मैगनी-शिया	क्षार	हानि
१ नार्वे का	६४ ७०	२०·२२	०·०८	नाममात्र	शून्य	१४ ७८	० ७८
२ स्वीडन का	६५ ८५	१९ ३२	० २४	०·५६	० ०८	१४·१०	० ७०
३ जर्मन (Bayern)	६४ १०	२१ ४६	० ३४	० ४४	० १२	१३·०५	० ६६
४ भारतीय (अ) अलवर	६८·१६	१८·२६	०·१८	० ५५	० ५०	११·५८	० ५०
(आ) अजमेर	६४ २०	२१ ३३	० ०५	०·१४	०.०६	१३·६१	० ६०
(इ) बगलोर (अर्जुनावेथ)	६५ ६१	१८ १२	० ०८	० २९	नाममा.	१६·१२	०·०८
(ई) रामगढ़ (बिहार)	६५ ४४	१९ ८४	० ०३	० ८५	० १४	१३·८५	० ३०
(उ) गया (गुर्पा)	६३ ८३	२१ ११	० ०८	० २१	० ०७	१३ २५	०.२८

चीनी पत्थर—यह पत्थर आंशिक विच्छेदित ग्रेनाइट चट्टान होती है जो प्रायः ताजे व आंशिक केओलीनीकृत स्फटिक और फेल्सपार की बनी होती है। रासायनिक सगठन मे पेगमेटाइट (Pegmatite) चट्टान की भाँति होती है और फेल्सपार के स्थान पर प्रयुक्त की जाती है। इस पदार्थ का इंग्लैण्ड में बहुत प्रयोग होता है और विशेष कर एक स्थानीय प्रकार के, कार्नवाल के निकट अधिक पाये जानेवाले पत्थर का अधिक उपयोग किया जाता है। इसे कार्निश स्टोन कहते हैं। यह एक पीली साधारण आकार के कणोंवाली ग्रेनाइट चट्टान है जिसमें फेल्सपार इतनी

काफी केओलीनीकृत अवस्था में मिलता है कि यह टूटने पर चूर्ण हो जाती है। चीनी पत्थर और चीनी मिट्टी की आंशिक केओलीनीकृत चट्टान में कोई स्पष्ट विभाजन-रेखा नहीं है। कभी-कभी तो ये दोनों एक दूसरे के पास एक ही खान में से खोदकर निकाले जाते हैं।

चीनी पत्थर इतना कठोर होता है कि चीनी मिट्टी की चट्टान की भाँति सरलता से तोड़ा नहीं जा सकता। इसे साधारण ग्रेनाइट चट्टान की भाँति ही बारूद की सहायता से तोड़कर, खोदकर निकाला जाता है।

चीनी पत्थर कई प्रकार का होता है, परन्तु जिसकी कुम्हारों द्वारा अधिक माँग है वह कठोर तथा हल्के बैंगनी रंग का होता है। यह बैंगनी रंग, बैंगनी फ्लोरस्पार (Fluorspar) की उपस्थिति से होता है।

यह पत्थर बड़े-बड़े लकड़ी के हौजों में पानी के साथ पीसा जाता है। इन हौजों का फर्श कठोर पत्थर से बनाया जाता है जो सरलतापूर्वक स्वयं न रगड़ा जा सके। पीसने के लिए एक भारी पत्थर का टुकड़ा हौज में चक्की की भाँति यन्त्र-द्वारा घुमाया जाता है। इस घूमनेवाले पत्थर तथा फर्श के पत्थर के बीच चीनी पत्थरों के टुकड़े रगड़ने से पिसकर महीन चूर्ण हो जाते हैं और पानी के साथ घोला बन जाते हैं। घोला अवस्था में ही प्राय: इन्हें कुम्हारों को बेचा जाता है। घोल अवस्था में चीनी पत्थर फेल्सपार के घोल की अपेक्षा अधिक चिपचिपा होता है।

चीनी पत्थर का आपेक्षिक घनत्व लगभग २·६ है और यह लगभग १२००° सें० पर पिघलकर काँच जैसा पिण्ड हो जाता है।

चीनी पत्थर के कुछ विश्लेषण नीचे दिये जाते हैं।

पत्थर प्रकार	सिलीका	एल्यू-मिनर	लौह आक्सा-इड	चूना	मैगनी-शिया	क्षार	हानि
इग्लैण्ड का (कठोर बैंगनी)	७० ३१	१६ ७५	१ ५०	१ ३०	० ०८	७ ३१	२ ५८
अमेरिका का (Texas)	६८ ८८	१६ ७३	० ८३	० ९९	० १७	६ ७७	५·७९
फ्रांस का (Limoges)	७६ ११	१४ ६१	० ६६	१ ४४	० ४२	६·०२	१ २३
चीन का (Pe-tun-se)	७५ ९०	१३ ९०	० ७०	० ४०	नाममात्र	५·१७	२ ७०
जर्मनी का पैगमेटाइट	८२·४९	११·०५	०·४१	० ०५	नाममात्र	४ १७	१·८८

स्फटिक और चकमक पत्थर (Quartg & Flints)—यह प्रकृति में बहुतायत से मिलनेवाले सिलीका के विभिन्न रूप हैं। सिलीका के ये रूप मुख्य तीन भागों में रखे जा सकते हैं—(१) क्लासीय, (२) जलयोजित, (३) अक्लासीय। क्लासीय सिलीका के तीन रूप हैं—स्फटिक, ट्राइडाइमाइट (Tridymite) तथा क्रस्टोबेलाइट। ये तीनों क्लासीय रूप भौतिक गुणों में एक दूसरे से बिलकुल भिन्न होते हैं; परन्तु सबका एक ही रासायनिक सगठन SiO_2 होता है। शुद्ध होने पर स्फटिक बिलकुल रंगहीन तथा पारदर्शक होता है और प्रकाश विज्ञान में काम आता है। यह क्रिस्टल (Crystal) कहलाता है। हिन्दी में क्रिस्टल को बिल्लौर कहा जाता है और रत्नपत्थर के रूप मे इसका प्रयोग किया जाता है, परन्तु यह कभी-कभी ही पूर्णरूपेण शुद्ध अवस्था में पाया जाता है। प्राय थोडी मात्रा में अपद्रव्य रहते हैं जो क्रिस्टल को रंग प्रदान करते हैं या अपारदर्शक बना देते हैं। इसका आपेक्षिक घनत्व २·६५ होता है।

लगभग ८७०° से० पर गरम करने से स्फटिक क्रिस्टल दूसरे रूप ट्राइडाइमाइट में बदल जाता है। ऐसा करने म इसका आयतन १६ प्रतिशत बढ जाता है तथा आपेक्षिक घनत्व कम होकर २·२७ हो जाता है और आगे १४७०° से० तक गरम करने पर आपेक्षिक घनत्व बढ़कर २·३४ हो जाता है तथा आयतन लगभग २ प्रतिशत और कम हो जाता है। इस रूप को क्रस्टोबेलाइट कहते हैं। १७२०° से० तक गरम करने से यह क्रस्टोबेलाइट २·२१ आपेक्षिक घनत्ववाले सिलीका कॉंच में बदल जाता है और आयतन में लगभग २० प्रतिशत वृद्धि हो जाती है। इन विभिन्न अवस्थाओ में अणु गति बहुत कम होती हैं और प्राय साधारण तापक्रम पर अधिक समय तक दो भिन्न अवस्थाएँ साथ-साथ रखी जा सकती हैं, यद्यपि प्रवृत्ति स्थायी रूप में बदलने की पायी जाती है।

दूधिया पत्थर या उपल (Opal) अक्लास तथा जलयोजित सिलीका है जिसमें लगभग १२ प्रतिशत तक पानी रहता है। इसके कुछ चुने हुए नमूने रत्न-पत्थर के रूप मे काफी अच्छे समझे जाते हैं। कारण यह साधारण प्रकाश के सातों रंगों को अवर्णनीय चमक की पूर्ण उज्ज्वल आभा में प्रतिविम्बित करता है।

चकमक पत्थर, चर्ट (Chert) तथा चैल्सीडोनी (Chalcedony) में न्यूनाधिक अक्लास सिलीका होती है। कुछ क्लासीय सिलीका भी इतनी थोडी मात्रा में मिली रहती है कि उसका पता लगाना कठिन होता है। अत यह खनिज केवल

अरेलाम सिलीका ही समझे जाते हैं परन्तु अब इन्हें सूक्ष्म-रेलाम रूपमय (Crypto crystalline) माना जाता है।

चकमक पत्थर प्रकृति में भूरे या काले रंगों के छोटे टुकडों या पिण्डों के रूप मे मिलते हैं। ये नाभिक (nucleus) पदार्थों के चारों ओर सिलीका के धीरे-धीरे अवक्षेपण से बने समझे जाते हैं। इनमें कभी-कभी सूक्ष्म मात्रा मे समुद्री मछलियों, स्पंज या दूसरे समुद्री जीवाणुओं की उपस्थिति पायी जाती है। इनमें प्राय ९५ प्रतिशत सिलीका होती है। मुख्य अपद्रव्य खडिया और कार्बनिक पदार्थ होते हैं। चकमक पत्थर का आपेक्षिक घनत्व लगभग २.६ होता है, यह लगभग १७२०° सें० पर पिघलता है। गरम करने पर आपेक्षिक घनत्व कम होता है और स्फटिक की अपेक्षा प्रसार अधिक होता है। मृद्-उद्योग में काम आनेवाले निस्तापित चकमक पत्थर का आपेक्षिक घनत्व २.३ से २.४ तक होता है। निस्तापित करते समय भूरे रंग का चकमक पत्थर काले की अपेक्षा जल्दी चूर्ण हो जाता है, कारण भूरे मे प्रसार की गति अधिक होती है। चकमक पत्थर में रंग प्रदान करनेवाले पदार्थ नाइट्रोजनयुक्त हाइड्रोकार्बन होते हैं जो ताप द्वारा सरलता से विच्छेदित हो जाते हैं।

स्फटिक और चकमक पत्थर को १३००° सें० पर गरम करने से विभिन्न प्रभाव होते हैं। एक में दूसरे की अपेक्षा प्रसार अधिक शीघ्रता से होता है तथा उसी हिसाब से आ० घनत्व कम होता जाता है। गरम करने पर चकमक मे परिवर्तन बहुत शीघ्र होता है जब कि स्फटिक में यह परिवर्तन अपेक्षाकृत धीमी गति से होता है। १७००° सें० पर ३ घण्टे गरम करने से लगभग ६५ प्रतिशत स्फटिक कम घने रूप मे बदल जाता है जब कि केवल १४००° सें० पर तीन घण्टे गरम करने से लगभग पूरा चकमक पत्थर कम घने रूप में बदल जायगा। गरम करने पर चकमक पत्थर की केवल प्रसार गति ही स्फटिक की अपेक्षा बहुत अधिक नहीं होती, वरन् उसका आपेक्षिक घनत्व भी स्फटिक की अपेक्षा बहुत अधिक कम हो जाता है। रीक और एण्डाल (Endall) ने १९१३ ई० में दिखाया कि चकमक पत्थर का आपेक्षिक घनत्व कठोर पोर्सिलेन भट्ठी में एक बार पकाने के पश्चात् २.२३ हो जाता है, जब कि स्फटिक का इसी भट्ठी में १० बार पकाने पर २.३३ होता है। अत यह आशा नहीं करनी चाहिए कि मिट्टी के पात्रों मे पकाने के पश्चात् स्फटिक तथा चकमक का समान व्यवहार होगा।

उच्च तापक्रम पर पकाया गया चकमक पत्थर कम तापक्रम पर पकाये गये चकमक

पत्थर की अपेक्षा अधिक क्रियाशील होता है। बिना पकाये गये चकमक या स्फटिक तथा मिट्टी के मिश्रण से बने पात्रों पर चिक्कन-प्रलेप सरलता से नहीं होता परन्तु उच्च तापक्रम पर पकाये गये चकमक या स्फटिक तथा मिट्टी के मिश्रण से बने पात्रों पर चिक्कन-प्रलेप सरलता से हो जाता है। जो सिलीका निस्तापित न की गयी हो वह दूसरे पदार्थों से कम शीघ्रता से संयोग करती है। अत. यदि उच्च तापक्रम पर पात्र न पकाये जायँ तो कठिनाई हो सकती है। यूरोपीय देशों के कुम्हार बिना पकायी गयी रेत का प्रयोग करते हैं, इसीलिए अपने पात्रों को इंग्लैण्ट के कुम्हारों के पात्रों की अपेक्षा वे उच्च तापक्रम पर पकाते हैं। कारण इंग्लैण्ड के कुम्हार सदैव निस्तापित चकमक का प्रयोग करते हैं।

पीसे हुए पदार्थ पर पीसने की विधि का भी कुछ प्रभाव पड़ता है। सूखे पिसे चकमक में गीले पिसे चकमक की अपेक्षा अति सूक्ष्म कण कम मात्रा में रहते हैं। चकमक और स्फटिक दोनों के कणों की सूक्ष्मता का मिट्टी के पात्रों पर बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ता है। सिलीका के कणों की सूक्ष्मता फेल्सपार के कणों की सूक्ष्मता की अपेक्षा पकाने के तापक्रम को कम करने में अधिक प्रभाव डालती है। चकमक व स्फटिक के कणों की सूक्ष्मता में वृद्धि उनके आयतन में वृद्धि करती है। पात्र में सिलीका के कण जितने ही सूक्ष्म होंगे पकाने पर पात्र उतना ही कम रन्ध्रमय होगा तथा उस पर चिक्कन-प्रलेपन भी उतना ही कम चटकेगा, परन्तु पात्र के चटकने की सम्भावना अधिक हो जायगी।

अस्थि राख—यह जानवरों की, विशेष कर बैलों की हड्डी जलाकर बनायी जाती है। मिट्टी के पात्रों के लिए घोडे व सुअर की हड्डियों का प्रयोग अस्थि राख बनाने में नहीं होता। कारण इसमे पके हुए पात्र पर रंग उत्पन्न हो जाता है। अस्थि राख का रासायनिक सगठन कैलशियम फास्फेट $Ca_3(PO_4)_2$ है और इसका प्रयोग अधिकतर बोन चाइना बनाने में होता है।

हड्डियों को सर्वप्रथम पानी में उबाल कर साफ कर लेते है तब सावधानी से जलाते हैं। पूर्ण रूप से जली हुई हड्डियों को महीन पीसकर पानी के साथ मिलाने से लचीलापन बिल्कुल नहीं विकसित होता। अत वे पात्रों के बनाने में अनुपयोगी हैं। ठीक प्रकार से जलायी गयी हड्डियों में प्राय १ से २ प्रतिशत तक कार्बन रहने दिया जाता है। अत. जलाने के पश्चात् रंग हल्का भूरा होता है। पूरी तरह से जली हड्डियाँ

की भाँति स्वच्छ सफेद रंग नहीं होता। सूत्र के अनुसार ट्राइ कैलसियम फास्फेट में ५४ प्रतिशत कैलसियम आक्साइड तथा ४५ प्रतिशत फास्फोरस पैण्टॉक्साइड ($P_{2}O_{5}$) होता है, पर हड्डियों की राख में यह प्रतिशत नीचे दी हुई सारिणी के अनुसार बदलता रहता है।

आक्साइड	अस्थि राखों के नमूने			
	१	२	३	४
कैलसियम आक्साइड	५५ ०	५२ ६	५४ ०	४१ ७
फास्फोरस पैण्टोक्साइड	३९ ६	४१ ४	३९ ९	२६ ५
फेरिक आक्साइड	० ००३	/	० ००८	० ००२
सिलीका	१ ०	१ ४०	० ७	० ९
क्षार	×	१ ६	१ ९	२ ९
कार्बनिक पदार्थ	४·५	२ ६	५ ५	२७ ७
योग	१००·१०३	९९ ६	९८ ००८	९९ ७०२

नम्बर १ से ३ तक के नमूने जली हड्डियों के है तथा ४ नम्बर का नमूना बिना जली हड्डी का है।

जिप्सम प्लास्टर (Plaster of Paris)—जब जिप्सम ($CaSO_4 \cdot 2H_2O$) का चूर्ण लगभग १२०° सें० पर गरम किया जाता है तब जिप्सम का एक अणु अपने केलासीय जल का १॥ अणु खो देता है और जिप्सम ($CaSO_4$) $\frac{1}{2}H_2O$ में परिवर्तित हो जाता है। इस अवस्था में जिप्सम चूर्ण सफेद व मुलायम होता है जिसे जिप्सम प्लास्टर या पेरिस का प्लास्टर कहते हैं। इसके द्वितीय नामकरण का कारण यह है कि पेरिस के निकट जिप्सम की बड़ी खानें हैं। यह प्लास्टर पानी के साथ मिलाने के कुछ समय पश्चात् एक कठोर पिण्ड में बदल जाता है। अगर जिप्सम को २००° सें० से ऊपर तक गरम किया जाय तो वह अजल कैलसियम सल्फेट बन जाता है। यह अजल सल्फेट पानी मिलाने पर कठोर नहीं होता। अत मृत प्लास्टर (Dead Burnt Plaster) कहलाता है। बोरेक्स या फिटकरी मिलाने से प्लास्टर के जमने की गति घट जाती है, परन्तु साधारण नमक इस गति को बढ़ा देता है। फिटकरी जमे हुए प्लास्टर को अधिक कठोर बनाती है।

सूखे चूर्ण से लचीला पिण्ड बनाने में आवश्यक पानी की मात्रा का जमे हुए प्लास्टर पर काफी प्रभाव पड़ता है। घनत्व, रुक्षता और कठोरता सभी इस मिलानेवाले

पानी की मात्रा के अनुसार बदलते हैं। अत विभिन्न कार्यों के लिए प्लास्टर का उपयोग करते समय इस तथ्य का ध्यान रखना चाहिए। मूर्तियो, अलकार तथा सजावट की वस्तुओ और ढालने के लिए साँचे बनाने में जिप्सम प्लास्टर एक महत्वपूर्ण पदार्थ है। प्लास्टर के जमते समय जो थोडा-सा प्रसार होता है उसके कारण साँचे की सूक्ष्मताओ का बहुत स्पष्ट पुनरुत्पादन करने की क्षमता इसमें आ जाती है।

ठीक प्रकार का जिप्सम सगमरमर जैसा सफेद होता है, परन्तु यह इतना मुलायम होता है कि चाकू से सरलता से खुरचा जा सके। पत्थर के सम्पूर्ण जलयोजित होने से पूर्व इसका रग गहरा भूरा होता है और कठोरता भी इतनी रहती है कि सरलता से चाकू द्वारा खुरचा जा सके। अजल जिप्सम सीमेण्ट बनाने के काम आता है।

जिप्सम के बडे-बडे पिण्ड सबसे पूर्व हवा मे सुखाये जाते हैं तब जबडा चूर्णक यन्त्र द्वारा लगभग २ इच व्यासवाले छोटे-छोटे टुकडों में तोडे जाते हैं। इसके बाद इसे लोहे की तश्तरियों मे इकहरी तह मे फैला देते हैं। ये तश्तरियाँ ट्रौलियों में रख दी जाती हैं। इस अवस्था मे पत्थरों में प्राय २३-२५ प्रतिशत पानी रहता है। अब ट्रौलियाँ छोटी बन्द भट्ठियो (Muffled tunnel) मे भेज दी जाती हैं। ये भट्ठियाँ बाहर से कोयले द्वारा १८०-१९०° सें० तापक्रम तक गरम की जाती हैं। भट्ठी में ट्रौलियाँ लगभग ४८ घण्टे रखी जाती हैं। विभिन्न ट्रौलियों से निश्चित समय पर नमूने निकाले जाते हैं और पत्थर मे पानी की मात्रा निर्धारित की जाती है। जब ट्रौलियों के पत्थर में पानी की मात्रा का मध्यमान लगभग ६ प्रतिशत होता है तब ट्रौलियाँ भट्ठी से निकाल ली जाती हैं।

इस प्रकार पकाया हुआ जिप्सम बहुत मुलायम होता है और पत्थर की चक्कियों में उसी प्रकार पीस लिया जाता है जिस प्रकार आटा पीसा जाता है। ये पीसनेवाले पत्थर एक स्थिर पत्थर के दोनो ओर घूमते हैं। जले हुए जिप्सम के छोटे-छोटे टुकडे डालने के लिए पीसनेवाले पत्थरों के बीच में छिद्र होते हैं। इस प्रकार पीसने के पश्चात् प्लास्टर चूर्ण का लौह अपद्रव्य विद्युत्-चुम्बक द्वारा अलग कर लिया जाता है। उसके पश्चात् पुन आवश्यक सूक्ष्मता के अनुसार उसे दुबारा पीसा जाता है। एक अच्छी तरह पीसा गया प्लास्टर १०० नम्बर की चलनी से छानने पर पूरा निकल जायगा। जब थोड़ी मात्रा में प्लास्टर बनाना हो तो जिप्सम को पहले चूर्ण कर लेते हैं, छानते हैं और तब लोहे के कडाहो में खुली आँच पर पकाते हैं। बीच-बीच में उसे चलाकर

मिलाते भी रहते हैं जिससे प्लास्टर समान रूप से पके। जैसे ही केलास जल दूर होना प्रारम्भ होता है, पत्थर चूर्ण बड़ी शीघ्रता से उबलने लगता है और जब लगभग ८५ मिनट में यह उबलना करीब-करीब बन्द हो जाता है उस समय प्लास्टर उपयोग के लिए तैयार है।

उच्च स्तर के गुण रखने के लिए बनाये हुए प्लास्टर के प्रत्येक नमूने की अच्छी तरह परीक्षा करनी चाहिए। प्लास्टर के साथ मिलाने से जो ताप उत्पन्न होता है, सर्वप्रथम इस ताप का निर्धारण करना चाहिए। यह निर्धारण जमे हुए प्लास्टर के सगठन पर काफी नियन्त्रण रखता है।



$CaSO_4 \frac{1}{2} H_2O \rightarrow$ $CaSO_4.2H_2O$

(६.२ प्रति शत पानी) (२०.९ प्रति शत पानी)

एक प्याला भर प्लास्टर एक प्याले भर पानी के साथ लगभग ५ मिनट तक मिलाया जाता है और तब गाढ़े पिण्ड मे थर्मामीटर डालते हैं। अच्छी प्रकार बने प्लास्टर में तापक्रम लगभग १०°—१५° स० तक बढ़ता है।

प्लास्टर के जमने में प्रसार भी होता है। इस प्रसार का भी निर्धारण करना चाहिए। इसके लिए प्लास्टर एक लोहे के चक्र के भीतर जमाया जाता है। इस चक्र में एक बटन रहता है जिसमें सूचक (Index) लगा रहता है। प्रसार इसी सूचक से नापा जाता है। समान दशाओं में प्लास्टर के प्रत्येक नमूने के लिए पानी की निश्चित मात्रा के साथ ताप की एक निश्चित मात्रा ही उत्पन्न करनी चाहिए तथा एक निश्चित मात्रा में ही प्रसार होना चाहिए। यदि भिन्नता दीखे तो उसका कारण कच्चे माल में या पकाने की विधि में खोजना चाहिए।

जिप्सम पंजाब में झेलम के पास और राजपूताना में मारवाड़, बीकानेर तथा जोधपुर में काफी मिलता है। अभी हाल में उत्तरप्रदेश में हरिद्वार के पास भी जिप्सम की अच्छी खान पायी गयी है। मद्रास के त्रिचनापल्ली जिले में भी जिप्सम की खानों का विस्तृत क्षेत्र पाया गया है।

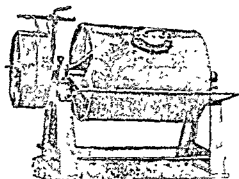
तृतीय अध्याय

पात्रों का निर्माण, सुखाना तथा पकाना

मृद्वस्तुएँ बनाने के लिए प्रयोग किये जानेवाले सामानों में मिट्टी के अतिरिक्त सभी कठोर पत्थर के रूप में होते हैं। इन पदार्थों को मुलायम मिट्टी में मिलाकर एक समांग मिश्रण बनाने से पूर्व इन्हें पीसकर महीन चूर्ण कर लेना चाहिए। इस समांग मिश्रण को अँग्रेजी में बॉडी (Body) कहते हैं। हिन्दी भाषा में इस शब्द के लिए कोई उचित शब्द न होने के कारण हम इसे मृत्पिण्ड या मिश्रण-पिण्ड कहेंगे। स्फटिक, चकमक पत्थर, संगमरमर आदि कठोर खनिज एक बार में ही पीसकर महीन चूर्ण नहीं किये जाते, वरन् कई बार में पीसकर इन्हें चूर्ण किया जाता है। प्रथम स्तर में पदार्थों को शक्तिशाली मशीन जबड़ा चूर्णक (Jaw Crusher) द्वारा आधे इंच से एक इंच आकार तक के छोटे टुकड़ों में तोड़ दिया जाता है। इस यन्त्र में दो ऊँची नीची सतहवाली कठोर इस्पात की पट्टिकाएं रहती हैं। इन पट्टिकाओं को जबड़ा (Jaws) कहते हैं। ये जबड़े एक दूसरे से कोण बनाते हुए V आकार में रखे जाते हैं जिसका नीचे का अन्तर ऊपर के अन्तर की अपेक्षा बहुत कम होता है। दो जबड़ों के बीच की दूरी घटायी-बढ़ायी जा सकती है, तथा इसी दूरी को घटा-बढ़ाकर पदार्थ को इच्छित आकार के छोटे-बड़े टुकड़ों में तोड़ा जा सकता है। इन दो जबड़ों के बीच खनिजों के बड़े-बड़े टुकड़े गिरा दिये जाते हैं। एक बहुत शक्तिशाली यन्त्र विधि इन जबड़ों को आगे-पीछे गति प्रदान करती है, जिससे खनिजों के टुकड़े टूटकर छोटे टुकड़ों के रूप में दो जबड़ों के बीच के अन्तर से नीचे गिर जाते हैं। एक ऐसा ही यन्त्र, जिसके जबड़ों के बीच में अन्तर ६–१२ इंच तक हो, लगभग दो टन खनिज प्रति घण्टे तोड़ देगा और टूटे हुए छोटे टुकड़ों का आकार लगभग १ इंच होगा।

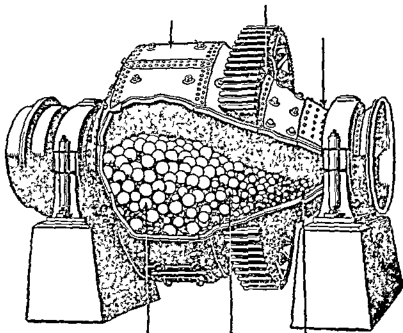
इस प्रकार टूटे हुए खनिज पैन रोलर यन्त्र (Pan–Roller–Mill) में इतने और महीन पीसे जाते हैं कि चूर्ण २०-३० नम्बरवाली चलनी से छन जाय। जैसा

इस मशीन में इस्पात का एक खोखला ड्राम होता है जिसमें अन्दर साइलेक्स (Silex) या चेर्ट (Chert) पत्थर या रबड़ की बनी विशेष ईंटों की एक परत चढ़ी रहती है। इस परत के लगाने का उद्देश्य पीसे जानेवाले खनिज को लोहे के स्पर्श से दूर रखना है। इस ड्राम के भीतर खनिजों के टुकड़े और पीसने के लिए कुछ पत्थर या पोरसिलेन गेंदें डाल दी जाती हैं। जिस छिद्र से यह सामान डाला जाता है बाद में उसे बन्द कर दिया जाता है। ड्राम धीरे-धीरे घुमाया जाता है। इस मशीन में पिसाई दो शक्तियों द्वारा होती है। प्रथम तो ऊपर से नीचे गिरनेवाली बड़ी पोरसिलेन गेंदों या चकमक पत्थरों की चोटों से खनिज टुकड़े टूटकर चूर्ण हो जाते हैं। दूसरे छोटी-छोटी गेंदों या छोटे आकार के चकमक पत्थर खनिज चूर्ण के साथ रगड़ने से खनिज चूर्ण को और भी महीन कर देते हैं। इन मशीनों में खनिज, शुष्क व गीली दोनों अवस्थाओं में किसी भी सूक्ष्मता तक पीसा जा सकता है, पर इसके लिए तदनुसार मशीन की घूमने की गति बदलनी होती है। गीली अवस्था में पत्थरों या गेंदों की फिसलन इतनी बढ़ जाती है कि गेंदों द्वारा प्रभावकारी चोटों की संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम हो जाती है, और पीसने का कार्य मुख्यत रगड़ के कारण ही होता है। गीली अवस्था में पीसने के लिए मशीन की गति शुष्क अवस्था की अपेक्षा कम होती है। शुष्क अवस्था में पीसने में गति गीली अवस्था की गति की लगभग १·४ गुनी होती है। उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि गीली अवस्था में पीसने पर डालने-वाले पानी की मात्रा सावधानी के साथ नियन्त्रित की जानी चाहिए। व्यवहार में प्रारम्भ में, डाले पदार्थ का ३०-३५ प्रति शत पानी डाला जाता है, परन्तु पिसा पदार्थ निकालने से पूर्व १०-१५ प्रति शत पानी और डालना चाहिए, जिससे खनिज चूर्ण घोला बनकर सरलतापूर्वक बाहर निकल सके। बॉल-यन्त्र में खनिज टुकड़े तथा पीसनेवाली गेंदें या चकमक पत्थर डालते समय लगभग एक तिहाई स्थान खाली छोड़ देना चाहिए, जिससे गेंदें व खनिज गति कर सकें। दो तिहाई स्थान में खनिज व



चित्र ८. बॉल-मिल

खनिज टुकडे, पदार्थ डालनेवाले सिरे के पास, जहाँ अधिकतम व्यास होता है, रहते है। जैसे-जैसे कण टूटते जाते हैं, वे मशीन की धीमी गति के कारण स्वत. आगे की ओर बढते है। अब इन अपेक्षाकृत छोटे कणो पर छोटे पत्थरो की रगड का अधिक प्रभाव पडता है, कारण छोटे होने से पत्थर व खनिज दोनो की सतह का क्षेत्रफल बढ जाता है।



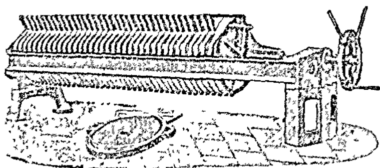
चित्र ९. हार्डिज शंकु आकार चूर्णक यन्त्र

इस स्वत वर्गीकरण के कारण शकु-आकार चूर्णक यन्त्र में साधारण बेलनाकार चूर्णक यन्त्र (बॉल यन्त्र) से कम शक्ति की आवश्यकता पडती है और साथ ही समय भी कम लगता है। शकु-आकार यन्त्र की लम्बाई २ फुट से १० फुट तक होती है और इस लम्बाई के अनुसार कुछ पौण्ड से ५० टन प्रति घण्टे तक खनिज चूर्ण हो सकता है। जब विभिन्न खनिज अपनी-अपनी आवश्यक सूक्ष्मतानुसार पीस लिये जाते हैं तो वे अलग-अलग हौजो में घोला अवस्था में रखे जाते हैं। प्रत्येक घोला एक विशेष गाढेपन का बनाया जाता है जिससे आगे चलकर खनिज मिलाते समय प्रत्येक खनिज का अनुपात केवल उसके घोले के आयतन द्वारा ही मालूम हो सके, जैसा कि आगे चलकर अध्याय

हो जाता है। यदि लौह-युक्त कण इस अवस्था में दूर नहीं किये गये तो आगे चलकर सफेद पात्रों पर बादामी या काले चिह्न डाल देंगे। अब घोल पानी कम करने के लिए तैयार है और पानी जल-निष्कासन यन्त्र द्वारा यथासम्भव निकाल दिया जाता है।

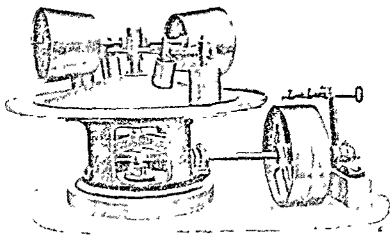
जल-निष्कासन यन्त्र मिट्टी-घोले से दवाव द्वारा यथासम्भव जल निकाल कर घोले को पिण्ड बना देते हैं। पुराने ढग के लकडी के निष्कासको का स्थान अब आधुनिक लोहे के जल-निष्कासक ले रहे हैं। इन जल-निष्कासको में बहुत-सी ढलवाँ लोहे की थालियाँ होती है। ये थालियाँ अन्दर की ओर उभरी हुई होती है, जिसमें दो थालियाँ दबाने पर एक बन्द स्थान बना लेती है, जिसे प्रकोष्ठ कहते है। इस प्रकार के प्रत्येक प्रकोष्ठ के अन्दर दो मजबूत कपडो के टुकडे लटकते रहते है। ये कपडे थालियाँ दबाने पर थालियों के प्रत्येक जोडे के बीच में एक थैला-सा बन जाते है। घोला पम्प की सहायता से थालियो द्वारा बने प्रत्येक प्रकोष्ठ में भेजा जाता है। प्रत्येक कपडे के केन्द्र में एक छिद्र होता है। यह छिद्र थालियो के छिद्र से बँधा रहता है। अत घोला आकर सीधा थैलियो में गिरता है। घोले को प्रकोष्ठ मे एक विशेष दबाव पर पम्प की सहायता से भेजा जाता है। थैलियो में कपडो से पानी निकल जाने पर मिट्टी पिण्ड के रूप में रह जाती है।

जब मिट्टी-घोला प्रत्येक प्रकोष्ठ में भेजा जाता है, तो घोले के ठोस कण कपड़े द्वारा रोक लिये जाते है और उसकी सतह पर एक पतली तह के रूप में जम जाते है।



चित्र ११ जल-निष्कासन यन्त्र

है। ऊपरी बडे बेलन मिट्टी को नीचे की ओर दबाते हैं और छोटे ऊर्ध्वाधर बेलन मिट्टी को ऊपर की ओर दबाते हैं। बारी-बारी से ऊपर नीचे की ओर दबाने से मिट्टी के बीच की हवा निकल जाती है और मिट्टी में पानी की मात्रा सर्वत्र समान हो जाती है। एक बार की क्रिया मे लगभग ४५ मिनट लगते हैं। पोरसिलेन पात्रों के हेतु

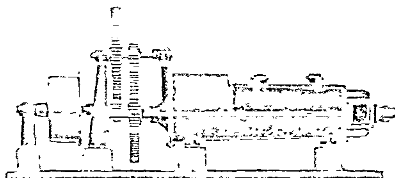


चित्र १२ मिट्टी गूंधने का यन्त्र

मिश्रण-पिण्ड तैयार करने के लिए यह यन्त्र विशेष रूप से उपयोगी है, कारण पोरसिलेन पात्रों के लिए मिश्रण-पिण्ड दूसरे मिश्रण-पिण्डो की अपेक्षा कम लचीला होता है। बॉल-मिट्टी या अग्नि-मिट्टी युक्त अधिक लचीले मिश्रण-पिण्डो के गूंधने के लिए शक्तिशाली पगयन्त्र की आवश्यकता होती है।

पगयन्त्र कई ढले हुए भागो से बना बडा सिलिण्डर होता है जिसमें से उसके भाग आवश्यकतानुसार सफाई करते समय अलग-अलग किये जा सकें। सिलिण्डर के केन्द्र से होती हुई एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक धुरी होती है, जिसमें लोहे की पत्तियाँ ऐसे विशेष कोण पर लगी रहती हैं, जिससे पत्तियाँ घुमाने पर मिट्टी को काटने के साथ-साथ वे उसे निरन्तर आगे की ओर को भी दबाती हैं। सिलिण्डर के निकलनेवाले सिरे पर एक छोटा प्रकोष्ठ होता है, जहाँ पहुँचते ही मिट्टी एक ठोस पिण्ड के रूप में दब जाती है और यन्त्र से मिट्टी एक समाग पिण्ड के रूप में निकलती है। यन्त्र के एक सिरे पर

ऊपर से मिट्टी डाली जाती है, और दूसरे सिरे पर मिट्टी चटकर तथा दबकर ठोस पिण्ड के रूप निकलती है। यह निकली हुई मिट्टी लचीली विधि से बननेवाले पात्रों के



चित्र १३. पगयन्त्र

उपयोग के लिए एकदम तैयार होती है। यदि पगयन्त्र की बनावट ठीक न हो तो इससे तैयार मिट्टी के पात्रों में एक गम्भीर दोष आ जाता है, जिसे लेमीनेशन (Lamination) कहते हैं। यह दोष अधिकतर प्रकोष्ठ के अन्दर गतिशील मिट्टी के विभिन्न स्तरों की भिन्न गतियों के कारण होता है। घर्षण के कारण प्रकोष्ठ की धातु के सीधे सम्पर्क में आनेवाली मिट्टी के स्तर की गति बीच की मिट्टी के स्तर की गति की अपेक्षा कम होती है। इस असमान गति के कारण मिट्टी-पिण्ड भिन्न घनत्व का हो जाता है, जिसके कारण यन्त्र से बाहर निकलनेवाली मिट्टी के मिश्रण-पिण्ड में विभिन्न घनत्ववाले कई स्तर हो जाते हैं। मिट्टी के दो स्तरों के बीच वायु रह जाती है, और जब पगयन्त्र से निकली मिट्टी पकायी जाती है, तो केन्द्रिक चक्रों के रूप में चटक जाती है। इसे लेमीनेशन चटकाव (Lamination cracks) कहते हैं। पगयन्त्र के अन्दर वायु निकाल देने से यह दोष कम हो जाता है। पगयन्त्र का प्रकोष्ट, वायु निष्कासन पम्प (Vacuum pump) से जोड़ दिया जाता है, जिससे दो स्तरों के बीच रहनेवाली वायु निकल जाती है। केनेथ स्टेटीनियस (Kenneth-stettinius) द्वारा सन् १९३७ ई० में वायु हटाने के लिए एक विधि वर्णन की गयी है। मिश्रण-पिण्ड के भीतर से वायु निकालने की इस विधि में पगयन्त्र के प्रकोष्ठ में जाने से कुछ पूर्व ही मिट्टी के ऊपर कार्बन डाई-आक्साइड गैस (CO_2) भेज

दी जाती है। कार्बन-डाई-आक्साइड वायु से भारी होने के कारण वायु को हटा देती है और स्वत धीरे-धीरे मिट्टी में मिल जाती है, कारण कार्बन-डाई-आक्साइड पानी में बहुत अधिक घुलनशील है।

इस प्रकार तैयार वायु-रहित मिश्रण-पिण्ड में केवल लेमीनेशन दोष से ही छुटकारा नहीं मिलता, वरन् मिट्टी बहुत मुलायम भी हो जाती है, जिससे उसमें पात्र बनाने के लिए अच्छे गुण आ जाते हैं और सुखाने तथा पकाने के समय पात्र कम टूटते हैं। इस प्रकार के वायु-रहित मिश्रण-पिण्ड से बहुत-सी विषम आकृतिवाले पात्र अधिक सरलता से बन सकते हैं। मिश्रण-पिण्ड से वायु निकालने के लाभों का अनुमान निम्नलिखित सारणी से लगाया जा सकता है। भोजन पात्रों के मिश्रण-पिण्डों के तुलनात्मक गुण।

	बिना वायु निकाला मिश्रण-पिण्ड	वायु निकाला मिश्रण-पिण्ड
शुष्क अवस्था में शक्ति पौंड वर्ग इंच	३५२	६००
सूखने पर प्रतिशत सिकुड़न	३·८७	३·६५
१२८०° स० पर सम्पूर्ण सिकुड़न	९·७२	९·६
१२८०° से० पर पानी का अवशोषण	७·८६	६·६
प्रलेपन में ऐंठन	०·०९	०·०७
संघात संख्या (Impact Value)	६·९७	६·०८

गूँधने के बाद मिट्टी, चाकविधि तथा जालीविधि द्वारा पात्र बनाने के उपयुक्त हो जाती है।

चाक-विधि (Throwing)--इस विधि में घूमते हुए कुम्हार के चाक पर मिट्टी के पात्रों को हाथ द्वारा आकृति दी जाती है। इस विधि का प्रयोग केवल गोलाकार पात्र बनाने के लिए किया जा सकता है। इसके लिए मिट्टी इतनी काफी कड़ी हो कि पात्रों की आकृति उनके अपने भार से ही नष्ट न होने पाये, साथ ही उतनी मुलायम भी हो कि हाथ के दबाव से ही आकृति दी जा सके। इस विधि में अच्छी तरह से दबाना सर्वाधिक महत्व का है, कारण कुम्हार के हाथ के असमान दबाव के कारण उत्पन्न दोष सुखाने या पकाने से पूर्व प्रकट नहीं होते। चाक-विधि से पात्र बनानेवाले को निम्नलिखित नियमों का पालन करना चाहिए।

या अण्डाकार पात्र बनाने में ही हो सकता है। साँचा जिप्सम प्लास्टर का बना होता है और एक प्याले की आकृतिवाले बर्तन में लगा रहता है। इस बर्तन को 'जिग्गर हैड' कहते हैं।

एक जिग्गर में कुम्हार के चाक की भाँति ऊर्ध्वाधर लोहे की मोटी छड़ होती है, जिसमें ऊपर एक लोहे का प्याला लगा रहता है। इस प्याले में जिप्सम प्लास्टर के साँचे को बैठा दिया जाता है। इनकी गति समान रहती है और ये प्राय बिजली से चलते हैं। इनमें पैर से काम करनेवाला एक ब्रेक होता है, जिसकी सहायता से कारीगर इच्छानुसार यन्त्र को चला या रोक सके। एक विशेष आकार की लोहे की पत्ती से पात्रों को आकृति प्रदान की जाती है। इस पत्ती को प्रोफाइल (Profile) कहते हैं। यह प्रोफाइल, जॉली कहलानेवाले हैण्डिल से जुडी रहती है।

जॉली वह साधन है, जो प्रोफाइल को इस प्रकार पकडे रहता है कि प्रोफाइल घूमते हुए साँचे के अन्दर या बाहर की ओर प्रयोग की जा सके। जॉली यन्त्र जिग्गर के पास ही एक मेज पर लगा रहता है। जॉली यन्त्र प्राय दो प्रकार के होते है—

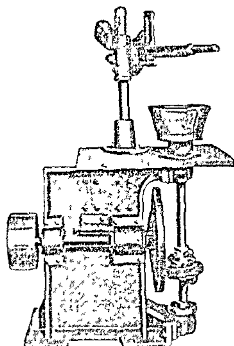
(१) प्रथम प्रकार की वह जॉली जिसका हत्था झुका हुआ होता है और एक चूल में लगा रहता है। हत्थे में सामने की ओर एक कटान रहता है जिसमें प्रोफाइल लगा दी जाती है।

(२) दूसरी प्रकार की जॉली का हत्था झुका हुआ नहीं होता। यह हत्था दो या अधिक घिरनियों की सहायता से ऊपर-नीचे गिराया या उठाया जा सकता है। इसी हत्थे में नीचे प्रोफाइल लगी रहती है।

द्वितीय प्रकार के जॉली यन्त्र प्राय गमले, घडे आदि बडे और खोखले पात्र बनाने के काम आते हैं और प्रथम प्रकार के जॉली यन्त्र प्रत्येक प्रकार के गोलाकार या अण्डाकारपात्र बनाने के काम आते हैं।

प्रोफाइल लोहे या इस्पात की मोटी चद्दर से काटकर बनायी जाती है। इसके एक ओर की वक्रता पात्र की वक्रता के समान होती है तथा वक्रता का किनारा सीधा न होकर ढलवाँ बनाया जाता है। प्रोफाइलों को बहुत ही ठीक आकार में रखा जाता है। इसके लिए एक पुस्तक रखी जाती है जिसमें प्रोफाइल की वक्रता की सीमा सुरक्षित रूप से खिंची रहती है। जब इनके सिरे कार्य करने से घिस जाते हैं तो उन्हें रेतों की सहायता से फिर ठीक कर पुस्तक के नक्शे के समान कर लिया जाता है।

इँग्लैण्ड में प्रयुक्त होनेवाली प्रोफाइलें प्राय· ०·९ से १ सेण्टीमीटर मोटी चद्दर से बनायी जाती हैं। परन्तु पश्चिमी यूरोप में पोरसिलेन पात्रों के बनाने मे प्रयोग होनेवाली प्रोफाइल, ०·५ सेण्टीमीटर से अधिक मोटी नही होती। यह मोटाई का अन्तर विभिन्न स्थानों मे विभिन्न मिट्टियों के प्रयोग के कारण है। इँग्लैण्ड के मृत्पात्रों मे अधिक लचीली बॉल-मिट्टी की काफी मात्रा रहती है। अतः यदि प्रोफाइल काफी मजबूत न बनायी गयी तो प्रयोग करते समय हिल सकती है और पात्रों मे दबाव का अन्तर भी ला सकती है, जिसके कारण मृत्पात्र सुखाते या पकाते समय चटककर टूट सकता है।



चित्र १४. मिले हुए जिगर व जॉली का चित्र

इस विधि मे पात्र बनाने के लिए मिट्टी का लोंदा साँचे मे रखा जाता है। यह साँचा जिगर हैड पर शीघ्रता से घूमता रहता है। अब जॉली के हत्थे की सहायता से प्रोफाइल को नीचे लाते हैं। प्रोफाइल आवश्यकता से अधिक मिट्टी को काटकर फेंक देती है और साँचे में मिट्टी की केवल उचित मोटाई रह जाती है। जिग्गर हैड से साँचा बाहर निकालकर सुखा लिया जाता है। निकाले हुए साँचे के स्थान पर दूसरा साँचा जिग्गर हैड में लगा दिया जाता है और कार्य पूर्ववत् चालू रहता है।

प्याली या तश्तरी जैसे चपटे पात्र बनाने के लिए सर्वप्रथम एक दूसरी मशीन पर एक चौड़ी पटिया (Slab) बना लेते हैं। पटिया को साँचे में रखकर भीगे स्पंज

से दबाकर साँचे और पटिया के बीच की हवा निकाल देते हैं। इसके बाद प्रोफाइल की सहायता से साधारण क्रियाओं द्वारा पात्र बना लेते हैं।

यदि मिट्टी अधिक अल्प लचीली हो तो प्रायः लकड़ी के एक चक्र पर तनी हुई खाल या कैनवास के ऊपर मिट्टी की पटिया बनायी जाती है। उठाते समय पटिया को टूटने या चटकने से बचाने के लिए उसे लकड़ी के चक्र सहित उठाकर धीरे से साँचे में उलट देते हैं।

प्याले, छोटे जलपात्र तथा बेसिन जैसे खोखले पात्र साँचे के अन्दर बनाये जाते हैं। इसमें प्रोफाइल बर्तन की भीतरी सतह बनाती है। बनाने की विधि उसी प्रकार की है जैसी कि चपटे पात्र बनाने में होती है परन्तु यन्त्र का प्रयोग करते समय कुछ अधिक सावधानी की आवश्यकता होती है, जिससे प्रोफाइल बर्तन की दीवारों को बिना छुए ही बाहर निकल आये। बड़े जलपात्र, जग व जार जैसे छोटे मुँह के तथा अधिक खोखलेपन सहित बर्तन बनाने के लिए द्वितीय प्रकार की जॉली का प्रयोग किया जाता है जिसका वर्णन पूर्व ही किया जा चुका है।

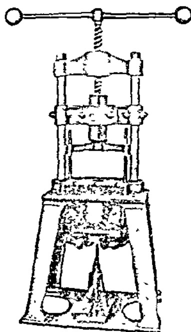
दबाव-विधि (Pressing)—दबाव द्वारा पात्रों को आकृति देने के लिए प्रयोग होनेवाले मिट्टी-मिश्रण-पिण्ड, उनमें उपस्थित पानी की मात्रा के विचार से तीन प्रकार के होते हैं। यह लचीले, अर्द्ध लचीले तथा सूखे चूर्ण नाम से जाने जाते हैं।

लचीले मिश्रण-पिण्ड प्यालों के हैण्डिल, तापसह घरियाओं (Crucibles), छत की टाँगी तथा सुसज्जित ईंटों आदि के बनाने में काम आते हैं। प्याले के हैण्डिल तथा दूसरे ऐसे ही छोटे पात्र प्लास्टर या पकायी मिट्टी के साँचों में बनते हैं। मिश्रण-पिण्ड का लोंदा साँचे के दो अर्द्धों के बीच रख दिया जाता है तथा दोनों अर्द्धों को हाथ से दबाने से आवश्यकता से अधिक मिट्टी बाहर निकल जाती है और वस्तु बन जाती है। छत की टाँगी जैसी बड़ी वस्तुएँ बनाने के लिए धातु के साँचों का प्रयोग किया जाता है। इन साँचों में अन्दर की ओर प्लास्टर की परत रहती है। जब साँचे के दोनों अर्द्धे सरलतापूर्वक एक दूसरे के ऊपर रखे हों, तो उनके बीच की खाली जगह वस्तु के आकार के एक दम समान होती है। पहले लचीले पिण्ड की पटिया बनाकर साँचे के दो अर्द्धों के बीच में रख दी जाती है। फिर यन्त्र द्वारा साँचे को दबाने से आवश्यकता से अधिक मिट्टी बाहर निकल जाती है। इस पटिया का आकार पात्र के आकार के लगभग बराबर होता है, किन्तु यह कुछ अधिक मोटी बनायी

जायगा। आधुनिक विधि में यह कठिनाई ठप्पे के अन्दर की हवा निकालकर दूर की जाती है। पात्र के बाहर ठप्पे में आंशिक शून्य होता है और पात्र ठप्पे द्वारा दबाया जाता है जिससे पात्र के बीच की काफी हवा निकल जाती है। शुष्क अवस्था में दबाव-विधि से बनाये गये पात्रों के लाभ सारांशतः निम्न प्रकार के हैं—

शुष्क अवस्था में दबाव-विधि से बनाये गये पात्रों के किनारे स्पष्ट होते हैं, आकृति ठीक एवं स्पष्ट होती है। इस विधि से बने पात्रों में सकोचन (Shrinkage) बहुत कम होता है। विषम आकृति के पात्र बनाने में सूखने पर चटकने का भय नहीं रहता। इन पात्रों को पकाने से पूर्व सुखाना आवश्यक नहीं होता। अतः ये बनाने के पश्चात् सीधे पकाये जाते हैं। इस प्रकार के पात्रों को पकाने के लिए ऊँचे तापक्रम की आवश्यकता होती है, जब कि समान गुण प्राप्त करने के लिए, समान मिट्टी मिश्रण से लचीली या अर्द्ध लचीली विधि द्वारा बनाये गये पात्रों को कम तापक्रम पर पकाया जाता है।

ढलाई-विधि (Casting)—यह पात्र बनाने की एक नयी विधि है जिसमें मिट्टी-मिश्रण को घोला बनाकर प्लास्टर के साँचे में डालकर आकृति दी जाती है। कुछ समय पश्चात् आवश्यकता से अधिक घोला साँचे को उलटकर निकाल दिया जाता है। ऐसा करने के पश्चात् साँचे की भीतरी सतह पर घोला गाढा होकर उसकी पतली तह जम जाती है, कारण पानी का कुछ अंश साँचा अवशोषित कर लेता है। इस जमी तह को कुछ समय छोड़ देने से वह सूख जाती है और साँचे से एक पात्र के रूप में निकाली जा सकती है। इस पात्र की आकृति एक दम साँचे की आकृति जैसी होगी।



चित्र १५. हस्त-चालित स्क्रूप्रेस

ढलाई-विधि में कम कुशल व्यक्तियों से भी काम चल जाता है और अल्प लचीली मिट्टियों का भी लाभ-सहित उपयोग हो सकता है। यदि ढालने के लिए घोला बनानेवाली मिट्टी अधिक लचीली हो तो यह साँचे की भीतरी सतह पर एक अपारगम्य तह बनायेगी, जिसके कारण साँचे द्वारा पानी के अवशोषण में बाधा पड़ती है। ढले हुए पात्र, दबाव-विधि या चाक-विधि से बने पात्रों की अपेक्षा अधिक हलके तथा कम मजबूत रहते हैं। कारण दबाव व चाक-विधि में पात्र कम सरन्ध्र होता है। ढले पात्रों में दबाव-विधि या जॉली-विधि से बने पात्रों की अपेक्षा पकाने पर आकुंचन अधिक होता है। बहुत-सी विषम आकृतिवाले पात्र सरलता से ढाले जा सकते हैं, जब दूसरी विधियों से उन्हें बनाना असम्भव या काफी कठिन होता है। परन्तु ढालने के लिए अधिक संख्या में साँचों की आवश्यकता होती है, जो कुछ काल के प्रयोग से बेकार हो जाते हैं।

मिट्टी-घोले से साँचे को भरे रखने का समय, मिट्टी के लचीलेपन, प्लास्टर की अवशोषण शक्ति, प्लास्टर की शुष्कता और बननेवाले पात्रों की मोटाई पर निर्भर करता है। यह समय (विशेषकर भारी तथा मोटे पात्रों के लिए) कम किया जा सकता है। समय कम करने के लिए साँचे को चारों ओर वायुरुद्ध ढक्कन से घेरकर साँचे के बाहर सब ओर शून्य उत्पन्न किया जाता है या साँचे के भीतर स्थिर वायु दबाव रखा जाता है।

जब सजावट के लिए एक से अधिक प्रकार की रंगीन मिट्टियों का प्रयोग किया जाय तो पहले साँचे पर रंगीन मिट्टियाँ ब्रुश से लगा दी जाती हैं और तब साधारण घोल साँचे में साधारण तरीके से डाला जाता है।

अच्छा ढलाई घोला तैयार करना सरल कार्य नहीं है। वास्तव में घोला बनाने से पूर्व प्रत्येक प्रकार की मिट्टी के विशेष गुण अलग में अध्ययन किये जाने चाहिए। ढलाई घोले का साधारण नियन्त्रण आपेक्षिक घनत्व तथा श्यानता मापों द्वारा होता है। आपेक्षिक घनत्व पानी और मृत्पिण्ड की मात्राओं के अनुपात पर निर्भर करता है। श्यानता का नियन्त्रण क्षारीय लवणों द्वारा होता है। घोले के तापक्रम का भी महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। यह पता चल चुका है कि उच्च तापक्रम से घोले की तरलता बढ़ जाती है। विभिन्न लवणों का घोले पर विभिन्न प्रभाव होता है। सोडियम कार्बोनेट कुछ काल तक घोले की तरलता बढ़ाता है। परन्तु मिट्टी-घोले में अधिक सोडियम सिलीकेट होने पर, स्थानीय स्कन्दन के कारण घोला जमकर नीचे बैठ जाता है। श्राम (Schramm) और हाल ने दिखाया है कि टैनिक व गैलिक अम्ल मिट्टी-घोले में रक्षक कलिल का काम करते हैं, कारण मिट्टी को जम कर बैठने नहीं देते।

तैयार करने के हेतु हाथ से की जानेवाली बहुत-सी क्रियाएँ हैं। इस प्रक्रम के सदैव दो मुख्य उद्देश्य रहते हैं—

(१) यदि पात्र के विभिन्न भाग एक ही या अधिक विधियों से अलग-अलग बनाये गये हो तो उन भागो को जोडना।

(२) आकृति की किसी कमी को ठीक करना और पात्र को साफ करना।

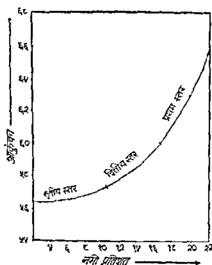
चाय पात्र, चाय के प्याले आदि वस्तुएँ भिन्न भागो में बनायी जाती हैं। ये विभिन्न भाग उसी घोले से जोडे जाते हैं, जिससे पात्र बनते हैं। जोड़ने की क्रिया जुड़नेवाले दोनो भागो के बहुत सूख जाने से पूर्व ही होनी चाहिए। जोड़ते समय दोनो भागों की गीलेपन की एक ही अवस्था होनी चाहिए। अधिक शुष्क अवस्था में जोड़ने पर जोड या तो सुखाने में ही चटक जायगा और यदि सुखाने पर न चटका तो पकाते समय अवश्य चटक जायगा।

दबाव-विधि व ढालने की विधि से बने पात्रो की आकृतियो में दोष मुख्यत साँचों के जोड़ पर होता है। ये दोष एक छोटे चाकू से छीलकर दूर किये जाते हैं तथा ऐसा करते समय चाकू से बने निशान एक भीगे स्पज से पोछकर दूर किये जाते हैं। यदि गड्ढे या बारीक चटकाव जैसे दोषो को ठीक करना हो तो ये घोले की थोडी-सी मात्रा भरकर दूर किये जाते हैं। ये दोष साँचों का प्रयोग करते समय आ जाते हैं। तश्तरी व प्यालो पर उस समय पालिश की जाती है जब वे सूख जाते हैं। तश्तरियों को घूमनेवाले एक चक्र पर रखकर प्रथम ऐमेरी या बालू कागज से और बाद में फलालेन के टुकडे से रगडकर साफ किया जाता है। प्याले और दूसरे खोखले पात्रों पर पालिश के लिए गीली अवस्था में केवल स्पज का प्रयोग किया जाता है।

सुखाना—मृत्पात्र सुखाने समय पानी व ठोस कणो का पेचीला स्थानान्तरण अभी तक पूरी तरह से समझा नही जा सका है। ध्यान देने पर पता चलता है कि सुखाने के समय उत्पन्न हुए बहुत से दोष दूसरे विभिन्न कारणो से होते हैं। मिट्टी की एक वर्गाकार पटिया सूखकर आयताकार तथा मिट्टी का वृत्ताकार टुकडा सूखकर अण्डाकार हो सकता है। परन्तु ये क्रियाएँ विशेष कर मृत्पात्र के विभिन्न आकार के कणों के कारण हैं, जो मृत्पात्र का मिश्रण-पिण्ड गूँधने समय बन गये थे। यह सर्व-विदित है कि यदि मिट्टियो पर सुखाने से पूर्व या सुखाने समय यान्त्रिक या गुरुत्व-जनित प्रतिबल (Stresses) क्रिया करे तो आकुंचन अधिक होता है। अत. बडी पट्टियों में ऊर्ध्वाधर आकुंचन क्षैतिज आकुंचन की अपेक्षा अधिक होता है।

कारण ऊपर की तथा भीतरी तहों में असमान आकुंचन आता है। इस असमान आकुंचन से पात्र में विकृति उत्पन्न होती है जिसके कारण पात्र सूखते समय चटक जाता है। आर्द्रता विधि से सुखाने पर विकृति तथा चटकना काफी सीमा तक दूर किया जा सकता है। इस स्तर के अन्त में पात्र का रंग कुछ हलका हो जाता है तथा पकाने के लिए उपयुक्त होता है।

सुखाने के तृतीय या अन्तिम स्तर में मिट्टी के सूक्ष्म कण आपस में एक दम चिपट जाते हैं और गति करने योग्य नहीं रह जाते। इस स्तर में पानी के निकल जाने से और आकुंचन नहीं होता, परन्तु रन्ध्रता उत्पन्न हो जाती है। मिट्टी में उपस्थित कलिल पदार्थ के सिकुड़ने से केवल कुछ आकुंचन आ जाता है। इस प्रकार इस स्तर में उत्पन्न रन्ध्रता पानी की हानि के बराबर होती है। इस स्तर को पूरा करने के लिए कृत्रिम साधनों से गरम किये गये सुखानेवाले प्रकोष्ठ की आवश्यकता पड़ती है। पर अधिकतर यह अवस्था भट्ठी में पकाने के प्रथम स्तर में पूर्णता को प्राप्त हो जाती है।



चित्र १६. मृत्पात्र के सूखने पर आकुंचन

पात्र में पानी की मात्रा और उसके आकुंचन का अनुमान १९३४ ई० में दिये गये मैसे (H.H. Macey) के रेखाचित्र से लग जायगा जो चित्र १६ में दिया गया है।

रेखाचित्र के अध्ययन से पता चलता है कि सूखने के प्रथम स्तर में जल-हानि लगभग ६ प्रतिशत और आयतन हानि भी ६ प्रतिशत है। अतः प्रथम स्तर की जल-हानि को आकुंचन जल कहा जाता है। परन्तु द्वितीय स्तर में जल-हानि लगभग ७ प्रतिशत और आयतन हानि केवल लगभग ३ प्रतिशत है। जिसका अर्थ है कि शेष ४ प्रतिशत की जलहानि से पात्र की रन्ध्रता बढ़ती है। तृतीय स्तर में जल-हानि लगभग ९ प्रतिशत और आकुंचन १ प्रतिशत से

कम है। इससे पात्र की रन्ध्रता बढ़ती है। प्रथम स्तर में आकुंचन सर्वाधिक होता है तथा तृतीय स्तर में रन्ध्रता सर्वाधिक होती है।

चटकने तथा आकृति के बिगड़ने को रोकने के लिए सुखाते समय भीतरी भाग से ऊपरी तल पर पानी आने की गति बढ़ाने तथा ऊपरी तल से वाष्पीकरण के नियन्त्रण पर ध्यान देना चाहिए। बहुत-सी अधिक कलिल पदार्थ युक्त विशेष मिट्टियों में अम्ल या साधारण नमक मिलाने से इस दिशा में लाभ होता है। बहुत-सी मिट्टियों में, जो सुखाते समय बुरी तरह चटक जाती हैं, १ प्रतिशत तक साधारण नमक मिलाने से वे कार्य योग्य हो जाती हैं। अम्ल या साधारण नमक मिलाने से पात्र पकाने का परास बढ़ जाने से पकाने में भी सुधार हो जाता है, क्योंकि मिट्टी कम तापक्रम पर ही काँचीय होना प्रारम्भ कर देगी और उस तापक्रम पर आवश्यकता से अधिक पकेगी भी नहीं, जिस तापक्रम पर अम्ल या नमक-रहित मिट्टी पिघलना प्रारम्भ कर देगी। हुसेन (Hussain) ने सन् १९३० ई० में दिखाया कि १ प्रतिशत हाइड्रोक्लोरिक अम्ल मिलाने से, विकृत होने से मृत्पात्रों की हानि १३ प्रतिशत से कम होकर ३ प्रतिशत रह जाती है। इसका कारण यह है कि अम्ल और अम्लीय लवण, कलिल पदार्थ का ऊर्णन करके केशिका क्रिया को सुधार देते हैं, जिससे पानी सरलतापूर्वक ऊपरी तल पर आ जाता है। लवज्वाय ने १९३३ ई० में दर्शाया कि साधारण मिट्टी में अम्ल द्वारा ऊर्णन से पानी का बहाव नहीं बढ़ता तथा उसने देखा कि यह विधि केवल उन मिट्टियों के लिए लाभकारी है जिनमें कलिल पदार्थ इतना अधिक रहता है कि रन्ध्र और केशिकाएँ सरलता से बन्द हो सकें।

हवा की गति और तापक्रम का भी सूखने की प्रगति पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। ५०° सें० पर पानी की श्यानता २०° सें० वाले पानी की श्यानता की आधी होती है। अतः ५०° सें० पर सूखने की गति २०° सें० की अपेक्षा लगभग दूनी होगी। १००° सें० पर गरम हवा की सुखाने की शक्ति २०° सें० की अपेक्षा २० गुनी से अधिक होती है। बिगेलो (Bigelow) ने पता लगाया कि यदि शान्त हवा में वाष्पीकरण की गति १०० मान लें तो १ किलोमीटर प्रति घण्टा गतिवाली साधारण हवा में यह वाष्पीकरण गति बढ़कर १०७ हो जायगी तथा २ किलोमीटर प्रति घण्टा गतिवाली हवा के लिए ११४ हो जायगी। यदि हमारे पास प्राप्य ताप की निश्चित मात्रा हो जिसमें या तो हवा का एक आयतन ६०° सें० से १००° सें० तक गरम किया जा सकता हो या चार आयतन ६०° सें० से ७०° सें० तक गरम किये जा सकते हों, तो यह हिसाब

लगाया गया है कि अधिक आयतनवाली ठण्ढी हवा में कम आयतनवाली गरम हवा की अपेक्षा केवल चौथाई सुखाने की शक्ति होगी।

सुखाने में शीघ्रता, मिश्रण-पिंड की रचना तथा वस्तु की आकृति और मोटाई पर निर्भर करती है। चूंकि प्रथम स्तर में सूखने की गति सर्वाधिक होती है, अतः कभी-कभी इस स्तर पर वस्तु को गीले कपड़े से ढंक देना लाभप्रद सिद्ध हुआ है। कभी-कभी पात्रयुक्त साँचे को ही इस प्रकार उलट देते हैं कि अधिक शीघ्रता से सूखना बन्द हो जाय। ऐसा करने से न तो पात्र की आकृति ही खराब होती है और न वह टूटता ही है। तेज गति से सुखाने पर आकुंचन कम होता है तथा धीमी गति से सुखाने पर आकुंचन अधिक होता है। इस प्रकार एक ही मिश्रण पिण्ड से बनी दो वस्तुओं में से एक में, जो २४ घण्टे में सुखायी गयी है, आकुंचन लगभग ६ प्रतिशत देखा गया है और दूसरी में, जो १२० घण्टे में सुखायी गयी है, ७ प्रतिशत आकुंचन देखा गया है।

सुखाने पर मिश्रण-पिण्ड का आकुंचन पानी की उस मात्रा पर भी निर्भर करता है जो उसे बनाने में प्रयोग की गयी थी। यदि कोई मिश्रण-पिण्ड १० प्रतिशत पानी से मिलाकर बनाया गया हो तो उसका आकुंचन लगभग १ प्रतिशत होगा, परन्तु यदि वही मिश्रण-पिण्ड २५ प्रतिशत पानी से बनाया गया हो तो वही आकुंचन बढ़कर लगभग ६ प्रतिशत हो जायगा। इस प्रकार एक ढलाई-विधि से तैयार की गयी वस्तु में जॉली-विधि से तैयार की गयी वस्तु की अपेक्षा अधिक आकुंचन होगा तथा अधिक रन्ध्रता होगी। इसका कारण ढलाई घोले में पानी की अधिक मात्रा का रहना है। जिन पात्रों का तल क्षेत्र अधिक होगा वे कम तल क्षेत्रवाले पात्रों की अपेक्षा कम समय में सूखेंगे। इस प्रकार एक ठोस ईंट के सूखने में खोखली या छिद्रमय ईंट की अपेक्षा अधिक समय लगेगा।

यदि किसी वस्तु में मोटे तथा पतले दोनों भाग हों तो कोने और किनारे—जैसे पतले भाग मोटे भागों की अपेक्षा शीघ्र सूख जाते हैं तथा मोटे भागों में तनाव उत्पन्न हो जाता है। यदि यह तनाव पिण्ड की सहनशक्ति से अधिक है तो चटकान या दरारें पड़ जायँगी। अतः एक ही पात्र में बहुत मोटे भाग के पास बहुत पतला भाग नहीं बनाना चाहिए।

सुखाने की उपर्युक्त विधियों में से किसी एक का निर्धारण पात्र की अवस्था के अनुसार किया जाता है। मिट्टी धोने के कारखानों में धुली मिट्टी कोयले की आग से

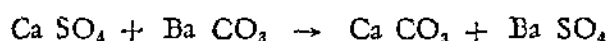
प्राप्त करने के लिए प्रत्येक मिट्टी के गुण तथा प्रत्येक मृत्पात्र के आकार व आकृति आदि का विचार करके क्रांतिक तापक्रम का निर्धारण करना चाहिए। इस विधि में पात्र, विशेष कर भारी पात्र, केन्द्र से बाहर की ओर सूखते हैं, जब कि सुखाने की दूसरी साधारण विधियों में पात्र बाहर से केन्द्र की ओर सूखता है। इस कारण इस विधि द्वारा सुखाने से पात्र न तो चटकते हैं और न उनके तल पर चैक दोष ही देखने में आता है।

छादनी (Scumming)—मिट्टी उद्योग के कारीगरों के लिए छादनी एक सर्वव्यापी सिरदर्द हो गयी है। साधारण छादनी कुछ-कुछ सफेद रंग की एक परत होती है, जो सुखाने पर पात्र के ऊपरी तल पर आ जाती है, और पकाने पर स्पष्ट व स्थिर हो जाती है। पात्र पकाते या प्रयोग करते समय भी छादनी उत्पन्न हो सकती है। यद्यपि प्राय यह सुखाते समय ही प्रकट होती है।

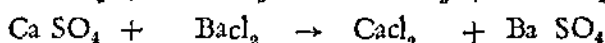
साधारण छादनी चूने के सल्फेट, जिप्सम या सेलेनाइट से बनती है। साधारण पानी इन खनिजों को ०·२५ प्रतिशत तक घुला सकता है, परन्तु यदि पानी में कार्बन-डाई-आक्साइड घुली हो तो पानी में यह सब खनिज काफी मात्रा में घुल जाते हैं। लगभग सभी ईंटों की मिट्टियों में जिप्सम विलयन या घोल के रूप में रहता है। मिट्टी के कारखानों के ढलाई-विभाग की खुरचन में निश्चित रूप से साँचों में से कुछ प्लास्टर आ जाता है। यह प्लास्टर पानी के साथ मिलाने से जलयोजित होकर घुल जाता है। मिट्टी-घोले में जल-निष्कासन प्रेस के पुराने पानी के प्रयोग से भी यह लवण मिट्टी-पिण्ड में आ जाता है।

जब पात्र धीरे-धीरे सूखता है, तो पात्र में उपस्थित घुलनशील लवण तल पर आ जाता है। अब चूँकि पानी सूख जाता है, अत लवण तल पर जम जाता है। यह लवण-जमाव अधिक खुले भागों, जैसे प्याले के किनारों या मूर्त्तियों के नाक कान आदि पर सर्वाधिक हो जाता है। यह लवण-जमाव या छादनी प्राय सफाई के समय दूर कर दी जाती है। यदि भीतरी भाग से ऊपरी तल पर पानी आने की अपेक्षा तल वाष्पीकरण की गति अधिक हो तो पात्र के तल के नीचे से ही सूखने की क्रिया होती है। ऐसी अवस्था में पात्र पर छादनी नहीं जमा होगी।

यदि भट्ठी की गैसें सुखानेवाले प्रकोष्ठ में सीधे या छिद्र आदि के होने से पहुँच जायें, तो प्राय पात्रों पर छादनी आ जाती है, क्योंकि यदि मिट्टी में चूने का कार्बोनेट है तो भट्ठी की गन्धक गैसों से नमी की उपस्थिति में यह सल्फेट में परिवर्तित हो जायगा। यह सल्फेट बाद में सूखी अवस्था में सरलतापूर्वक अलग किया जा सकता है, परन्तु



$$Ca\,SO_4 + Ba\,CO_3 \rightarrow Ca\,CO_3 + Ba\,SO_4$$



$$Ca\,SO_4 + Bacl_2 \rightarrow Cacl_2 + Ba\,SO_4$$

यद्यपि कैलशियम क्लोराइड स्वय एक घुलनशील लवण है, परन्तु यह छादनी या प्रस्फुटन नही बनाता।

साधारण व्यवहार मे सल्फेट का अधिक भाग बेरियम कार्बोनेट द्वारा दूर किया जाता है, और शेष बेरियम क्लोराइड की थोड़ी-सी मात्रा से, क्योंकि बेरियम क्लोराइड की अधिक मात्रा स्वय ही छादन बनाती है। इस कार्य में केवल अवक्षेपित बेरियम कार्बोनेट ही सन्तोषजनक परिणाम देता है। प्राकृतिक कार्बोनेट या विदेराइट (Witherite) अच्छी तरह कार्य नही करते। जहाँ केवल थोड़ी-सी मात्रा की आवश्यकता हो वहाँ केवल बेरियम क्लोराइड ही लाभ सहित प्रयोग किया जा सकता है, क्योंकि पानी में घुलनशील होने के कारण बेरियम क्लोराइड सरलतापूर्वक क्रिया करता है।

एक पेटेण्ट (Patent) के अनुसार छादनी बनानेवाली वस्तुओ, विशेष कर ईंटो के ऊपरी तल पर कार्बनिक पदार्थों का प्रलेप चढा दिया जाता है। ईंटें सूखने पर छादनी इसी प्रलेप के ऊपर बनती है। अब पकाने पर कार्बनिक प्रलेप जल जाता है और परिणामत छादनी छूटकर नीचे गिर जाती है।

जब छादनी, मिट्टी में उपस्थित पाइराइट के कारण हो तो गन्धक को सावधानी-पूर्वक जलाकर सल्फेट मे बदल लेते हैं। फिर इस सल्फेट को अवकारक क्रिया द्वारा नष्ट कर देते हैं। पकाने की क्रिया का प्रथम स्तर समाप्त होने पर पाइराइट के कारण भय लगभग समाप्त हो जाता है। कोयले में कुछ चूने का पानी डालने से कोयले में उपस्थित गन्धक, सल्फर-डाई-आक्साइड (SO_2) नही बन पाता, वरन् सल्फेट बनकर राख के साथ निकल जाता है।

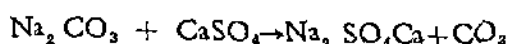
साँचे (Moulds)—सम्भवत कुम्हार के भण्डार में साँचे ही सब से मूल्यवान भाग होते हैं। बड़े फूलदान से लेकर साधारणतम प्याली तक के प्रत्येक आकार व आकृति के साँचे बड़ी सख्या मे होने चाहिए। बननेवाली वस्तु के अनुसार साँचे एक या अधिक भागो मे बनाये जाते हैं। प्याला तथा तश्तरी आदि वस्तुओं के साँचे प्राय एक ही भाग मे बनाये जाते हैं, जब कि चीनी रखने के पात्र तथा सुराही आदि पात्रों को कई भागों मे बनाया जाता है।

और यदि उपयोग करते समय बीच-बीच में साँचे विधिवत् सुखा लिये जायँ तो वे अधिक काल तक चलते है। कम तापक्रम पर अधिक काल तक सुखाने से साँचे का जीवन बढ जाता है।

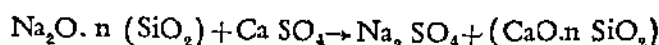
केसिग से कार्योपयोगी साँचा बनाने के लिए सर्वप्रथम केसिग के धरातल से सब धूल आदि साफ की जाय तथा यदि केसिग अधिक सूखा हो तो कुछ सेकण्ड पानी के तसले मे उसे डुबा दिया जाय। अब घुलनशील साबुन के घोल मे भीगे स्पंज द्वारा इसका ऊपरी भाग अच्छी तरह चिक्ना कर दें। यदि प्लास्टर केसिग पर साबुन-घोल का प्रयोग न किया जाय तो साँचे ढालते समय यह केसिग ताजे प्लास्टर से चिपकेगा। भार के विचार से तीन भाग प्लास्टर को एक भाग पानी के साथ मिलाओ और तब तक बिलोडो जब तक कि प्लास्टर जमना न प्रारम्भ कर दे। इस क्रिया में लगभग ५ मिनट लगते हैं। अब प्लास्टर घोले को केसिग में चक्राकार गति से डालो। घोले को चलाते रहो जिससे केसिंग और घोल के बीच से हवा के बुलबुले निकल जायँ। प्लास्टर को जमने दो। प्रारम्भ मे यह गरम हो जायगा। जब फिर ठंडा हो जाय तो साँचे को केसिग से बाहर निकाल लो। लोहे के चाकू से खुरचकर साँचा साफ कर लिया जाता है या साँचे पर निशान बनाना या सख्या लिखनी हो तो लिख दी जाती है।

पानी के साथ अधिक या कम प्लास्टर का प्रयोग करके साँचे को इच्छानुसार कठोर या मुलायम बनाया जा सकता है। जिस कार्य के लिए साँचे का प्रयोग होगा उसके अनुसार ही साँचे को कठोर या मुलायम बनाया जाता है। मृद्-उद्योग में ढलाई साँचा, जॉली-विधि या दबाव-विधि के साँचे से मुलायम बनाया जाता है।

जब प्लास्टर साँचे अधिक काल तक नम स्थान पर रखे जायँ तो उनकी सतह पर रोवें-जैसा एक सफेद पदार्थ उत्पन्न हो जाता है। इस पदार्थ की परीक्षा करने पर पता चलता है कि इसमे सोडियम सल्फेट की काफी मात्रा रहती है। इस सोडियम सल्फेट का कुछ भाग तो मिट्टी में उपस्थित घुलनशील लवणों से और कुछ भाग पानी में घुलित प्लास्टर पर सोडियम कार्बोनेट तथा सोडियम सिलीकेट की क्रिया से आता है। क्रिया में सोडियम सल्फेट, सिलीकेट या कार्बोनेट और कैलशियम सल्फेट के द्विकविच्छेदन से बनता है, जैसा कि निम्न समीकरण से स्पष्ट हो जायगा।



$$Na_2CO_3 + CaSO_4 \rightarrow Na_2SO_4Ca + CO_2$$



$$Na_2O.n(SiO_2) + CaSO_4 \rightarrow Na_2SO_4 + (CaO.n\,SiO_2)$$

सोडियम कार्बोनेट तथा सिलीकेट ढलाई घोल बनाते समय विद्युद्विश्लेष्य के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। घुलनशील फास्फेट जैसे पदार्थों की उपस्थिति से प्लास्टर की पानी मे घुलनशीलता बढ़ जाती है। इसी कारण अस्थि पोरसिलेन बनाने के लिए ढलाई साँचे उतने दिन नहीं चलते जितने दिन साधारण पोरसिलेन वस्तुएँ बनाने के ढलाई साँचे चलते हैं। नम स्थान में रखे प्लास्टर साँचो पर सोडियम सल्फेट (ग्लॉबर लवण) के बढ़ते हुए केलासो द्वारा बड़ा दबाव पड़ता है जिससे साँचा सड़ जाता है। इस केलास के दबाव का प्रभाव प्रयोग द्वारा निर्धारित किया जा सकता है। यदि इस लवण का घोल मिट्टी के बर्तन में डाला जाय तो घोल सरन्ध्र पात्र के पूरे भाग मे अन्दर चला जायगा जिससे पूरा पात्र सड़ जायगा और साधारण धक्के मे ही पात्र टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जायगा। यह तथ्य इस बात की व्याख्या करता है कि नम स्थान में अधिक काल तक रखे साँचे क्यों सड़ जाते हैं और कार्य करते समय टूट जाते हैं।

पकाने के सिद्धान्त—मृद्-वस्तुओं मे कठोर पोरसिलेन को छोड़कर (जो मृत्पात्रों में सर्वोत्तम है) सभी मृद्-वस्तुएँ पकाते समय, मिट्टी पर अग्नि की पूरी क्रिया होने से पूर्व ही भट्ठी से निकाल ली जाती हैं। पात्र के पकाने की क्रिया इतनी नहीं की जाती कि पात्र के अन्दर तापजनित रासायनिक क्रिया पूर्ण रूपेण पूरी हो सके, वरन् विभिन्न पात्रों के लिए भिन्न स्तरों पर ही रोक दी जाती है। सरन्ध्र मृत्पात्रों के लिए पकाने की क्रिया उसी समय रोक दी जाती है, जब मिट्टी काफी कठोर हो गयी हो। उत्कृष्ट श्वेत मृत्पात्र, मिट्टी कणों का गलना प्रारम्भ होने तक ही पकाये जाते हैं। कड़ी मिट्टी वस्तुओं तथा मृदु पोरसिलेन पात्रो के पिण्ड न्यूनाधिक पूरी तरह से काचीय हो जाते हैं। जिसके कारण मृदु पोरसिलेन में अल्प पारदर्शकता आ जाती है।

शुद्ध चीनी मिट्टी पर ताप का प्रभाव पिछले अध्याय मे वर्णन किया जा चुका है। परन्तु जब मिट्टी अशुद्ध हो या उसमें कुछ खनिज मिला दिये जायँ तो क्रिया विषम हो जाती है। पकाते समय पात्र के मृत्पिण्ड में होनेवाली क्रियाओं को समझने के लिए पकाने का पूरा काल विभिन्न स्तरो में बाँटा जा सकता है। परन्तु एक स्तर के समाप्त होने से पूर्व ही दूसरा स्तर प्रारम्भ हो जाता है, क्योंकि तापक्रम को ऐसे भागो में विभाजित नहीं किया जा सकता जो एक ही समय होनेवाली दो विभिन्न क्रियाओं को अलग-अलग कर सकें।

(१) प्रथम या वाष्पीकरण स्तर (१५०° सें० तक)—वास्तव में यह स्तर सुखाने

स्तर पर मिट्टी में गैसों को अवशोषित करने की सम्भावना बहुत अधिक बढ़ जाती है और मिट्टी अम्लों की ओर अधिक क्रियाशील हो जाती है। स्वेन मृत्पात्रों की भट्ठी में इस स्तर पर निकली जलवाष्प का आयतन भट्ठी के आयतन से ५० गुना अनुमान किया गया है। इस कारण इस वाष्प को काफी हवा द्वारा निकाल देना चाहिए। नहीं तो मिट्टी में उपस्थित कार्बनिक पदार्थों के ओषदीकरण में बड़ी कमी आ जायगी क्योंकि कार्बन अपने कणों के चारों ओर हवा की उपस्थिति में ही पूरी तरह जल सकता है।

यदि मिट्टी में कार्बन एन्थ्रासाइट (Anthracite) के रूप में है तो बिना किसी कठिनाई के जल जाता है। बिटमिनस कार्बन में हाइड्रोकार्बन अधिक रहते हैं और कुछ तेल भी होते हैं। ये तेल तथा हाइड्रोकार्बन स्थानीय दहन उत्पन्न करते हैं और मिट्टी के ओषदीकरण में बाधा डालते हैं। लिगनाइट कार्बन वाष्प की अधिक मात्रा उत्पन्न करता है, परन्तु बिटुमिनस कार्बन के बराबर कठिनाई नहीं डालता है। यदि इस स्तर पर भट्ठी से अग्नि मिट्टी की वस्तुएँ निकालकर देखी जाय तो उनका रंग काले से भूरे रंग तक पाया जाता है। यह रंग मौलिक मिट्टी में उपस्थित कार्बनिक पदार्थों की मात्रा पर निर्भर करता है। अब मिट्टी, पानी के साथ मिलाने पर लचीला होने का गुण खो देती है, परन्तु अभी तक काफी कठोर और मजबूत नहीं हो पाती।

(४) ओषदीकरण-स्तर (३५०° से ९००° से०)—यह काल वास्तव में अल्प तापक्रम पर जलनेवाले कार्बनिक पदार्थ या गन्धक यौगिकों के ओषदीकरण से प्रारम्भ होता है। यह लगभग ३५०° से० से प्रारम्भ होकर उस समय तक चलता है जब तक कि ९००° से० से ऊपर के तापक्रम पर कार्बन का अन्तिम कण तक नहीं जल जाता। यह काल कभी-कभी निर्जलन काल के साथ भी चलता है तथा कभी-कभी अगले स्तर में भी चलता रहता है।

मिट्टी में उपस्थित लौह सल्फाइड (FeS_2) ४००° से० पर विच्छेदित होना प्रारम्भ हो जाता है, परन्तु फेरस सल्फाइड (FeS) को ओषदीकरण द्वारा लौह आक्साइड बनाने के लिए और ऊँचे तापक्रम, लगभग ८००° से० की आवश्यकता पड़ती है। यदि इन गैसों को शीघ्रतापूर्वक निकालने का अच्छा प्रबन्ध हो तो मृत्पात्रों से उत्पन्न गन्धक गैसें इस ऊँचे तापक्रम पर कोई हानि नहीं पहुँचाती। मिट्टी में

उपस्थित कैलशियम कार्बोनेट लगभग ८६०° सें० या अधिक पर मुक्त चूना में विच्छेदित हो जाता है। कार्बन और गन्धक में फेरस आक्साइड की अपेक्षा आक्सीजन की ओर अधिक आकर्षण है। अतः फेरस आक्साइड को फेरिक आक्साइड में बदलने से पूर्व यह आवश्यक है कि कार्बन तथा गन्धक पूर्णरूपेण दूर कर दिये जायँ। फेरिक आक्साइड के बनने पर ही लौह मिट्टियाँ पकाने पर लाल रंग की हो जाती हैं। यदि ओषदीकरण ठीक प्रकार से न किया गया तो फेरस आक्साइड मिट्टी में उपस्थित सिलीका से संयोग कर जाता है तथा बना हुआ यौगिक न्यून तापक्रम पर ही पिघल जाता है, और यदि तापक्रम काफी अधिक हुआ तो पात्र फूलकर झाँवा की तरह हो जाता है। कार्बन के पूर्णरूपेण ओषदीकरण में असफलता के कारण पात्र के अन्दर काले चकत्ते पड जाते हैं, जिन्हें ब्लैक कोर (Black core) कहा जाता है। विशेष कर ईंटो तथा दूसरी मोटी वस्तुओं पर यह दोष अधिक देखने में आता है। ऐसा इस कारण होता है कि ऊपरी धरातल के पास क्रमशः बढ़ते हुए तापक्रम से रन्ध्र बन्द हो जाते है तथा इस प्रकार पात्र के केन्द्र में हवा का पहुँचना बन्द हो जाता है, जिससे पात्र के भीतरी भाग में कार्बन अपरिवर्तित रह जाता है और काले चकत्ते या ब्लैक कोर को जन्म देता है।

इस स्तर पर मिट्टी के विच्छेदन से प्रायः मुक्त सिलीका, मुक्त एल्यूमिना तथा चूना, मैगनीसिया, लोहे और क्षारों के आक्साइड प्राप्त होते हैं। यदि ९००° सें० पर भट्ठी से चीनी मिट्टी का नमूना निकाला जाय तो गुलाबी रंग देखने में आता है। यह रंग चीनी मिट्टी से मुक्त लौह आक्साइड के अलग हो जाने से होता है। तापक्रम बढ़ने पर लोहा एल्यूमिना तथा सिलीका से संयोग कर रंगहीन पदार्थ बनाता है, परन्तु यदि मिट्टी में कार्बन उपस्थित हुआ तो लोहा एल्यूमिना से उस समय तक संयोग नहीं कर सकता जब तक कि पूरा कार्बन न समाप्त हो जाय। मुक्त लौह आक्साइड के कारण पके हुए पदार्थों में विशेष रंग आ जाता है। मिट्टी में कैलशियम आक्साइड की उपस्थिति का रंग पर काफी प्रभाव पड़ता है। चूने की उपस्थिति से लौह आक्साइड का लाल रंग, मांसल रंग या पीले रंग में बदल जाता है। यदि लोहा ठीक प्रकार से ओषदीकृत नहीं हुआ तो चूने के साथ मिलकर हरा रंग उत्पन्न करेगा, जैसा कि साधारण काँच में देखने में आता है।

इस काल की समाप्ति पर कार्बनिक पदार्थों के निकल जाने और कार्बोनेट तथा सल्फाइड के विच्छेदन से पात्र सरन्ध्र हो जाता है। कुछ तो स्फटिक के आयतन में

वृद्धि से तथा कुछ मृत्भाग की आयतन-वृद्धि से पात्र का बाहरी आयतन भी कुछ बढ़ जाता है। ब्राउन और मोण्टगोमरी (Brown and Montgomery) ने दर्शाया है कि यदि कैओलिन को ६००° स० तक गरम किया जाय तो, इसके भार में लगभग १३ प्रतिशत कमी आ जाती है और आपेक्षिक घनत्व २.५ हो जाता है। ८००° स० पर यह हानि १४ प्रतिशत होती है, परन्तु आपेक्षिक घनत्व २.५ ही रहता है। इस स्तर तक पकायी हुई मृद्-वस्तुओं को बिस्कुट फायर्ड (Biscuit fired) कहा जाता है और पार्सलिन पात्र प्रायः इस स्तर पर चिक्कन प्रलेपन के लिए निकाल लिये जाते हैं।

(५) **काँचीय-स्तर** (९०० -१३००° स० तक)—तापक्रम और बढ़ने पर मिट्टी में उपस्थित कुछ पदार्थ आपस में संयोग कर सहज गलनीय पदार्थ बनाते हैं। इन पदार्थों को सुद्राव यौगिक कहते हैं। मिट्टी के कुछ सुद्राव यौगिक निम्नलिखित हैं।

$2\,CaO.\,SiO_2$	गलनांक	६७५° से०
$CaO.\,SiO_2\ 3.8\,Na_2O\ SiO_2$	,,	९३२° से०
$4Fe\,SiO_3\ CaO\ SiO_2$	,,	१०३०° से०
$FeO.\,SiO_2$	,,	११००° से०
$Na_2O\ SiO_2\ 2.45\ CaO\ SiO_2$	,,	११३२° से०

यह सहज गलनीय पदार्थ गलकर पात्र के रन्ध्रों में बहकर उनमें से कुछ रन्ध्रों को काँचीय सीमेंट की भाँति भर देते हैं। यदि पात्र इस स्तर पर भट्ठी से निकाल लिया जाय, तो उसमें अच्छी मजबूती, बजाने पर अच्छा शब्द (Ring) तथा कम रन्ध्रता पायी जाती है। यह प्रारम्भिक काँचीय अवस्था है और अधिकतर मृत्पात्र पकाने के इसी स्तर पर भट्ठी से निकाल लिये जाते हैं। परन्तु विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के लिए इस स्तर पर आने के तापक्रम भिन्न होते हैं। साधारण ईंटें, खपड़े और टालियाँ इस अवस्था में लगभग ९००° स० पर ही आ जाती हैं, जब कि अग्नि-ईंटों को इसके लिए लगभग १३००° स० या अधिक तापक्रम की आवश्यकता होती है। श्वेत मृत्पात्र यह अवस्था ११००° से० पर प्राप्त कर पाते हैं। इससे अधिक गरम करने पर काँचीय तरल पदार्थ ठोस कणों को घुला लेता है जिससे पात्र की रन्ध्रता क्रमश: नष्ट होती जाती है, और पात्र में काँचीय अवस्था आ जाती है। कड़ी मिट्टी की वस्तुएँ तथा मृद् पोरसिलेन की वस्तुएँ पकाने के इसी स्तर पर भट्ठी से

निकाल ली जाती हैं। पात्र मे काँचीयपन की मात्रा पकाये हुए पात्र के ज[illegible] से निश्चित की जाती है। अच्छे कड़ी मिट्टी के बर्तनो को ३ प्रतिशत से अधिक पानी नहीं अवशोषित करना चाहिए। मृदु पोरसिलेन का जल-अवशोषण ०·२५ प्रतिशत से कम होना चाहिए।

जो पदार्थ कई विभिन्न खनिजो से मिलकर बना हो उसका कोई निश्चित द्रवणांक नही होता, परन्तु गलना या काँचीय होना तापक्रम के एक परास के भीतर चलता रहता है। तापक्रम के इस परास को काँचीय मण्डल कहते हैं। मृत्तिका-उद्योग मे मिश्रण-पिण्डो का काँचीय मण्डल यथासम्भव अधिक होना चाहिए, जिससे एक भट्ठी के विभिन्न भागो मे रखे गये पात्र रग, आकार तथा घनत्व में समान हो सकें।

यदि पकाने का तापक्रम अधिक उच्च हो जाय तो पिघले हुए पदार्थों का अनुपात इतना अधिक हो जायगा कि ठोस पदार्थ उसे सहन नहीं कर सकेंगे और पात्र आकृति खो देगा। इस विषय मे तरल फेल्सपार से प्राप्त काँच, चूने या मैगनीशिया की अपेक्षा अच्छा द्रावक है, क्योंकि फेल्सपार की श्यानता अधिक है, अत कुछ अधिक पकाने पर भी पात्र की आकृति नही खो पाती।

कठोर पोरसिलेन में केवल फेल्सपार ही द्रावक के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह ११००° सें० से १२००° सें० के बीच पिघलकर अधिक श्यान काँच में बदल जाता है। यह तरल द्रव अपने में धीरे-धीरे स्फटिक कणो को घुला लेता है। स्फटिक कणो के घुलने की मात्रा, स्फटिक के आकार, तापक्रम तथा समय पर निर्भर करती है। वास्तव में तरल फेल्सपार का व्यवहार एक असम्पृक्त घोल के व्यवहार के समान होता है।

(६) **केलासीय-स्तर** (१३००° सें० से ऊपर)—जब तापक्रम १३००° सें० से अधिक हो जाता है, तो एक नया यौगिक मूलाइट ($3Al_2O_3 \cdot 2SiO_2$) बनता है। इस मूलाइट की भी सिलीमेनाइट की भाँति ही केलासीय रचना होती है। इन केलासो की प्रकृति तथा मात्रा से ही वास्तविक पोरसिलेन की कृत्रिम या मृदु पोरसिलेन से भिन्नता का पता चलता है। वास्तविक कठोर पोरसिलेन बनाने के लिए केवल रासायनिक सगठन का महत्व कम है जब तक कि पात्र के भीतर केलासीय रचना उत्पन्न करने के लिए पात्र ठीक प्रकार से पकाया न गया हो। यदि ताप-

जनित रासायनिक क्रियाएँ पूर्ण हो चुकी हों तो पात्र का पतला भाग सूक्ष्मदर्शी (अणुवीक्षण यन्त्र) में देखने पर असंख्य छोटे-छोटे सुई आकार के केलासों के जालनुमा सहित एक समांग काचीय पदार्थ दीखेगा। इस प्रकार की पोरसिलेन सभी बातों में समांग और उत्कृष्ट कोटि की पोरसिलेन होती है।

पकाने के अन्तिम काल में भट्ठी को कुछ समय तक एक ही स्थिर तापक्रम पर रखा जाता है, जिससे पकाई हुई वस्तु में श्रेष्ठता आ जाती है। स्थिर तापक्रम पर अधिक काल तक गरम करने का ताप-शोषण (Soaking) कहा जाता है। इस ताप-शोषण में भट्ठी में रखी वस्तुओं पर सब तरफ से समान ताप पड़ता है। साथ ही भारी वस्तुओं में भी ताप सरलता से प्रवेश कर जाता है, क्योंकि भारी तथा ठोस वस्तुओं में ताप बहुत धीरे-धीरे ही प्रवेश कर सकता है। कुछ भट्ठियों में विभिन्न भागों का तापक्रम ५०° से १००° से० तक बदलता रहता है, और विभिन्न भागों में भट्ठी के उचित तापशोषण द्वारा एक ही तापक्रम लाना परमावश्यक हो जाता है। धीरे-धीरे गरम करना केलासों की उत्पत्ति में भी सहायक होता है तथा केलास बनना कठोर पोरसिलेन में बहुत ही आवश्यक है।

चतुर्थ अध्याय

चिक्कन-प्रलेप तथा रंजक

चिक्कन-प्रलेप खनिजों तथा रसद्रव्यों से सावधानतापूर्वक बनाये गये मिश्रण होते हैं, जो मिट्टी की वस्तुओं पर लगाकर उचित तापक्रम पर गरम करने से पिघलकर द्रव बन जाते हैं तथा वस्तु की सतह को समान रूप से ढँक लेते हैं। ठंढा करने पर यह द्रव काँच के रूप में जम जाता है और काँच की भाँति चमकने लगता है। इसी को उद्योग में चिक्कन-प्रलेप या ग्लेज (glaze) कहते हैं। एक अच्छे चिक्कन-प्रलेप का संगठन ऐसा होना चाहिए कि पात्र पर मजबूती से चिपक जाय, अम्ल, क्षार आदि की इस पर क्रिया न हो तथा बाहरी धक्कों और घर्षण से चटककर छूट न जाय। पकाने के तापक्रम के अनुसार चिक्कन-प्रलेपों के संगठन काफी भिन्न होते हैं। चिक्कन-प्रलेप के लिए संक्षेप में केवल प्रलेप शब्द का भी प्रयोग किया जायगा।

कठोर प्रलेप—इस प्रकार के प्रलेप का पोरसिलेन पात्रों तथा कड़ी मिट्टी की वस्तुओं पर प्रयोग किया जाता है। ये प्रलेप १२००° से० से अधिक तापक्रम पर पिघलते हैं। इनमें एल्यूमिना और सिलीका अधिक रहती है। इसके अतिरिक्त क्षार, चूना या मैगनीशिया (मैगनीशियम आक्साइड) भी रहते हैं।

मध्यम प्रलेप—ये प्रलेप उत्कृष्ट श्वेत मृत्पात्रों के लिए प्रयोग किये जाते हैं और १०५०° से० तथा ११५०° से० के बीच पिघलते हैं। इनमें एल्यूमिना और सिलीका कम रहती है। सिलीका के कुछ भाग के बदले बोरिक आक्साइड रहता है। थोड़ा लैंड आक्साइड द्रवणांक कम करने के लिए रखा जाता है।

मृदु प्रलेप—ये प्रलेप निम्न तापक्रम पर पकनेवाले मृत्पात्रों के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं और लगभग ९००° से० पर पिघलते हैं। इन प्रलेपों में प्राय: क्षार, लैंड आक्साइड तथा न्यून मात्रा में एल्यूमिना और सिलीका रहते हैं। यह सब

मिलकर कम तापक्रम पर गलनेवाला काँच बनाते हैं। इस प्रकार के प्रलेप से प्रलेपित मृत्पात्रों को प्राय मेजोलिका पात्र कहा जाता है।

टिन, ऐण्टीमनी तथा जस्ते आदि के आक्साइड और कैल्शियम फास्फेट जैसे कुछ पदार्थों की उपस्थिति प्रलेप को श्वेत तथा अपारदर्शक बना देती है। यह अपारदर्शक प्रलेप काँच कल्ई (Enamel) कहलाते हैं और प्राय. रंगीन पात्रों के तल को पूरी तरह ढँकने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। कभी-कभी अपारदर्शकता प्रदान करनेवाले पदार्थों की अनुपस्थिति में काँच कल्ई शब्द का प्रयोग कुछ रंगीन मृदु प्रलेपों के लिए भी किया जाता है, जो सजावट कार्यों के लिए या श्वेत मृत्पात्रों के दोष छिपाने के लिए उपयोग में लाये जाते हैं।

वास्तविक काँच की भाँति प्रलेप भी क्षार, कैल्शियम, बेरियम, स्ट्रॉन्शियम तथा अन्य धातुओं के सिलीकेट या बोरोसिलीकेट से बने अकेलासीय पदार्थ होते हैं। इन सिलीकेटों तथा बोरो-सिलीकेटों के अणु आपस में केलासीय पदार्थों की भाँति निश्चित सख्या में इकट्ठे नहीं हो पाते। यह अतिशीतित द्रव के रूप में रहते हैं और एक वास्तविक रासायनिक यौगिक के निश्चित गुण इनमें नहीं पाये जाते। यदि प्रलेप का सगठन ठीक प्रकार से नियन्त्रित नहीं किया गया, तो इसके कुछ अवयव पदार्थ मुख्य घोल से केलास बना सकते हैं और प्रलेप में अपारदर्शकता उत्पन्न कर देंगे। यह क्रिया अकाँचीयपन (Devitrification) कहलाती है।

प्रलेप या काँच के अवयवों को उनके संगठन में उपस्थित आक्साइडों के रूप में व्यक्त किया जाता है, कारण प्रलेप और काँच की वास्तविक रचना का अभी तक पता नहीं चल सका है। प्रलेप सगठन व्यक्त करने का सर्वमान्य रूप RO. R_2O_3. RO_2 है, जिसे अणुसूत्र कहा जाता है। यहाँ RO, क्षार, क्षारीय मृत्तिकाओं (Alkaline-Earths) तथा सीसा जस्ता आदि द्विसंयोजक धातुओं के आक्साइडों के लिए प्रयुक्त होता है। R_2O_3, एल्युमिना और कभी-कभी फेरिक आक्साइड के लिए प्रयुक्त होता है। RO_2, सिलीका और कभी-कभी बोरिक आक्साइड के लिए प्रयुक्त होता है। RO में व्यक्त किये जानेवाले सब आक्साइडों को इकाई बना लेते हैं और दूसरे आक्साइड तदनुसार ठीक कर लिये जाते हैं। प्रलेप के सगठन को इस ढग से व्यक्त करने से उनके गुणों की तुलना तथा नियन्त्रण करने में सहायता मिलती है।

प्रलेप सगठन में प्रयोग होनेवाले कच्चे सामान में से प्रत्येक के अपने विशेष गुण होते हैं। प्रलेप में उनकी क्रिया का वर्णन नीचे किया जाता है।

एल्यूमिना (Al_2O_3)—प्रलेप सगठन में एल्यूमिना को चीनी मिट्टी, फेल्सपार, चीनी पत्थर तथा निस्तापित फिटकरी या एल्यूमिनियम आक्साइड के रूप में डालते हैं। इसके कारण प्रलेप का द्रवणांक बढ़ जाता है, अकाँचीय क्रिया कम हो जाती है तथा प्रलेप पर वातावरण का प्रभाव कम पड़ता है। एल्यूमिना के ०·०२ अणु भी प्रलेप की अकाँचीय क्रिया कम कर देते हैं, परन्तु प्रलेप में चीनी मिट्टी बहुत अधिक रहने से प्रलेप सूखने पर उसमें दरारें पड़ जाती हैं। बाद में प्रलेप पकाने पर इन्ही दरारों के कारण पात्र के तल पर ठोस दाने जैसे बन जाते हैं या प्रलेप के तल पर छोटे-छोटे छिद्र बन जाते हैं। किसी भी प्रलेप में एल्यूमिना की मात्रा उसकी सिलीका की मात्रा के दसवें भाग से अधिक नहीं होनी चाहिए, कारण एल्यूमिना की अधिक मात्रा प्रलेप को कम चमकदार बनाती तथा अपारदर्शकता प्रदान करती है।

सिलीका (SiO_2)—यह प्रलेप में शुद्ध रूप में स्फटिक, चकमक पत्थर और रेत की शकल में डाली जाती है तथा यौगिकों में चीनी मिट्टी, चीनी-पत्थर, फेल्सपार आदि के रूप में डाली जाती है। सिलीका, भास्मिक आक्साइडों से भट्ठी के तापक्रम पर संयोग करके काँचीय पदार्थ बनाती है। सिलीका की अधिक मात्रा प्रलेप का गलनांक बढ़ा देती है तथा पात्र प्रलेप को ठीक तरह से पकड़ता नहीं है। सिलीका का अनुपात बढ़ाने से प्रलेप में क्रेजिंग दोष या पकाने तथा प्रयोग के समय चटकने के दोष में न्यूनता आ जाती है। यदि सिलीका का अनुपात भास्मिक आक्साइडों के तिगुने से अधिक हो तो प्रलेप अकाँचीय होना प्रारम्भ कर देता है। यदि चूने का अनुपात अधिक हो तो अकाँचीयपन और भी विशेष रूप से होने लगता है। इस अकाँचीय क्रिया में सिलीसिक अम्ल या चूना सिलीकेट वेलासीय रूप में अलग हो जाते हैं, जिससे प्रलेप धुँधला हो जाता है और तल की चमक कम हो जाती है।

बोरिक आक्साइड (B_2O_3)—बोरिक-आक्साइड, बोरेक्स ($Na_2O.2B_2O_3.10H_2O$), बोरो-कैलसाइट ($CaO\ 2B_2O_3.6H_2O.$), बोरेसाइट ($6MgO.MgCl_2.8B_2O_3$) या बोरेसिक अम्ल (H_3BO_3) के रूप में प्रलेप में डाला जाता है। यह सिलीका की भाँति भास्मिक आक्साइडों से संयोग कर काँचीय यौगिक बनाता है। यह बोरिक आक्साइड यौगिक क्षारीय आक्साइडों से बने यौगिकों को छोड़कर पानी में अघुलनशील है। बोरिक अम्ल सिलीका काँच से सब अनुपातों में मिश्र्य है, परन्तु बोरिक काँच का गलनांक सिलीका काँच के गलनांक से बहुत कम है। सिलीका के कुछ भाग के बदले बोरिक आक्साइड डालना प्रलेप

बनाकर प्रलेप को दूधिया बनाने में सहायक होता है। अपने विरंजन (Bleaching) गुण के कारण प्रलेप को काफी सीमा तक श्वेत बनाता है। यदि कार्बोनेट का प्रयोग किया गया है तो उसे जला लेना चाहिए; जिससे गैसें निकल जायँ। अन्यथा बाद में निकलनेवाली कार्बन-डाई-आक्साइड प्रलेप में छोटे-छोटे छिद्र बना सकती है।

मैगनीशिया (MgO)—प्रलेप में मैगनीशियम आक्साइड (MgO), डोलोमाइट, मैगनेसाइट ($MgCO_3$), टाल्क ($3\,MgO,\ 4\,SiO_2.\ H_2O$) मैगनीशिया के रूप में डाला जाता है। यह प्राय उच्च तापक्रम पर गलनेवाले प्रलेपो में प्रयोग किया जाता है। चूने की भाँति यह भी प्रलेप को श्वेत करता है, परन्तु यदि ०·४ अणु से अधिक हुआ तो प्रलेप कुछ स्थानो पर इकट्ठा होकर चकत्तो या छोटे-छोटे दानो के रूप मे हो जाता है। इस दोष को रौलिंग (Rolling) कहते हैं। मैगनीशियम आक्साइड का कुछ रगो पर भी प्रभाव पड़ता है।

बैरीटा (BaO)—प्रलेप मे बेरियम आक्साइड बैराइटीज ($Ba\,SO_4$) पर विदेराइट ($BaCO_3$) के रूप में मिलाया जाता है। यह प्राय सीसा रहित प्रलेपों में प्रयोग किया जाता है, कारण प्रलेप का गलनाक कम करने में सीसे के बाद इसी का द्वितीय स्थान है, परन्तु इससे प्रलेप के गलनताप का परास सीसे की अपेक्षा कम रहता है। बेरियम-आक्साइड प्रलेप को, चूना तथा मैगनीशिया की अपेक्षा अधिक चमक प्रदान करता है। इस चमक प्रदान करने के गुण में इसका स्थान सीसे के बाद दूसरा है।

जिक आक्साइड (ZnO), टिन आक्साइड (SnO_2), जिरकोनिया (ZrO_2) और सोडा तथा पोटाश के एण्टीमोनिएट प्रलेपों को अपारदर्शकता प्रदान करने के लिए प्रयुक्त होते हैं। प्रथम दो का मृद्-उद्योग में प्रयोग विश्वप्रचलित है। थोडी मात्रा मे होने पर जिक आक्साइड प्रलेप की चमक बढाता है, परन्तु अधिक मात्रा में डालने पर ठडा करते समय प्रलेप में $2\,ZnO\cdot SiO_2$ के केलास बनाकर प्रलेप को अपारदर्शकता प्रदान करता है। इसी कारण चमकहीन केलासीय प्रलेपो के बनाने में इसका प्रयोग किया जाता है।

सेंगर के अनुसार रगहीन प्रलेप बनानेवाले धातवीय आक्साइडो या भस्मों की गलनीयता निम्न क्रम में है—

लेड आक्साइड (PbO), बेरियम आक्साइड (BaO), पोटैशियम आक्साइड (K_2O), सोडियम आक्साइड (Na_2O), जिक आक्साइड (ZnO), कैल्शियम

आक्साइड (CaO), मैगनीशियम आक्साइड (MgO), एल्यूमिनियम आक्साइड (Al_2O_3)।

उपर्युक्त आक्साइड बायीं ओर से दायीं ओर चलने पर क्रमशः अधिक तापक्रम पर गलनेवाले हैं। जो पदार्थ आग में स्वयं शीघ्र गल जाते हैं और दूसरे पदार्थों को भी अपने साथ ही गलने में सहायता देते हैं, उन्हें गलन सहायक या द्रावक (Flux) कहते हैं। प्रलेप की गलनीयता केवल प्रयोग किये गये द्रावकों के प्रकार पर ही निर्भर नहीं करती वरन् द्रावकों की संख्या पर भी निर्भर करती है। उपस्थित द्रावकों की संख्या अधिक होने से प्रलेप की गलनीयता बढ़ जाती है। पारदर्शक प्रलेप बनाने के लिए कम से कम दो द्रावकों का होना आवश्यक है जिनमें से एक का क्षारीय होना भी परमावश्यक है। सेंगर के अनुसार ही रंग प्रदान करनेवाले आक्साइडों की गलनीयता का क्रम इस प्रकार है—

क्यूपरिक आक्साइड (CuO), मैंगनीज-डाई-आक्साइड (MnO_2) कोबाल्ट आक्साइड (CoO), फेरिक आक्साइड (Fe_2O_3), यूरेनियम आक्साइड (U_2O_3), क्रोमियम-आक्साइड (Cr_2O_3) तथा निकिल आक्साइड (Ni_2O)।

काँचीयकरण (Fritting)—जब प्रलेप पदार्थों में क्षारीय कार्बोनेट या नाइट्रेट तथा बोरेक्स आदि घुलनशील लवण हों तो उनके पानी में घुल जाने के कारण मुख्य मिश्रण से अलग हो जाने की सम्भावना रहती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए, इन लवणों को प्रलेप के सगठनानुसार कुछ सिलीका, चूना या लैड आक्साइड के साथ गलाकर अघुलनशील लवणों में परिवर्तित कर देते हैं। इसे गलाकर बनाये हुए काँच जैसे पदार्थ को मृद्-उद्योग में फिट (Frit) तथा गलाने की क्रिया को फ्रिटिंग (Fritting) कहते हैं। इस पुस्तक में फिट के लिए काँचित तथा फ्रिटिंग के लिए काँचीयकरण शब्दों का प्रयोग किया जायगा। प्रलेप मिश्रण के शेष अघुलनशील अवयव काँचित में मिलाकर पानी के साथ पीस लिये जाते हैं। इस प्रकार प्राप्त तरल प्रलेप को प्रलेप घोल (Glaze-slip) कहा जाता है।

प्रलेप को काँचित करने के और भी बहुत से लाभ हैं जो निम्न प्रकार हैं—

(१) इससे प्रलेप के विभिन्न अवयव मिलाकर एक ही काँचित पदार्थ बनाते हैं जिससे कारण प्रलेप के विभिन्न अवयव अपने-अपने घनत्व के अनुसार अलग-अलग जमकर नहीं बैठने पाते।

(२) काँचीयकरण से कार्बन-डाई-आक्साइड आदि दूसरी गैसें निकल जाती हैं तथा प्रलेप पकाने के अगले स्तर में होनेवाली कुछ क्रियाएँ भी पूरी हो जाती हैं। आधुनिक सुरग विद्युत् भट्ठियों में प्रलेप पकाने के लिए मृत्पात्रों को भट्ठी में कम समय तक रखा जाता है। अत यह परमावश्यक है कि ताप सम्बन्धी क्रिया का अधिक भाग भट्ठी में आने से पूर्व ही काँचीयकरण द्वारा पूरा कर लिया जाय।

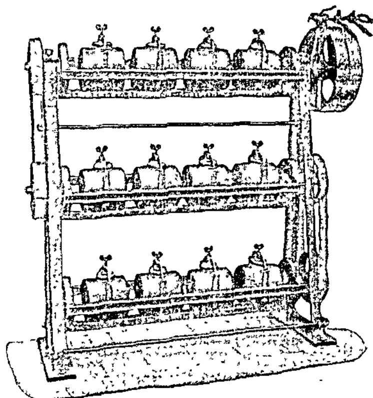
(३) इससे प्रलेप की अम्ल में घुलनशीलता कम हो जाती है और सीसा-जनित विष क्रिया भी कम हो जाती है। श्वेत सीसा या सफेदा और लैड सल्फाइड मानवीय गैस्ट्रिक रस (Gastric-juice) मे सीसा के दूसरे लवणो की अपेक्षा अधिक घुलनशील हैं। यह सब सीसा यौगिक तनु अम्ल में घुलनशील है। इस कारण हमारे शरीर में ये लवण पहुँच जाने पर सीसा जनित विष उत्पन्न करते हैं। हमारा सस्थान (System) इन सीसा के लवणो को उतनी सरलता से अलग नहीं कर सकता, जितनी सरलता से दूसरे पदार्थों को करता है। सीसा जनित विष से मसूढे नीले पड जाते हैं और दाँतो को भी हानि पहुँचती है। शरीर के जोडों विशेष कर कलाइयों का पक्षाघात भी इसके कारण हो जाता है। तनु अम्लो में सीसे की घुलनशीलता कम करने के लिए सभी सीसे के प्रलेप प्रयोग करने से पूर्व काँचित कर लेने चाहिए।

(४) काँचियकरण से घुलनशील पदार्थ अघुलनशील हो जाता है।

यदि प्रलेप के घुलनशील अवयवो को काँचीयकरण क्रिया द्वारा अघुलनशील न बना लिया जाय तो प्रलेप लगाने पर घुलनशील लवणो के कुछ अश पात्र के रन्ध्रो मे अन्दर चले जायँगे और आगे पकाने पर उस स्थान पर घने चकत्ते पड जायँगे, जहाँ ये घुलनशील लवण सबसे अधिक जमा हुए हैं। कुछ ऐसे रजको पर भी घुलनशील लवणो का प्रभाव पडता है, जो रजक प्रलेप में मिलाये जाते हैं।

जब पदार्थों की थोडी मात्रा को ही काँचित करना हो, तो पदार्थ अग्नि-मिट्टी की घरियाओ में रखकर घरियाएँ विशेष प्रकार की भट्ठियों में गरम की जाती हैं। जब पदार्थ पूरी तरह प्रद्रावित होकर गल जाता है, तो ठडे पानी में लौट दिया जाता है, जिससे काँचीय पिण्ड टूटकर छोटे-छोटे टुकडो में विभक्त हो जायँ। ऐसा करने से पीसने में सरलता होती है। अधिक मात्रा में पदार्थों को काँचित करने के लिए कोल गैस या तेल गैस द्वारा गरम की गयी कुड-भट्ठियों का प्रयोग होता है। भट्ठी को पदार्थ डालने से पूर्व ही गरम कर लेना चाहिए तथा पदार्थों के पूर्णरूपेण प्रद्रावित

आवश्यकता नहीं होती, परन्तु सभी कच्चे पदार्थ पानी के साथ बहुत महीन पीसे जाते हैं जिससे २०० नम्बर की चलनी पर कुछ भी शेष न रहे। थोड़ी मात्रा में पदार्थों को पीसने के लिए कड़ी मिट्टी के बने छोटे-छोटे बेलनाकार पात्रों का प्रयोग होता है, जिन्हें कुम्भयन्त्र (Pot-mill) कहा जाता है। अधिक मात्रा होने पर प्रलेप बड़ी बॉल-मिल में पीसा जाता है।



चित्र १९. कुम्भयन्त्र में बेलनों की समष्टि

पीसना समाप्त होने पर प्रलेप घोले को विद्युत्-चुम्बक पर भेजा जाता है, जिससे प्रलेप घोले में उपस्थित लोहे के कण दूर किये जा सकें। जब प्रलेप में अधिक श्वेतता लानी आवश्यक हो, तो थोड़ा-सा नीला रंग बहुत ही तनु घोल के रूप में प्रलेप घोले

में मिला दिया जाता है। यदि प्रयोग करने से पूर्व प्रलेप घोल को कम से कम १५ दिन रख छोड़ा जाय तो प्रलेप के गुणों में बहुत सुधार हो जाता है। इसे रखकर छोड़ने के लिए लकड़ी के कुण्ड होते हैं जिनमें धीरे-धीरे चलनेवाला विलोडक भी रहता है। इस विलोडन के कारण प्रलेप जमकर तली में बैठने नहीं पाता। इसे रखने से प्रलेप के कार्योपयोगी गुण काफी सीमा तक सुधर जाते हैं।

पात्रों के प्रकार के अनुसार प्रलेप चढ़ाने की विभिन्न विधियाँ हैं। वर्तमान काल में बहुत-सी विधियाँ प्रचलित हैं, जिनमें से सर्वाधिक महत्वपूर्ण निम्नलिखित हैं।

डुबाव-विधि—यह विधि सबसे अधिक शीघ्रतापूर्ण है और प्रायः पात्रों पर प्रलेप की समान परत चढ़ाने की सबसे अधिक सन्तोषजनक विधि है। इस विधि के लिए मृत्पात्रों को पहले थोड़ा पकाकर कुछ कठोर कर लेना चाहिए। यदि पात्र कच्चे या बिना पके ही हों, तो इतने मजबूत हों कि प्रलेप घोले में डुबोने पर आकृति न खो दें। प्रलेप परत की मोटाई, पात्र की रन्ध्रता, डुबोने के समय तथा प्रलेप घोले के घनत्व पर निर्भर करेगी। डुबोने की विधि में प्रयोग होनेवाले प्रलेप में कुछ लचीली मिट्टी या दूसरे लचीले पदार्थ अवश्य होने चाहिए, जो सूखने पर पात्र तल पर प्रलेप को चिपकाये रखने में सहायक हों। इसी कारण प्रलेप को काँचित करते समय इसमें पड़नेवाली मिट्टी का कुछ न कुछ भाग अलग रख लिया जाता है, जो पीसने से पूर्व काँचित के साथ मिला दिया जाता है। कभी-कभी इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए थोड़ा गोंद या डेक्सट्रिन या बेन्टोनाइट भी मिला देते हैं।

उँडेल-विधि (Pouring)—इस विधि का प्रयोग तब होता है, जब पात्र के केवल एक तल पर ही प्रलेप करना हो। यदि खोखले पात्रों पर केवल भीतर ही प्रलेप करना है, तो पात्र प्रलेप घोले से भर लिया जाता है और आवश्यकता से अधिक घोला उँडेल दिया जाता है। कभी-कभी टालियों को अविराम गति से उँडेले जा रहे प्रलेप घोले के नीचे से शीघ्रता से निकाला जाता है, जिससे उनकी ऊपरी सतह पर प्रलेप की पतली परत जम जाती है।

बौछार-विधि (Spraying)—इस विधि में प्रलेप घोले को बौछार यन्त्र (Sprayer) या एयरोग्राफ (Aerograph) द्वारा बौछार के रूप में पात्र पर लगाते हैं। इस यंत्र में ४०-४५ पौण्ड प्रति वर्ग इंच दबाववाली हवा द्वारा बौछार की जाती है।

प्रलेप में थोड़ा गोंद मिलाकर मलाई के बराबर गाढ़ा कर लिया जाय तथा प्रयोग से पूर्व अच्छी तरह छान लिया जाय। यह विधि विशेष रूप से बिना पकाये हुए बड़े पात्रों पर प्रलेप लगाने में बड़ी सहायक है, कारण ऐसी अवस्था में डुबाव विधि से प्रलेप करना कठिन या कभी-कभी असम्भव होता है।

चूर्ण छिड़काव-विधि (Dusting)—इसमें प्रलेप का बहुत महीन चूर्ण पात्र की गीली अवस्था में ही पात्र पर छिड़क दिया जाता है, जिससे चूर्ण पात्र पर रुक जाय। यह विधि बहुत ही निम्न कोटि के सस्ते पात्रों को बनाने के अतिरिक्त अब कहीं प्रयोग में नहीं लायी जाती। यह विधि कभी-कभी पकायी हुई वस्तुओं जैसे सजावट के लिए टालियाँ और हाथ के बने पात्र आदि पर भी प्रयोग की जाती है। इनके लिए सबसे पूर्व पके हुए पात्र पर किसी चिपचिपे पदार्थ की एक परत चढ़ाकर प्रलेप चूर्ण सावधानी से छिड़क देते हैं। यह चिपचिपी परत (जिसे साइज कहते हैं) कार्बनिक गोंदों तथा रेज़िनों की बनायी जाती है। यह परत पकाने पर पूरी तरह जल जाती है और कुछ भी शेष नहीं बचता जो प्रलेप पर कैसा भी प्रभाव डाले।

तूलिका-विधि (Painting)—इस विधि में प्रलेप तूलिका द्वारा पात्र पर लगाया जाता है। सजावट की वस्तुओं पर इस विधि का विशेष प्रयोग होता है, कारण इसमें एक से अधिक रंगीन प्रलेपों का प्रयोग किया जाता है। प्राय गोंद या जिलेटिन डालकर प्रलेप घोले को कुछ गाढ़ा कर लेते हैं।

वाष्पशील-विधि (Vaporization)—इस विधि में प्रलेप पदार्थ भट्ठी में रखा जाता है, जो गरम होकर भट्ठी में अन्दर ही वाष्पशील हो जाता है और पात्रों पर जम जाता है। नमक प्रलेपन (Salt-glazing) इस प्रकार की मुख्य विधि है जिसका सप्तम अध्याय में विस्तृत वर्णन किया जायगा। नमक प्रलेप के समान विधि द्वारा ही धातवीय रूप में जस्ता की सहायता से पकने पर लाल हो जानेवाली मिट्टियों पर कई प्रकार के हरे रंग उत्पन्न किये जाते हैं। इन वाष्पशील प्रलेप रंगों का सजावट की ईंटों तथा टालियों में विशेष महत्त्व है।

प्रलेप-पकाव (Glost–Firing)—चिक्कन-प्रलेप लगाने के पश्चात् वस्तुएँ सुखायी और पकायी जाती हैं। इस पकाने को प्रलेप का पकाना या प्रलेप-पकाव (Glost Firing) कहते हैं। काँचित प्रलेप में तापजनित रासायनिक क्रियाओं का अध्ययन ब्लैकी (Blackey) ने सन् १९३८ ई० में किया था। लगभग ७००°

जैसी पतली दरारें पड जाती हैं। पात्र तथा प्रलेप के आकुंचनों में जितना ही अधिक अन्तर होगा, दरारों की सख्या उतनी ही अधिक होगी। इस दोष को दरार पडना या क्रेजिंग कहते हैं।

दूसरी ओर यदि प्रलेप का आकुंचन पात्र के आकुंचन से कम हो, तो प्रलेप में सपीडन (Compression) उत्पन्न होगा, जिससे प्रलेप, पात्र से विशेष कर किनारों पर से पपडी के रूप में छूटकर अलग हो जायगा। संपीडन शक्ति कभी-कभी इतनी अधिक हो जाती है कि पात्र टूटकर छोटे-छोटे टुकडे हो जाता है। यह दोष क्रेजिंग का उलटा है तथा उसे पपडी छूटना या स्केलिंग या पीलिंग कहते हैं। यह दोष मिश्रण-पिण्ड में घुलनशील लवणों की उपस्थिति से भी हो सकता है। पात्र को सुखाते समय घुलनशील लवण पात्र की सतह पर, विशेष कर किनारों पर, छादनी बनाते हैं; जिसके कारण प्रलेप पात्र को पकडता नही है। अत. प्रलेप पपडी के रूप में छूटकर गिर जाता है।

काँच की भाँति चिकन प्रलेप को भी पकाने के पश्चात् ठंडा करने पर पूरा आकुंचन आने में काफी समय लगता है। अत प्रलेप मे कभी-कभी काफी समय तक प्रयोग करने के बाद भी दरारें पड जाती है या पपडी चटक जाती है। चमकहीन प्रलेपों में चमकदार प्रलेपों की अपेक्षा दरार पड़ना या दरार-दोष अधिक पाया जाता है, क्योंकि प्रथम प्रकार के प्रलेप का तापजनित प्रसार दूसरे प्रकार के प्रलेप की अपेक्षा कम होता है। ब्लैकी ने १९३८ ई० मे दिखाया कि थोडे से तनाववाले प्रलेप मे दरार दोष की धारणा अधिक होती है, जब कि अधिक सपीडित प्रलेप में, औटोक्लेव (Autoclave) में जलवाष्प से पकाने पर भी दरार दोष के चिह्न तक नही प्रकट होते। औटोक्लेव में पकाने पर प्रलेप का प्रतिबल तनाव मे परिवर्तित हो जाता है, कारण जलवाष्प से पात्र बढता है तथा अधिक सरन्ध्र पात्र मे दरार की धारणा अधिक होती है।

क्रेजिंग की परीक्षा—इँग्लैण्ड मे इस कार्य के लिए प्रयोग की जानेवाली साधारण विधि में पात्र को साधारण नमक तथा शोरा के एक सम्पृक्त घोल मे, लगभग १ घण्टे तक, उबालकर गरम पात्र को ठंडे पानी मे डाल देते हैं। यदि प्रलेप इस प्रकार पाँच लगातार क्रियाएँ बिना दरार की उत्पत्ति के सहन कर सके तो प्रलेप अच्छा कहा जायगा। कुछ मृत्पात्र तो इस प्रकार गरम करने पर बढते हैं, परन्तु प्रलेप अपेक्षाकृत अप्रभावित रहता है। अत यह विधि सब देशों में प्रचलित नही है।

अमेरिका की सरकारी विधि मे मृत्पात्र १७५०° से० के तापक्रम पर समान रूप से १५ मिनट तक गरम किया जाता है तथा बाद मे शीघ्रतापूर्वक २०° से० वाले पानी में डुबो दिया जाता है। किसी प्रकार के दरार दोष के चिह्न प्रकट होना प्रलेप की असफलता का द्योतक है। गरम करने के लिए जहा तक हो विद्युत् भट्ठी का प्रयोग किया जाता है।

निर्दोषकरण उपाय—दरार तथा पपडी दोष दूर करने के लिए प्रलेप के प्रसार-गुणक का समझना तथा नियन्त्रण करना परमावश्यक है। प्राचीन समय मे प्रसार-गुणक का निर्धारण केवल वास्तविक प्रयोगो द्वारा ही होता था, परन्तु आधुनिक गवेषणाओ से उसके निर्धारण की विधि सरल हो गयी है। प्रथम विन्किल तथा शाट (Winkle and Schott) ने और बाद मे मेअर तथा हवास (Mayer and Havas) ने १९११ ई० मे मृत्पात्र प्रलेपो, कांचो तथा कांचक्लइयो के सगठन मे प्रयोग होनेवाले भिन्न आक्साइडो का प्रसार-गुणक निकाला। उन्होने आगे यह भी पता लगाया कि इन आक्साइडो से बने कांच या प्रलेप के अन्तिम गुण योगशील (Additive) होते हैं। योगशील गुण वे गुण हैं, जो केवल उन आक्साइडो तथा उनके आपेक्षिक अनुपात पर निर्भर होते हैं, जिन आक्साइडो से मिलकर प्रलेप बना है। उदाहरणार्थ यदि $a+b+c+$. प्रलेप सगठन के विभिन्न आक्साइडो का प्रतिशत बतायें और $x, y, z,$ क्रमश उन्ही आक्साइडो के घन प्रसार-गुणको को बतलायें तो इस प्रलेप का घन प्रसार-गुणक निम्नलिखित समीकरण द्वारा दिया जायगा।

$$k = ax + by + cz +$$

यहाँ k प्रलेप का घन प्रसार-गुणक है।

विंक्लि और शाट के तापजनित घन प्रसारगुणक निम्नलिखित हैं—

आक्साइड	प्रति डिग्री सेण्टीग्रेड का घन प्रसार गुणक	आक्साइड	प्रति डिग्री सेण्टीग्रेड का घनप्रसार गुणक
	मिलीमीटर मे		मिलीमीटर मे
सोडियम आक्साइड	१०·०×१०$^{-७}$	एल्यूमिनियम आक्साइड	५·०×१०$^{-७}$
पोटैशियम ,,	८·५×१०$^{-७}$	बोरिक आक्साइड	०·१×१०$^{-७}$
लैड ,,	५·०×१०$^{-७}$	सिलीका	०·८×१०$^{-७}$
कैलशियम ,,	५·०×१०$^{-७}$	जिन्क आक्साइड	१·८×१०$^{-७}$
मैगनीशियम ,,	०·१×१०$^{-७}$	फास्फोरस पैंटोक्साइड	२·०×१०$^{-७}$
बेरियम ,,	३·०×१०$^{-७}$		

इँगलिश और टर्नर नामक वैज्ञानिको ने भी १९३१ ई० में इसी प्रकार के घन-

प्रसार-गुणकों का मान निकाला जो विंक्लि तथा शाट के मानों से कुछ भिन्न है। वर्तमान समय में इँगलिश तथा टर्नर के गुणकों का अधिक प्रयोग किया जाता है।

आक्साइड	घनप्रसार गुणक प्रति डिग्री सेण्टीग्रेड	आक्साइड	घनप्रसार गुणक प्रतिडिग्री सेण्टीग्रेड
	मिलीमीटर में		मिलीमीटर में
सोडियम आक्साइड	१२ ९६×१०-७	बेरियम आक्साइड	४·२×१०-७
पोटैशियम ,,	११ ७ ×१०-७	एल्यूमिनियम ,,	०·४२×१०-७
लैड ,,	३ १८×१०-७	बोरिक ,,	१·९८×१०-७
कैलशियम ,,	४ ८९×१०-७	सिलीका	०·१५×१०-७
मैगनीशियम ,,	१ ३५×१०-७	जिंक आक्साइड	२·१×१०-७

इँगलिश तथा टर्नर के घनप्रसार गुणकों का व्यावहारिक उपयोग निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा।

एक पोरसिलेन पात्र के मिश्रण-पिण्ड तथा प्रलेप मिश्रण के प्रतिशत संगठन नीचे दिये हुए हैं। यह पता लगाना है कि यह प्रलेप पात्र के लिए ठीक होगा या नहीं।

मिश्रण-पिण्ड का संगठन			प्रसार-गुणक
सिलीका	६८ ३	६८ ३×० ८×१०-७	= ५४ ६४×१०-७
एल्यूमिना	२७ ०	२७ ०×५·०×१०-७	= १३५·०×१०-७
चूना	० ३	० ३×५·०×१०-७	= १ ५×१०-७
मैगनीशिया	० ५	० ५×० १×१०-७	= ०·०५×१०-७
पोटैशियम आक्साइड	३ ६	३ ६×८ ५×१०-७	= ३०·६×१०-७
योग	९९ ७	योग	२२१ ७९×१०-७

प्रलेप मिश्रण-संगठन			प्रसार-गुणक
सिलीका	७३ २४	७३ २४×० ८×१०-७	= ५८ ५९२×१०-७
एल्यूमिना	१५ ९७	१५ ९७×५·०×१०-७	= ७९·८५×१०-७
चूना	३ ५७	३ ५७×५ ०×१०-७	= १७ ८५×१०-७
मैगनीशिया	० ५१	० ५१×०·१×१०-७	= ०·०५१×१०-७
पोटैशियम आक्साइड	४ ८१	४ ८१×८ ५×१०-७	= ४० ८८५×१०-७
सोडियम ,,	१ ९१	१ ९१×१० ०×१०-७	= १९·१×१०-७
		योग	२१६ ३२८×१०-७

से मिलकर उनके बीच कोई यौगिक बनने से पूर्व ही पात्र काँचीय हो जाता है, तो प्रलेप पात्र पर दृढ़ता से नहीं चिपकेगा और ज़रा-सा तनाव ही प्रलेप को पात्र से अलग कर देगा।

(४) पात्र तथा प्रलेप को साथ-साथ उच्च तापक्रम पर अधिक समय तक पकाओ। ऐसा करने से काँचीय होनेवाले मिश्रण-पिण्ड में क्रेज़िंग इतना कम नहीं होता, जितना सरन्ध्र पात्र में कम हो जाता है।

(५) अग्निमिट्टियों सहित मिश्रण-पिण्ड में पकी हुई मिट्टी के चूर्ण या ग्राग (Grog) का अनुपात बढ़ाने से क्रेज़िंग की धारणा कम हो जाती है। ग्राग के लिए आगे के अध्याय में इसी शब्द का प्रयोग किया जायगा।

(ख) जब पात्र के मिश्रण-पिण्ड का संगठन अपरिवर्त्तित रहे।

(१) प्रलेप में सिलीका की मात्रा बढ़ाओ या प्रलेप मिश्रण की कुछ सिलीका के बदले बोरिक अम्ल डाल दो।

(२) प्रलेप में थोड़ी-सी चीनी मिट्टी या एल्यूमिना मिलाने से क्रेज़िंग-दोष दूर हो सकता है।

(३) द्रावकों यथा सोडा और पोटास द्रावकों के बदले चूना, सीसा या बेरियम के आक्साइड मिलाओ, कारण क्षारीय प्रलेपों में चूना सीसा या बेरियम की अधिक मात्रावाले प्रलेपों की अपेक्षा क्रेज़िंग अधिक होता है।

(४) प्रलेप तथा पात्र तलों के बीच एक माध्यम मंडल बनाने के लिए प्रलेपित पात्र को अधिक काल तक पकाओ।

पपड़ी छूटने के दोष को सुधारने के लिए क्रेज़िंग का उलटा करो।

प्रलेप में दाना-दोष—भट्ठी में प्रलेप पिघलते समय दो भिन्न बल प्रलेप पर कार्य करते मालूम होते हैं। एक बल तो तरल प्रलेप को पात्र के धरातल पर स्थिर करता है। अतः इसे आसजक बल कहा जा सकता है। दूसरा बल, जो तरल प्रलेप के तल-तनाव (Surface Tension) के कारण होता है, प्रलेप को पात्र के स्वतन्त्र किनारों से बहाकर गोल दानों के रूप में इकट्ठा होने में सहायता करता है। यह बल प्रलेप के तलतनाव के कारण होता है तथा इसको संसक्ति बल कहते हैं। जब संसक्ति बल आसजक बल से अधिक होता है, तो प्रलेप इकट्ठा होकर चकत्ते या गोल दाने बनाता है। प्रलेप के इस दोष को प्रलेप का दाना दोष (Rolling) कहा जाता है।

पात्र का घूलिमय, तैलमय या काँचीय तल प्रलेप के आसंजक बल को कम कर देना है, अत उसके दानादोष बढाने मे सहायक होता है। रजकों या प्रलेप को अधिक पीसने से तथा प्रलेप में मैंगनीशिया की मात्रा अधिक होने से तरल प्रलेप का समसक्ति बल बढ जाता है, जो प्रलेप में दाना-दोष की उत्पत्ति में सहायक होता है। प्रलेप में चीनी मिट्टी अधिक होने से तथा डुबाव-विधि से प्रलेप की मोटी तह होने से सूक्ष्म दरारे पड जाती हैं। यदि प्रलेप इतना मृदु नही है कि प्रलेप-तल पर सुखाते समय पड़ी इन सूक्ष्म दरारों को पकाने समय भर ले तो प्रलेप में दाना-दोष आ जायगा।

केलास-दोष—आशिक रूप से केलासीय हो गये प्रलेप मे न्यूनाधिक पूरे प्रलेप तल पर चमकहीन चकत्ते पड जाते हैं। इन चकत्तो की आकृति कभी-कभी तारे जैसी या पख जैसी होती है। इसीलिए इस दोष को पखदोष (Feathering) कहा जाता है। जिन प्रलेपो मे चूना अधिक और एल्यूमिना कम होता है, उनमे यह दोष अधिक आता है। ये बने हुए केलास रासायनिक प्रकृति मे वोलास्टोनाइट (Wollastonite) $CaSiO_3$ की भाँति होते हैं। इन केलासो पर हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के तनु घोल की क्रिया सरलतापूर्वक होती है। प्रलेप की परत पतली होने पर प्रलेप पात्र से एल्यूमिना की काफी मात्रा अवशोषित कर लेती है और इस प्रकार केलास बनने की क्रिया काफी कम हो जाती है। प्रलेप की परत मोटी होने से तथा पकाने के समय हठात् ठण्डा होने से इस दोष का आना देखा जाता है।

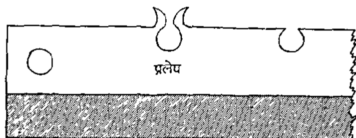
सल्फेटो, विशेष कर चूना के सल्फेट के द्वारा, जो कुछ तो प्रलेप मिश्रण से आते हैं, कुछ ईंधन गैसो से आते हैं, प्रलेप तल पर एक पतली परत बन जाने की सम्भावना रहती है। ये सल्फेट ठंडा करने पर केलास बनकर चमकहीन चकत्ते उत्पन्न करते हैं। इस दोष को 'सल्फरिंग' दोष कहते हैं।

पखदोष प्रलेप के अन्दर केलास बनने से होता है, जब कि सल्फरिंग दोष प्रलेप तल पर केलास बनने से होता है। इन दोनो प्रकार के केलासो की प्रकृतियाँ भी बिलकुल भिन्न होती हैं।

अधिक अम्लीय प्रलेपों में सल्फेट कम घुलनशील है। अत जब प्रलेप मृत्पात्र की सिलीका को अपने में घुला लेने पर अधिक अम्लीय हो जाता है, तो घुलित सल्फेट प्रलेप के बाहर आकर ऊपरी तल पर एक पतली परत बनाते हैं। यदि समय-समय पर भट्ठी का वातावरण अवकारक बना दिया जाय तो सल्फेट अवकृत होकर वाष्पशील हो

जाते हैं, परन्तु यदि अवकारक लौ काफी ताप उत्पन्न न कर सकी, तो बना हुआ अम्ल प्रलेप में घुला रहता है और बाद में दूसरे दोष उत्पन्न करते हुए बाहर निकलता है।

छिद्र-दोष—कभी-कभी पके हुए पात्र के प्रलेपित तल पर छोटे-छोटे छिद्र पाये जाते हैं। ये छिद्र 'पिन होल' कहलाते हैं। इस दोष का मुख्य कारण प्रलेप के भीतर से गैसों का बाहर निकलना है। ये गैसें उस समय निकलती हैं, जब पिघले हुए प्रलेप की तरलता इतनी नहीं रहती कि छिद्र भरे जा सकें। कभी-कभी पात्र ढालते समय

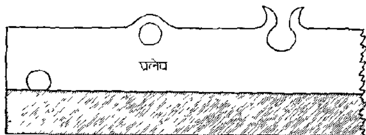


चित्र २० प्रलेप-तल में छिद्रों का बनना

भी पात्र तल पर छोटे-छोटे छिद्र बन जाते हैं। विशेष कर उस समय जब कि साँचा काफी पुराना और धूलिकणों से गन्दा हो। पात्र की सफाई या चिकना करते समय ये छिद्र ढँक जाते हैं, परन्तु पकाने के पश्चात् पुन प्रकट हो जाते हैं। यदि ढलाई घोला बनाते समय अधिक सूखी खुरचन का प्रयोग किया गया हो तो प्रलेप-घोले के बीच में हवा के बुलबुले पात्र ढालने समय इन छिद्रों को जन्म देते हैं।

गैस छिद्र-दोष (Spitouts)—गैस छिद्रदोष के कारण बने हुए छिद्रों की प्रकृति साधारण छिद्र-दोष से बने छिद्रों से कुछ भिन्न है। इस प्रकार के छिद्रों के चारों ओर एक काला निशान होता है। यह गैस कार्बनिक पदार्थों के जलने से बनती है। कार्बनिक पदार्थ प्रलेप में ही घोल के रूप में हो सकता है या पात्र तल द्वारा अवशोषित गैसों से भी आ सकता है। यदि प्रलेप चढाने से पूर्व पात्र नम स्थान में काफी समय तक रखा गया हो, तो सरन्ध्र पात्र गैसों को अवशोषित कर लेते हैं, जो बाद में प्रलेप पकाने

के समय बाहर निकल जाती हैं। अवशोषण का समय जितना अधिक होगा पात्र से गैसों के निकालने में उतनी ही कठिनाई होगी और जब गैसें वास्तव में निकलती हैं, तो निकलनेवाले छिद्र के चारों ओर नोकीले किनारे तथा स्थायी काले चिह्न छोड़ जाती हैं। इसका कारण यह है कि ये गैसें इतनी देर से निकलती हैं, जब पिघले हुए प्रलेप में इतनी तरलता नहीं होती, कि नोकीले किनारोंवाले छिद्रों को भर सके। गैसवाले



चित्र २१ गैस छिद्रों का बनना

छिद्र-दोष प्रायः रंग पकाने के बाद भी देखने में आते हैं। विशेष कर उस समय जब भट्ठी के अन्दर का वातावरण अधिक अवकारक या धूममय हो। रंग पकाने के प्रथम काल में प्रलेप रंग से उत्पन्न हाइड्रोकार्बन गैसों को अवशोषित कर लेता है। जब भट्ठी और अधिक गरम की जाती है तथा प्रलेप पिघल जाता है, तो यही हाइड्रोकार्बन गैसें नोकीले किनारों सहित छोटे-छोटे छिद्र बनाकर बाहर निकल जाती हैं, तथा इन छिद्रों के चारों ओर काला चिह्न भी बना रह जाता है। यह काला चिह्न हाइड्रोकार्बन के विच्छेदन से प्राप्त कार्बन के कारण होता है।

मृद्-उद्योग-रंजक—मृद्-उद्योग में रंग प्रदान करनेवाले पदार्थ ऐसे होने चाहिए, जो पकाने के उच्च तापक्रम को सहन कर सकें। अतः यह स्पष्ट है कि कार्बनिक रंजक इस कार्य के लिए अनुपयोगी हैं। इस कार्य में प्रयोग होनेवाले अधिकतर वर्णक या तो धातवीय आक्साइड या धातवीय आक्साइड के उन पदार्थों के साथ बने यौगिक होते हैं, जो आक्साइड के रंजन गुणों में सुधार उत्पन्न कर देते हैं। उदाहरणार्थ—ताँबे का एक ही आक्साइड भिन्न पदार्थों, जैसे क्षार, बोरिक्स या सीसा के साथ अलग-अलग रंग

उत्पन्न करेगा। निम्नलिखित सारणी में मृद्-उद्योग में प्रयोग होनेवाले मुख्य रंजक आक्साइड तथा विभिन्न प्रलेपों के साथ उनके रंगों का ब्यौरा दिया गया है। पकाने के समय की अवस्थाओं, जैसे अवकारक या ओपदीकारक वातावरण का भी धातवीय आक्साइडों के रंग-परिवर्तन पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

आक्साइड	अधिक क्षारीय प्रलेप में रंग	अधिक बोरिक आक्साइडवाले प्रलेप में रंग	अधिक सीसावाले प्रलेप में रंग
कोबाल्ट आक्साइड	नीला	नीला	नीला
क्यूप्रिक ,,	नीला	हरा	हरा
फेरिक ,,	नीला हरा	बादामी से पीले तक	पीला
मैंगनीज डाई ,,	नीला बैंगनी	बादामी	पीले से बादामी तक
यूरेनियम ,,	हल्का पीला	कागदी पीला	नारंगी
क्रोमियम ,,	नारंगी पीला	हरा	पीला

जब धातवीय आक्साइड या उनके मिश्रण रंजन कार्य के लिए प्रयोग किये जाते हैं, तो प्रयोग से पूर्व उन्हें उच्च तापक्रम पर निस्तापित कर लिया जाता है। इस निस्तापन द्वारा अवयव पूर्णत समान रूप से मिल जाते हैं। यह पूर्ण रूप से मिलना तथाकथित ठोसों के घोल के द्वारा होता है। दो बार के निस्तापन से अच्छा परिणाम निकलता है। निस्तापित आक्साइड कम क्रियाशील हो जाते हैं और आगे कुछ कम तापक्रम पर प्रयोग करते समय रंग की निश्चित आभा उत्पन्न करते हैं। उच्च तापक्रम पर निस्तापन करने से आक्साइड के केलास बढ़ते हैं, जिससे आगे पकाने पर रंग बदलता नहीं है। वर्णक के बड़े केलास छोटे केलासों की अपेक्षा अधिक स्थायी होते हैं। इस निस्तापित पदार्थ को रंजक का स्टेन (Stain) कहा जाता है।

रंजक तीन विभिन्न प्रकार से प्रयोग किये जा सकते हैं। रंगीन प्रलेप बनाने के लिए रंजक, प्रलेप के ही साथ मिलाया जाता है। इस अवस्था में रंजक को प्रलेप रंजक कहते हैं।

जब पात्र के प्रलेपित तल के नीचे पात्र तल पर रंगीन सजावट होती है, तो सजावट में प्रयोग होनेवाले रंजक को अन्त प्रलेप रंजक कहा जाता है। अन्त. प्रलेप रंजक के साथ प्रयोग होनेवाले प्रलेप का पारदर्शी होना आवश्यक है। जब प्रलेप तल के ऊपर

सजावट करनी हो तो कम तापक्रम पर पिघलनेवाले विशेष रजकों का प्रयोग किया जाता है। इन रजकों को प्रलेप तल रजक या एनामेल रजक कहा जाता है।

अन्त प्रलेप रजक दो मुख्य भागों से मिलकर बने होते हैं—(क) वास्तविक रजक, जो धातवीय आक्साइड या उसका कोई यौगिक होता है, (ख) द्रावक। द्रावक, रजक को पात्र की सतह पर स्थिर करने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। इस उद्देश्य के लिए साधारणतः प्रयोग में आनेवाला पदार्थ पकाये हुए पात्रों के टूटे भागों को पीसने से प्राप्त होता है। इस कार्य के लिए निम्नलिखित पदार्थों को निम्नांकित करके एक अच्छा द्रावक बनाया जा सकता है।

स्फटिक	४५ भाग
फेल्सपार	३० ,,
चीनी मिट्टी	२० ,,
श्वेत सीसा या सफेदा	५ ,,
	१०० ,,

प्रलेप तल रजक या एनामेल रजक भी इसी प्रकार दो भागों से मिलकर बने होते हैं, पर इसमें द्रावक मृदु काँच बनानेवाले पदार्थों को मिलाकर बनाया जाता है, कारण यह द्रावक, रजक को भट्ठी में कम तापक्रम पर गलाने का कार्य करता है। इस द्रावक का कुछ भाग अल्प पिघले हुए प्रलेप में घुस जाता है और इस प्रकार यह द्रावक प्रलेप पर रजक को दृढ़ता से चिपका देता है।

निम्नलिखित द्रावकों के विभिन्न रजकों के साथ विभिन्न व्यवहार हैं, जो आगे चलकर उचित स्थान पर प्रकट किये जायँगे।

	द्रावक (A)	द्रावक (B)	द्रावक (C)
लाल सीसा	३	३७	२
बोरेक्स	२	×	२
सिलीका	१	१३	१

द्रावक के अवयव पदार्थ एक साथ काँचित करने के पश्चात् काँचित महीन पीसकर आगे के प्रयोग के लिए रखा जाता है। द्रावक में बोरेक्स की मात्रा एक निश्चित मात्रा से

अधिक रहने पर द्रावक भण्डारगृह की नमी से बहुत शीघ्र ही क्रिया करता है। सर्वप्रथम बोरेक्स श्वेत छादनी के रूप में बाहर आ जाता है। यह छादनी एनामेल रंजक के साथ क्रिया करके उन्हें नष्ट कर देती है।

रंजक बनाना—वातवीय आक्साइड तथा दूसरे अवयवों के मिश्रण को प्रायः छोटी भट्ठी में निस्तापित कर लेना ही सर्वोत्तम होता है, परन्तु छोटे कारखानों में यह मिश्रण तापसह मिट्टी के सन्दूकों में रखकर अन्य मृत्पात्रों के साथ उसी भट्ठी में पकाया जाता है। इस विधि में कुछ कठिनाइयाँ हैं, उदाहरणार्थ—कुछ रंजकों यथा क्रोम, हरा, कॉपर, रैड आदि को पकाते समय अवकारक वातावरण की आवश्यकता होती है, जब कि गुलाबी, पीले, लाल आदि रंजकों को आक्सीकारक वातावरण की आवश्यकता होती है। एक ही भट्ठी में दो प्रकार की अवस्थाएँ नहीं रखी जातीं। पकाने के पश्चात् रंजक कठोर पिण्ड में परिवर्तित हो जाता है। पकाने के पश्चात् रंजक पिण्ड को छोटे टुकड़ों में तोड़कर चिक्कन-प्रलेप की भाँति ही बहुत महीन पीस लिया जाता है। रंजकों को इतना महीन पीसना चाहिए कि २५० नम्बर की चलनी में छानने पर कुछ भी शेष न बचे। कभी-कभी आवश्यकतानुसार इससे भी महीन पिसा होना चाहिए। पीसने के बाद रंजक को स्वच्छ पानी से पूरी तरह धो लेना चाहिए। एक ही रंजक अन्तः-प्रलेप रंजक तथा प्रलेप तल-रंजक बनाने में काम आ सकता है। केवल भिन्न द्रावक, भिन्न अनुपात में मिलाने होंगे। परन्तु अन्तः प्रलेप रंजक के लिए रंजक तथा द्रावक को साथ ही निस्तापित करना अच्छा होता है, कारण इससे रंग की समान आभा प्राप्त हो सकती है।

कोबाल्ट रंजक—मृद्-उद्योग की सजावट में नीचे रंजकों में कोबाल्ट आक्साइड का अकेले या दूसरे आक्साइडों के साथ अवश्य प्रयोग होता है। विभिन्न अवयवों की उचित मात्रा से, गहरे नीले रंग से लेकर आसमानी नीले रंग तक की सभी आभाएँ उत्पन्न की जा सकती हैं। कोबाल्ट प्रायः आक्साइड के रूप में प्रयोग किया जाता है। कार्बोनेट या फास्फेट के रूप में कोबाल्ट का कम प्रयोग होता है।

कोबाल्ट का नीला रंग दो विभिन्न प्रकार का होता है—(अ) एल्यूमिनेट या चमकहीन नीला तथा (आ) सिलीकेट या चमकदार नीला। कोबाल्ट एल्यूमिना की अपेक्षा सिलीका की ओर अधिक क्रियाशील है, जिसके कारण सिलीकेट नीला सरलता से बन जाता है। साथ ही उच्च तापक्रम पर कोबाल्ट एल्यूमिनेट अस्थायी होता है।

अल्ट्रा मैरीन, मैंग्रेरीन, विल्लो, कैण्टन बैंबल आदि। ये सब नीले रंजक भी अवयवों को निस्तापित करके बनाये जाते हैं। अन्त प्रलेप नीले रजकों का निस्तापन १२८०° से० पर किया जाता है, परन्तु नीले एनामेल रजकों के लिए निस्तापन कुछ कम तापक्रम पर ही किया जाता है।

नीचे कुछ चमकदार नीले रजकों के सूत्र दिये गये हैं।

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
काला कोबाल्ट आक्साइड	५०	४५	×	×	१५
बेराइटीज़	५	×	×	×	१०
खड़िया	४५	×	×	×	×
ज़िन्क आक्साइड	×	×	२०	४०	७५
बॉल-मिट्टी	×	५५	५०	५०	×
कोबाल्ट फास्फेट	×	×	३०	१०	×
योग	१००	१००	१००	१००	१००

१ मैंग्रेरीन नीला।

२ सभी कार्यों के लिए गहरा नीला।

३. मध्यम नीला।

४. समुद्र जल-नीला।

५ फीरोज़ी नीला।

मिश्रण-पिण्ड-रंजक—जैसा कि पूर्व ही कहा जा चुका है, मिश्रण-पिण्ड को दूधिया श्वेत करने के लिए उसमे थोड़ा सा नीला रंग मिला दिया जाता है। इस कार्य के लिए प्रयोग होनेवाले कोबाल्ट आक्साइड की मात्रा इतनी कम होती है कि उसे मिश्रण-पिण्ड में समान रूप से मिलाना बहुत ही कठिन कार्य है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए कुछ अक्रिय पदार्थों, जैसे चकमक तथा फेल्सपार को मिलाकर रंजक को तनु कर लिया जाता है। ऐसा करने से उसकी रंजक शक्ति भी कम हो जाती है और पात्र पर नीले धब्बे पड़ने की सम्भावना भी समाप्त हो जाती है।

कुछ बहनेवाले नीले रंजकों के सूत्र नीचे दिये जाते हैं—

	(१)	(२)	(३)
कोबाल्ट आक्साइड	६५	५५	५०
सिलीका चूर्ण	१०	२५	३०
शोरा	२५	×	२०
लाल सीसा	१०५	४	×
बोरेक्स केलास	१२	६	×
फेल्सपार	×	६	×
खड़िया	×	४	×
योग	१००	१००	१००

इन विशेष नीले रंजकों का निस्तापन इतने अधिक उच्च तापक्रम पर होना आवश्यक नहीं, जितने पर कि साधारण नीले रंजकों का होता है।

बहाव चूर्ण का एक सगठन नीचे दिया जाता है—

श्वेत सीसा या सफेदा	३८
साधारण नमक	१८
बोरेक्स केलास	१४
खड़िया	३०
योग	१००

खड़िया और श्वेत सीसा को मिलाओ और नमक के अम्ल के साथ उस समय तक विलोड़ो जब तक कि बुदबुदन बन्द न हो जाय। तब इसमें बोरेक्स और साधारण नमक को अच्छी तरह मिलाओ।

नीले रंजक में दोष

दूधियापन—प्राय देखा जाता है कि नीले रजकवाले प्रलेप में प्रलेप पकाने के पश्चात् छादनी की भाँति दूधियापन आ जाता है। प्रलेप में यह दूधियापन केलास बनने की प्रारम्भिक अवस्था के कारण होता है। कोबाल्ट इस केलासीकरण में सहायता देता है। प्रलेप पकाने की भट्ठी बहुत धीमी गति से ठण्डी होने पर भी दूधियापन आ

जाता है। केलास उस समय सबसे अच्छे बनते हैं जब प्रलेप की अवस्था तरल प्रलेप और स्थान के बीच में आ जाती है।

ये केलास कैल्शियम मोनो सिलीकेट के बनने के कारण होते हैं तथा उस समय बनते हैं, जब प्रलेप में चूना अधिक और लेड आक्साइड या एल्यूमिना कम होता है। जब नीले कोबाल्ट में दूधियापन दीखे, रजक के अवयवों में से खड़िया मिट्टी कम कर दो और एल्यूमिना बढ़ा दो, क्योंकि इसमें केलासों के बनने की क्रिया कम हो जाती है। एल्यूमिना की अधिकतम सीमा १२ प्रतिशत तक है। इससे अधिक एल्यूमिना होने पर आभा में कमी आ जाती है और चमक नष्ट हो जाने का भय रहता है।

लोह-दोष—यह दोष द्रावकों की कमी या कोबाल्ट की अधिकता से होता है। द्रावक कोबाल्ट से सम्पृक्त हो जाते हैं और ठण्डा करने पर कुछ कोबाल्ट लाल या गुलाबी चकत्तों के रूप में अलग हो जाता है। इस दोष को नीले रजकों का लौह दोष कहा जाता है, कारण चकत्तों का रंग लौह आक्साइड की भाँति होता है। जब यह दोष आ जाय तो चकत्तों को तूलिका की सहायता से लाल सीसे (Pb_3O_4) से पोत दो और दुबारा फिर पकाओ। रजक बनाने के सूत्र को ठीक करने के लिए द्रावक बढ़ाओ या कोबाल्ट कम करो। यदि द्रावक कुछ अधिक डाल दिया गया हो तो रजक बह सकता है। पात्र के मिश्रण-पिण्ड, प्रलेप या रजक में मैंगनीशिया की उपस्थिति कोबाल्ट के नीले रंग को लाल बैंगनी रंग में परिवर्तित करने की प्रवृत्ति रखती है।

छितराव-दोष—इस दोष में रंगीन तल बहुत से टुकड़ों में टूट जाता है। विशेष कर उस समय जब पात्र का तल चिकना करने के लिए किसी तैल का प्रयोग किया गया हो। यदि प्रलेप चढ़ाने से पूर्व सरन्ध्र पात्र नमीदार स्थान में अधिक काल तक रख दिये जायँ तो उनमें जलवाष्प घुस जाता है। यदि सजावट के लिए तैलयुक्त रजक प्रयोग किये गये हों तो तेल की अपारगम्य परत के कारण जलवाष्प सरलता से नहीं निकल पाता तथा उच्च तापक्रम पर जलवाष्प दबाव के कारण रजक को छिटक देता है।

जलवाष्प-दोष—यदि पकाने में प्रयोग होनेवाले कोयलों में गन्धक है, तो गन्धक की गैसें जलवाष्प से मिलकर गन्धकाम्ल बनाती हैं। यह गन्धकाम्ल तापसह पेटियों के लौह यौगिकों पर क्रिया करके उन्हें घुलनशील बना देता है। यह बना हुआ लौह सल्फेट तापसह पेटी में रखे पात्र पर गिरता है। गन्धकाम्ल प्रलेप तथा रंजकों पर भी क्रिया करता है तथा कभी-कभी इस क्रिया से रजक बहने लगते हैं। जब यह दोष हो तो पकाने के प्रारम्भिक काल में कोक का प्रयोग करना चाहिए। कोक के प्रयोग से

जलवाष्प तथा हाइड्रोकार्बन नही बनते। तापक्रम बढ़ने पर कोयले का प्रयोग किया जा सकता है, कारण उच्च तापक्रम पर जलवाष्प शीघ्रता से निकल जाता है।

छिद्र-दोष—यह दोष नीले रग की चौडी धारियो पर छोटे-छोटे छिद्रों के रूप में देखा जाता है। यदि सजावट के लिए उच्च तापक्रम पर वाष्पशील होनेवाले तेलों का प्रयोग किया जाय तो यह दोष आ जाता है। तेल के विच्छेदन से प्राप्त कार्बन द्रावक में मिल जाता है। अधिक गरम करने पर द्रावक में हवा घुस जाती है, जिससे कार्बन धीरे-धीरे न जलकर विस्फोट के साथ शीघ्रता से जलकर कार्बन-डाई-आक्साइड में परिवर्तित हो जाता है। यही कार्बन-डाई-आक्साइड बाहर निकलते समय छिद्र बना देती है।

चिह्न-दोष—यदि रजक ठीक प्रकार से निस्तापित नही किया गया है तथा प्रलेप में खड़िया की मात्रा अधिक है, तो गलित काँचित कैलशियम कार्बोनेट को ढक लेता है और सरलता से विच्छेदित नहीं होने देता। उच्च तापक्रम पर इसके विच्छेदन से प्राप्त कार्बन-डाई-आक्साइड फफोले बनाकर उन्हें फोडती हुई बाहर निकल जाती है। तापक्रम और बढ़ने पर ये फूटे फफोले भर जाते हैं, परन्तु उनके चारो ओर एक काला चिह्न बन जाता है। इस काले चिह्न के चारो ओर एक प्रभामंडल-सा रहता है। कोबाल्ट तथा मैंगनीज़-रजको में यह दोष विशेष रूप से आता है। यह दोष होने पर रंजक को उच्च तापक्रम पर निस्तापित करो तथा पीसते समय अधिक चीनी मिट्टी का उपयोग करो जिससे प्रलेप शीघ्रता से काँचीय न हो सके। पीसते समय खड़िया न मिलाओ।

ताम्र-रंजक—ताँबे का आक्साइड विभिन्न प्रलेपो के साथ विभिन्न रग उत्पन्न करता है। साधारण प्रलेप में यह हरा रग उत्पन्न करता है। हरा रग, आक्साइड को द्रावक के साथ ही ११००° से० पर निस्तापित करके सरलतापूर्वक बनाया जा सकता है। चूंकि ताँबा उच्च तापक्रम पर वाष्पशील होना प्रारम्भ कर देता है, अत यह रंजक अन्त प्रलेप सजावट के लिए अनुपयोगी है। निम्नलिखित अवयवों को काँचित करके एक अच्छा प्रलेप तल रंजक या एनामेल रजक बनाया जा सकता है।

ताँबे का आक्साइड	१०
चकमक चूर्ण	२५
लाल सीसा	६०
बोरेक्स	५
योग	१००

अधिक क्षारीय प्रलेपो में ताँबा आक्साइड सुन्दर फीरोजी नीला रग उत्पन्न करता है। इस नीले रंग में, हरे रंग में परिवर्तित हो जाने की धारणा अधिक होती है। शुद्ध क्षार सिलीकेट ताँबे के आक्साइड को अपने में घुलाकर गहरा नीला रग उत्पन्न करते हैं, परन्तु यदि सिलीका के कुछ भाग के स्थान पर बोरिक आक्साइड हो तो हरा रंग विकसित हो जाता है। एल्यूमिना की उपस्थिति से भी नीला रग हरे रग मे बदल जाता है। यदि क्षार के कुछ भाग के बदले चूना केरीटा या मैगनीशिया डाल दिया जाय तो भी रग हरा हो जाता है, परन्तु क्षार सीसा सिलीकेट में ताँबे के आक्साइड का रग नीला ही रहता है, जब तक कि सीसा क्षार से अधिक नही हो जाता। इस अवस्था में पोटाश सीसा सिलीकेट, सोडा सीसा सिलीकेट की अपेक्षा अधिक स्थायी होता है। अत ताँबे के फीरोजी नीले रंजक क्षार-सीसा-सिलीकेट होते हैं तथा इनमें अवयवो की सीमा का परास बहुत कम होता है। निम्नलिखित सूत्र से अच्छा फीरोजी नीला एनामेल रंजक बन सकता है।

रेत या चकमक चूर्ण	४७ १५
लाल सीसा	२३ ५८
सोडियम नाइट्रेट	११ ८०
पोटैशियम नाइट्रेट	१२ ७६
ताँबे का आक्साइड	४ ७१

वातावरण की नमी अधिक क्षार पर क्रियाकर रग को नष्ट कर सकती है। प्रलेप बनाने के लिए ताँबे का आक्साइड काँचित मे पीसने से पूर्व मिलाना चाहिए, काँचित मिश्रण में नही। इस प्रकार के प्रलेपो में क्रेजिंग की सम्भावना अधिक रहती है, कारण इन प्रलेपो में क्षारीय अश अधिक रहता है।

अवकारक वातावरण में ताँबा लाल रग को उत्पन्न करता है। ताँबे का लाल रंग दो प्रकार का होता है—

(अ) प्रलेप को रगनेवाला लाल ताम्र रजक। इसको रूज फ्लाम्बे (Rouge-Flambe) या रक्तशिखा कहते हैं।

(आ) प्रलेप-तल-रंजक। इसे ताम्र की रक्त चमक कहते हैं।

इन दोनो रजकों का बनाना कठिन है। रक्तशिखा प्रलेप पकाते समय भट्ठी का वातावरण समान रूप से अवकारक रखना परमावश्यक है। यदि भट्ठी के किसी स्थान

कारण ये रंजक उच्च तापक्रम पर अपना रंग बदल देते हैं। अधिक सीसा युक्त द्रावक अधिक बोरेक्सवाले द्रावक की अपेक्षा लाल रंग उत्पन्न करने में अधिक सहायक है। लौह आक्साइड को अपने भार के ३ या ४ गुने द्रावक चूर्ण के साथ खूब महीन पीसना चाहिए। पैनेटीर (Pannetier) नामक वैज्ञानिक ने, जिसने लाल लौह रंजक बनाने में खूब यश कमाया था, निम्नलिखित अवयवों से बने द्रावक के उपयोग की सिफारिश की है। लाल सीसा १२ भाग, चकमक ४ भाग, बोरेक्स ३ भाग। पैनेटीर ने नारंगी से लेकर भूरे रंग तक ११ प्रकार के रंजक बनाये थे जिनके विश्लेषण नीचे दिये जाते हैं।

रंजक नाम	सिलीका	लेड-आक्साइड	बोरेक्स	लोह-आक्साइड	मैंगनीज-डाई आक्साइड	एल्यूमिना	जिंक आक्साइड
नारंगी लाल	१३ ४८	५१ ५४	१३ ०८	१४ १०	×	नाममात्र	३ ८
नेस्ट्रूशियम लाल (Nastrutium)	१६ ६०	५० ३९	१२ ५१	२० ५०	×	,,	×
							×
रक्त लाल	१६ ९०	४६ ५१	१३ ३९	१९ ७०	×	० ४०	×
मांसल लाल	१६ ६०	४९ १८	१४ २२	२० ००	×	नाममात्र	×
गाढ़ा लाल	१६ ३०	५० ०२	१३ ६८	२० ००	×	,,	×
हलका लाल	१६ ४०	४९ ४४	१५ ९६	१८ २०	×	,,	×
हलका बैंगनी लाल	१६ ८५	५० ६६	१२ ६६	१८ ८३	×	,,	×
बैंगनी लाल	१६ ३९	५० ५२	१२ ०१	२१ ०८	×	,,	×
गाढ़ा बैंगनी लाल	१६ ५६	५० ०९	१५ ३६			,,	×
घोर बैंगनी लाल	१६ ४०	५० ६०	१२ १४	१८ ७१	२ १५	,,	×
लौह भूरा	१५ ५५	४३ ०५	१५ ४८			,,	×

नारंगी से लेकर बैंगनी तक, लौह आक्साइड द्वारा प्राप्त सभी रंग तीन प्राथमिक रंगों लाल, पीले या नीले में विच्छेदित किये जा सकते हैं। निस्तापन तापक्रम जितना ही कम होगा, रंग उतना ही अधिक पीला होगा तथा निस्तापन तापक्रम जितना ही अधिक होगा रंग उतना ही अधिक नीला होगा। रंजक उस समय शुद्धतम होगा जब लौह *आक्साइड बिलकुल समान अणुओं से बना हो। यदि सभी अणु रंग के विकास के लिए* आवश्यक तापक्रम तक समान रूप से गरम किये जायें तो रंग पूर्णरूपेण शुद्ध होगा।

उच्च तापक्रम पर थीवियर्स अर्थ (Thiviers Earth) के अतिरिक्त प्राकृतिक लौह खनिज पीले या लाल रजको के बनाने के लिए उपयोगी नही है, कारण थीवियर्स अर्थ से बना रजक ही उच्च तापक्रम पर रग नही बदलता । इस खनिज को कभी-कभी जापानी लाल कहा जाता है। इसे निस्तापित करके सेमियन नामक विशेष प्रकार के लाल पात्रो के बनाने मे इसे प्रयोग किया जाता है। मिश्रण-पिण्ड में इस खनिज को लगभग ५ प्रतिशत मात्रा पकाने पर बहुत ही सुन्दर मासल रंग उत्पन्न करती है।

इस खनिज का एक विशेष विश्लेषण नीचे दिया जा रहा है, परन्तु इसके विश्लेषण स्थान-भेद से बदलते रहते हैं।

फैरिक आक्साइड	८ २४
सिलीका	८९ ३१
एल्यूमिना	१·२५
हानि	१ २०

८० भाग थीवियर्स अर्थ और २० भाग लाल सीसा को एक साथ गलाने के पश्चात् काफी महीन पीसकर चित्रकारी के लिए लाल रजक बनाया जा सकता है। कृत्रिम थीवियर्स अर्थ बनाने के लिए एल्यूमिनियम सल्फेट तथा फैरिक सल्फेट के घोलों को इस अनुपात में मिलाया जाता है, कि Al_2O_3 और Fe_2O_3 का अनुपात उक्त अनुपात के बराबर रहे। उसके पश्चात् इस घोल-मिश्रण में सोडियम सिलीकेट घोल तब तक डाला जाता है, जब तक कि अवक्षेप बनता रहे। यह अवक्षेप सावधानी पूर्वक धोकर, सुखाकर उच्च तापक्रम पर निस्तापित कर लिया जाता है।

द्रव में फेरिक सल्फेट का अनुपात बढाने से, प्राप्त लाल रंग की आभा गहरी हो जाती है तथा एल्यूमिना का अनुपात बढाने से हलकी आभा प्राप्त होती है। यह रजक अन्त-प्रलेप रजक के रूप मे प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु इसके लिए प्रलेप को अधिक अम्लीय नही होना चाहिए, अन्यथा रजक यौगिक प्रलेप में उपस्थित सिलीका या बोरिक अम्ल की क्रिया से फैरिक बोरो सिलीकेट बनकर प्रलेप को पीला कर देगा।

मैंगनीज रंजक—मैंगनीज यौगिकों का प्रयोग करके हलकी तथा गहरी दोनों आभाओ के बादामी रजक बनाये जा सकते है। मैंगनीज का शुद्ध बादामी रंजक मैंगनस आक्साइड तथा एल्यूमिना के मिश्रण से बनता है। यह रजक मैंगनस सल्फेट तथा

पोटाश फिटकिरी के घोलों को मिलाकर तथा इस मिश्रण-घोल में सोडियम कार्बोनेट का घोल मिलाकर बनाया जा सकता है। सोडियम कार्बोनेट का घोल उस समय तक छोड़ना चाहिए, जब तक कि अवक्षेप बनता रहे। यह अवक्षेप बाद में धोया, सुखाया तथा निस्तापित किया जाता है। प्रथम दो घोलों के अनुपात पर रंग की आभा निर्भर करती है। रंजक में द्रावकों को मिलाकर एनामेल रंजकों के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

इस कार्य में प्रयोग होनेवाली मुख्य मैंगनीज अयस्क (ore) पाइरोलूसाइट (Pyrolucite) है। इस अयस्क का संगठन निम्नलिखित सीमाओं के बीच बदलता रहता है।

मैंगनीज डाई आक्साइड	७०—९५	प्रतिशत
सिलीका	०—७	,,
एल्यूमिना	०—१	,,
फेरिक आक्साइड	०—५	,,
चूना	०—१	,,
हानि	१—५	,,

पाइरोलूसाइट से निम्नलिखित अवयवों द्वारा रंजक बनाये जा सकते हैं—

पाइरोलूसाइट	२०	७५
एल्यूमिना	८०	—
फेल्सपार	—	२५
योग	१००	१००

कभी-कभी बैंगनी बादामी रंजक बनाने के लिए मैंगनीज फास्फेट का प्रयोग किया जाता है।

मैंगनीज फास्फेट	७० भाग
टीन आक्साइड	३० भाग

मिश्रण को उच्च तापक्रम पर निस्तापित करो। सर्वोत्तम बादामी रंजक विभिन्न आक्साइडों के मिश्रण से प्राप्त होते हैं।

अधिक क्षारीय प्रलेपों या द्रावकों में क्षार परमैंगनेट बनने के कारण, मैंगनीज

श्वेत प्रलेपित मृत्पात्रों को अवकारक वातावरण में पकाने पर ८ प्रतिशत आक्साइड से गहरा काला रंग उत्पन्न होता है।

तथाकथित पीले आक्साइड को उसके से ३ या ८ गुने भाग के द्रावक (A) या द्रावक (B) के साथ मिलाने से अच्छे एनामेल रंजक बनते हैं। द्रावक (A) तथा (B) के संगठन इसी अध्याय में पहले दिये जा चुके हैं। द्रावक (A) के साथ पीले रंग की आभाएँ तथा द्रावक (B) के साथ पक्के नीबू रंग (lemon-colour) की आभाएँ मिलती हैं।

निम्नलिखित परिमाषा द्वारा विभिन्न प्रलेपों में विभिन्न आभाएँ बनने का अनुमान लग जायगा।

प्रलेप का अणु-संगठन	यूरेनियम आक्साइड प्रतिशत	आभा
(१) १० लैड मोनोक्साइड, ०१५ एल्यूमिना, १७ सिलीका	४५	गहरी नारंगी
(२) ०.७५ लैड मोनोक्साइड, ०१४ पोटैसियम आक्साइड, ०११ चूना — ०१५ एल्यूमिना, १७ सिलीका	३.०	नारंगी पीली
(३) ०२५ लैड मोनोक्साइड, ०.३५ पोटैसियम आक्साइड, ०३० चूना — ०१५ एल्यूमिना, १७ सिलीका	३०	पक्का नीबू रंग

२० से ४० प्रतिशत लौह आक्साइड मिलाने पर यूरेनियम आक्साइड नारंगी लाल रंग की विभिन्न आभाएँ उत्पन्न करता है।

कोबाल्ट आक्साइड के साथ यूरेनियम आक्साइड का मिश्रण जेड हरे (Jade green) रंग की सभी आभाएँ उत्पन्न करता है।

क्रोमियम रंजक—यह धातु हरे, पीले, नारंगी तथा गुलाबी आदि रंगों की विभिन्न आभाएँ उत्पन्न करता है। इन आभाओं की भिन्नता प्रलेप संगठन तथा पकाने के वातावरण पर निर्भर करती है। क्रोमियम से क्रोम हरा रंजक बनाने में शक्तिशाली अवकारक वातावरण आवश्यक है, जब कि पीले, नारंगी तथा गुलाबी रंजकों को बनाने के लिए शक्तिशाली आक्सीकारक वातावरण सर्वोत्तम होता है।

सभी क्रोम हरे रंजकों को निस्तापन के बाद धोने की आवश्यकता होती है। अच्छा परिणाम पाने के लिए रंजक मिश्रण के साथ निस्तापन के समय थोड़ा-सा लकड़ी का बुरादा रख देते हैं। यह बुरादा अवकारक वातावरण उत्पन्न करने में सहायक होता है। क्रोमियम आक्साइड के साथ खड़िया मिलाने पर मरकत हरित (Emerald-green) या विक्टोरिया हरित मिलता है। इंग्लैण्ड तथा जर्मनी में प्रयोग होनेवाले दो मरकत हरित रंजकों के संगठन नीचे दिये जाते हैं।

	इंग्लैण्ड	जर्मनी
पोटाश डाईक्रोमेट	३८	३६
खड़िया	२०	२०
फ्लोर स्पार	२०	१२
चकमक	२२	२०
कैलसियम क्लोराइड	×	१२
योग	१००	१००

फ्लोरस्पार (CaF_2), कैलशियम फ्लोराइड तथा प्लास्टर के पुराने साँचों का चूर्ण रहने से हरे रंजक अधिक स्थायी और अधिक चमकदार होते हैं। यदि क्रोम आक्साइड के साथ जिंक आक्साइड मिला दिया जाय तो बादामी रंजक मिलता है।

इस रंजक के लिए वे प्रलेप अधिक उपयोगी हैं, जिनमें सीसा तथा चूना अधिक हो। सीसा-रहित प्रलेप उपयोगी नहीं हैं, कारण क्रोमिक आक्साइड ऐसे प्रलेपों में नहीं घुलता, परिणाम-स्वरूप प्रलेप की चमक कम कर देता है।

अधिक सीसावाले प्रलेपों तथा काँच कलइयों में लैडक्रोमेट पीला रंग उत्पन्न करता है। निम्नलिखित अवयवों को लगभग ६००° से० पर निस्तापित करने से अच्छा एनामेल रंजक बनाया जा सकता है।

लालसीसा	७०	८०	४०
लैंड क्रोमेट	१०	×	३०
क्रोमिक आक्साइड	×	५	×
बोरैक्स	१२	१०	२०
स्फटिक	८	५	१०
योग	१००	१००	१००

यदि प्रलेप में सीसा अधिक हो तथा ओपदीकारक वातावरण में पकाया जाय तो प्रलेप में १०-१५ प्रतिशत लैंड क्रोमेट डालने से पीला रंग मिलता है।

प्रवाल लाल रंजक (Coral Reds)—३५ भाग लैंड क्रोमेट, ६५ भाग लाल सीसा को एक साथ काँचित करने के पश्चात् काँचित का तीन गुना भार द्रावक (A) मिलाने पर प्रवाल लाल रंजक बन सकता है। इन प्रवाल रंगों की विशेषता उनके रंगों की चमक है। इन रंजकों को व्यवहार में सम्भव न्यून तापक्रम पर तथा कम-से-कम समय में पकाना चाहिए। अधिक उच्च तापक्रम पर रंजक विच्छेदित हो जाता है। प्रवाल लाल रंजकों को पकाते समय वातावरण ओपदीकारक हो तथा भट्ठी में हवा आने-जाने का अच्छा प्रबन्ध हो, कारण अवकारक वातावरण अल्पपारदर्शक हरा रंग उत्पन्न करता है।

क्रोम गुलाबी—१·५ प्रतिशत क्रोमियम लवण को ३ भाग टिन आक्साइड, १–२ भाग चूना के मिश्रण के साथ शक्तिशाली ओपदीकारक वातावरण में १२००° सें० से १३००° सें० पर निस्तापित करने से गुलाबी तथा गहरे लाल रंजक प्राप्त किये जा सकते हैं। सिलीका की थोड़ी मात्रा से रंग में चमक आ जाती है, परन्तु अधिक मात्रा होने से रंग की चमक कम हो जाती है। चूने के कुछ भाग के बदले कैलशियम फ्लोराइड (CaF_2) डालने से गुलाबी रंजक में सुधार हो जाता है। निस्तापित पिण्ड को अच्छी तरह धोना परमावश्यक है। यदि निस्तापित पिण्ड चमकदार नहीं है तो उसे पीसकर पुनः निस्तापित करना चाहिए।

क्रोमिक आक्साइड के बहुत ही सूक्ष्म कण गहरे लाल रंग के मालूम होते हैं। इस बात के कुछ प्रमाण मिलते हैं कि यह गहरा लाल रंग किसी रासायनिक यौगिक के कारण नहीं है तथा क्रोम टिन रंग भी वैसा ही होता है, जैसा कि सोने के कैसियस पर्पिल (Cassius-purple) का होता है। एल्यूमिना से भी एक क्रोम रंजक बनाया

जा सकता है, जो दिन के प्रकाश या परावर्तित प्रकाश में हरा दीखता है और पारगमित प्रकाश या कृत्रिम प्रकाश में गहरा लाल दिखाई देता है। इस प्रकार यह रंजक अलेक्जेण्डेराइट (Alexanderite) खनिज के रंग से मिलता-जुलता है।

टिन आक्साइड, क्रोमिक आक्साइड की बहुत पतली परत को अपने ऊपर स्थिर करने में सहायता करते हुए एक रंग स्थापक की भाँति कार्य करता है, परन्तु टिन-आक्साइड स्वयं अप्रभावित रहता है। यदि क्रोमिक आक्साइड की मात्रा अधिक है तो यह चूने के साथ क्रिया करके हरी आभा उत्पन्न करेगा।

अवकारक वातावरण में टिन-आक्साइड अवकृत होकर टिन धातु बन जाता है जो वाष्पशील हो जाती है। गहरा लाल रंग पाने के लिए ओषदीकारक वातावरण, उच्च तापक्रम तथा काफी समय आवश्यक है।

वास्तविक व्यवहार में देखा जाता है कि विभिन्न कच्चे मालों से प्राप्त एक ही रासायनिक संगठन से गुलाबी रंग की विभिन्न आभाएँ प्राप्त होती हैं। क्रोम गुलाबी तथा क्रोम लाल रंजकों के कुछ रासायनिक संगठन इस प्रकार है—

रंग	कैलसियम आक्साइड	लैड मोनो-क्साइड	पोटैशियम आक्साइड	स्टैनिक आक्साइड	क्रोमियम आक्साइड	सिलीका
रक्त लाल	६३ ११	×	२० ६८	१५१	३ ३१	२६·२२
चमकीला लाल	११२·००	१२ १३	×	१५१	४ ४०	२००·००
गहरा लाल	४९ ७२	६ ११	×	१५१	२ ३५	६०·००
गुलाबी	४८ ४०	२ ९०	७ ९०	१५१	१० ००	५८·६०

१३००° से १३५०° से० पर निस्तापित करके बाद में निस्तापित पिण्ड को दो-तीन बार धोना चाहिए।

गुलाबी रंजक के कुछ निर्माण सूत्र भी नीचे दिये जाते हैं—

	(१)	(२)	(३)	(४)
लैड क्रोमेट	९ ३५	×	×	×
क्रोमिक आक्साइड	×	४४	×	×

कभी-कभी प्रलेप पकाने के पश्चात् क्रोम गुलाबी रंग बैंगनी हो जाता है। विशेष कर उस समय जब पकाने का तापक्रम उच्च हो। ऐसी अवस्था में रंजक के निर्माण सूत्र में कुछ अधिक टिन आक्साइड डालो। यदि प्रलेप के निर्माण सूत्र में थोड़ा-सा क्रोमियम डालें तो यह क्रोमियम प्रलेप में घुलकर पीला काँच बनाता है जिसमें लाल रंग के कण आलम्बन अवस्था में रहते हैं जिससे बैंगनी रंग पीले रंग में छिप जाता है।

गुलाबी रंजक पर विभिन्न अवयवों का प्रभाव—चूना गुलाबी रंजक के विकास तथा स्थायीपन में सहायक है। निर्माण सूत्र में चूने का अनुपात कम रहने से रंग बदलकर बैंगनी तथा बादामी हो सकता है। उच्च तापक्रम पर प्रलेप पकाने से कम चूनावाले गुलाबी रंजक प्राय. विच्छेदित हो जाते हैं। यदि चूना की मात्रा २५ प्रतिशत से अधिक है तो आभा हलकी हो जाती है। चमकदार और स्थायी रंजक प्राय. ३ भाग टिन-आक्साइड तथा २ भाग चूना से बनाये जाते हैं। चूने के स्थान पर कैलशियम फ्लोराइड या प्लास्टर के पुराने साँचों का चूर्ण डाल दिया जाय तो रंग गहरा हो जाता है। अस्थि-राख रहने से रंजक अस्थायी हो जाता है।

सिलीका—रंजकों के किसी सूत्र में थोड़ी मात्रा में चकमक डालने से रंग में चमक आ जाती है। गुलाबी रंग की धारणा भी बढ़ जाती है। अधिक मात्रा में चकमक डालने से रंग में कमी आ जाती है, परन्तु यदि प्रलेप मिश्रण में टिन आक्साइड की मात्रा बढ़ा दी जाय, तो रंग की चमक पुन आ जाती है।

बोरिक-अम्ल—३ प्रतिशत तक बोरिक अम्ल की मात्रा से रंग में बहुत कम अन्तर पड़ता है, परन्तु अधिक मात्रा होने पर रंग बदलकर बादामी या बैंगनी हो सकता है।

एल्यूमिना—एल्यूमिना डालने से रंजक का स्थायीपन कम हो जाता है,परन्तु अन्तः-प्रलेप रंजक में थोड़ी चीनी मिट्टी मिला देने से रंजक को प्रलेप के लिए उपयोगी होने में सहायता मिलती है।

एण्टीमनी रंजक—सिलीका तथा बोरिक आक्साइड की तरह एण्टीमनी भी अम्ल की भाँति व्यवहार करता है, अत दूसरे धातवीय आक्साइडों से क्रिया कर यौगिक बनाता है। क्षार एण्टीमोनिएट श्वेत यौगिक होते हैं, जिनका श्वेत प्रलेपों तथा काँच कलइयों में काफी प्रयोग होता है। सोडियम एण्टीमोनिएट व्यापार में ल्यूकोनिन (Leu-Konin) के नाम बेचा जाता है और प्रलेप तथा काँच कलइयों को अपार-

दर्शता प्रदान करने के लिए प्रयोग किया जाता है। एण्टीमनी से बना रजक केवल लैड एण्टीमोनिएट {$Pb_3(SbO_4)_2$} है, जो पीले रग का होता है और बाजार मे नैपिल्स यलो (Naples-yellow) के नाम से बिकता है। इस रजक का रग अवयवो की मात्रा के अनुपात तथा निस्तापन तापक्रम पर निर्भर होता है। लोह आक्साइड की थोडी-सी मात्रा के प्रयोग से रग की आभा सुधारी जा सकती है। एण्टीमनी आक्साइड से बने पीले रजको के कुछ सूत्र नीचे दिये जाते हैं—

	(१)	(२)	(३)	(४)
लाल सीसा	६०	४५	४०	४५
एण्टीमनी आक्साइड	४०	५०	४०	३०
सोडा ऐश	×	५	१२	×
लोह आक्साइड	×	×	८	२५

१ शुद्ध नैपिल्स पीला, २ हलका पीला, ३ मध्यम पीला, ४ गहरा पीला।

शक्तिशाली ओपदीकारक वातावरण में ९५०° सें० पर मिश्रण को निस्तापित करो। इन पीले रजकों में ४ गुना द्रावक मिलाने से अच्छा एनामेल रजक बनता है। प्रलेप रजक या अन्त प्रलेप रजक के रूप में इनका रग स्थायी नहीं होता।

कैडमियम रंजक—पीले कैडमियम सल्फाइड का सीसा रहित काँच-कलइयों तथा प्रलेपों में प्राय प्रयोग होता है, कारण सीसा की उपस्थिति प्रलेप के रग को लैड सल्फाइड के बनने से काला कर देती है। यह कैडमियम सल्फाइड, कैडमियम लवण (क्लोराइड या सल्फेट) के घोल में हाइड्रोजन-सल्फाइड गैस बहाकर बनाया जाता है। प्रलेप तथा काँच कलइयों को रँगने के लिए इस लवण का एक प्रतिशत काफी ठीक है। यह प्राय पीसने से पूर्व काँचित चूर्ण में डाला जाता है। यदि इसे काँचित किया जाय तो गरम काँचित को पानी में डाल देने से यह श्वेत हो जाता है। प्रलेप या काँच कलई के पकाने पर पीला रग पुन आ जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि कैडमियम सल्फेट काँचित में घुल जाता है, परन्तु प्रलेप के दुबारा पकाने पर सूक्ष्म कणों के रूप में फिर बाहर आ जाता है।

स्वर्ण रंजक—सोने के गुलाबी तथा लाल रजक प्रायः बनाये जाते हैं। औरिक क्लोराइड के घोल को स्टैनस तथा स्टैनिक क्लोराइडो के मिश्रित घोल में डालने से

बराबर मात्रा पानी में घुलाकर डालो। इन सबको फिर पूर्णरूप से वाष्पीकरण द्वारा सुखाओ। बचे हुए पदार्थ को पानी में घुलाओ तथा सरन्ध्र पोरसिलेन पात्र के चूर्ण द्वारा इसे अवशोषित करा लो, सुखा लो। तत्पश्चात् निस्तापित कर लो। प्रयुक्त किये जानेवाले प्लैटीनम की मात्रा पर ही रंजक की रजन शक्ति निर्भर करती है। एनामेल रजक के रूप मे प्रयोग करने के लिए इस रजक में कोई मृदु द्रावक मिलाओ। प्रलेप रंजक तथा अन्त प्रलेप रजक के रूप मे प्रयोग करने के लिए किसी द्रावक के मिलाने की आवश्यकता नही होनी।

मिश्रित रंजक—विभिन्न आक्साइडो के मिश्रण से नाना प्रकार के रंग उत्पन्न किये जा सकते है। निम्नलिखित मिश्रणो को ११६०° सें० पर निस्तापित करने के बाद अच्छी तरह पीसो तथा धोओ। इन रजको को ३ से ४ प्रतिशत तक प्रलेप या कॉच कलई में मिलाने पर अच्छे रग प्राप्त होते हैं।

अवयव नाम	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)	(८)
फेरिक आक्साइड	३०	२०	१०	४०	—	—	—	१२
क्रोमिक आक्साइड	२०	३०	४०	१०	४०	५०	—	१०
कोबाल्ट ,,	—	—	—	—	१०	—	१०	—
मैंगनीज ,,	—	—	—	—	—	—	१६	—
जिंक ,,	२०	३०	४०	४०	—	—	३२	५०
फेल्सपार	—	—	—	—	२५	—	२४	—
जिप्सम	—	—	—	—	१०	—	—	—
केओलिन	३०	२०	१०	१०	१५	५०	१८	२८

(१) गाढा चॉकलेट (२) गाढा चॉकलेट बादामी (३) हरा बादामी (४) गहरा बादामी (५) घासी हरा (६) गहरा हरा (७) नीला बैंगनी (८) पीला लाल।

८५०° से ९००° सें० पर पूर्वनिस्तापित केओलिन अधिक स्थायी रंजक उत्पन्न करती है। जिप्सम के स्थान पर प्लास्टर के पुराने साँचो का चूर्ण डालने से भी रंग में सुधार आता है।

कुछ हल्के रंगों के सूत्र यहाँ दिये जाते हैं।

अवयव नाम	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
टिन आक्साइड	६६	६५	—	५०	—
बोरेक्स	३०	२५	—	—	१०
पोटाश डाई क्रोमेट	४	—	३५	१०	—
केओलिन	—	६०	३५	१०	८
लेड-क्रोमेट	—	३०	—	—	२५
कोबाल्ट आक्साइड	—	०५	—	—	—
जिंक आक्साइड	—	—	१५	२५	५०
लौह आक्साइड	—	—	१२	५	३
योग	१००	१००	१००	१००	१००

१ लाइलक (Lilac) २ बैंगनी ३ हल्का बादामी ४ नारंगी ५ रक्त लाल।

भूरे तथा काले रंजक बनाने के कुछ सूत्र नीचे दिये जाते हैं। इन मिश्रणों को ११६०° से० पर निस्तापित करने के पश्चात् पीसकर अच्छी तरह धो लेना चाहिए।

	(१)	(२)	(३)	(४)
फेरिक क्रोमेट	९५	९०	७५	७०
कोबाल्ट आक्साइड	—	५	—	१५
मैंगनीज-डाई-आक्साइड	५	५	२५	१५

१ तथा २ भूरे रंजक हैं एवं ३ और ४ एकदम काले रंजक हैं। प्रलेप तथा काँच वल्कयों में इन रंजकों की मात्रा १० प्रतिशत प्रयोग करनी चाहिए।

बराबर मात्रा पानी में घुलाकर डालो। इन सबको फिर पूर्णरूप से वाष्पीकरण द्वारा सुखाओ। बचे हुए पदार्थ को पानी में घुलाओ तथा सरन्ध्र पोरसिलेन पात्र के चूर्ण द्वारा इसे अवशोषित करा लो, सुखा लो। तत्पश्चात् निस्तापित कर लो। प्रयुक्त किये जानेवाले प्लैटीनम की मात्रा पर ही रजक की रजन शक्ति निर्भर करती है। एनामेल रजक के रूप में प्रयोग करने के लिए इस रजक में कोई मृदु द्रावक मिलाओ। प्रलेप रजक तथा अन्त प्रलेप रजक के रूप में प्रयोग करने के लिए किसी द्रावक के मिलाने की आवश्यकता नहीं होती।

मिश्रित रंजक—विभिन्न आक्साइडो के मिश्रण से नाना प्रकार के रंग उत्पन्न किये जा सकते हैं। निम्नलिखित मिश्रणों को ११६०° सें० पर निस्तापित करने के बाद अच्छी तरह पीसो तथा धोओ। इन रजकों को ३ से ४ प्रतिशत तक प्रलेप या काँच कलई में मिलाने पर अच्छे रंग प्राप्त होते हैं।

अवयव नाम	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)	(८)
फेरिक आक्साइड	३०	२०	१०	४०	—	—	—	१२
क्रोमिक आक्साइड	२०	३०	४०	१०	४०	५०	—	१०
कोबाल्ट ,,	—	—	—	—	१०	—	१०	—
मैंगनीज ,,	—	—	—	—	—	—	१६	—
जिंक ,,	२०	३०	४०	४०	—	—	३२	५०
फेल्सपार	—	—	—	—	२५	—	२४	—
जिप्सम	—	—	—	—	१०	—	—	—
केओलिन	३०	२०	१०	१०	१५	५०	१८	२८

(१) गाढा चॉकलेट (२) गाढा चॉकलेट बादामी (३) हरा बादामी (४) गहरा बादामी (५) घासी हरा (६) गहरा हरा (७) नीला बैंगनी (८) पीला लाल।

८५०° से ९००° सें० पर पूर्वनिस्तापित केओलिन अधिक स्थायी रंजक उत्पन्न करती है। जिप्सम के स्थान पर प्लास्टर के पुराने साँचों का चूर्ण डालने से भी रंग में सुधार आता है।

कुछ हलके रंगों के सूत्र यहाँ दिये जाते हैं।

अवयव नाम	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
टिन आक्साइड	६६	६५	—	५०	—
बोरैक्स	३०	२५	—	—	१०
पोटाश डाई क्रोमेट	४	—	३५	१०	—
केओलिन	—	६ ५	३५	१०	८
लैड-क्रोमेट	—	३ ०	—	—	२५
कोबाल्ट आक्साइड	—	० ५	—	—	—
जिंक आक्साइड	—	—	१५	२५	५०
लौह आक्साइड	—	—	१५	५	७
योग	१००	१००	१००	१००	१००

१ बकाइन (Lilac) २ बैंगनी ३ हलका बादामी ४ नारंगी ५ रक्त लाल।

भूरे तथा काले रंजक बनाने के कुछ सूत्र नीचे दिये जाते हैं। इन मिश्रणों को ११६०° से० पर निस्तापित करने के पश्चात् पीसकर अच्छी तरह धो लेना चाहिए।

	(१)	(२)	(३)	(४)
फेरिक क्रोमेट	९५	९०	७५	७०
कोबाल्ट आक्साइड	—	५	—	१५
मैंगनीज-डाई-आक्साइड	५	५	२५	१५

१ तथा २ भूरे रंजक हैं एवं ३ और ४ एकदम काले रंजक हैं। प्रलेप तथा काँच कलइयों में इन रंजकों की मात्रा १० प्रतिशत प्रयोग करनी चाहिए।

पंचम अध्याय

धातवीय चमक तथा रंजन विधियाँ

मृत्सामग्रियों, जैसे कांच, श्वेत मृत्पात्रों, पोरसिलेन पात्रों तथा कांच कलईयुक्त पात्रों पर रंगीन दीप्ति या चमक उनकी सुन्दरता बढ़ाने के लिए दी जा सकती है। यह *चमक पात्र के चिकने तल को कुछ चुनी हुई धातुओं की बहुत पतली तह से ढँककर* उत्पन्न की जा सकती है। ये धातुएँ ताप द्वारा पिघलाकर पात्र के तल पर स्थिर कर दी जाती हैं। इस पतली तह पर पड़नेवाली प्रकाश-किरणें परावर्तित होकर मोती के समान दीप्ति उत्पन्न करती हैं, जो इस चुनी हुई धातु की एक विशेषता है। इस कार्य में प्रयुक्त की जानेवाली धातुएँ दो प्रकार की होती हैं। प्रथम वर्ग में वे धातुएँ हैं, जो कोई रंग नहीं उत्पन्न करतीं, वरन् केवल दीप्ति-प्रभाव ही उत्पन्न करती हैं। ये धातुएँ बिस्मिथ, सीसा, जस्ता तथा एल्यूमिनियम हैं। द्वितीय वर्ग की धातुएँ विशेष प्रकार की रंगीन चमक तथा आभा उत्पन्न करती हैं। इन धातुओं में यूरेनियम, *ताँबा, लोहा, कोबाल्ट, निकिल कैडमियम आदि हैं। अच्छी प्रकार चुनी हुई दो या दो* से अधिक धातुओं के मेल से बहुत ही मनोहारी रंग उत्पन्न हो सकते हैं।

प्राचीन अरब तथा इटली निवासी मृत्सामग्रियों पर चमक उत्पन्न करने की इस कला में बहुत ही दक्ष थे। जब मूरों ने स्पेन को जीता था, तो उन्होंने सुनहली चमकवाली टालियों से मस्जिदें बनवायी थीं, जो काफी दूर से देखी जा सकती थीं। चमक चढ़े हुए प्राचीन पात्र यूरोपीय देशों के अजायबघरों में अब भी देखे जा सकते हैं।

धातवीय चमक उत्पन्न करने की प्राचीन विधियाँ अनिश्चित हैं, कारण उनसे हर बार रंग की एक ही आभा नहीं प्राप्त होती। ताँबे में चाँदी की बहुत थोड़ी-सी मात्रा मिलाकर, ताँबे का सर्वाधिक उपयोग लाल से लेकर कांस्य रंग तक की चमक उत्पन्न करने में होता था। ताँबे की चमक के लिए निम्नलिखित अनुपात से अच्छा परिणाम निकलता है।

कापर कार्बोनेट	१७	१८	२७
सिल्वर कार्बोनेट	१	२	३
बिस्मिथ कार्बोनेट	१२	१०	—
(लाल) गेरू	७०	७०	७०

चाँदी की थोड़ी मात्रा ताँबे को शीघ्र ही पिघला देती है तथा ताँबे के लाल रंग को नीली आभा प्रदान करती है। बिस्मिथ ताँबे का गलनाङ्क अधिक कम करता है, तथा ताँबे के लाल रंग को मोती की सीप जैसी आभा प्रदान करता है। लाल गेरू की उपस्थिति केवल मिश्रण की मात्रा बढ़ाती है तथा प्रलेप को ब्रश द्वारा लगाने में सरलता प्रदान करती है। अवयव महीन पीस लिये जाते हैं और तब पानी और ट्रैगेकेन्थ गोंद के साथ गारा-जैसा प्रलेप बना लिया जाता है। यह प्रलेप पात्र की चिकनी सतह पर समान रूप से मोटी तह में मृदु ब्रश द्वारा लगा दिया जाता है तथा छाया में धीरे-धीरे सुखाया जाता है। शीघ्रतापूर्वक सुखाने से सूखे प्रलेप पर सूक्ष्म दरारें पड़ सकती हैं। ये दरारें अन्त में चमकीली सतह पर निशान बन जायँगी। अब सूखे हुए पात्र भट्ठी में पकाये जाते हैं। भट्ठी में पात्र काफी शक्तिशाली अवकारक वातावरण में पकाये जाने चाहिए। भट्ठी के अन्दर अवकारक वातावरण उत्पन्न करने के लिए भट्ठी के प्रकोष्ठ में लकड़ी के टुकड़े फेंके जा सकते हैं। पकाने का तापक्रम इतना अधिक न हो कि लाल गेरू गल जाय, अन्यथा यह पात्र के चिक्कन प्रलेपन पर चिपक जायगा। पकाने के पश्चात् पात्र का तल कठोर ब्रश से साफ किया जाता है तथा पानी के साथ धोया जाता है।

मृत्पात्रों पर चमक उत्पन्न करने की वर्तमान विधियाँ प्राचीन विधियों से बिलकुल भिन्न हैं। आजकल प्रयोग की जानेवाली धातु सर्वप्रथम रेज़ीनेट, लिनोलिएट या नैफ्थीनेट जैसे धातवीय साबुनों में परिवर्तित कर ली जाती हैं। ये धातवीय साबुन पानी में अघुलनशील परन्तु कुछ वाष्पशील घोलकों, जैसे तारपीन का तेल, टॉलीन (Toulene), नाइट्रोबेंज़ीन, रोज़मेरी का तेल, स्पाइक लैवेण्डर तेल तथा बेंज़ोल आदि में घुलनशील होते हैं। ये साबुन पात्र के धरातल पर सरलतापूर्वक मुलायम ब्रश द्वारा या बौछार-विधि द्वारा लगाये जा सकते हैं। समान रंग तथा चमक प्राप्त करने के लिए साबुन की परत का समान होना परमावश्यक है। पतली तैलीय परत सरलता से सूख जाती है; परन्तु सुखाने की क्रिया धीमी होनी चाहिए। सूखे हुए पात्र बाद में भट्ठी में पकाये जाते हैं। विभिन्न प्रकार के पात्रों के लिए भट्ठी का तापक्रम ६००° से ९००° सें० के बीच रखा जाता है। श्वेत प्रलेपित मृत्पात्रों तथा पोरसिलेन पात्रों के लिए भट्ठी

का तापक्रम ८००° से ९००° सें० के बीच होता है, परन्तु काँच तथा काँच कलई युक्त वर्तनो के लिए तापक्रम कम रहता है।

पकाते समय धातवीय साबुन के कार्बनिक यौगिक जल जाते हैं और भट्ठी के प्रकोष्ठ में अवकारक वातावरण उत्पन्न करते हैं, जिसके कारण धातवीय यौगिक धातु के रूप में बदल जाते हैं। धातुओं की बहुत पतली परत गलकर पात्रतल पर चिपक जाती है। यह धातु की पतली परत चुनी हुई धातुओं के अनुसार विशेष रंग तथा चमक उत्पन्न करती है।

धातवीय साबुन निम्न विधि से बनाये जा सकते हैं। सर्वप्रथम पानी में घुलनशील रोज़िन, अलसी या तीसी के तैल (Linseed oil) या नैफ्थीनिक अम्ल का कास्टिक सोडा के साथ क्षार साबुन बना लेते हैं। सोडियम कार्बोनेट का प्रयोग जहाँ तक हो, नहीं करना चाहिए, कारण बचा हुआ कार्बोनेट धातवीय लवणों से क्रिया करके उन्हें अघुलनशील धातवीय कार्बोनेट के रूप में अवक्षेपित कर देगा। ये धातवीय कार्बोनेट वाष्पशील घोलकों में घुलनशील नहीं होते। धातवीय साबुन बनाने के लिए अवयव निम्नलिखित अनुपात में लिये जा सकते हैं—

		कास्टिक सोडा
स्वच्छ रोज़िन	१००	१३·०
विशुद्ध तीसी का तेल	१००	१४·५
नैफ्थीनिक अम्ल	१००	१२·५
(एसिड वेल्यू १७५)		

कास्टिक सोडा को ३८–४०° Be° या लगभग ३५ प्रतिशत गाढ़ेपन का घोल बनाने के लिए पानी में घोलो। रोज़िन को पिघलाओ या तेल को गरम करो और तब क्षारीय घोल को धीरे-धीरे विलोडते हुए मिलाओ। जब पूरा क्षार रोज़िन या तेल में पड़ जाय, तो इन सबको उस समय तक गरम रखो, जब तक कि साबुनीकरण पूर्ण न हो जाय। साबुनीकरण के पूर्ण होने का पता निम्नलिखित परीक्षण से लगाया जा सकता है।

रोज़िन के साबुन के लिए—साबुन का छोटा-सा टुकड़ा कुछ पानी से भरी परखनली में डालकर खूब अच्छी तरह हिलाओ। यदि रोज़िन पूर्ण रूपेण साबुनीकृत हो गया है, तो पूरा साबुन पानी में घुल जायगा और पानी को दूधिया श्वेत कर देगा। असाबुनीकृत भाग नीचे बैठ जायगा।

अलसी के तेल या नैफ्थीनिक साबुनों के लिए—साबुन के छोटे से टुकड़े को सोख्ता कागज़ में रखकर दबाओ। यदि साबुन में बिना क्रिया किये हुए तेल या अम्ल का कुछ

अंश है, तो वह कागज द्वारा सोख लिया जायगा और कागज़ पर अल्प पारदर्शक चिह्न हो जायगा।

प्रयोग से पूर्व साबुन का पानी के साथ २० प्रतिशत घोल बना लो। धातवीय साबुन बनाने के लिए धातु का ऐसा लवण लिया जाता है, जो पानी में घुलनशील हो। अच्छा परिणाम पाने के लिए धातवीय लवणों का पानी में १० प्रतिशत घोल बना लिया जाता है। इस कार्य के लिए ताँबा, मैंगनीज़, कोबाल्ट, जस्ता तथा एल्यूमिनियम के सल्फेट, लोहे तथा टिन के क्लोराइड और सीसे, बिस्मिथ तथा यूरेनियम के नाइट्रेट लवण लिये जा सकते हैं। ये दोनों घोल ठंडी अवस्था में ही तब तक मिलाये जाते हैं, जब तक कि अवक्षेपण पूर्ण न हो जाय। जब दही जैसा अवक्षेप गरम पानी से अच्छी तरह धोया जाता है। बाद में धुले हुए अवक्षेप को गरम हवा द्वारा शीघ्रतापूर्वक सुखा लिया जाता है। यदि अँधेरे में सुखाया जाय तो और भी अच्छा हो, कारण जब रोज़ीनेट तेज़ प्रकाश तथा हवा में काफी देर तक रख दिया जाय, तो वह ऑक्सीकृत होकर घोलकों में अघुलनशील हो जाता है। रोज़ीनेट की अपेक्षा लिनोलिएट अधिक स्थायी होते हैं, परन्तु इस बात में नैफ्थीनेट सबसे अधिक स्थायी होते हैं। अतः रखना हो तो इन धातवीय साबुनों को घोलक में घुलाकर डाट लगी हुई बोतलों में भरकर रख देना चाहिए। क्षारीय साबुन को अवक्षेपित करने के लिए कितना धातवीय लवण लगेगा, यह नीचे सारणी में दिया गया है।

साबुन ५० ग्राम	लवण ग्रामों में		धातवीय साबुन की प्रकृति
सोडियम लिनोलिएट	कापर सल्फेट	२१·२	हरा, ठोस।
	मैंगनीज़ सल्फेट	१३·०	पीला बादामी, मुलायम ठोस।
	कोबाल्ट क्लोराइड	२०·०	काला, शुष्क, ठोस।
	लैड नाइट्रेट	२४·२	हलका बादामी, चिपचिपा ठोस।
	फेरिक क्लोराइड	१६·६	काला, शुष्क ठोस।
सोडियम नैफ्थीनेट	कापर सल्फेट	१८·५	हरा, कठोर ठोस।
	जिंक सल्फेट	१६·५	श्वेत, काफी चिपचिपा ठोस।
रोज़िन साबुन	कापर सल्फेट	२८·८	हरा, ठोस।
	लैड नाइट्रेट	२०·५	मासल रंग का गारे जैसा।
	जिंक सल्फेट	२३·२	श्वेत, चिपचिपा।
	मैंगनीज़ सल्फेट	१३·५	गुलाबी, मुलायम।
	कोबाल्ट नाइट्रेट	२७·५	हलका बैंगनी ठोस।

गीली विधि से धातवीय साबुन बनाने के पश्चात् उन्हें गरम पानी से खूब अच्छी तरह धो लेना चाहिए, जिससे साबुन में उपस्थित कोई भी पानी में घुलनशील लवण न रहे। धोये हुए साबुनो को हवा की भट्ठी में ७०°–८०° में० पर सुखाया जाता है। अधिक तापक्रम से कुछ साबुन पिघल सकते हैं। सुखाने के पश्चात् इन साबुनों में नमी ०–३ प्रतिशत तक रहती है। इन साबुनों को पूर्णरूपेण सुखाने में सदैव विच्छेदन का भय रहता है।

कुछ धातवीय साबुनो के विश्लेषण के परिणाम नीचे दिये जाते हैं।

साबुन	नमी का प्रतिशत	सम्पूर्ण राख का प्रतिशत	धुली राख का प्रतिशत
लैड लिनोलिएट	१·९	२८·६	२७ ८
कोबाल्ट लिनोलिएट	२ ८	१२ ६	१० ५
मैंगनीज़ लिनोलिएट	१·३	१३ ५	१२ २
लौह लिनोलिएट	० ५	१४ १	१२ ६
टिन रोज़ीनेट	० ९	२९ ४	२८ ५
बिस्मिथ रोज़ीनेट	० १	१३ २	१२ ९
टिन नफ्थीनेट	० ५	२० ७	२०·१
बिस्मिथ नैफ्थीनेट	० २	१६ ५	१६·१

टिन और बिस्मिथ के साबुन बनाने में विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है। जब स्टैनस क्लोराइड या बिस्मिथ नाइट्रेट पानी में घुलाये जाते हैं, तो आक्सी लवणो में परिवर्त्तित हो जाते हैं। ये आक्सी लवण पानी में आलम्बन रूप में रहते हैं तथा इन्हें उचित अम्लो को डालकर घुला लेना चाहिए। परन्तु जब ये अम्लीय घोल क्षारीय साबुन के घोल में डाले जाते हैं, तो बना हुआ साबुन इन मुक्त खनिजाम्लो से विच्छेदित हो जाता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए साबुनघोल में मुक्त कास्टिक सोडा, मुक्त खनिजाम्लो को उदासीन करने के लिए काफी मात्रा में होना चाहिए। यदि यह सावधानी न बरती गयी तो क्षार साबुन के विच्छेदन से प्राप्त तेल तथा अम्ल द्रव की सतह पर तैरते देखे जायँगे।

टिन तथा बिस्मिथ साबुन बनाने के लिए अम्ल और कास्टिक सोडा की आवश्यक मात्राएँ आगे दी जाती हैं।

साबुन ५० ग्राम	धातवीय लवण	उत्पादन	साबुन की प्रकृति
रोजिन साबुन कास्टिक सोडा—२५ ग्राम	स्टैनस क्लोराइड—२४ ग्राम हाइड्रोक्लोरिक अम्ल-२२ घ से	५० ग्राम	पीला चूर्ण।
नैफ्थीनिक साबुन कास्टिक सोडा-३३ ग्राम	स्टैनस क्लोराइड-१७ ५ ग्राम हाइड्रोक्लोरिक अम्ल-३० घ से	३० ,,	पिघला चिप-चिपा गारे जैसा।
नैफ्थीनिक साबुन कास्टिक सोडा—२२ ग्राम	बिस्मिथ सबनाइट्रेट-१२ ग्राम शोरे का अम्ल—२२ घ० से०	२८ ,,	पिघला चिप-चिपा तथा पीले रंग का।

बिस्मिय, जस्ता तथा सीसे की चमक शुष्क विधि से भी उत्पन्न की जा सकती है। $3C_{44}H_{64}O_5 + 2Bi(NO_3)_2 \; 5H_2O = Bi_2(C_{44}H_{62}O_5)_3 + 6HNO_3 + 5HO_2$

२५ ग्राम रोज़िन लेकर कम तापक्रम पर पिघला लो। अब तरल रोजिन में विलोड़ते हुए १० ग्राम बिस्मिथ नाइट्रेट का महीन चूर्ण या ७ ग्राम बिस्मिथ सबनाइट्रेट का महीन चूर्ण डालकर तब तक विलोडो, जब तक कि बादामी रंग का पिण्ड न बन जाय। इस बादामी पिण्ड में ७५ घन सेण्टीमीटर स्पाइक लवेण्डर तेल डालकर इतना बिलोडो कि बादामी ठोस पदार्थ तेल में घुल जाय। अब आग पर से उतार लो और बर्तन को ढककर २४ घण्टे ऐसा ही रखा रहने दो, जिससे अघुलनशील पदार्थ जमकर नीचे बैठ जायँ। स्वच्छ द्रव को ऊपर से निथारकर डाट लगी बोतलो में प्रयोग के लिए रख लो। शेष बिना घुले पदार्थ को नये मिश्रण के साथ फिर प्रयोग किया जा सकता है। यदि स्वच्छ द्रव पात्र पर लगाने के विचार से काफी पतला है, तो ब्रश के साथ प्रयोग करने से पूर्व पोरसिलेन की तश्तरी में थोडी सी मात्रा को हवा में खुला छोड़कर गाढ़ा किया जा सकता है। जस्ते व सीसे की चमक इसी विधि से उनके एसीटेटों का प्रयोग करके बनायी जाती है। तीन भाग रोजिन के साथ एक भाग इन धातुओं के एसीटेट का प्रयोग करो। सात भाग धातु रेज़ीनेट के लिए सात भाग तारपीन के तेल का प्रयोग करो।

टिन की चमक इससे भिन्न विधि से तैयार की जाती है। दस भाग गन्धक बालसम को गरम करो। इसमें अविराम विलोडन के साथ ३ ५ भाग स्टैनस क्लोराइड मिलाओ। जब श्यान द्रव में टिन लवण लगभग घुल जाय, तो इसमें २२ भाग विशेष प्रकार से बना लवेण्डर तेल मिलाओ। यह तेल मिश्रण छ भाग लवेण्डर के तेल, तीन भाग क्लोव का तेल तथा एक भाग नाइट्रोबेंजीन मिलाकर बनाया जाता है। इन सबको उस समय

दिया जाय तो सजावट शीघ्र ही घिस जायगी। इस कारण सोने के साथ रहोडियम (Rhodium) या क्रोमियम की थोडी-सी मात्रा मिला दी जाती है। ये धातुएँ सोने के घिसने को कम करती हैं। कभी-कभी तरल स्वर्ण में प्रयोग होनेवाले सोने का प्रतिशत कम करने के लिए लौह तथा यूरेनियम का भी प्रयोग किया जाता है। प्रायः तरल स्वर्ण बनाने में १०–१२ प्रतिशत शुद्ध सोने का प्रयोग किया जाता है।

प्राय तरल स्वर्ण बनाने में औरिक क्लोराइड का प्रयोग करते हैं। औरिक क्लोराइड, शुद्ध सोने को अम्लराज (Aqua-Regia) मे घुलाकर बनाया जाता है। यह औरिक क्लोराइड नाइट्रिक अम्ल तथा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से रहित होना चाहिए। ३५ ग्राम सोने को लगभग २०० c c. ताजा बने हुए अम्लराज की आवश्यकता होती है। तीन भाग सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में एक भाग सान्द्र नाइट्रिक अम्ल मिलाकर प्रयोग से पूर्व अम्लराज बनाया जा सकता है।

१२ प्रतिशत सोने का प्रयोग करते हुए १०० ग्राम तरल स्वर्ण बनाने के लिए निम्नलिखित अवयव प्रयुक्त किये जा सकते हैं—

(१) गोल्ड ग्लैस (४५ प्रतिशत सोना)	२६ ७ ग्राम
(२) बिस्मिथ रेज़ीनेट (६ प्रतिशत बिस्मिथ आक्साइड)	६ ५ ग्राम
(३) क्रोम रेज़ीनेट (४ प्रतिशत क्रोमियम आक्साइड)	१·२ ,,
(४) रहोडियम रेज़ीनेट (३ ५ प्रतिशत रहोडियम)	१·२ ,,
(५) रोज मेरी तेल	२३·० ,,
(६) फेनेल (Fennel) तेल	९·८ ,,
(७) एसफाल्ट घोल (५० प्रतिशत नाइट्रोबेन्जीन)	१४·० ,,
(८) साधारण रजन (Rosin) घोल (५० प्रतिशत तारपीन का तेल)	१७·६ ,,
	१००·० ,,

निम्नलिखित सूत्र से एक सस्ता तरल स्वर्ण बनाया जा सकता है। सोने के कुछ भाग के बदले लोहा डाला जाता है। इसमें क्रोमियम और रहोडियम भी नही डाला जाता, कारण लोहे से सोने की परत इतनी काफी कठोर हो जाती है कि साधारण घर्षण सहन कर सके।

गोल्ड ग्लैस	४०
बिस्मिथ रेज़ीनेट	२५
लौह रेज़ीनेट	२०
एसफाल्ट घोल (नाइट्रोबेंजीन मे)	१५
	१००

उपर्युक्त अवयवो को उनके घोलवो मे घुला लेना चाहिए। उसके बाद एक यान्त्रिक मिश्रक मे एमफाल्ट घोल के साथ मिला लेना चाहिए।

गोल्ड ग्लैस बनाना—बडे पोरसिलेन के तसले मे गन्धक वाल्सम लो। अविराम विलोडन के साथ इसमे इतना औरिक क्लोराइड डालो कि मिश्रण मे सोना ४५ प्रतिशत हो जाय। औरिक क्लोराइड का घोल काफी तनु होना चाहिए। तेज विलोडन के लिए पदार्थों का गरम करना आवश्यक है। इसके बाद क्रियाएँ पूर्ण होने के लिए २४ घण्टे तक इसे ऐसा ही छोड़ दो।

ऊपर के स्वच्छ द्रव को निथारकर बैठे हुए काले पिण्ड से अलग कर लो तथा काले पिण्ड को ५ या ६ बार गरम पानी से इतना धोओ कि धोनेवाले पानी में हाइड्रो-क्लोरिक अम्ल न आये। धोनेवाले पानी को भी इकट्ठा कर लो, कारण उसमें भी कुछ सोने का घोल है। काले पदार्थ को खरल में रगडकर तथा कभी-कभी गरम करके उसकी सब नमी को दूर कर दो। अब यह दूसरे अवयवो के साथ मिलाने के लिए तैयार है।

तरल स्वर्ण के सभी अवयव उपर्युक्त गोल्ड ग्लैस में मिलाओ और कुछ घण्टो तक अच्छी तरह हिलाओ। जहाँ तक हो सके यान्त्रिक हल्लित्र, का प्रयोग करो, कारण इससे विलोडन अच्छा होता है। इसके पश्चात् घोल को अच्छी प्रकार बन्द करके बोतलो में रखो। रेज़ीनेट घोल इसी अध्याय मे बतायी गयी विधि से बनाना चाहिए। एसफाल्ट घोल तूलिका द्वारा द्रव को पात्र पर लगाने में सहायक होता है।

तरल स्वर्ण को दूसरे धातवीय रेज़ीनेटों के साथ मिलाने से विभिन्न रंगीन चमकें उत्पन्न की जा सकती हैं।

१ नीली चमक

तरल स्वर्ण	१ भाग
टिन रेज़ीनेट	४ भाग
विस्मिथ रेज़ीनेट	१० भाग

२ हरी चमक

नीली चमक	३ भाग
यूरेनियम रेज़ीनेट	२ भाग

३ गुलाबी चमक

तरल स्वर्ण	१ भाग
टिन रेज़ीनेट	१ भाग
विस्मिथ रेज़ीनेट	४ भाग

बुद्धिमान चित्रकार विभिन्न अवयवों का अनुपात बदलकर विभिन्न प्रकार की आभाएँ उत्पन्न कर सकता है।

रंजन-विधियाँ—मृत्पात्रों को सजाने के लिए रंगीन प्रलेप का प्रयोग करने तथा प्रलेपित तल पर धातवीय चमकें उत्पन्न करने के अतिरिक्त और भी बहुत-सी विधियाँ काम में लायी जाती हैं। मुख्य विधियाँ निम्नलिखित वर्गों में बाँटी जा सकती हैं।

१. चित्रांकन विधि।
२ बौछार विधि।
३ छापा विधि।
४ जलचित्र विधि।
५ छिड़काव विधि।
६ सरन्ध्र प्रलेपन विधि।

मृत्पात्रों पर रंग चढ़ाने के लिए तूलिका सरलतम साधन है। तूलिका द्वारा सरलतापूर्वक रंग चढ़ाने के लिए रंजक चूर्ण के साथ कुछ तेल तथा गोंद जैसे पदार्थ मिला लेने चाहिए, जिससे द्रव सूख जाने पर रंजक पात्र पर चिपका रहे। इस उद्देश्य के लिए, विशेष कर पके हुए सरन्ध्र पात्रों पर चित्रांकन के लिए जो तेल साधारणतः प्रयोग किया जाता है, उसे चिपचिपा तेल (Fat-oil) कहते हैं।

यह चिपचिपा तेल निम्नलिखित अवयवों को एक साथ भाप ऊष्मक मे गरम करके बनाया जा सकता है।

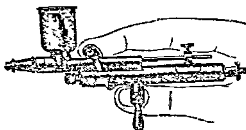
तारपीन का तेल	७ भाग
रजन (Rosin)	२ भाग

दूसरी विधि में तारपीन के तेल मे १–२ प्रतिशत पकाया हुआ गाढ़ा (Thickly Boiled) अलसी का तेल अच्छी तरह मिलाने से भी चिपचिपा तेल बनाया जा सकता है।

इस माध्यम के साथ अच्छी तरह मिलाये गये रजक चूर्ण पात्र द्वारा अवशोषित हुए बिना, पात्र पर सरलतापूर्वक लगाये जा सकते हैं। तारपीन का तेल शीघ्रता से वाष्पशील हो जाता है तथा रजन या अलसी का तेल पात्र पर रजक चूर्ण को स्थिर करने के लिए बच जाता है। इसमे कार्बनिक पदार्थों के कार्बनीकरण द्वारा सजावट के नष्ट होने का डर भी नही रहता।

प्रलेपित पात्र के तल पर चित्रांकन के लिए चिपचिपे तेल के स्थान पर थोड़ी-सी गिलसरीन या गोंद के पानी का प्रयोग किया जा सकता है।

बौछार-विधि—अन्त प्रलेप रजक तथा प्रलेप तल-रंजक दोनो के ही लिए बौछार-विधि का प्रयोग किया जा सकता है। इसके लिए सुई बौछार यन्त्र काम में लाया जाता है। इस यन्त्र में २०-३० पौंड प्रतिवर्ग इंच दबाववाली हवा के प्रयोग से बौछार होती है।



चित्र २२ रजन के लिए सुई बौछार-यन्त्र

अन्त प्रलेप रंजन के लिए रजक को तारपीन के तेल तथा थोड़े से चिपचिपे तेल के साथ अच्छी तरह मिलाकर एक पतले द्रव के रूप में कर लेना चाहिए।

प्रलेप तल रजन के लिए एनामेल रजक चूर्ण को इतने पानी के साथ मिला लिया जाता है कि लकडी का टुकडा उसमें सीधा खडा रह सके। पानी के साथ थोडा गोंद भी डाल लेने से पानी सूख जाने पर भी रजक चिपका रहता है।

छापना—श्वेत मृत्पात्र प्राय चिकन-प्रलेपन से पूर्व रगीन नक्शे छापकर सजाये जाते हैं। इस उद्देश्य के लिए नीले और हरे रजको का अधिक उपयोग होता है, कारण ये रजक प्रलेप पकाने के उच्च तापक्रम पर नष्ट नही होते। निम्नलिखित अवयव-अनुपात अच्छे छापा-रजक बनाने में प्रयुक्त किये जा सकते हैं—

छापने का नीला रजक		छापने का हरा रंजक	
कोबाल्ट आक्साइड	६०	क्रोम आक्साइड	३२
चकमक	२०	कोबाल्ट	८
फेल्सपार	१०	एल्यूमिना	२५
चीनी मिट्टी	१०	फेल्सपार	१५
	१००	चकमक	१८
		श्वेत सीसा	२
			१००

उपर्युक्त मिश्रणो को ११००° से० पर निस्तापित करो। अच्छी तरह पीसो, जिससे २५० नम्बरवाली चलनी से सब छन जाय। प्रयोग से पूर्व रंजक को अच्छी तरह धो लो।

छापने की क्रिया सरलतापूर्वक होने के लिए रंजक को किसी छाप-तेल के साथ मिलाकर जितना सम्भव हो गाढा बना लिया जाय। छाप-तेल निम्न प्रकार से बनाया जाता है—

विशुद्ध अलसी का तेल	$\frac{1}{2}$ पाइंट
मैस्टिक गोंद	$\frac{1}{2}$ औस
अम्बर गोंद	$\frac{1}{2}$ औस
श्वेत सीसा	$\frac{1}{2}$ औस

उपर्युक्त अवयवो को धीरे-धीरे इतना उबालो कि शीरा (Molasses) के बराबर गाढे हो जायँ। इसे डिब्बों में बन्द करके कुछ दिन रखो। तेल जितने दिन रखा जायगा उतना ही उत्तम होगा।

छाप-तेल बनाने की एक प्राचीन विधि—

एक क्वार्ट तीसी के तेल तथा आधे पाइंट रँप तेल के मिश्रण को उबालो। जब मिश्रण उबल रहा हो, तभी १ औंस रजन तथा १ औंस श्वेत सीसा और लकड़ी का अलकतरा डालो। इसे लौ-रहित स्पष्ट आँच पर उबालना चाहिए, जिससे आग न पकड़ ले और तब तक उबालना चाहिए कि मिश्रण इतना चिपचिपा हो जाय कि जब इस मिश्रण को ठंडी प्याली में डालकर उँगलियों की सहायता से उसकी चिपचिपाहट का अनुमान करे, तो इस मिश्रण पर से उँगली उठाने पर ५ या ६ इंच या इससे अधिक लम्बा तार निकल आये।

अब तेल को ठण्डा होने दो और जैसे ही बुलबुले निकलना बन्द हो जायँ, इसे आधे पाइण्ट अलकतरा के तेल के साथ बिलोडो। तीसी का तेल जितना पुराना होगा उतना ही कम समय लगेगा और अच्छा उबल जायगा। रखने पर इस प्रकार के बने तेल के गुण भी सुधर जाते हैं। एक अच्छे छाप-तेल से ऐसी ठोस छपाई प्राप्त होनी चाहिए, जो पात्र पर रुक सके और धुल न जाय।

रँप तेल अलसी या तीसी के तेल को कम कठोर बनाता है। मैस्टिक, आरीगन बाल्सम, कैनाडा बालसम या रजन तेल, तेल-मिश्रण को गाढ़ा करने के लिए प्रयोग किये जाते हैं, परन्तु यदि ये पदार्थ अधिक मात्रा में मिला दिये गये तो रंग के धुल जाने की सम्भावना रहती है।

लकड़ी के अलकतरा या ऐसफाल्टम का कार्य, रजकों को पात्र पर अच्छी तरह चिपकाने में सहायक होना है और इस प्रकार धोने पर धुल जाने के डर को समाप्त कर देना है। बहुत थोड़ी-सी मात्रा में श्वेत सीसा, लैड एसीटेट, मैंगनीज़ बोरेट या मैंगनीज़ आक्साइड तेल को चिपकनेवाला बना देते हैं; परन्तु यदि सावधानी का प्रयोग न किया गया तो तेल के ऊपर इन सब यौगिकों की एक परत बन जाती है।

छाप-तेल में अच्छी तरह मिले हुए रजक को सर्वप्रथम गरम तश्तरी पर डालकर पतला कर लिया जाता है। उसके पश्चात् उसे चाकू या स्पैचुला की सहायता से नक्काशी खुदी हुई प्लेट पर फैला दिया जाता है। यह प्लेट ताँबे की बनी हुई होती है। रजक नक्काशियों की खुदाइयों में भर जाता है। अधिक रंजक उसी चाकू से खुरचकर हटा दिया जाता है। अब प्लेट का तल एक मोटी गद्दी से साफ कर दिया जाता है। इस प्रकार अब केवल खुदाई में भरा हुआ रजक ही रह जाता

है। इसके पश्चात् एक बहुत ही पतले कागज पर घुलनशील साबुन की एक पतली परत तूलिका की सहायता से लगा दी जाती है तथा कागज को प्लेट पर इस प्रकार रख दिया जाता है कि कागज का साबुन-घोलवाला भाग प्लेट को छूता रहे। इस साबुन के घोल को साइज (Size) कहते हैं। इसके पश्चात् पूरी प्लेट फैल्ट की मोटी गद्दी लगे हुए बेलनो से दबायी जाती है। अब प्लेट फिर गरम की जाती है और पतला कागज बाहर निकाल लिया जाता है। कागज पर खुदाइयों के निशान आ जाते हैं।

इस प्रकार प्राप्त, छपा हुआ पतला कागज सरन्ध्र पात्र पर रखकर फैल्ट गद्दी द्वारा थोडा-सा दबाकर उसकी सिलवटे निकाल दी जाती हैं। बाद में कठोर तूलिका द्वारा रगड़ दिया जाता है। इसके पश्चात् उसे ऐसा ही कुछ समय तक छोड देते हैं, जिससे सरन्ध्र पात्र रंजक को अवशोपित कर सके। अब पात्र पानी की नाँद में डुबो दिये जाते हैं। थोड़ी देर पानी में रहने से पतला कागज पात्र से छूट जाता है। कागज को स्पज की सहायता से धीरे-धीरे हटा दिया जाता है।

सुखाने के पश्चात् पात्र पर प्रलेप चढाया जाता है।

छापने के लिए 'साइज़' एक पौण्ड घुलनशील साबुन तथा एक औंस सोडा को एक गैलन पानी में उबालकर बनाया जा सकता है।

बडे-बडे कारखानो मे छपाई का काम बेलन-यन्त्र द्वारा किया जाता है। इस विधि में केवल दो-तीन रगो के नक्शे ही एक साथ प्रयोग किये जा सकते हैं।

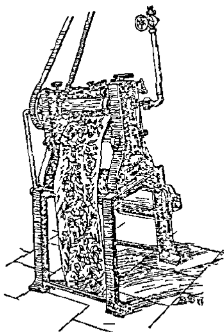
छपाई की विधि से सरन्ध्र तथा प्रलेपित दोनो ही प्रकार के मृत्पात्र सजाये जा सकते हैं।

उचित प्रलेप-घोले में डुबोने से पूर्व सरन्ध्र छपे हुए पात्रो पर सर्वप्रथम स्पज की सहायता से बहुत ही तनु प्रलेप घोल की एक परत चढा दी जाती है। इस प्रलेप घोले को गन्धकाम्ल द्वारा अम्लीय कर लिया जाता है। इस प्रारम्भिक क्रिया से छापने मे प्रयोग की गयी तेल की तह नष्ट हो जाती है और पात्र के बिना छपे हुए तल की अवशोपण शक्ति कम हो जाती है जिसके कारण प्रलेप तैलीय सतह से हट नही जाता और पात्र की पूरी सतह समान रूप से प्रलेपित हो जाती है।

प्रलेपित पात्रो पर छपाई के लिए छाप-तेल के साथ एनामेल रंजक का ही प्रयोग करना चाहिए।

छापा-विधि में केवल दो-तीन रंग के नक्शे ही बनाये जा सकते हैं और इन नक्शों में भी केवल रेखाचित्र ही आ पाता है, परन्तु जल-चित्र-विधि द्वारा कितने ही रंगों के नक्शे बनाये जा सकते हैं। यह विधि केवल प्रलेपित मृत्पात्रों के लिए ही उपयोगी है।

जल-चित्र-विधि—सजावट की इस विधि में विभिन्न रंगों के नक्शों से छपे हुए विशेष प्रकार के कागज प्रलेपित मृत्पात्रों पर नक्शे उतारने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। इन कागजों को जल-चित्र कागज कहा जाता है और इन्हें बनाने के लिए पत्थरों पर नक्शे खोदे जाते हैं। प्रत्येक रंग के लिए अलग-अलग पत्थर लिया जाता है। छापने के लिए रंगों को विशेष प्रकार की वार्निश में मिला लिया जाता है। कागज छापने से पूर्व उस पर घुलनशील पदार्थों की एक बहुत पतली परत चढ़ा दी जाती है। यह परत कागज को रंग से अलग रखती है तथा उसके कारण पात्र पर नक्शे उतारने के बाद कागज सरलतापूर्वक हटाया जा सकता है। इस परत के बनाने के लिए प्रयोग किये जानेवाले पदार्थों में सरलतापूर्वक घुलनेवाले गोंद, ग्लू, डेक्स्ट्रिन, स्टार्च प्रलेप तथा ट्रैगेकेन्थ गोंद हैं। ये पदार्थ पानी में भिगोने पर शीघ्रता से फूल जाते हैं।



चित्र २३. छापा-विधि का छाप-यन्त्र

जलचित्र कागज विशेष कम्पनियों द्वारा बनाये जाते हैं तथा इन जलचित्र *कागजों को किसी विश्वसनीय कम्पनी से ही खरीदना* अच्छा होता है। जलचित्र कागज से प्रलेपित मृत्पात्र पर नक्शे निम्न प्रकार से उतारे जाते हैं।

जलचित्र कागज से आवश्यक चित्र या नक्शे काट लो और उन्हें कुछ क्षणों तक पानी में डुबो दो। पानी कागज में घुसकर गोंद जैसी परत को फुला देगा, परन्तु वार्निश लगी होने के कारण छपा हुआ भाग पानी से अप्रभावित रहता है।

अब प्रलेपित मृत्पात्र के छापे जानेवाले भागों पर एक विशेष प्रकार की चिपचिपी वार्निश लगायी जाती है और तल काफी चिपचिपा होने तक सूखने दिया जाता है। इसके पश्चात् जलचित्र कागज के टुकड़े पात्र के चिपचिपे तल पर इस प्रकार चिपका दिये जाते हैं कि चित्रकारी नीचे की ओर रहे। अब कागज को समान रूप से दबाकर हवा के बुलबुले निकाल दिये जाते हैं। तब पात्र को स्वच्छ पानी की नाँद में डाला जाता है, जिससे कागज अपने आप छूटकर अलग हो जाता है; परन्तु कागज पर छपा चित्र, पात्र तल-पर ही चिपका रह जाता है, कारण बीच की परत घुलकर निकल जाती है। पात्र को नाँद से निकालकर सुखाओ। अब पात्र पकाने के लिए तैयार है। यदि छापते समय असावधानी से कोई कमी या दोष सजावट में आ गया हो, तो उसे तूलिका की सहायता से ठीक कर दिया जाता है।

इस विशेष प्रकार की चिपचिपी वार्निश को प्राय साइज़ कहते हैं। इसे बनाने के लिए निम्नलिखित अवयवों को एक साथ तब तक उबालो जब तक कि द्रव गाढ़ा और चिपचिपा न हो जाय।

तारपीन का तेल	२ गैलन
रेप तेल	$\frac{१}{४}$,,
स्वच्छ रजन (रोज़िन)	५ पौंड
कनाडा बालसम	$\frac{१}{२}$ औंस

यूरोपीय देशों में कुछ कम्पनियों द्वारा बनाये गये जलचित्र कागजों के तल पर यह विशेष वार्निश पहले से ही लगी रहती है। अतः पात्रतल पर इसके लगाने की आवश्यकता नहीं होती।

छिड़काव-विधि—इस विधि में सर्वप्रथम प्रलेपित मृत्पात्र पर तूलिका की सहायता से एक विशेष प्रकार के बने हुए तेल द्वारा पात्र-तल पर आवश्यक सजावट के चित्र बना दिये जाते हैं और उसे इतना सूख जाने दिया जाता है कि तेल चिपचिपा हो जाय। तब रजक के महीन चूर्ण को रुई की सहायता से चिपचिपे तल पर पोत दिया जाता है। अधिक रजक चूर्ण, जो नक्शों के बाहर लग जाता है, शुष्क

तूलिका द्वारा पोंछ दिया जाता है। इस विधि की सफलता तेल तथा रजक को समान रूप से लगाने पर निर्भर करती है। इस कार्य के लिए प्रयुक्त होनेवाले विशेष तेल को आधार तेल कहते हैं। यह तेल बनाने के लिए निम्नलिखित अवयवों को मन्दी आँच पर तब तक पकाओ, जब तक कि द्रव गाढ़ा न हो जाय।

अलसी का तेल	१ भाग
मैस्टिक गोंद	१ ,,
लाल सीसा	½ ,,
रजन (रोजिन)	½ ,,

प्रयोग करने से पूर्व तेल को तारपीन के तेल के साथ मिलाकर पतला कर लो।

सरन्ध्र प्रलेप (Engobes)—सरन्ध्र प्रलेप आवश्यकतानुसार श्वेत या रंगीन विशेष प्रकार के बने घोले होते हैं, जिनकी परत पात्रों पर चढ़ायी जाती है। सरन्ध्र प्रलेपन का मुख्य उद्देश्य रंगीन पात्रों के तल को श्वेत परत से ढकना होता है, जैसा कि अग्नि-मिट्टी से बने स्वास्थ्य सम्बन्धी पात्रों में प्रयोग किया जाता है। विशेष अवस्थाओं में कभी-कभी रंगीन सरन्ध्र प्रलेप श्वेत प्रलेपित मृत्पात्रों तथा टालियों को सजाने में भी प्रयुक्त किये जाते हैं।

सरन्ध्र प्रलेपन के लिए यह आवश्यक है कि पात्र तथा सरन्ध्र प्रलेप का सभी तापक्रमों पर समान व्यवहार हो, अन्यथा पकाने के पश्चात् सरन्ध्र प्रलेप या तो चटक जायगा या पात्र तल से छूट जायगा। यदि प्रलेप का संगठन ठीक है, तो प्रलेप पात्र पर दृढ़ता से स्थिर हो जायगा और बड़े से बड़े तापक्रम-परिवर्तनों में भी स्थिर रहेगा। यदि तापक्रम-परिवर्तन से सरन्ध्र प्रलेप में चटक आ जाय या वह पात्र-तल से छूट जाय, तो स्पष्ट है कि सरन्ध्र प्रलेप का प्रसार-गुणक, पात्र के प्रसार-गुणक से भिन्न है। ऐसी अवस्था में सरन्ध्र प्रलेप का संगठन बदलकर ऐसा कर लिया जाता है कि इसका प्रसार-गुणक पात्र के प्रसार-गुणक के बराबर हो जाय।

श्वेत सरन्ध्र प्रलेप के मुख्य अवयव चीनी मिट्टी, फेल्सपार तथा स्फटिक हैं। सरन्ध्र प्रलेप की श्वेतता वृद्धि के लिए कभी-कभी खड़िया भी मिलाते हैं। सरन्ध्र प्रलेप में सिलीका की मात्रा को घटा-बढ़ाकर कुछ प्रयोगों के पश्चात् उसको पात्र के योग्य बनाया जा सकता है।

साधारण मिट्टियो या अग्नि-मिट्टियो से बने रगीन मृत्पात्रो पर श्वेत सरन्ध्र प्रलेप प्रयोग करने से पात्र श्वेत दीखता है। इन सरन्ध्र प्रलेपो का सगठन ऐसा रखा जाता है कि वे प्रयोग किये जानेवाले पात्रो के पकाने के तापक्रम पर ही गलें और गलकर उस पर चिपक जायँ। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विभिन्न प्रकार के द्रावको का प्रयोग किया जाता है। पक्की मिट्टी के पात्रो तथा अग्नि मिट्टी के पात्रो पर प्रयोग किये जानेवाले कुछ विभिन्न तापक्रमो पर गलनेवाले सरन्ध्र प्रलेपो का संगठन नीचे दिया जाता है।

	(१)	(२)	(३)
चीनी मिट्टी	८०	३५	८०
श्वेत सीसा या सफेदा	१८	×	×
स्फटिक	२	२५	×
फेल्सपार	×	१२	१०
खड़िया	×	२	×
काँच चूर्ण	×	२६	१०
योग	१००	१००	१००

(१) यह प्रलेप लगभग ९००° सें० पर गलता है।

(२) यह प्रलेप लगभग ९५०° सें० पर गलता है।

(३) यह प्रलेप लगभग ९८०° सें० पर गलता है।

रंगीन सरन्ध्र प्रलेप बनाने के लिए सर्वोत्तम संगठन पात्र के मिश्रण पिण्ड का सगठन ही है। यदि मिश्रण पिण्ड का रग अधिक गहरा है, तो पकाने पर श्वेत हो जानेवाली मिट्टी, पात्र के मिश्रण-पिण्ड में मिला देने से रग की आभा हल्की हो जाती है। विभिन्न रग उत्पन्न करने के लिए सरन्ध्र प्रलेप मिश्रण के साथ धातवीय आक्साइड या धातवीय रंजको का प्रयोग किया जाता है।

सरन्ध्र प्रलेप मिश्रण को पानी के साथ मिलाकर घोला बना लिया जाता है। पतले पात्रो पर सरन्ध्र प्रलेप चढाने से पूर्व उन्हें कुछ पका लिया जाता है और तब वे सरन्ध्र प्रलेप घोले में डुबोये जाते हैं। सरन्ध्र प्रलेप को पात्र पर लगाने में कौशल की आवश्यकता है, जिससे पात्र के सभी भागो में प्रलेप समान रूप से रहे। स्वास्थ्य-सम्बन्धी भारी पात्रो पर सरन्ध्र प्रलेप चढाने की सर्वोत्तम विधि यह है कि बिना

पकाये पात्रों पर ही बौछार विधि से सरन्ध्र प्रलेप चढाया जाय। विभिन्न रगो के सरन्ध्र प्रलेप चढ़ाने के लिए प्रलेप-घोल को रबड की छोटी-सी थैली में रखा जाता है। इस थैली मे एक तुण्ड (Nozzle) रहता है। थैली दबाने पर तुण्ड से सरन्ध्र प्रलेप निकल आता है।

जैसे ही सरन्ध्र प्रलेप सूख जाता है, यह भट्ठी मे पकाया जाता है। उसके पश्चात् चिक्कन-प्रलेपित करके फिर दुबारा पकाया जाता है।

षष्ठ अध्याय

पोरसिलेन

इतिहास से पूर्वकाल तक के मनुष्यों को कुम्भकार-कला का ज्ञान था और सम्भवतः मनुष्य द्वारा प्रयुक्त कलाओं में यह सबसे प्राचीन कला है। मृत्कला में पोरसिलेन, मनुष्य की सफलता-प्राप्ति की चरम सीमा है। राजाओं के रक्षण तथा संरक्षण में चीनी कुम्हारों ने हजारों वर्ष पूर्व कष्टसाध्य प्रयोग करके इस कला का विकास किया था।

ऊपर से देखने में पोरसिलेन पात्र सुन्दर, रन्ध्रहीन, श्वेत या नीले, सफेद तथा बहुत सुन्दर रचना के होते हैं। पतले भाग अल्प पारदर्शक होते हैं। पोरसिलेन साधारण मृत्सामग्रियों से अपनी अपारगम्यता तथा कड़े मिट्टी-पात्रों से अपनी अल्प पारदर्शकता के कारण भिन्न है। तोड़ने पर पोरसिलेन की रचना काँच की भाँति परतमय है, जबकि साधारण या अर्द्ध काँचीय मृत्सामग्रियों की रचना असमान तथा खुरदरी होती है। बजाने पर पोरसिलेन के प्याले से उच्च तारत्ववाला (High pitched) संगीत स्वर निकलता है। यह मधुर स्वर साधारण पोरसिलेन संगठन में पोटाश फेल्सपार के प्रयोग के कारण होता है। यदि पोटाश फेल्सपार के स्थान पर सोडा फेल्सपार डाला जाय तो पात्र बजाने पर संगीत स्वर कम तारत्ववाला होगा तथा उतना मधुर नहीं होगा। साधारण पोरसिलेन की रन्ध्रता सदैव एक प्रतिशत से कम रहती है।

मेलर के अनुसार पोरसिलेन पात्रों में अल्प पारदर्शकता, चीनी मिट्टी के सरन्ध्र कणों में द्रावकों के घुस जाने से उसी प्रकार आ जाती है, जिस प्रकार एक सोख्ता कागज को तेल में डुबोने पर वह अल्प पारदर्शक हो जाता है। बॉल-मिट्टी के कणों के रन्ध्र फेल्सपार युक्त द्रावकों के गलने से पूर्व बन्द हो जाते हैं। परिणामतः यदि पोरसिलेन पात्र में ५ प्रतिशत से अधिक बॉल-मिट्टी हुई, तो उसकी अल्प पारदर्शकता काफी नष्ट हो जाती है।

पोरसिलेन के काँचीय पिण्ड का वर्तनाङ्क मूलाइट क्रेलासों के वर्तनाङ्क के बराबर होता है। मूलाइट क्रेलासों का औसत वर्तनाङ्क १·६४८ है और हल्के चकमक तथा स्फटिक के औसत वर्तनाङ्क क्रमशः १.६५ और १.५४३ हैं। अतः स्पष्ट है कि पारदर्शकता की वृद्धि के लिए काँचीय पोरसिलेन में मुक्त स्फटिक के कण नहीं होने चाहिए, *अन्यथा उनके द्वारा प्रकाश विसरण होगा और पात्र में दूधियापन या अपारदर्शकता* आ जायगी। पोरसिलेन पात्रों पर चिक्कन प्रलेपन हो जाने के पश्चात् उनकी पारदर्शकता में वृद्धि हो जाती है।

पोरसिलेन मुख्य तीन भागों में बाँटी जाती है—(क) कठोर या फेल्सपार-युक्त पोरसिलेन, (ख) मृदु या काँचीय पोरसिलेन और (ग) अस्थि पोरसिलेन या बोन चाइना।

कठोर पोरसिलेन सर्वप्रथम चीन में बनायी गयी थी और बाद में यूरोपीय देशों में लायी गयी। इसमें फेल्सपार के रूप में २–५ प्रतिशत तक पोटैशियम आक्साइड रहता है। इस पर प्रायः चिक्कन-प्रलेप चढ़ा रहता है, जो पात्र के मिश्रण पिण्ड के साथ ही १३००° से १६००° सें० के बीच काँचीय हो जाता है।

मृदु पोरसिलेनें, कठोर पोरसिलेनों से एकदम भिन्न होती हैं और मुख्यतः काँचित से बनी होती हैं। इस प्रकार की पोरसिलेनें काफी न्यून तापक्रम पर पकायी जाती हैं और उन पर प्रायः मृदु चिक्कन प्रलेप रहता है। चीनी पोरसिलेन की नकल करने के प्रयत्न में काँचीय पोरसिलेन सर्वप्रथम इटली में बनी थी। यह वास्तविक पोरसिलेन की अपेक्षा काँच से अधिक समानता रखती है।

अस्थि पोरसिलेन का निर्माण इँग्लैण्ड में बहुत होता है, जहाँ पर चीन की कठोर पोरसिलेन जैसे पदार्थ के बनाने के प्रयत्न में इसका आविष्कार हुआ था। इसे पकाने के लिए फेल्सपार युक्त कठोर पोरसिलेन की अपेक्षा बहुत कम तापक्रम की आवश्यकता होती है तथा इसकी सजावट भी सरलतापूर्वक हो जाती है। अस्थि पोरसिलेन के मिश्रणपिण्ड तथा चिक्कन प्रलेप एक साथ काँचीय नहीं होते, बल्कि पात्र को प्रलेप चढ़ाने से पूर्व उच्च तापक्रम पर पकाया जाता है। बाद में प्रलेप चढ़ाकर कम तापक्रम पर पका लिया जाता है। इस प्रकार की पोरसिलेन की विशेषता मिश्रण-पिण्ड में निस्तापित अस्थियों या अस्थि-भस्म या अस्थि-राख की अधिक मात्रा का होना है।

तापजनित रासायनिक क्रियाएँ

कठोर पोरसिलेन पात्र मुख्यत. फेल्सपार, स्फटिक तथा केओलिन से बनाये जाते हैं। इँग्लैण्ड में प्राय फेल्सपार तथा स्फटिक के बदले कार्निश पत्थर या चकमक डालते हैं। अपेक्षाकृत उच्च तापक्रम पर पकाये जानेवाले पात्रों में कार्निश पत्थर से फेल्सपार अधिक उपयोगी है। फेल्सपार युक्त पोरसिलेन के पात्र अधिक पारदर्शक, अधिक काँचीय होते हैं तथा पात्र में फफोले-जैसे दोष की सम्भावना कम रहती है। दूसरी ओर न्यून तापक्रम पर पकायी जानेवाली पोरसिलेन वस्तुएँ बनाने मे कार्निश पत्थर का प्रयोग किया जा सकता है। ये वस्तुएँ विशेष रूप से मजबूत होती हैं और ऐसे मिश्रण बड़े पात्रो के बनाने में विशेष रूप से उपयोगी होते हैं। कम तापक्रम पर पकायी जानेवाली घरेलू उपयोग की वस्तुओ के बनाने के लिए फेल्सपार का उपयोग उचित नही है, कारण फेल्सपार युक्त पात्रो में काँच-जैसी रचना प्राप्त करने की धारणा रहती है, जिसके कारण टकराने पर पात्र सरलता से टूट जाते हैं।

गरम करने पर ऑर्थोक्लेज़ धीरे-धीरे गलता है और अन्त में श्यान द्रव में परिवर्तित हो जाता है। यह श्यान द्रव दूसरे पदार्थों को जोड़कर रखता है और धीरे-धीरे उन्हें अपने में घुला लेता है। यह पता लगाया जा चुका है कि १४००° से १६००° से० के बीच गला हुआ फेल्सपार अपने भार का लगभग ७० प्रतिशत स्फटिक या १० प्रतिशत मिट्टी अपने में घुलाकर भी स्वच्छ काँच बनाता है। यदि अधिक मिट्टी उपस्थित हो, तो गलित द्रव से सुई आकार के मूलाइट केलास बन जाते हैं।

पोरसिलेन मिश्रणपिण्ड में स्फटिक की अपेक्षा चकमकी निश्चित रूप से अधिक लाभदायक है। चकमकी एक बार के निस्तापन से ही श्वेत, कम घनत्व (आ० घ० २.२४) वाले रूप में बदल जाता है। इस रूप में चकमकी सरलता से महीन चूर्ण हो जाता है। स्फटिक में कई बार के निरन्तर निस्तापन से अपेक्षाकृत बहुत ही कम परिवर्तन होता है और तब भी यह पीसने में काफी कठोर होता है।

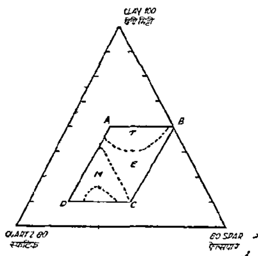
सिलीका के ये सभी रूपान्तर उत्क्रमणीय (Reversible) हैं। अतः पकी हुई पोरसिलेन को धीरे-धीरे ठण्डा करने पर, वह सिलीका, जो गलित फेल्सपार में नही घुली है, पुन स्फटिक केलास बनायेगी। सिलीका का कम घनत्ववाला रूप अधिक घनत्ववाले रूप की अपेक्षा फेल्सपार युक्त काँच में अधिक शीघ्रता से घुलता है। अतः इसमें निस्तापित स्फटिक की अपेक्षा चकमकी अधिक शीघ्रता से घुल जायगा। पके हुए पोरसिलेन पात्रों में मुक्त स्फटिक कणों की उपस्थिति होने पर पात्र के दुबारा

गरम करने पर चटककर टूट जाने की सम्भावना रहती है, कारण गरम करने पर स्फटिक कणों का रूप बदलने से स्फटिक का आयतन बढ़ जाता है।

पोरसिलेन की कुछ वस्तुओं, जैसे चिनगारी प्लग (Sparkplug) प्रयोगशाला तथा भोजन पकाने की वस्तुएँ, तापीय युग्म (Thermocouple) रक्षक नल, विद्युत्-रोधक आदि में मुक्त स्फटिक की उपस्थिति विशेष रूप से आपत्तिजनक है, कारण इन वस्तुओं को प्रायः गरम होना पड़ता है।

इस विषय में विशेष लाभदायक पदार्थ गलित स्फटिक से प्राप्त चूर्ण होता है, कारण यह पोरसिलेन काँच में अधिक शीघ्रता से घुल जाता है। इस प्रकार गलित स्फटिक से प्राप्त चूर्ण रहने से पोरसिलेन पकाने का तापक्रम चकमकी युक्त पोरसिलेन से भी कम हो जाता है।

मिट्टी, फेल्सपार तथा स्फटिक मिश्रण को उचित तापक्रम पर पकाकर पोरसिलेन बनाने के प्रयोगों में देखा गया है कि फेल्सपार युक्त व्यापारिक पोरसिलेन का संगठन समानान्तर चतुर्भुज A B C D के बीच में होता है, जैसा कि चित्र २४ में दिखाया गया है।



चित्र २४. व्यापारिक पोरसिलेन का संगठन

पोरसिलेनें पकाने में सबसे बड़ी समस्या यह है कि काँचीय भाग में मूलाइट के स्पष्ट केलास जितने अधिक सम्भव हो उतने विकसित होने चाहिए। क्लाईन (Klein) के अनुसार १३४०° सें० पर केओलिन मूलाइट केलासों में बदल जाती है, परन्तु स्फटिक कणों पर तरल फेल्सपार की क्रिया बहुत कम होती है। १४६०° सें० पर तरल फेल्सपार की स्फटिक पर क्रिया काफी तीव्र हो जाती है और केओलिन १० प्रतिशत तक घुल जाती है। मिट्टी की मात्रा अधिक होने पर

सुई आकार के मूलाइट केलास अच्छी तरह विकसित होते हैं। १३८०° सें० और १४००° सें० के बीच स्फटिक का अधिक भाग घुल जाता है और मिट्टी का अधिकतम भाग मूलाइट केलासों में बदल जाता है। अत ऐसा पता चलता है कि पोरसिलेन के साधारण मिश्रणपिण्ड से सर्वोत्तम पात्र १४६०° सें० पर पकाकर ही बनाये जा सकते हैं, परन्तु साधारण पोरसिलेन के पकाने के लिए १४००° सें० का तापक्रम काफी है। अधिक मिट्टी तथा कम फेल्सपारवाले पोरसिलेन मिश्रणपिण्ड के पात्रों को पकाने के लिए उच्च तापक्रम की आवश्यकता होती है, जब कि अधिक फेल्सपार तथा कम मिट्टीवाले पोरसिलेन मिश्रणपिण्ड से बने पात्र कम तापक्रम पर ही पकाये जा सकते हैं।

अच्छी तरह पकाये गये कठोर पोरसिलेन पात्र में ३० प्रतिशत या अधिक मूलाइट सहित, सिलीका-युक्त पोटाश एल्यूमिना काँच होना चाहिए। यह मूलाइट सुविकसित सुई आकार के केलासों के रूप में और अकेलासीय मूलाइट के रूप में होता है। पोरसिलेन वस्तुओं में, विशेष कर उन वस्तुओं में, जिन्हें बार-बार गरम होना पड़ता है, स्फटिक के कुछ कण बच जायें तो कोई बात नहीं, पर अधिक मात्रा में रहना आपत्तिजनक है। चिनगारी प्लग में ४० प्रतिशत मूलाइट होना है और मुक्त स्फटिक बिल्कुल नहीं होना चाहिए। विशेष प्रकार की रासायनिक पोरसिलेन में लगभग ४० प्रतिशत मूलाइट रहना चाहिए तथा उच्च तनाव विद्युत्-रोधक में लगभग ३५ प्रतिशत मूलाइट होना चाहिए।

फेल्सपार युक्त पोरसिलेन के कुछ विशेष सगठन नीचे दिये हैं।

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)
सिलीका	७०·५	७८८	६६·६	५९४	५८०	६८२७
एल्यूमिना	२० ७	१७८	२८०	३२६	३४५	२६६३
लौह आक्साइड	० ८	० ६	० ७	०·८	×	०·८९
चूना	० ५	० २	० ३	० ३	४५	०·६९
मेगनीशिया	० १	×	०·६	×	×	०·८६
पोटाश आक्साइड	६·०	२ २	३ ४	५ ५	३ ०	२·३१
योग	९८६	९९६	९९६	९८६	१००·०	९९·६५

(१) चीनी पोरसिलेन (२) जापानी पोरसिलेन (३) बर्लिन की कठोर

पोरसिलेन (४) माइसेन की कठोर पोरसिलेन (५) सेवरेस की कठोर पोरसिलेन (६) वर्लिन की रासायनिक पोरसिलेन।

दूसरे प्रकार की पोरसिलेन जिसे प्राय मृदु पोरसिलेन कहा जाता है, काँच और मृत्सामग्री के बीच का पदार्थ है। इसके काचीय पदार्थ में छितरे हुए बहुत से अघुलनशील पदार्थ होते हैं, जो प्रकाश का विसरण (Diffusion) करने के कारण पात्र को दूधियापन या श्वेतता प्रदान करते हैं। यूरोपीय देशों में श्रेष्ठ चीनी पोरसिलेन का रहस्य खोजने के लिए विभिन्न देशों के कुम्हारों ने अपने सगठन से काँच के साथ विभिन्न खनिज प्रयोग किये थे। इन विभिन्न खनिजों के कारण विभिन्न प्रकार की मृदु पोरसिलेने बनी थीं। विभिन्न देशों में विभिन्न समयों पर आविष्कृत मृदु पोरसिलेनों को निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता है—

(१) **काँचीय पोरसिलेन**—इस प्रकार की पोरसिलेन १६वीं शताब्दी में अधिक चूना सहित काँचित के साथ मिट्टी की थोडी सी मात्रा मिलाकर बनायी गयी थी। मिश्रण-पिण्ड में लचीलापन बहुत ही कम था और पात्र ढालने में कठिनाई होती थी। जब पात्र पकाने में चूने के द्रावक प्रभाव का पता लग गया तो उपर्युक्त मिश्रण-पिण्ड में चूने का प्रतिशत काफी घटाकर उसके स्थान पर एल्यूमिना या चीनी मिट्टी डालने से सेवरेस की विकसित मृदु पोरसिलेन उत्पन्न हुई। इस विकसित पोरसिलेन के पकाने का तापक्रम पूर्ववर्णित पोरसिलेनों की अपेक्षा अधिक है; परन्तु इससे बने पात्र प्रत्येक बात में और पोरसिलेनों से बने पात्रों से श्रेष्ठ होते हैं।

काँचीय मृदु पोरसिलेन के क्रमश विकास के कुछ विश्लेषण नीचे दिये जाते हैं—

	(१)	(२)	(३)	(४)
सिलीका	७२ ५	७२ ०	७६ १६	७८·३६
एल्यूमिना और लौह	२ ३	५ ०	४ ३०	२ ४५
चूना	१३ ६	१५ ०	९·८२	१२ ७३
मैगनीशिया	० ३	×	×	×
क्षार	१० ९	८·०	३ ७६	६ ४६
योग	१०० ०	१०० ०	१००·०	१००·०

१. साधारण चद्दर काँच का सगठन।

२. फ्रांस की प्रारम्भिक पोरसिलेन।
३. सन् १७६० ई० की लागटान पोरसिलेन।
४. सेवरेस मृदु पोरसिलेन।

(२) **स्टीटाइट या साबुनपत्थर पोरसिलेन**—इंग्लैण्ड के कुछ भागो में, विशेष कर ब्रिस्टल (Bristol), स्वान्जी (Swanse), कौगले (Coughley) तथा वोरसेस्टर (Worcester) आदि में, पूरी चीनी मिट्टी या उसके किसी अश के स्थान पर साबुन-पत्थर डालते थे। साबुन-पत्थर की विभिन्न मात्राओं सहित कुछ विशेष साबुनपत्थर पोरसिलेनो के विश्लेषण नीचे दिये जाते है। साधारण पात्रो मे आजकल साबुनपत्थर नही प्रयोग किया जाता तथा कुछ भिन्न प्रकार की पोरसिलेनो के निर्माण में कुछ विशेष गुण उत्पन्न करने के लिए ही इसका प्रयोग सीमित हो गया है।

	(क)	(ख)	(ग)
सिलीका	६७·६२	७४ २२	८१ ५६
एल्यूमिना	४ ६१	८ ५०	८ ९०
फास्फोरिक अम्ल	२ ००	० २०	० ३३
चूना	२ ६४	२ ७८	० ७०
मैगनीशिया	१३·२८	७ ६२	४ २६
क्षार	२ ७६	३ ५५	३·८८
लैड आक्साइड	८·०१	३ ७३	×
योग	१०० ९२	१०० ६०	९९ ६३

(क) सन् १७५० की ब्रिस्टल पोरसिलेन जिसमे ४० प्रतिशत साबुनपत्थर है। लैड आक्साइड की उपस्थिति इस बात को सूचित करती है कि उस समय सीसा कॉच द्रावक के रूप मे प्रयोग किया जाता था।

(ख) १७८० ई० की कौगले की पोरसिलेन जिसमें लगभग २२ प्रतिशत साबुनपत्थर है।

(ग) १९१७ ई० की स्वाजी चाइना, इसमें लगभग १३ प्रतिशत साबुनपत्थर है।

इन सब प्राचीन पोरसिलेनो में साबुनपत्थर का प्रयोग चीनी मिट्टी के स्थान पर श्वेत लचीले पदार्थ को डालने के लिए किया जाता था, कारण चीनी मिट्टी उस समय कम मिलती थी।

(३) **अस्थि पोरसिलेन या बोन चाइना**—मृदु पोरसिलेनों में आधुनिक औद्योगिक महत्त्व की केवल एक अस्थि पोरसिलेन ही है। इस प्रकार की पोरसिलेन केवल इँग्लैण्ड में बनती थी। चाइना शब्द का प्रयोग सभी अल्पपारदर्शक मृदु पोरसिलेनों के लिए किया जाता था। इसी अस्थि पोरसिलेन को बोन चाइना कहा जाता है। अस्थि पोरसिलेन पात्र बनाने में कई सुविधाएँ हैं, जैसे मिश्रणपिण्ड का अधिक लचीलापन, पकाने का न्यून तापक्रम, सजावट के लिए अधिक प्रकार के रंगों का प्रयोग। आजकल औसत अस्थि पोरसिलेन में प्राय २८ से ३० प्रतिशत तक ठीक प्रकार से निस्तापित अस्थिराख रहती है, परन्तु प्राचीन समय में इस अस्थिराख की मात्रा अधिक रहती थी। अस्थि पोरसिलेन के कुछ पुराने संगठन नीचे दिये जाते हैं—

	(अ)	(आ)	(इ)
सिलीका	४३ ५८	४१ ९४	४७ ८०
एल्यूमिना	८ ३६	१५ ९७	२६ ४९
चूना	२४ ४७	२४ २८	१३ २५
मैगनीशिया	० ६०	० २०	×
फास्फोरिक अम्ल	१८ ९५	१४ ३६	९·८५
क्षार	२ ०५	१ ९६	३ २७
लैड आक्साइड	१ ७५	० ३६	×
योग	९९ ७६	९९ ६७	१०० ६६

(अ) लगभग १७६० ई० में बो शहर में बनी पोरसिलेन। इसमें लगभग ४८ प्रतिशत अस्थि राख होती थी।

(आ) डरबी की लगभग सन् १७९० ई० की अस्थि-पोरसिलेन। इसमें लगभग ३८ प्रतिशत अस्थिराख होती थी।

(इ) स्वार्जो की लगभग १८२० ई० की अस्थि-पोरसिलेन। इसमें लगभग २५ प्रतिशत अस्थिराख रहती थी।

(४) **पेरियन पोरसिलेन या चिकन-प्रलेपहीन पोरसिलेन**—यह चिकन-प्रलेपरहित एक विशेष प्रकार की मृदु पोरसिलन है, जो छोटी-छोटी मूर्तियाँ तथा आकृतियाँ बनाने के काम आती है। मिश्रणपिण्ड प्राय मिट्टी और फेल्सपार से बनाया जाता है

तथा इसकी वस्तु मे पकाने के पश्चात् हलकी चमक आ जाती है, जो इटली देश के सुप्रसिद्ध पैरोस (Paros) पत्थर की मृदु चमक के समान होती है । अत कभी-कभी ऐसे पात्रो को पेरियन पात्र भी कहा जाता है। मैलाकाइट (Malachite), लेजूराइट (Lazurite) आदि कुछ खनिजो की नकल करने के लिए कभी-कभी इस प्रकार के पोरसिलेन मिश्रण-पिण्डो को रगीन भी कर दिया जाता है। इन मिश्रण-पिण्डो मे स्फटिक की अनुपस्थिति का सैगर ने इसी कारण समर्थन किया है कि स्फटिक रहने पर पात्रो के तल पर अनावश्यक चमक आ जाती है।

(५) **कृत्रिम दन्त पोरसिलेन**—मानवीय कृत्रिम दाँत बहुत प्रकार के मिश्रण-पिण्डो से बनाये जाते हैं। इनमें कुछ का गलनाक काफी उच्च होता है तथा कुछ का गलनाक न्यून होता है। इस प्रकार की पोरसिलेनों के विशेष गुण अधिक दबाव शक्ति का होना तथा भुरभुरेपन का पूर्ण अभाव है। दाँतो को सरलता से घिसना भी नही चाहिए। यह पोरसिलेन चिकन-प्रलेपित नही की जाती, परन्तु इसका सगठन ऐसा रखा जाता है कि पकाने पर पूरा दाँत काँचीय हो जाय तथा बाहरी तल भी चिकना और चमकदार दीखने लगे। कृत्रिम दन्त पोरसिलेन के कुछ संगठन नीचे दिये जाते हैं—

चीनी मिट्टी	४	८	३०
बॉल-मिट्टी	×	२	८
फेलसपार	८१	×	×
निस्तापित स्फटिक	१५	×	×
कार्निश पत्थर	×	८२	३१
खड़िया	×	५	१९
अस्थिराख	×	३	१२
योग	१००	१००	१००

बहुत से रजक आक्साइडो, विशेष कर रूटाइल (TiO_2) का प्रयोग दाँतों के प्राकृतिक रगों को उत्पन्न करने के लिए होता है। मिश्रण-चूर्ण पानी या थोड़े पैराफिन तेल के साथ मिलाया जाता है और दाँत दबाव विधि द्वारा बना लिये जाते हैं। इसके पश्चात् बने हुए दाँत काँसे के साँचो सहित रक्त-उष्णता पर पकाये जाते हैं, जिसके पश्चात् वे साफ किये जाते हैं तथा उनके दोष दूर कर दिये जाते हैं। साफ किये हुए

दाँत सिलीका से बनी खुली तश्तरियों में रखकर विद्युत्-भट्ठियों में पुन गरम किये जाते हैं। दूसरी बार गरम करने की क्रिया शीघ्रता से होती है, जिससे काँचीय होते समय दाँतो की आकृति नष्ट न हो जाय। गरम करने का तापक्रम मिश्रण के सगठनानुसार नियन्त्रित किया जाता है। दूसरी बार गरम करने के पश्चात् दाँतो को दूसरी भट्ठी मे मृदु (Annealed) किया जाता है। अच्छी प्रकार से बने हुए दाँत को पूर्णरूपेण काँचीय हो जाना चाहिए तथा मुक्त सिलीका कण या हवा के बुलबुले दाँत के अन्दर न रहे।

पोरसिलेन मिश्रण-पिण्डो का बनाना—केओलिन को छोडकर सभी कच्चे माल चकमक पत्थरो से भरे सिलिण्डरों मे महीन पीस लिये जाते हैं। पीसने मे लगभग ४० घटे का समय लगता है। इसके बाद पिसे हुए पदार्थ साधारण चलनियो से छनते हुए मिश्रणकुण्डो मे गिराये जाते हैं। इन मिश्रणकुण्डो मे शक्तिशाली मिश्रक लगे रहते हैं। यह मिश्रणकुण्ड प्राय फर्श तल के नीचे रहते हैं। इन पीसे हुए दूसरे खनिजो में यहाँ केओलिन की आवश्यक मात्रा डाली जाती है और सभी पदार्थ कुछ घटो तक अच्छी तरह मिलाये जाते हैं। इसके पश्चात् मिट्टी-घोला एक विद्युत्-चुम्बक से होता हुआ दूसरे कुण्ड में भेजा जाता है। यहाँ से इसे पानी दूर करने के लिए जल-निष्कासन यन्त्रो मे भेज देते हैं।

जल-निष्कासन यन्त्र से निकली हुई मिट्टी मुलायम लोदा के रूप में होती है। कुछ कारखानों में इस मिट्टी को गूँधने के यन्त्र में भेजने से पूर्व अँधेरे स्थान में रखकर मिश्रण पर अम्ल क्रिया होने दी जाती है। ऐसा करने से मिश्रणपिण्ड का लचीलापन बढता है। चित्र १२ में मिट्टी गूँधने का एक यन्त्र दिखाया गया है। गूँधने की क्रिया में लगभग ४५ मिनट लगते हैं। गूँधने के पश्चात् मिश्रणपिण्ड काफी लचीला तथा कार्योपयोगी हो जाता है।

इस पुस्तक के आकार का ध्यान रखते हुए सभी पोरसिलेन वस्तुओं के निर्माण का वर्णन करना असम्भव होगा, परन्तु एक वस्तु, जैसे विद्युत्-रोधक के निर्माण का वर्णन यहाँ किया जाता है।

गूँधने के पश्चात् मिश्रणपिण्ड एक दूसरे यन्त्र में जाता है। इस यन्त्र से निकलने पर मिश्रणपिण्ड दबे हुए ठोस रूप मे बाहर निकलता है, जिसे तार द्वारा आवश्यकतानुसार उचित आकार के टुकडो में काट लिया जाता है। यदि यह

यन्त्र ठीक प्रकार से न बना हुआ हो या ठीक प्रकार से नियन्त्रित न किया गया हो, तो इस समय इसमें लेमीनेशन या परत दोष आ सकता है, जो आगे चलकर पकाने के पश्चात् ही प्रकट होगा।

इसके पश्चात् *मिश्रणपिण्ड का प्रत्येक कटा हुआ टुकड़ा साँचे में रखकर* ऊपर से कपड़ा रख देते हैं और लकड़ी के प्लजर वाले हस्तचालित दबाव यन्त्र से पिण्ड को दबाया जाता है। अब जाली यन्त्र से विद्युत्-रोधक को आकृति दी जाती है। इस अवस्था में जितना कम पानी प्रयोग किया जायगा, सुखाने समय उतनी ही सुविधा रहेगी। पात्र बनाने में अधिक पानी का प्रयोग सुखाते समय ऐसे पात्रों पर पड़ी चटकों का मुख्य कारण होता है।

अब पात्र साँचे में ही सुखाये जाते और लगभग एक घण्टा बाद साँचे से निकाल कर लकड़ी के तख्तों पर रखकर उस समय तक सुखाये जाते हैं, जब तक कि पात्र काफी कठोर न हो जायँ।

अब रोधक के अन्दर का चक्र मिश्रण-घोले की सहायता से हाथ द्वारा जोड़ दिया जाता है। इसके बाद खराद यन्त्र पर उचित आकृति दे दी जाती है और तब स्पंज द्वारा साफ कर दिया जाता है। जर्मनी में दो कारीगर एक बालक या स्त्री की सहायता से ६ इंच ऊँचे लगभग ३,००० विद्युत्-रोधक प्रति सप्ताह बना लेते हैं। भारतवर्ष तथा इंगलैंड मे अन्दर का चक्र बाहरी भाग के साथ ही जॉली यन्त्र से ही बना लिया जाता है।

जब रोधक सूखकर कुछ कड़ा हो जाता है, तो जिग्गर यन्त्र पर उसमें चूड़ियाँ काटी जाती हैं। चूड़ी काटनेवाले बोरर पर तेल लगाकर धीरे-धीरे छिद्र में दबाया जाता है। तत्पश्चात् जिग्गर को रोककर उलटी दिशा में घुमाते हैं और बोरर को धीरे-धीरे बाहर निकाल लिया जाता है। बड़े पात्रों पर चूड़ियाँ हस्तचालित यन्त्र द्वारा काटी जाती हैं।

बड़े आकार के विद्युत रोधक जिनमें कई कटोरे रहते हैं, अलग-अलग कई भागों में बनाये जाते हैं, जिन्हें बाद में मुलायम अवस्था में ही मिश्रण-घोला द्वारा जोड़ दिया जाता है।

विशेष कर बिजली की छोटी वस्तुओं को बनाने के लिए *अर्द्ध लचीला मिश्रण-पिण्ड* बनाया जाता है। इसे बनाने के लिए जल-निष्कासन यन्त्र से प्राप्त मिश्रण-पिण्ड के लोंदों को गरम कमरों में सुखाकर एक चूर्णक यन्त्र में चूर्ण कर लिया जाता

में बनाया जाता है। मिश्रणकुण्ड में मिश्रण-पिण्ड के अलावा उचित अनुपात में पानी तथा विद्युद्विश्लेष्य डालकर सब को इतना मिलाया जाता है कि तरल घोला समाग हो जाय और घनत्व ३५ औंस प्रति पाइण्ट हो जाय। ढलाई कार्य को भेजने से पूर्व घोला एक दूसरे कुण्ड में भेजा जाता है, जिसमें विलोडक लगा रहता है। विलोड़ने से घोला-अवयव जमकर बैठने नही पाते।

गोल वस्तुओं को ढालने के लिए साँचे एक घूमती हुई मेज पर लगे रहते हैं। यह मेज साँचे में घोला डालते समय कुछ धीमी गति से घुमायी जाती है। यदि अधिक सूखे साँचे प्रयोग किये गये, तो ऐसे साँचों से ढले प्रथम या द्वितीय पात्र साँचे में ही चटक जाते हैं, परन्तु इसके बाद साँचा नम हो जाता है और पात्र ठीक निकलते हैं। जब साँचे अधिक नम हो, तो ढले पात्र उनमें से सरलतापूर्वक नही निकल पाते, और साँचे पुन सुखाने को भेजे जाते हैं। यदि साँचे में कुछ टेढ-मेढे भाग हों तथा साँचे से पात्र निकालने में कुछ कठिनाई मालूम होती हो, तो महीन कपडे की थैली द्वारा लाइकोपोडियम (Lycopodium) चूर्ण, घोल डालने से पूर्व साँचे में छिड़क देने से पात्र सरलता से निकल सकते हैं।

ढले पात्रो में छिद्र करने के लिए प्राय पीतल की खोखली नलिकाएँ काम में लायी जाती हैं। ढली वस्तुओ को साँचे से निकालकर प्लास्टर के बने तख्ते पर रखकर लकड़ी के ताखों में सुखाया जाता है। जिन कारीगरो ने पात्रो को बनाया था वही उन्हें साफ तथा चिकना भी करते हैं।

कम घने पिण्डो, जैसे पोरसिलेन के सुखाने में कोई परेशानी नही पड़ती। वे प्राय. ढलाई-घरो में ही सुखाये जाते हैं। ठण्डे देशो में यह ढलाई-घर कृत्रिम ढंग से गरम रखे जाते है, परन्तु गरम देशो में इसकी उतनी आवश्यकता नहीं है। मध्य जर्मनी में इन ढलाई-घरो का तापक्रम जाडो में २०° से २५° सें० तक तथा गरमियों में २५° से ३०° सें० तक रखा जाता है। ऋतु के अनुसार खोखले वर्तन को सुखाने में ४–७ घण्टे तक लगते है, जब कि उच्च तनाव विद्युत्-रोधक जैसी बटी और ठोस वस्तुओं को सूखने में १०–१५ घण्टे तक लगते हैं। सूखने की अन्तिम अवस्था का निर्धारण ठण्ड के अनुभव से किया जाता है। इसके लिए पात्र को शरीर के तापसुग्राही भागों—जैसे गाल-से छुआते हैं। पूर्णरूपेण सूखे पात्र में काफी सीमा तक श्वेतता आ जाती है तथा छूने से बिलकुल ठण्डा नहीं लगता।

पोरसिलेन मिश्रण-पिण्ड का संगठन—प्राचीन पोरसिलेन मिश्रण-पिण्ड चार विभिन्न वर्गों में बाँटे जा सकते हैं—

(१) वे मिश्रण-पिण्ड जिनमें मिट्टी अधिक तथा स्फटिक और फेल्सपार कम हो। साथ ही जिनमें द्रावकों के कार्य को पूरा करने के लिए काफी मात्रा में कैलशियम कार्बोनेट डाला जाता है। नीचे इस प्रकार की सेवरेस पोरसिलेन के एक मिश्रण-पिण्ड का संगठन दिया जाता है।

	सेवरेस मिश्रण-पिण्ड
मृत्सार	६६ ३७
स्फटिक	१२ ०५
फेल्सपार	१५ ११
कैलशियम कार्बोनेट	६ ४७

(२) दूसरे प्रकार के मिश्रण-पिण्डों में फेल्सपार अधिक रहता है तथा जिनमें कैलशियम कार्बोनेट की थोड़ी-सी मात्रा से द्रावकों का प्रभाव बढ़ जाता है। नीचे इस प्रकार की पोरसिलेनों के कुछ संगठन दिये जाते हैं।

	लीमोजेज़ (फ्रांस) का मिश्रण-पिण्ड	कार्ल्सबाद (चेकोस्लोवाकिया) का मिश्रण-पिण्ड
मृत्सार	४१ ०	५१·९७
स्फटिक	१९ ५	२४ ५०
फेल्सपार	३८ ०	२१·९३
कैलशियम कार्बोनेट	१ ५	१·६०
योग	१००·	१००

(३) तीसरे प्रकार की पोरसिलेन में मृत्सार कम, परन्तु फेल्सपार कुछ अधिक रहता है। जापान तथा कोपेनहेगन में प्रयोग किये गये इस प्रकार के पोरसिलेन मिश्रण-पिण्डों के कुछ संगठन नीचे दिये जाते हैं।

	जापानी मिश्रण-पिण्ड	कोपेनहेगन मिश्रण-पिण्ड
मृत्सार	३१	४७
स्फटिक	४१	२०
फेल्सपार	२८	३३

(४) चौथी प्रकार की प्राचीन पोरसिलेनें वे हैं, जिनमें मिट्टी अधिक तथा स्फटिक और फेल्सपार की मात्रा साधारण हो। इस प्रकार के पोरसिलेन मिश्रण-पिण्डों के कुछ संगठन नीचे दिये जा रहे हैं।

	बर्लिन का मिश्रण-पिण्ड	बेलजियम का मिश्रण-पिण्ड
मृत्सार	५३	५७ ९
स्फटिक	२०	२६·०
फेल्सपार	२७	१६ १

आजकल विशेष उपयोगों के अनुसार कठोर पोरसिलेनें बनायी जाती हैं। ये इस प्रकार हैं—

(अ) भोजन-पात्रों के लिए।

(आ) विद्युत्-रोधकों के लिए।

(इ) प्रयोगशाला के कार्यों के लिए।

(ई) उत्तापमापी, चिनगारी प्लग के निर्माण में प्रयोग होनेवाले नलों के लिए।

कठोर पोरसिलेन के भोजनपात्रों को 'होटल चाइना' के नाम से भी पुकारा जाता है। इस प्रकार के पात्रों की विशेषताएँ हैं—पतले भागों में अल्प पारदर्शकता, रन्ध्रहीनता तथा मृदु पोरसिलेन की अपेक्षा असाधारण मजबूती। यह पात्र प्रयोग करते समय चटकते या टूटते कम हैं। इन पात्रों में ये विशेषताएँ पात्र संगठन तथा पकाने के नियन्त्रण से आती हैं। होटल चाइना के मिश्रण-पिण्डों का संगठन प्राय इन सीमाओं के बीच रहता है—

चीनी मिट्टी	२५—४८
बॉल-मिट्टी	०—१०
चकमकी या स्फटिक	२०—३५
फेल्सपार	२०—४०
खड़िया	०—२
डोलोमाइट	०—२
मैगनीशिया	०—२

बॉल-मिट्टी लचीलापन बढ़ाने के लिए प्रयोग की जाती है। जहाँ बॉल-मिट्टी न मिलती हो, वहाँ कम लौहवाली लचीली अग्नि-मिट्टी का प्रयोग बॉल-मिट्टी के स्थान पर किया जा सकता है।

खड़िया डोलोमाइट और मैगनीशिया तापक्रम के थोड़े से परास में ही, बहुत ही शक्तिशाली द्रावक है। अतः पोरसिलेन संगठन मे इनकी मात्रा कम रहनी चाहिए। इन द्रावकों के अधिक रहने पर पकाते समय पात्र में विकृति आ जाती है, जिससे पात्र मे ऐठने या आकृति बदल देने की आशंका रहती है। पात्र पकाने मे पूर्णता प्राप्त करने का तापक्रम संगठन पर निर्भर करता है परन्तु प्रायः १३००° से १४००° से० के बीच रहता है। पूरी शक्ति प्राप्त करने के लिए पात्र को पूर्णरूपेण काँचीय किया जाता है। पकाने का समय ४२ से ६५ घण्टे तक है। काँचीय हुए पात्रों को धीरे-धीरे ठण्डा करना चाहिए, अन्यथा ठण्डा करते समय पात्रों के चटक जाने की सम्भावना रहेगी।

इन पात्रों पर सरन्ध्र अवस्था में चिक्कन-प्रलेपन से पूर्व ही सजावट की जाती है। सजावट चिक्कन प्रलेप के नीचे रहती है, जिससे वह स्थायी रहे। एक या अधिक रंगों में सजावट के लिए प्रायः छपाई विधि का प्रयोग होता है।

भोजन-पात्रों पर प्रायः पारदर्शक चिक्कन-प्रलेप लगाया जाता है, जिससे पात्र का तल व सजावट अच्छी तरह दीखते रहें। प्रायः प्रलेपों का संगठन ऐसा रखा जाता है कि वे लगभग १२००° से० पर गलें। प्रलेप पकाने का समय भी कम ही रहता है (३०–४५ घण्टे)।

भोजन-पात्रों के लिए पोरसिलेन मिश्रण-पिण्डों के कुछ संगठन सूत्र नीचे दिये जाते हैं—

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
चीनी मिट्टी	४८०	४८३	४३·५	४०५	४०·५
फेल्सपार	२३५	४८५	४००	३६५	२३·५
स्फटिक	१२५	१७	१३०	२३०	३५५
मैगनेसाइट	०५	×	×	×	०३
जिंक आक्साइड	०५	×	×	×	०२
प्रलेप हीन टूटे बर्तनों का चूर्ण	×	१५	३५	×	×
योग	१००००	१००००	१००००	१००·०	१००००

उपर्युक्त मिश्रण-पिण्ड १३८०°–१४१०° से० के बीच पूर्णरूपेण पकते हैं।

उपर्युक्त मिश्रणों में प्रयोग किये गये फेल्सपार का संगठन इस प्रकार है—

सिलीका	७३.४३
एल्यूमिना	१५.३९
फेरिक आक्साइड	०.०२
क्षार	१०.६०
चूना	०.१४
हानि	०.२०

मिश्रण ५ का प्रयोग गुडियों के सिर आदि बनाने में किया जाता है।

उपर्युक्त मिश्रण-पिण्डों के लिए उपयोगी प्रलेप निम्नलिखित अवयवों से बनाया जा सकता है—

निस्तापित स्फटिक	३७
चूना स्पार	१२
फेल्सपार	६
केओलिन	६
प्रलेपित पात्र चूर्ण	३९
योग	१००

विद्युत्-रोधक—आधुनिक विद्युत्-रोधक बहुत से कार्यों के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। उच्च वोल्टता तथा न्यून आवृत्तिवाली विद्युत्-धारा के लिए उपयोगी विद्युत्-रोधक न्यून वोल्टता तथा उच्च आवृत्तिवाली विद्युत्धारा के लिए उपयोगी नहीं होंगे। फेल्सपार युक्त पोरसिलेन, उच्च वोल्टता तथा न्यून आवृत्ति वाली विद्युत्-धाराओं के लिए बहुत उपयोगी है, परन्तु रेडियो संचरण आदि में प्रयोग होनेवाली उच्च आवृत्ति विद्युत्-धाराओं से नष्ट हो जाती है।

विद्युत्-रोधकों के आधुनिक नामकरण उन केलासों पर आधारित होते हैं जो मिश्रण-पिण्ड में पकाते समय बनते हैं तथा जिनका विशेष प्रभाव होता है। इन खनिज केलासों के विद्युत् सम्बन्धी गुण अलग-अलग होते हैं और इन्हीं के आधार पर इनका उपयोग होता है।

फेल्सपारयुक्त कठोर पोरसिलेन के विद्युत्-रोधक को आज कल मूलाइट मिश्रण-पिण्ड कहा जाता है, कारण इस प्रकार के रोधकों में मूलाइट केलास अधिक रहते हैं।

मिश्रण-पिण्डों का संगठन—

	(१)	(२)	(३)	(४)
केऑलिन	४५	४८	५३	५३
फेल्सपार	३०	३५	१६	१०
स्फटिक	२५	१७	२१	२०
स्टीटाइट	×	×	१०	१७

मिश्रण १ टेलीग्राफ विद्युत्-रोधकों के लिए उपयुक्त है और १३५०° से १३८०° सें० तक पूरी तरह पकता है।

मिश्रण-पिण्ड २, ३ तथा ४ उच्चतनाव विद्युत् पोरसिलेन के लिए उपयोगी हैं और १३८०° से १४१०° सें० तक पूरी तरह पक जाते हैं।

प्रलेप संगठन—

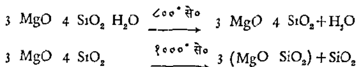
	(१)	(२)	(३)
फेल्सपार	४२	६०	३४
स्फटिक	४१	८२	४५·५
डोलोमाइट	१०	९	७·५
केऑलिन	७	९	१३

प्रलेप १ टेलीग्राफ विद्युत्-रोधक के लिए उपयोगी है। शेष २ और ३ उच्च तनाव रोधकों के लिए उपयोगी हैं। खर्च कम करने के लिए २०-३० प्रतिशत प्रलेपित-पात्र चूर्ण प्राय इन प्रलेपों के साथ प्रयोग किया जाता है। उच्च तनाव विद्युत्-रोधक प्राय गहरे हरे या गहरे बादामी रंग के बनाये जाते हैं, जिससे न्यून तनाव विद्युत्-रोधकों से पहचाने जा सकें।

स्टीटाइट (Steatite) पोरसिलेन—उच्च आवृत्तिवाली प्रत्यावर्ती विद्युत्-धारा बहने से फेल्सपारीय कठोर पोरसिलेन के बने हुए विद्युत्-रोधक गरम हो जाते हैं। इस गरम होने के कारण उनकी पारविद्युत्-शक्ति नष्ट हो जाती है, अत उच्च आवृत्ति धारा बहते से वे टूट जाते हैं। रोधक का गरम होना कुछ तो धारा की वोल्टता तथा आवृत्ति पर निर्भर करता है तथा कुछ रोधक के संगठन पर निर्भर करता है। इसे विद्युत्-रोधक का तापजनन गुणक (Power-factor) कहते हैं। जिन रोधकों में क्षार द्रावक के रूप में होते हैं, उनका तापजनन गुणक अधिक होता है। अत क्षारीय

फेल्सपार से बनी पोरसिलेनें उच्च आवृत्ति तथा उच्च वोल्टतावाली धाराओं के लिए उपयोगी नहीं है।

स्टीटाइट एक खनिज है, जिसे टाल्क तथा सोपस्टोन या साबुनपत्थर भी कहा जाता है। इसका संगठन $3\ MgO\ \ 4\,SiO_2\ H_2O$ है। भट्ठी में गरम करने पर यह क्रमशः निम्न प्रकार से दो स्तरों में विच्छेदित हो जाता है।



$$3\ MgO\ \ 4\ SiO_2\ H_2O \xrightarrow{८००^\circ \text{ से०}} 3\ MgO\ \ 4\ SiO_2 + H_2O$$

$$3\ MgO\ \ 4\ SiO_2 \xrightarrow{१०००^\circ \text{ से०}} 3\ (MgO\ \ SiO_2) + SiO_2$$

यौगिक $MgO\ \ SiO_2$ को क्लीनो एसटेटाइट (Clino-Enstatite) कहते हैं। इस अवस्था में पदार्थ काफी कठोर परन्तु सरन्ध्र होता है। १५००° सें० से अधिक गरम करने पर यह एकाएक पिघल जाता है, कारण गलनांक का परास बहुत ही कम है। घने और रन्ध्रहीन पदार्थ बनाने के लिए इसमें बेरियम और मैंगनीशियम कार्बोनेट जैसे यौगिक मिलाकर गरम करते हैं। ये यौगिक मुक्त सिलीका से संयोग कर काँचीय सिलीकेट बनाते हैं। ये काँचीय सिलीकेट पिघलकर क्लीनो एसटेटाइट के रन्ध्रों को भर देते हैं तथा एक रन्ध्रहीन कठोर पदार्थ बन जाता है। स्टीटाइट में विशेष लचीलापन न रहने के कारण, पात्र-निर्माण में इसे कार्योपयोगी बनाने के लिए इसमें थोडी-सी लचीली केओलिन मिला देते हैं। परन्तु केओलिन की अधिक मात्रा हानिकारक होती है।

इन क्लीनो एसटेटाइट वस्तुओं का उच्च आवृत्ति धारा पर तापजनन गुणक बहुत कम होता है। इस कारण रेडियो, राडार तथा टेलीविजन आदि यन्त्रों में, जहाँ उच्च आवृत्ति धारा का प्रयोग होता है, इसके रोधक विशेष रूप से उपयोगी हैं। इन वस्तुओं का केवल तापजनन गुणक ही बहुत कम नहीं होता, वरन् इनमें कार्योपयोगी पारविद्युत्-शक्ति तथा यान्त्रिक शक्ति भी होती है।

यदि टाल्क के साथ अधिक मैंगनीशिया या मैंगनीशियम कार्बोनेट डाला जाय तो निस्तापन के पश्चात् बने हुए केलास का सूत्र $2\ MgO\ \ SiO_2$ है, जिसे फोस्टेराइट (Fosterite) कहते हैं। इन फोस्टेराइट पात्रों की पारविद्युत् शक्ति अधिक होती है, तापजनन गुणक बहुत कम होता है, परन्तु क्लीनो एसटेटाइट की अपेक्षा लम्बप्रसार गुणक अधिक होता है, जैसा कि नीचे दिये मानों से स्पष्ट हो जायगा।

	लम्ब प्रसार गुणक
१. क्लीनो एसटेटाइट	७.७×१०^{-६}
२. फोस्टेराइट	९×१०^{-६}

इसी गुण के कारण फोस्टेराइट बहुत से कार्यों में अनुपयोगी सिद्ध हुआ है।

कार्डीराइट विद्युत्-रोधक (Cordierite-Insulators)—ये टाल्क और केओलिन के मिश्रण से बनाये जाते हैं। अच्छी केओलिन और टाल्क क्रमश १७००° से० और १५००° से० से नीचे नहीं पिघलते, परन्तु ७० प्रतिशत टाल्क और ३० प्रतिशत केओलिन का मिश्रण १२८०° से० पर ही पिघल जाता है और एक नवीन यौगिक बन जाता है। इस नवीन यौगिक का सूत्र $2MgO\ 2Al_2O_3\ 5SiO_2$ है तथा इसे कार्डीराइट कहते हैं।

कार्डीराइट वस्तुओ का लम्ब-प्रसार-गुणक बहुत ही कम होता है, जो कि पोरसिलेन के प्रसार गुणक का पाँचवाँ भाग तथा टाल्क के प्रसार गुणक का सातवाँ भाग है, परन्तु शुद्ध कार्डीराइट की वस्तुओं में परेशानी यह है कि इनके पकाने के तापक्रम का पराम अधिक न होने से जिस तापक्रम पर गलना प्रारम्भ होती है, उसी समय शीघ्रता से पिघल जाती है। इस कारण वस्तुओ के निर्माण में बड़ी कठिनाई होती है।

इस कठिनाई को दूर करने के लिए शुद्ध कार्डीराइट में कुछ दूसरे पदार्थ, जैसे जिरकोनिया (ZrO_2) या जिरकोन बालू ($Zr\ SiO_4$) आदि को मिलाकर, इस पकाव तापक्रम का पराम बढ़ा लिया जाता है। हाल में ही श्री एस० के० चटर्जी तथा डाक्टर एच० एन० दास गुप्त ने बताया है कि लौह आक्साइड युक्त मिट्टियाँ भी कार्डीराइट वस्तुओ के पकाव तापक्रम का परास बढ़ाने में सहायक हैं। इन बाहरी पदार्थों के मिलाने से बनी हुई वस्तुओ का लम्ब-प्रसार-गुणक बढ जाता है। अत व्यावहारिक कार्डीराइट विद्युत्-रोधक का तापजनित प्रसार शुद्ध कार्डीराइट के तापजनित प्रसार से बहुत अधिक होता है। साधारण औद्योगिक अवस्थाओ में ऐसे गुणोवाला कार्डीराइट बनाना सरल नहीं है। कार्डीराइट मिश्रण-पिण्ड से ऐसी बहुत-सी वस्तुएँ बनायी जाती हैं, जिन्हें आकस्मिक ताप-परिवर्तन सहन करने पड़ते हैं, जैसे विद्युत्-तापक (Electric-heater) की प्लेट, तापीय युग्म (Thermo couple) के रक्षक नल आदि। कार्डीराइट पात्र की पारविद्युत्-शक्ति पोरसिलेन के समान ही है। अत यह उच्च आवृत्ति धाराओं के लिए उपयोगी नहीं है। उन स्थानों पर

कार्डीराइट की वस्तुओं का अधिक उपयोग होता है, जहाँ आकस्मिक ताप परिवर्तन अधिक हो, परन्तु तापक्रम बढ़ने से आकार परिवर्तन कम मात्रा में हो।

स्टीटाइट वस्तुएँ बनाने के लिए प्रयोग किया जानेवाला टाल्क बड़ी सावधानी से चुनना चाहिए। परतदार टाल्कों को पानी के साथ पीसने पर उनमें लचीलापन विकसित नहीं होता तथा ठप्पे में दबाने पर परत-दोष के कारण वस्तुएँ चटक जाती हैं। अधिक चूनावाले टाल्क उपयोगी नहीं होते।

चूँकि अधिक टाल्कवाली वस्तुएँ कम लचीली होती हैं, अतः बॉल यन्त्र में गीली अवस्था में पीसने से, मिश्रणकुण्ड में मिलाने की अपेक्षा अधिक लचीलापन विकसित होता है। इन टाल्क वस्तुओं में बेन्टोनाइट मिट्टी या गोंद की थोड़ी-सी मात्रा डाल देने से मिश्रण-पिण्ड अधिक कार्योपयोगी हो जाता है और बनी हुई वस्तुएँ सूखने पर चटकती भी नहीं। इन वस्तुओं के मुलायम तथा घर्षण रहित होने से ठप्पे तथा साँचे कम घिसते हैं। अतः यह मिश्रण-पिण्ड स्वनियन्त्रित दबाव विधि से पात्र बनाने के लिए बहुत ही उपयोगी है।

टाल्क मिश्रण के एक विशेष नमूने का विश्लेषण यहाँ दिया जाता है—

सिलीका	६३·५
मैगनीशियम आक्साइड	२८·५
एल्यूमिना	६·०
क्षार	२·०
योग	१००·०

निम्नलिखित संगठन से शुद्ध टाल्क पोरसिलेन बनायी जा सकती है—

शुद्ध स्टीटाइट	८२	८५	८६
लचीली केओलिन	१२	१३	१०
बेरियम कार्बोनेट	६	२	४
योग	१००	१००	१००

ये मिश्रण-पिण्ड १३५०° से १४००° सें० के बीच अच्छी तरह पक जाते हैं।

१३००° सें० पर सम्पूर्ण आकुंचन १२ प्रतिशत से कम होता है और इस तापक्रम पर रन्ध्रता १ प्रतिशत से कम होती है। १४००° सें० पर रन्ध्रता लगभग बिलकुल नहीं होती।

की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—(अ) पूर्णरूपेण काँचीय होना (आ) उच्च तापक्रम रोधकता (इ) आकस्मिक ताप-परिवर्तनों से अप्रभावित रहना (ई) प्रलेप का अम्ल क्षार आदि यौगिकों से अप्रभावित रहना (उ) बाहरी धक्कों के कारण सरलता से न टूटना (ऊ) बार-बार के गरम करने व ठण्डा करने पर भी भार का स्थिर रहना।

सर्वोत्तम रासायनिक पोरसिलेन, अधिक केओलिनवाले उस मिश्रण-पिण्ड से प्राप्त हो सकती है जो द्रावकों की नहीं, वरन् केवल ताप की सहायता से काँचीय किया गया हो। सुई आकार के मूलाइट केलासों में एक दूसरे से जुड़े रहने के कारण मजबूती आ जाती है। काँचीय पिण्ड में मुक्त स्फटिक केलास नहीं रहने चाहिए। इस प्रकार की आदर्श पोरसिलेन प्राप्त करने के लिए पात्रों को १८००° सें० तक गरम करना आवश्यक है, परन्तु व्यापार में इतने उच्च तापक्रम पर गरम करने में व्यय अधिक पड़ता है। अतः पकाने का तापक्रम कम करने के लिए कुछ द्रावकों का प्रयोग किया जाता है। चूँकि स्फटिक केलास १४००° सें० से नीचे तरल फेलसपार में नहीं घुलते हैं, अतः रासायनिक पोरसिलेन पात्र सदैव ही १४००° सें० से ऊपर पकाये जाते हैं। मिश्रण-पिण्ड में प्रायः स्फटिक या चकमक के बदले निस्तापित केओलिन, सिलीमेनाइट या बाइनाइट डाला जाता है।

श्रेष्ठ प्रकार की रासायनिक पोरसिलेन को सूक्ष्मदर्शी में देखने पर एक काँचित पिण्ड के अन्दर मूलाइट केलास एक दूसरे में घुसे हुए मालूम होते हैं, परन्तु स्फटिक केलास या तो बिलकुल नहीं होते या होते भी हैं, तो बहुत कम।

रासायनिक पोरसिलेन के कुछ विशेष सगठन नीचे दिये जाते हैं—

प्राकृतिक केओलिन	५०	५०	५१	५५
निस्तापित केओलिन	२०	८५	×	×
चकमक या स्फटिक	१८५	×	×	१४
फेलसपार	११५	११५	२५	३०
खड़िया	×	×	१५	१
सिलीमेनाइट	×	३०	२२·५	×

यद्यपि मूलाइट केलासों का तापप्रसार गुणक अधिक है, परन्तु मूलाइट मिश्रण-पिण्डों का तापप्रसार गुणक इतना अधिक नहीं है, कारण उसमें सिलीका काँच रहता है जिसका तापप्रसार-गुणक बहुत कम है। इसकी जाली जैसी रचना से पात्र कठोर

व मजबूत हो जाता है। दूसरे सिलीकेटों की अपेक्षा मूलाइट में अम्ल तथा क्ष के सक्षारक प्रभाव की प्रतिरोधक शक्ति भी सर्वाधिक है। रासायनिक पोरसि के दो मिश्रण-पिण्डों के संगठन इस प्रकार हैं, इन मिश्रण-पिण्डों से वाष्पीकरण प्या छोटी घरियाएँ आदि बनती हैं—

	वर्लिन का मिश्रण-पिण्ड	फास का मिश्रण-पिण्ड
सिलीका	६७ ५	६१ ६१
एल्यूमिना	२६ ६	३० ०१
फैरिक आक्साइड	० ८	१ ५६
टिटैनियम आक्साइड	० ४	×
चूना	० ४	३ ५६
मैगनीशिया	० ५	×
पोटैशियम आक्साइड	३ ३	३ २६
सोडियम आक्साइड	० ७	×

रासायनिक पोरसिलेन की निरपेक्ष (Absolute) तापचालकता, काँच ताप-चालकता से अधिक है, परन्तु इसका प्रसार-गुणक साधारण काँच, कड़ी । पात्र या दूसरे ऐसे पदार्थों से कम है। अत यह पोरसिलेन तापक्रम के आकरि परिवर्तनों को सहन कर सकती है। बर्लिन पोरसिलेन का द्रवणांक लगभग १६ सें० है। प्रलेप ऐसा हो कि क्षार घोलों से अप्रभावित रहे तथा इतना कठोर हे यदि पात्र ब्लॉस्ट बर्नर (Blast-Burner) द्वारा गरम किया जाय तो त्रिभुज या मे रखा पदार्थ प्रलेप से न चिपके। पात्र पतला, काँचीय तथा अल्प पार दर्शक होता

स्फटिक के स्थान पर सिलीमेनाइट या टाल्क डालने से पकाने के पश्चात् बचने मुक्त स्फटिक कणों की संख्या कम हो जायगी और इस प्रकार बार-बार गरम व करने से पात्र के चटक जाने की सम्भावना कम हो जायगी। क्षारों की तापचाल चूना तथा मैगनीशिया की अपेक्षा कम है, परन्तु तापजनित प्रसार अधिक है। रासायनिक पोरसिलेन में क्षारों की मात्रा यथासम्भव कम ही रहे।

दुर्गल पोरसिलेन—दुर्गल पोरसिलेन के पात्रों का उपयोग कई उद्देश्यों के होता है। कुछ महत्त्वपूर्ण उपयोग इस प्रकार हैं—(१) प्रयोगशालाओं में नली की भाँति (२) पाइरोमीटर या उत्तापमापक के लिए रक्षक नल के रु

(३) चिनगारी प्लग बनाने के लिए (४) विभिन्न प्रकार के विद्युत् तापकों आदि के आधार रूप में।

इन सभी वस्तुओं के भिन्न गुण होने चाहिए। कुछ मुख्य गुण इस प्रकार है— (१) पात्रों का गलन ताप उस तापक्रम से बहुत अधिक होना चाहिए, जिस तापक्रम पर पात्र का प्रयोग किया जायगा। (२) पात्रों में यान्त्रिक शक्ति काफी होनी चाहिए, जिससे उच्च तापक्रम पर यह अपना भार और कोई बाहरी धक्का या चोट सहन कर सकें। (३) उच्च तापक्रम पर पात्र गैसों के लिए अपारगम्य हों। (४) आकस्मिक तापक्रम परिवर्तनों की ओर प्रतिरोधक शक्ति अधिक हो। (५) गरम करने व ठण्डा करने से आयतन में परिवर्तन न हो और (६) उच्च पारविद्युत्-शक्ति हो।

किसी भी एक संगठन से ये सब गुण उत्पन्न नहीं हो सकते। अतः विभिन्न प्रकार के पात्रों के लिए संगठन में हेर-फेर किया जाता है। रक्षक नलों के संगठन भी बदले जाते हैं, कारण उन्हें विभिन्न तापक्रमों पर प्रयोग के लिए बनाया जाता है। रक्षक नलों के दो विशेष संगठन नीचे दिये जाते हैं।

केओलिन	३८	३२
बॉल-मिट्टी	१२	१८
फेल्सपार	१८	१२
स्फटिक	३२	३८

आवश्यक गुण उत्पन्न करने के लिए प्रयोग की जानेवाली मिट्टियों का चुनाव सावधानी से करना चाहिए। जिन मिट्टियों की प्राकृतिक अवस्था में तनन-क्षमता अधिक हो उन्हें प्राथमिकता दी जाती है।

रक्षक नल या तो विशेष प्रकार के द्रवचालित प्रेसों के द्वारा बनाये जाते हैं, या मिट्टी-घोले से ढालकर बनाये जाते हैं। ५ मिलीमीटर भीतरी व्यासवाले ढाले हुए नल, दबाव-विधि से बने नलों की अपेक्षा उत्तम होते हैं। वे अधिक सीधे तथा अधिक समाग होते हैं, कारण ढाले गये नलों को साँचे में तब तक रहने दिया जाता है, जब तक कि वे पकड़ने आदि के लिए खूब मज़बूत न हो जायें।

पकाते समय भट्ठी में रखने में बड़ी सावधानी रखनी चाहिए, विशेष कर उस समय जब नल लम्बे तथा भारी हों। पकाते समय नलों को खड़ा लटका दिया जाता है। लटके हुए नलों का भार रोकने के लिए मिट्टी की तनन-क्षमता काफी होनी चाहिए।

यदि नलो को चिकन-प्रलेगित करना हो, तो प्रारम्भिक पकाव प्राय ९००° से १०००° से० के बीच किया जाता है, परन्तु प्रलेप-पकाव के समय यह बहुत ही महत्त्व-पूर्ण है कि पूर्णता-प्राप्ति के लिए उच्चतम तापक्रम पर तापशोषण के लिए काफी समय दिया जाय, जिससे ताप नल को मोटी दीवारो में घुस सके और नल के सभी भाग समान रूप से पक जायँ। यदि यह ध्यानपूर्वक न किया गया तो नल पकाते समय ऐंठ सकते हैं और प्रयोग करते समय चटक सकते हैं। प्रलेप-पकाव का तापक्रम १४००° से १८००° से० के बीच रहता है। इस तापक्रम का निश्चय इस आधार पर किया जाता है कि तैयार पात्र किस तापक्रम पर प्रयोग किया जायगा।

चिनगारी प्लग—आन्तरिक दहन इजनो तथा मोटरो के लिए चिनगारी प्लग एक विशेष प्रकार की कठोर पोरसिलेन से बनाये जाते हैं। इस पोरसिलेन की मुख्य विशेषताएँ हैं—गरम व ठण्डा करने पर आयतन की स्थिरता तथा अधिक पार-विद्युत्-शक्ति। जिन पोरसिलेनो मे मुक्त स्फटिक की मात्रा अधिक हो उनमें आयतन परिवर्त्तन नही रोका जा सकता। अत अच्छे चिनगारी प्लगों मे स्फटिक के बदले निस्तापित सिलीमैनाइट या निस्तापित चीनी मिट्टी डाली जाती है। सिलीमैनाइट या केईनाइट (Kyanite) का प्रयोग करके बनायी गयी पोरसिलेन में आकस्मिक ताप परिवर्त्तनो को सहने की शक्ति अधिक होती है, आयतन नही बढता और यह बाहरी धक्को को भी अधिक सह सकती है। जब फेल्सपार के बदले चूना मैगनीशिया या बेरियम आक्साइड डाला जाय तो पात्र की पारविद्युत-शक्ति बहुत अधिक बढ जाती है। चिनगारी प्लग के लिए मिश्रण-पिण्ड की विशेषता है कि अवयव बहुत ही महीन पीसे जाते हैं। अन्तिम मिश्रण-पिण्ड बहुत समाग होता है। लचीला मिश्रण-पिण्ड काफी सावधानी से गूँधा जाना चाहिए, जिससे कोई हवा का बुलबुला न रह जाय और पूरा पिण्ड समाग हो जाय।

मृदु पोरसिलेन—खिलौनों और सजावट की वस्तुओ को बनाने के लिए मुख्य रूप से सैंगर पोरसिलेन और सेवरेस पोरसिलेन का प्रयोग किया जाता है। इन दोनो प्रकार की पोरसिलेनो में फेल्सपार डाला जाता है।

सैंगर पोरसिलेन के मिश्रण-पिण्ड का सूत्र इस प्रकार है—$RO. 2.74Al_2O_3. 23.52 SiO_2$ यहाँ RO. क्षारीय आक्साइडो, पोटैशियम आक्साइड तथा सोडियम आक्साइडो के लिए प्रयोग किया गया है। इस प्रकार का मिश्रण-पिण्ड निम्नलिखित अवयवों से बनाया जा सकता है—

१४

राजमहल केओलिन	३४५
मिहीजाम फेल्सपार	३०·०
निस्तापित स्फटिक	३५५

वोग्ट (Vogt) के अनुसार फ्रास की पोरसिलेन का सूत्र इस प्रकार है—

०३३ पोटैशियम आक्साइड, ०४८ सोडियम ,, , ०१९ कैलशियम ,, } २७२ एल्यूमिना, १४० सिलीका।

पात्र का प्रारम्भिक पकाव १२८०° सें० पर किया जाता है, जिससे प्रलेप के नीचे पात्रतल पर विभिन्न रगो की सजावट की जा सके। प्रलेप पकाव भी न्यून तापक्रम पर ही होता है, जिससे अल्प ताप-सहनशील विभिन्न रग भी नष्ट नही होते। विभिन्न रगो से की गयी सजावट इस प्रकार की पोरसिलेन की विशेपता है।

सेवरेस मृदु पोरसिलेन पर प्रयोग किया जानेवाला प्रलेप १३००° से १३२०° सें० के बीच पकता है और उसका अणु सगठन निम्नलिखित होता है।

०८५ चूना, ००९ सोडियम आक्साइड, ००६ पोटैशियम ,, } ०५ एल्यूमिना, ४२ सिलीका।

सैगर ने जापानी प्रलेप की नकल की थी और उसे सैगर मृदु पोरसिलेन पर प्रयोग किया था। इसका सगठन नीचे दिया जाता है—

०३ पोटैशियम आक्साइड, ०७ कैलशियम ,, } ०५ एल्यूमिना, ४ सिलीका।

यह प्रलेप १२८०° तथा १३००° सें० के बीच पकता है।

१३००° सें० पर पकनेवाली एक उत्तम फेल्सपारीय मृदु पोरसिलेन तथा उसके लिए प्रलेप निम्नलिखित अवयवो से बनाया जा सकता है।

पोरसिलेन मिश्रणपिण्ड सगठन—

पथरघट्टा मिट्टी		४५
अजमेर फेल्सपार		३५
स्फटिक		१७५
सगमरमर		२५
	योग	१०००

प्रलेप संगठन

फेल्सपार	४५
स्फटिक	२८
संगमरमर	१८
केओलिन	९
योग	१००

काँचित का प्रयोग करके भी मृदु पोरसिलेन बनायी जा सकती है। पोरसिलेन तथा उसके लिए प्रलेप निम्नलिखित अवयवों से बनाया जा सकता है—

काँचित मिश्रण संगठन		पोरसिलेन मिश्रणपिण्ड संगठन	
बोरैक्स	२८	उपर्युक्त काचित	२०
स्फटिक	२४	केओलिन	४०
खड़िया	२०	स्फटिक	२५
फेल्सपार	२०	फेल्सपार	१३
केओलिन	८	खड़िया	२

इस पोरसिलेन मिश्रणपिण्ड का प्रारम्भिक पकाव ८००° से ९००° सें० के बीच होता है। इस पर प्रयोग किये जानेवाले प्रलेप-मिश्रण को निम्नलिखित अवयवों से बना सकते हैं—

प्रलेप मिश्रण सूत्र

फेल्सपार	३७
स्फटिक	२५
बेरियम कार्बोनेट	१५
खड़िया	१०
केओलिन	८
जिंक आक्साइड	५
योग	१००

यह प्रलेप १२००° सें० पर पकाया जाता है।

आजकल एक नया खनिज पोर्सिलेन मृत्पात्रों के मिश्रण-पिण्ड तथा प्रलेप बनाने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इसे नेफेलीन सेनाइट (Nepheline Syenite)

कहते हैं। सी० जे० कोईनित्ज (C J Koenitz) ने सन् १९३९ ई० में बताया कि थोडी-सी मात्रा में पोटाश फेलसपार के स्थान पर नेफेलीन सेनाइट डालने से काँचीय होने के तापक्रम का परास बढ़ जाता है, जिससे पात्र में ऐंठने की धारणा कम हो जाती है। नेफेलीन सेनाइटवाले पात्रो के शब्द का तारत्व साधारण पात्रो से अधिक होता है। नेफेलीन को महीन पीसने से पकाने का तापक्रम कम हो जाता है तथा पकाने के तापक्रम का परास बढ जाता है। पात्रो का ऐंठना कम हो जाता तथा पदार्थ अधिक मजबूत हो जाता है। परन्तु नेफेलीन सेनाइट खनिज का सगठन बहुत अधिक बदलता रहता है, जिससे व्यवहार करते समय बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है।

चटकदार प्रलेप (Crackled-glaze)--जैसा कि चतुर्थ अध्याय में वर्णन किया जा चुका है कि पात्रो को ठण्डा करते समय पात्र तथा प्रलेप के असमान आकुचन के कारण प्रलेपतल पर सूक्ष्म दरारें पड जाती हैं। इन दरारो के पड़ने को चटक-दोष कहा गया है। जब इस दोष को नियन्त्रित करके दरारें निश्चित आवृत्ति की बनायी जा सकें, जो देखने में मछली के सेहरे (Scales) जैसी लगती हैं, तो इन दरारो का उपयोग सजावट के लिए किया जा सकता है। इन दरारो पर काजल या दूसरे रंजक रगड़ दिये जायँ, तो दरारो में घुसकर सजावट का काम करते हैं। आवश्यकतानुसार रग स्थिर करने के लिए पात्र को दुबारा पकाया जा सकता है। दरारो का नियन्त्रण केवल प्रलेप या पात्र मिश्रण-पिण्ड का संगठन बदलकर किया जा सकता है। व्यवहार में पात्र मिश्रण-पिण्ड का सगठन न बदलकर केवल प्रलेप का संगठन ही बदलना सुविधाजनक होता है। प्रलेप संगठन प्राय क्षार या सिलीका का अनुपात बढाकर और एल्यूमिना का अनुपात घटाकर ठीक किया जाता है। नीचे दो प्रलेप सगठन दिये जा रहे हैं। इनमें से एक साधारण प्रलेप है, दूसरा उसी प्रलेप का सगठन परिवर्तित करके उसे चटकदार प्रलेप बनाया गया है—

	साधारण प्रलेप	चटकदार प्रलेप
सिलीका	६६ १	७९·५३
एल्यूमिना	१४ ५	११·८७
क्षार	३ ५	५·६५
चूना	१५ ९	२ ९५

उपर्युक्त चटकदार प्रलेप इन अवयवों से बनाया गया था—

पेगमेटाइट	५१ भाग
बालू	३८ ,,
चीनी मिट्टी	६ ,,
खड़िया	५ ,,

इस चटकदार प्रलेप के लिए उचित मिश्रण-पिण्ड का सगठन यह होगा—सिलीका ६६ भाग, एल्यूमिना २७ भाग तथा क्षार ७ भाग। यह प्रलेप १३५०° सें० पर पकता है।

प्रलेपित करने की विधि साधारण है। प्रलेप की मोटाई न बहुत अधिक हो, न बहुत कम। प्रलेप की मोटाई पर दरारों की आकृति निर्भर करती है। प्रलेप की उचित मोटाई केवल अनुभव द्वारा निश्चित की जा सकती है। दरारों का आकार बढ़ाने के लिए चटकदार प्रलेप में साधारण प्रलेप मिलाओ। साधारण प्रलेप की मात्रा जितनी ही अधिक होगी दरारें उतनी ही बड़ी होंगी। इस प्रकार की सजावट के लिए पात्र की मोटाई साधारण पात्रों की मोटाई से कुछ अधिक रहनी चाहिए, जिससे प्रलेप तथा पात्र के असमान आकुचन से उत्पन्न तनाव को पात्र सह सके। चीनी कलाकार इस प्रकार की पोरसिलेन वस्तुएँ बनाने में सिद्धहस्त थे।

अस्थि-पोरसिलेन या बोन चाइना—अस्थि पोरसिलेन बनाने के लिए इँग्लैण्ड के कुम्हार चीनी मिट्टी, बॉल-मिट्टी, कार्निश पत्थर तथा अस्थि-राख का प्रयोग करते हैं। अस्थि पोरसिलेन के कुछ सूत्र नीचे दिये जाते हैं—

चीनी मिट्टी	४०	३०	२३	३५
बॉल-मिट्टी	८	६	१०	×
कार्निश पत्थर	२४	३४	३२	२५
अस्थि-राख	२८	३०	३५	४०

लगभग ०.०५ प्रतिशत अच्छा नीला रजक मिलाओ। प्रारम्भिक पकाव ११००° से १२००° सें० के बीच किया जाता है। पकाते समय सावधानी से भट्ठी को नियन्त्रित रखना चाहिए, कारण थोड़ा-सा भी अधिक पकने पर अस्थि-राख विच्छेदित होकर

गैसें उत्पन्न करती है, जिनसे पात्र की आकृति नष्ट हो जाती है, या पात्र-तल पर फफोला-दोष आ जाता है।

इंग्लैण्ड के वर्तमान कुम्हारों में से अधिकतर कार्निश पत्थर के स्थान पर फेल्सपार का प्रयोग करते है, कारण कार्निश पत्थर का संगठन बदलता रहता है।

उत्कृष्ट कोटि की अस्थि-पोरसिलेन के पुराने निर्माण सूत्र में एक प्रकार का काँचित भी मिश्रण-पिण्ड में रहता है। इस काँचित तथा मिश्रण-पिण्ड के संगठन नीचे दिये जाते हैं—

काँचित मिश्रण के अवयव—

फेल्सपार	६०
बोरैक्स	२५
शोरा	५
अमोनियम क्लोराइड	१०
योग	१००

मिश्रण-पिण्ड के अवयव

उपर्युक्त काँचित	४५	३५
चीनी मिट्टी	४०	३५
अस्थिराख	१५	३०

प्रारम्भिक पकाव ११४०° सें० और १२००° सें० के बीच होना है।

यद्यपि प्राचीन काल में अस्थि-पोरसिलेन के लिए साधारण प्रलेप का ही प्रयोग किया जाता था, पर आजकल काँचित प्रलेप का प्रयोग किया जाता है। एक ही प्रलेप विभिन्न मिश्रण-पिण्डों के लिए उपयोगी नहीं होता। जो प्रलेप एक मिश्रण-पिण्ड के लिए बहुत ही उपयोगी हो, वह दूसरे के लिए अनुपयोगी हो सकता है, चटक-दोष या पपड़ी-दोष को जन्म दे सकता है।

अस्थि-पोरसिलेन के प्रलेपों के कुछ विश्लेषण नीचे दिये जाते हैं। किसी विशेष पात्र के लिए उपयोगी बनाने के लिए संगठन थोड़ा-बहुत बदला जा सकता है।

काचित मिश्रण अवयव (१)		कांचित मिश्रण अवयव (२)	
बोरैक्स	४०	बोरैक्स	३०
खड़िया	१०	खड़िया	२०
चकमक	२०	चकमक	१५
फेल्सपार	३०	चीनी मिट्टी	१०
योग	१००	कार्निश पत्थर	२५
		योग	१००

प्रलेप मिश्रण अवयव (१)		प्रलेप मिश्रण अवयव (२)	
काचित (१)	५०	कांचित (२)	६५
सफेदा	१५	कार्निश पत्थर	१५
चीनी मिट्टी	१०	चकमक	१०
फेल्सपार	१५	सफेदा	१०
चकमक	१०		
योग	१००	योग	१००

कुछ पुराने सूत्रों में कांचित मिश्रण में साधारण कांच का भी प्रयोग किया गया था। साधारण काँचवाले कांचित मिश्रण तथा उन कांचितों से बने प्रलेप-मिश्रण के अवयव नीचे दिये जाते हैं।

कांचित मिश्रण (३)		प्रलेप मिश्रण (३)	
कांच	६९	कांचित (३)	६
लिथार्ज	१८	चकमक	१८
बोरा	८	सफेदा	५८
आर्सेनिक आक्साइड	४	कार्निश पत्थर	२६
नीलारंजक	१	योग	१००
योग	१००		

काँचित-मिश्रण (४)		प्रलेप-मिश्रण (४)	
		काँचित (४)	३०
बोरेक्स	१३	सफेदा	३९
चकमक	८७	कार्निश पत्थर	३०
योग	१००	नीला रंजक	१
		योग	१००

प्रलेप का पकाव १०००° से० और ११००° से० के बीच होता है तथा पात्र के प्रारम्भिक पकाव का तापक्रम प्रलेप पकाव के तापक्रम से बहुत अधिक होता है। प्रलेप पकाव के न्यून तापक्रम के कारण पात्र पर अन्त प्रलेप रंजकों से सुन्दर रंगीन सजावटें की जा सकती हैं, जो कठोर पोरसिलेन के पात्रों पर सम्भव नहीं है।

पेरियन पोरसिलेन (Parian-Porcelain)—इस प्रकार की पोरसिलेन विशेष कर मूर्तियों तथा खिलौनों के बनाने में काम आती है। इसका दूसरा नाम बिस्कुट पोरसिलेन भी है। पेरियन पोरसिलेन के मिश्रण-पिण्डों के कुछ संगठन नीचे दिये जा रहे हैं।

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
केओलिन	३७	३५	३६	५०	५०
फेल्सपार	६३	४५	६०	४७·५	३६
पेगमेटाइट	×	२०	×	×	×
सीसा काँच	×	×	४	२	×
स्फटिक	×	×	×	×	१०
ज़िंक आक्साइड	×	×	×	०·५	१
संगमरमर	×	×	×	×	३
योग	१००	१००	१००	१००	१००

मिश्रण-पिण्ड १, २ तथा ३ ढलाई विधि से बने खिलौनों के लिए प्रयोग किये जाते हैं, कारण ये पिण्ड कुछ अल्प लचीले हैं। इनके पकाने का तापक्रम ११४०° सें० से ११६०° से० तक है। मिश्रण-पिण्ड ४ तथा ५ काफी लचीले हैं, अतः इनसे

पात्र किसी भी विधि से बनाये जा सकते हैं। पकने के पश्चात् वस्तुएँ काफी श्वेत हो जाती हैं। इनके पकाने का तापक्रम ओपदीकारक वातावरण में १२५०° से० से १२८०° से० तक है। यदि पात्र (विशेषकर अन्तिम अवस्था में) अवकारक वातावरण में पकाया जाय तो छोटे-छोटे बुलबुले या फफोले-जैसे पड सकते हैं।

पोर्सिलेन पकाना—कुम्हार का सबसे कठिन कार्य पात्रों को पकानेवाले बक्सों में ठीक प्रकार से रखना होता है। इन बक्सो को 'सैगर' कहा जाता है। ठीक तरह से न रखे जाने पर प्रलेप पिघलकर सैगर की दीवारों या दूसरे पात्रों से चिपक जायगा। यदि पात्र को सीधा सैगर पर रख दिया जाय तो पात्र तथा सैगर के असमान आकुंचन के कारण पात्र ऐंठ जायगा। इस कठिनाई को दूर करने के लिए प्रत्येक पात्र दुर्गल मिट्टियों से बने विशेष प्रकार के आधार पर रखा जाता है। गोलाकार वस्तुओं को रखने का आधार पात्र के मिश्रण-पिण्ड से ही बनाया जाता है। इससे पकाने पर पात्र तथा आधार का आकुंचन समान होने से पात्र के गोल किनारों की आकृति नष्ट नहीं होने पाती। आधार तथा पात्र के स्पर्श करनेवाले भागों पर तेल महीन रेत मिलाकर पोत दिया जाता है, जिससे पात्र आधार पर चिपक न जाय। जिन पात्रों को चपटा ही रखना हो, उन्हें विशेष प्रकार की पूर्व पकायी हुई पटियाओं पर रखा जाता है। नल तथा लम्बे बेलनाकार पात्र प्राय सैगर के अन्दर शक्तिशाली दुर्गल छडों से लटकते हुए रखे जाते हैं। इसके अतिरिक्त किसी विशेष प्रकार की वस्तु के लिए उपयोगी अनेकानेक विधियाँ होती हैं।

चूँकि भट्ठी में सब स्थानों का तापक्रम समान नहीं होता, इस कारण तापक्रम का विचार रखते हुए विभिन्न प्रकार के पात्रों को रखने के स्थान का निर्णय करने में बडी सावधानी की आवश्यकता है। भट्ठी के चूल्हे के मुँह के पास ही प्रथम चक्र में कोई ऐसा पात्र न रखा जाय जो अधिक पकाने पर खराब हो जाय, कारण यह भट्ठी का सर्वाधिक गरम भाग है। निम्नगति भट्ठियों में सैगरों के रखने का ढग भी विशेष महत्व का है। ठीक प्रकार से न रखने से गरम गैसें एक भाग में दूसरे भाग की अपेक्षा अधिक सरलता से जाकर उस भाग के पात्रों को दूसरे भाग के पात्रों की अपेक्षा अधिक पका देंगी। सैगर रखते समय यह ध्यान में रखा जाय कि पूरी भट्ठी में दो चक्रों के बीच खाली स्थान समान रूप से छूटे, तथा यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि निम्नगति भट्ठियों में सैगरों के बीच का स्थान ही वास्तव में गैसों के बहने का रास्ता होता है।

भट्ठी के फर्श पर रखे सैगरों के बीच में खाली स्थान छोड़ने में कुछ सावधानी रखनी चाहिए, कारण इस पर गरम गैसों का विभाजन निर्भर करता है। सर्वोत्तम ढंग यह है कि फर्श पर तीन टाँगोंवाले विशेष प्रकार के सैगर रखे जायें, जो अपने ऊपर रखे गये सभी सैगरों का भार सहन कर सकें। सैगरों के इस प्रकार रखने से आनेवाली गरम गैसों का मार्ग सैगरों के बीच या फर्श पर कहीं भी अवरुद्ध नहीं होता। यूरोप में कठोर पोरसिलेन पकाने के लिए दो प्रकोष्ठवाली निम्नगति भट्ठी का सर्वाधिक प्रयोग होता है। इसका वर्णन अध्याय ११ में किया गया है।

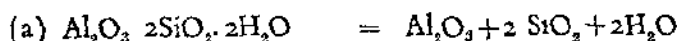
इस प्रकार की भट्ठी के तापव्यय का ब्यौरा निम्नांकित विधि से समझा जा सकता है—

प्रलेप पकाव	१६	प्रतिशत
प्रारम्भिक पकाव	४	,,
राख में हानि	१०	,,
चिमनी द्वारा हानि	३०—३५	,,
दीवारों में विकिरण द्वारा हानि	३०—३५	,,

पोरसिलेन पकाने की क्रिया को सुविधापूर्वक तीन स्तरों में बाँटा जा सकता है—

पूर्व पकाव (Fore Fire)—यह स्तर ६००° सें० तक जाता है तथा इसमें ५-६ घण्टे तक लगते हैं, क्योंकि पोरसिलेन काफी सरन्ध्र तथा कम घनी होती है, जिससे कारण नमी का पानी सरलता से निकल जाता है।

मध्य पकाव—यह स्तर ६००° सें० से लगभग ११००° सें० तक या प्रलेप पिघलने के पूर्व तक रहता है। इस स्तर में १० से १२ घण्टे का समय लगता है। इस अवस्था में पकने की गति धीमी होती है, कारण इस स्तर में केओलिन का केलास जल दूर होता है, जिसको अधिक समय न देने से पात्र के फटने का डर रहता है। इस स्तर के प्रारम्भ में मिश्रण-पिण्ड की मिट्टी, मुक्त आक्साइडों में विच्छेदित होना प्रारम्भ हो जाती है तथा बाद में यही आक्साइड सयोग कर सिलीमेनाइट तथा मूलाइट केलास बनाने लगते हैं।


(a) $Al_2O_3\ 2SiO_2.2H_2O = Al_2O_3 + 2\ SiO_2 + 2H_2O$


(b) $Al_2O_3 + SiO_2 = Al_2O_3\ SiO_2$


(c) $3(Al_2O_3.\ 2SiO_2) = 3\ Al_2O_3\ 2SiO_2 + SiO_2.$

उच्च पकाव—यह स्तर द्वितीय स्तर के अन्त में प्रारम्भ होता है जब कि पात्र के प्रकार के अनुसार पकाने की गति बढ़ायी जा सकती है। इस समय फेल्सपार पिघलकर मुक्त स्फटिक-कणों को घुलाकर एक स्थान काचित द्रव बनाना प्रारम्भ कर देता है, जो बढ़ते तापक्रम के साथ अधिकाधिक तरल होता जाता है, तथा ठण्डा करने पर इस काचित पदार्थ में मूलाइट क्रेलास बनने जाते हैं। भट्ठी में १४००° सें० तक पोरसिलेन पकाने में पूरा समय ३० घण्टे से अधिक नहीं लगता। जब भट्ठी उच्चतम तापक्रम पर आ जाय, तो तापक्रम को स्थिर रखकर २-३ घण्टे तक का समय ताप-शोषण के लिए देना चाहिए, जिसमें मोटे तथा भारी पात्रों के भीतर भी ताप पहुंच सके और प्रलेप पात्र को मजबूती से पकड़ सके।

पकाने के बाद भट्ठी को बहुत धीरे-धीरे ठण्डा करना चाहिए तथा पकाने की क्रिया समाप्त हो जाने के बाद भी कम से कम १० घण्टे तक भट्ठी के द्वार न खोले जायें। ६० घनमीटर की भट्ठी से पात्र निकालने में ३ आदमियों को लगभग ५ घण्टे लगेंगे, परन्तु इन्हीं पात्रों को भट्ठी में रखने में लगभग दूना समय लगेगा।

लगभग द्वितीय स्तर के अन्त तक भट्ठी का वातावरण आक्सीकारक रखना चाहिए, जिसमें पात्र में उपस्थित कार्बन या कार्बनिक पदार्थ जल जायें, परन्तु द्वितीय स्तर के अन्तिम भाग में वातावरण को बारी-बारी से आक्सीकारक व अवकारक रखना सुरक्षित होता है। इसके पश्चात् भट्ठी का वातावरण अवकारक रखना चाहिए, अन्यथा फैरिक लौह के कारण पात्र में पीला रंग आ जायगा। अवकारक वातावरण में फैरिक लौह, फेरस लौह में बदल जाता है। परिणाम-स्वरूप पीला रंग कुछ हलके नीले रंग में बदल जाता है। इस हलके नीले रंग की उपस्थिति पोरसिलेन में अच्छी समझी जाती है। यदि पकाने पर पात्र-तल के ऊपर हाइड्रोकार्बन जमा होने का भय न हो, तो अवकारक वातावरण रखना कठिन नहीं होता। प्रलेप-तल पर हाइड्रोकार्बन जमा होकर प्रलेप में मिल जायेंगे और पात्र को काला कर देंगे। यदि प्रलेप-तल पर हाइड्रोकार्बनों का जमना मालूम पड़े, तो भट्ठी के अन्दर गरम हवा भेजकर हाइड्रोकार्बन को जला देना चाहिए।

यह आवश्यक है कि भट्ठी के अन्दर गैसों का दबाव भट्ठी के बाहर के हवा-दबाव से कुछ अधिक ही होना चाहिए, जिससे भट्ठी की दीवारों की सूक्ष्म दरारों से बाहर की हवा अन्दर न चली आये। ये सूक्ष्म दरारें भट्ठी गरम होने पर कुछ अधिक खुल

सप्तम अध्याय

कड़े मिट्टी-पात्र

कड़े मिट्टी-पात्र वह काचीय मृत्पात्र हैं जो अपारदर्शक तथा अधिकांश द्रव्यों, विशेष कर पानी के लिए अपारगम्य होते हैं। ये प्रायः अग्निमिट्टियों से बनाये जाते हैं, परन्तु कुछ आधुनिक नमूने चीनी मिट्टी से भी बनाये जाते हैं जिन पर फेल्स-पारीय कठोर प्रलेप चढ़ा रहता है। साधारणतः अग्नि मिट्टी से बने पात्रों पर नमक-प्रलेप चढ़ा रहता है।

उत्कृष्ट कोटि के कड़े मिट्टी-पात्रों और पोरसिलेन पात्रों के बीच विभाजन-रेखा खींचना कठिन ही नहीं, अपितु असम्भव-सा है। श्रेष्ठ कड़े मिट्टी पात्र के पतले भाग में थोड़ी पारभासकता (Transluscency) होती है, जब कि कठोर पोरसिलेन के मोटे टुकड़े की पारभासकता पूर्णरूपेण नष्ट हो जाती है। दूसरी ओर कड़े मिट्टी-पात्रों को प्रलेपित मृत्पात्रों से अलग करने के लिए अपारगम्यता भी कोई सन्तोषजनक आधार नहीं माना जा सकता, कारण कुछ वस्तुएँ, यथा घरों से पानी निकालने के नल, कड़े मिट्टी-पात्रों की कोटि में आते हैं, परन्तु प्रलेपित होने से पूर्व पूर्ण अपारगम्य नहीं होते।

मृत्कला के विचार से उन सभी मृत्पात्रों को, जो काचीय अपारदर्शक और लगभग रन्ध्रहीन हैं या अपारगम्य हैं कड़े मिट्टी-पात्र कहना उचित होगा। इस वर्ग के पात्रों में अधिकतम रन्ध्रता तीन प्रतिशत तक होनी चाहिए।

कड़े मिट्टी-पात्र मुख्य दो भागों में विभाजित किये जा सकते हैं। यह विभाजन पात्रों को बनाने के लिए प्रयोग किये जानेवाले पदार्थों की प्रकृति पर आधारित है।

१. **उत्कृष्ट कड़े मिट्टी-पात्र**—इस वर्ग में स्वास्थ्य सम्बन्धी पात्र, घरेलू उपयोग के पात्र तथा रासायनिक उद्योग के लिए अम्लरोधक पात्र आते हैं। इन पात्रों को बनाने के लिए प्रयोग की जानेवाली मिट्टियाँ प्रयोग से पूर्व प्रायः विशुद्ध कर ली जाती हैं।

२. साधारण कड़े मिट्टी-पात्र—इस वर्ग में मोरी नल, विभिन्न उपयोगों के लिए रन्ध्रहीन टालियाँ आदि आते हैं तथा ये वस्तुएँ बिना धुली प्राकृतिक मिट्टियों से बनायी जाती हैं।

स्वास्थ्य-सम्बन्धी पात्र—आजकल स्वास्थ्य-सम्बन्धी पात्र पोरसिलेन मिश्रण-पिण्ड से बहुत कुछ मिलते-जुलते मिश्रण-पिण्डों से बनाये जाते हैं। परन्तु प्राचीन काल में अधिकांशतः निम्न कोटि की अग्निमिट्टियों या मार्ल मिट्टी से बनाये जाते थे। इन पात्रों पर, पात्र का रंग छिपाने के लिए एक श्वेत परत चढ़ा दी जाती थी। आजकल भी कुछ निर्माणकर्ता स्थानीय मार्ल के प्रयोग से कड़े मिट्टी-पात्र बनाकर उन पर अपारदर्शक श्वेत प्रलेप चढ़ा देते हैं।

यद्यपि विभिन्न स्थानों के स्वास्थ्य-सम्बन्धी पात्र बनाने के लिए प्रयोग किये गये मिश्रण-पिण्डों में काफी भिन्नता रहती है, परन्तु सभी निर्माणकर्त्ता ऐसा मिश्रण-पिण्ड प्रयोग करते हैं, जो १३००° सें० से कम तापक्रम पर काँचीय होकर ठोस पिण्ड में परिवर्तित हो जाय तथा जिस पर सीसा रहित कठोर प्रलेप चढाया जा सके, जो पात्रों के प्रयोग करते समय चटक न जाय। इस प्रकार के मिश्रण-पिण्डों का संगठन निम्नलिखित सीमाओं के बीच रहता है।

मिट्टियाँ	४०—५५
स्फटिक	४२—५५
फेल्सपार	३—१५

पात्र पकाने का तापक्रम ११८०° सें० से १२५०° सें० तक होता है।

इंग्लैण्ड तथा दूसरे यूरोपीय देशों के कड़े मिट्टी-पात्र मिश्रण-पिण्डों के कुछ संगठन इस प्रकार हैं—

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)
लचीली मिट्टी	४३	३०	१८	३६	२५	३०
केओलिन	२४	२२	४३	३०	३१	४०
निस्तापित स्फटिक	२३	३६	२४	३०	३९	१६
कार्निश पत्थर	१०	१२	१५	×	×	×
फेल्सपार	×	×	×	४	५	१४
योग	१००	१००	१००	१००	१००	१००

१, २ तथा ३ मिश्रण-पिण्ड इंग्लैण्ड के है और ४, ५ तथा ६ मूलरूप से जर्मनी में निकाले गये थे। मिश्रण-पिण्ड ५ का प्रयोग सैगर ने काफी समय तक कड़े मिट्टी-पात्र बनाने मे किया था।

१२३०° से० मे १२८०° से० के बीच पकनेवाला एक स्वच्छ पारदर्शक तथा चमकदार प्रलेप निम्नलिखित अवयवो से बनाया जा सकता है—

पोटाश	० ३	०४ एल्यूमिना, ३ ५ सिलीका।
चूना	० ४	
बेरीटा	० ३	

सिलीका बढ़ाकर ४ अणु तक की जा सकती है, परन्तु इसमे अधिक नही, अन्यथा भट्ठी के कम तापक्रमवाले भाग में रखे पात्रो के प्रलेप में केलामीकरण की धारणा आ जायगी। दूसरी ओर यदि एल्यूमिना ० ०२ अणु से भी कम किया गया, तो १२३०° सें० पर प्रलेप दूधिया होना प्रारम्भ कर देगा। पोटाश को ०'३ अणु से कम नहीं प्रयोग करना चाहिए। अधिक, सिलीकावाले प्रलेपो में मैगनीशिया भास्मिक द्रावक की भाँति कार्य करता है, परन्तु बेरीटा से अच्छा परिणाम निकलता है। अन्त प्रलेप रंजको के साथ यह प्रलेप बडा अच्छा परिणाम देता है और निम्नलिखित अवयवो से बनाया जा सकता है—

फेल्सपार	..	१६६
बालू	.	९०
विदेराइट	..	५९
सगमरमर	..	४०
केओलिन		२५

विषम आकृतिवाली वस्तुएँ बनाने के लिए विशेष लचीले पिण्ड निम्नलिखित मिश्रणो से बनाये जा सकते है—

लचीली मिट्टी	.	५८	४५	३३
केओलिन	.	×	७	१७
स्फटिक	.	२५	२६	२५
फेल्सपार	..	१७	२२	२५
योग	..	१००	१००	१००

११६०° सें० पर पकनेवाले इस मिश्रण-पिण्डों के लिए कार्योपयोगी एक फेल्सपारीय प्रलेप का अणु-सूत्र निम्नलिखित है—

०.३ पोटैशियम आक्साइड ०.५ कैल्शियम ,, ०.१ मैगनीशियम ,, ०.१ बेरियम ,,	०.४ एल्यूमिना, ३.८५ सिलीका।

उपर्युक्त प्रलेप निम्नलिखित अवयवों से बनाया जा सकता है—

फेल्सपार	..	१६७.०
बालू	..	१११.०
संगमरमर	..	५०.०
केओलिन	..	२५.८
विदेराइट	..	१९.७
मैगनेसाइट	..	८.४

मिश्रण-पिण्ड तथा पात्र-निर्माण पोरसिलेन की भाँति ही है, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है। परन्तु ये पात्र मोटे होने के कारण बहुत धीरे-धीरे सुखाये जाते हैं, जिससे सुखाते समय इनमें दरारें न पड़ जायँ। पात्र कभी-कभी बिना प्रारम्भिक पकाव के ही प्रलेपित कर दिये जाते हैं, परन्तु साधारणतः प्रारम्भिक पकाव के पश्चात् प्रलेप चढ़ाया जाता है। प्रलेप चढ़ाने के पश्चात् पात्र दुबारा पका लिया जाता है। स्वास्थ्य-सम्बन्धी पात्रों के प्रलेप में ज़िंक आक्साइड, टिटैनियम आक्साइड या टिन आक्साइड डालकर अपारदर्शक तथा साधारण रंजक डालकर रंगीन बनाया जा सकता है।

भारतीय कच्चे मालों का प्रयोग करते हुए बनाये गये कुछ कड़े-मिट्टी-पात्रों के मिश्रण-पिण्डों के संगठन नीचे दिये जाते हैं—

		(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
राजमहल केओलिन	.	×	×	×	३०	३०
मगमा अग्नि-मिट्टी	.	६०	×	×	×	२५
नलहाटी अग्नि-मिट्टी	..	×	६०	५५	२०	×
मिहीजाम फेल्सपार	..	२०	२८	२५	३०	२५
मिहीजाम स्फटिक		१८	१०	१८.५	२०	२०
संगमरमर चूर्ण	.	२	२	१.५	×	×

११६०° सें० पर पकाने के पश्चात् इन सब मिश्रण-पिण्डों में संकुचन ३ प्रतिशत से कम होती है। मिश्रण-पिण्ड १, २ तथा ३ मलाई रंग के हैं। अतः श्वेत अपारदर्शक प्रलेप से प्रलेपित करने चाहिए। मिश्रण ४ और ५ काफी श्वेत हो जाते हैं।

११६०° सें० पर पकनेवाले उपर्युक्त मिश्रण-पिण्डों के लिए उपयोगी प्रलेप निम्नलिखित पदार्थों से बनाया जा सकता है—

फेल्सपार	४५
स्फटिक	२५
केओलिन	१०
संगमरमर	१०
ज़िंक आक्साइड	१०

प्रयोगशाला आदि में व्यवहार किये जानेवाले हाथ धोने के पात्र जैसी भारी वस्तुएँ प्रायः गलनशील मिट्टियों तथा छर्रियों से बनायी जाती हैं। इन पात्रों को बनाने के लिए ५० से ६० भाग अच्छी गलनशील मिट्टी में ५० से ४० भाग छर्री मिलाकर उचित विद्युद्विश्लेष्यों की सहायता से ढलाई-घोल तैयार कर लेते हैं। मिट्टी और छर्री का अनुपात ऐसा हो कि मिश्रण का सम्पूर्ण आकुंचन ४ प्रतिशत से अधिक न हो। अधिक आकुंचन से पात्र, विशेष कर मोड़ तथा कोनों पर, चटक जायँगे। आकुंचन को नियन्त्रित करने के विचार से छर्री का वर्गीकरण ठीक प्रकार से करना चाहिए। छोटे तथा बड़े टुकड़ोंवाली छर्री का मिश्रण, समान मात्रा की केवल बड़े टुकड़ोंवाली छर्री की अपेक्षा कम आकुंचन उत्पन्न करेगा। महीन छर्री से तल अच्छा बनता है। घोले का घनत्व लगभग ३६ औंस प्रति पाइण्ट हो। इसके पश्चात् वस्तुएँ प्लास्टर के मोटे साँचों में ढाली जाती हैं। ढले हुए पात्र बड़ी धीमी गति से सुखाये जाते हैं। सुखाने के लिए धरातल के नीचे बने हुए कमरों का प्रयोग किया जाता है, कारण इनमें शीघ्र और असमान सुखाव का भय नहीं रहता। यदि सुखाते समय सूक्ष्म दरारें पड़ गयी हों, तो वे पकाने से पूर्व नहीं दीखतीं, परन्तु पकाने के पश्चात् स्पष्ट हो जाती हैं। अतः भारी पात्रों को सुखाते समय बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। कभी-कभी पात्र साँचों द्वारा दबाव-विधि से भी बनाये जाते हैं, जिनके कारण पात्रों में सुखाते समय पड़नेवाली दरारें कम हो जाती हैं, क्योंकि दबाव विधि से बने पात्रों का शुष्क आकुंचन कम होता है। परन्तु पात्र, ढलाई-विधि से ही अच्छे बनते हैं।

चूँकि ये छर्रायुक्त पात्र प्राय रंगीन होते हैं, अत. सदैव ही पात्र-तल ढकने के लिए एक श्वेत सरन्ध्र प्रलेप का प्रयोग किया जाता है। सरन्ध्र प्रलेप बौछार-विधि से चढाना सर्वोत्तम होता है। पात्र और सरन्ध्र प्रलेप दोनों के अच्छी तरह सूख जाने पर प्रारम्भिक पकाव प्राय ११००° से ११६०° सें० के बीच किया जाता है।

छर्रायुक्त पिण्डों के लिए निम्नलिखित पदार्थों से सरन्ध्र प्रलेप बनाया जा सकता है—

राजमहल केओलिन		४५
अजमेर फेल्सपार	.	३०
स्फटिक	..	२३
संगमरमर	..	२
योग	.	१००

इस सरन्ध्र प्रलेप के लिए उपयोगी तथा १०२०° सें० पर पकनेवाले चिक्कन-प्रलेप तथा उसमें प्रयोग होनेवाले काँचित का संगठन नीचे दिया जा रहा है—

काँचित मिश्रण		प्रलेप मिश्रण	
लाल सीसा	२०	काँचित	८०
बोरेक्स	२२	केओलिन	८
फेल्सपार	१७	स्फटिक	६
स्फटिक	३०	टिन आक्साइड	६
संगमरमर	११	योग	१००
योग	१००		

कुछ आधुनिक स्वास्थ्य-सम्बन्धी पात्र हल्के रंगवाले अपारदर्शक चिक्कन-प्रलेपों से ढँके रहते हैं। कुछ रंगीन अपारदर्शक चिक्कन-प्रलेपों के संगठन नीचे दिये जाते हैं।

(१) ११८०°–१२००° सें० पर पकनेवाले नीलाभ गुलाबी एनामेल प्रलेप का संगठन इस प्रकार है—

रासायनिक कड़े मिट्टी-पात्र—इस प्रकार के पात्र तथा घरेलू उपयोग के बड़ी मिट्टी के वर्तन अधिक सिलीकामय गलनशील मिट्टियों से बने होते हैं। ये मिट्टियाँ प्राय प्रयोग से पूर्व विशुद्ध कर ली जाती है। यदि प्राकृतिक मिट्टी समाग तथा ककड आदि से रहित हो, तो मिट्टी का शोधन आवश्यक नही। मिट्टी या मिट्टियो के मिश्रण की विशेषता यह होनी चाहिए कि गीली अवस्था में अधिक लचीली हो, पकाने के पश्चात् खराद यन्त्र पर सफाई करने या चूडियाँ काटने आदि में कोई कठिनाई न हो। लचीली अवस्था में मिट्टी में यह क्षमता होनी चाहिए कि वह रासायनिक प्रयोगशाला के उपयोग की विषम से विषम आकृतिवाली वस्तुएँ बना सके और पकाने के पश्चात् पात्र ऐसा हो कि उसके जोड, डाट, चूडियाँ आदि को घिसकर आवश्यक यथार्थताएँ लायी जा सकें। पकाने के पश्चात् ये पात्र सक्षारक रसद्रव्यो के संक्षारक प्रभाव को सह सकें। पात्रो की ताप चालकता अधिक तथा तापजनित प्रसार कम हो, जिससे आकस्मिक तापक्रम परिवर्तनो को सहन कर सकें।

आधुनिक बडे मिट्टी-पात्रो के कुछ उपयोग नीचे दिये जाते हैं—

(१) पेटी से चलनेवाले उच्च गतिवाले अपकेन्द्र पम्प।
(२) सक्षारक गैसो तथा धुएँ को बाहर निकालनेवाले पखे।
(३) अम्ल उठाने के लिए प्लजर नल।
(४) रसद्रव्यो के लिए मिश्रक।
(५) अम्ल तथा सक्षारक रसद्रव्यो को रखने के लिए ड्रम, हौज़, पात्र आदि।

सक्षारक रसद्रव्यो को रखनेवाले पात्र उन पात्रो से अधिक ठोस होने हैं जिन्हें निरन्तर तापक्रम परिवर्तन सहना पडता है।

लचीली मिट्टी के साथ अलचीले पदार्थ, जैसे बालू, एल्यूमिना, छर्री आदि मिलाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि पकाने के पश्चात् विकसित कणों का आकार ऐसा बने कि पात्र अधिक कठोर हो और उसकी आघात सहनशीलता भी बढे।

गौण मिट्टियो में Na_2O, CaO, MgO, TiO_2 तथा Fe_2O_3 अपद्रव्य के रूप में रहते हैं। इन आक्साइडों के कारण पदार्थ के काँचीयकरण तापक्रम पर प्रभाव पडता है तथा काँचित पदार्थ की श्यानता भी इन पर निर्भर करती है। जब मिट्टी लगभग १०००° सें० तक गरम की जाती है, तो एल्यूमिना तथा सिलीका सयोग कर मूलाइट बनाना प्रारम्भ करते हैं। मैक वे (*Mc.Vay*) और

टामसन (Thomson) ने धीरे-धीरे मिट्टी को ९५०° सें० तक गरम करके मूल्लाइट केलासों के नमूने बनाये थे। तापक्रम बढ़ाने से मूलाइट की मात्रा बढ़ी थी, अर्थात् मूलाइट केलासों का अच्छी प्रकार केलासीकरण हुआ और अधिक तापक्रम बढ़ाने पर द्रावक पिघलकर एक कांचीय तरल पदार्थ में बदल जाते हैं। ये तरल पदार्थ केलासीय तथा अकेलासीय मूलाइट को जोड़ने का काम करते हैं। यदि मिट्टी में सिलीका अधिक हो तो द्रावकों से बना यह कांचीय पदार्थ ठण्डा होने पर भुरभुरा हो जाता है जिसके कारण उत्पन्न पदार्थ की तापक्रम-परिवर्तन-सहनक्षमता कम हो जाती है। पदार्थ गरम करने के लिए प्रयोग किये जानेवाले कड़े मिट्टी-पात्रों की तापचालकता अधिक होनी चाहिए। इस कार्य के लिए पोटैसियम आक्साइड की अपेक्षा चूना और सोडियम आक्साइड अधिक लाभकारी हैं। अत अशुद्ध मिट्टियों से बने कड़े मिट्टी-पात्रों की तापचालकता, शुद्ध मिट्टियों से बने पोरसिलेन-पात्रों की तापचालकता से अधिक होती है।

अम्लरोधक रासायनिक पात्रों के बनाने के लिए विशेष रूप से उपयोगी वे गलन-शील मिट्टियाँ हैं, जो ११५०° से १३००° सें० तक गरम करने पर अपारगम्य पिण्ड बनायें तथा और आगे उच्च तापक्रम तक गरम करने से आकृति न खोयें। यदि मिट्टी ताप सहनशील नहीं है, तो भट्ठी में धीरे-धीरे गरम करने पर बड़े पात्रों में आकृति खोने की धारणा रहती है। ६ प्रतिशत प्राकृतिक द्रावक पदार्थवाली मिट्टियाँ अच्छा परिणाम देती हैं, परन्तु इससे अधिक द्रावक होने पर पकाव तापक्रम का पराम घट जाता है।

कार्योपयोगी मिट्टियाँ सभी स्थानों पर नहीं मिलती। अत बहुत से स्थानों पर आसपास मिलनेवाली मिट्टी, जैसे निम्न कोटि की अग्नि-मिट्टी का ही प्रयोग किया जाता है। या तो इस मिट्टी से बने पात्रों को काफी कांचीय होने तक गरम करते हैं या गलनशील मिट्टियों के साथ मिलाकर मिश्रण के पकाने का तापक्रम नियन्त्रित किया जाता है। साधारण व्यापारिक अवस्थाओं में फेल्सपार खड़िया या ऐसे ही दूसरे पदार्थ डालना बुद्धिमत्ता का कार्य नहीं होता, कारण इन पदार्थों के कणों का मिट्टी में समान रूप से मिलाना कठिन होता है। इसके लिए अच्छा यह होगा कि अधिक गलनशील मिट्टी का प्रयोग किया जाय, जो समान रूप से मिलायी जा सके। यथासम्भव सर्वोत्तम परिणाम पाने के लिए एक या दोनों मिट्टियों को पानी की अधिकता के साथ धोकर चलनी द्वारा बड़े कण निकाल दिये जायें। उसके बाद पानी

की अधिक मात्रा जल निष्कासन यन्त्र से निकाल दी जाय। ऐसा भी किया जाता है कि अधिक गलनशील मिट्टी को इस प्रकार धोकर व छानकर उसमें पिसी हुई अग्नि-मिट्टी मिला दी जाती है।

इँग्लैण्ड में पायी जानेवाली उत्तम अम्लरोधक मिट्टी अधिक सिलीकामय है। उसका संगठन इस प्रकार है—

सिलीका	..	८०
एल्यूमिना	..	१४
फैरिक आक्साइड	..	४
चूना	..	१
हानि	..	१

इस मिट्टी की मुख्य विशेषता द्रावकों का कम होना है। परन्तु यहाँ मिट्टी पकाने की अवस्थाओं में लौह-आक्साइड द्रावक की भाँति कार्य करता है। यह मिट्टी अधिक लचीली नहीं है और मुख्य रूप से साधारण आकृति की छोटी वस्तुओं के बनाने में काम आती है, बड़े पात्रों, जैसे कि अम्ल जार, सघनन कुंडलों आदि के लिए उपयुक्त नहीं है, कारण बड़े पात्रों के लिए अधिक लचीली मिट्टी की आवश्यकता होती है।

बड़े मिट्टी-पात्र बनाने में सर्वाधिक प्रयोग की जानेवाली एक जर्मन मिट्टी (क) का विश्लेषण नीचे दिया जा रहा है। साथ ही इसी कार्य के लिए दो भारतीय मिट्टियों (ख) तथा (ग) के विश्लेषण भी दिये जाते हैं—

			(क)	(ख)	(ग)
सिलीका		..	७०·१२	५८·०२	५६ ९५
एल्यूमिना		..	२१·४३	२७ ९५	२८·५१
फैरिक आक्साइड		..	० ७७	×	×
मैगनीशियम	,,	..	० ३९	० ५६	०·२९
कैलशियम	,,	.	×	१·६५	१·३७
क्षार	,,	..	२·६२	२·४२	१·४३
हानि	,,	..	४ ९२	६·८५	८·२५
योग			१०० २५	९७ ४५	९६८०

भारतीय मिट्टियों में मिट्टी (ख) बिहार के मगमा नामक स्थान पर मिलती है। दूसरी मिट्टी (ग) बंगाल के रानीगंज में मिलती है। ये मिट्टियाँ अत्यधिक लचीली हैं अतः इनमें प्रारम्भिक शोधन की आवश्यकता नहीं पड़ती।

उपर्युक्त बातों के आधार पर मिट्टियों को चुनने के बाद मिश्रण-पिण्ड साधारण रीतियों से बनाया जाता है। सर्वोत्तम पात्र बनाने के लिए यह अच्छा होगा कि जल-निष्कासन यन्त्र से मिट्टियों को कुछ गीली अवस्था में ही लेकर ठण्डे स्थान पर एक मास या अधिक काल तक रखकर उन पर अम्ल क्रिया होने दी जाय। इसके पश्चात् मिट्टी को पग-यन्त्र में भेजा जाता है। दूसरी एक और विधि है, जो सस्ती तो है, परन्तु कम सन्तोषजनक है। इस विधि में सूखी कठोर मिट्टी को चूर्णक-यन्त्र में चूर्ण कर लिया जाता है। इस चूर्ण को छानकर बड़े कण दूर कर दिये जाते हैं। इसके पश्चात् महीन चूर्ण खुली मिश्रक नांदों में पानी के साथ मिलाया जाता है। अन्त में मिश्रण-पिण्ड पगयन्त्र में दबाया जाता है। जब वर्ड खनिज संगठन में प्रयोग किये गये हों, तो इन विधियों में तदनुसार बहुत से परिवर्तन करने पड़ते हैं।

अम्लरोधक पात्रों के अधिकांश कारखानों में पात्र चाकविधि या ढलाईविधि से बनाये जाते हैं। यदि आकृति की यथार्थता पर अधिक ध्यान देना आवश्यक न समझा जाय, तथा एक आकृति के एक समय में कुछ ही पात्र बनाने हों, तो चाक-विधि सर्वोत्तम और सबसे सस्ती होती है। कुछ अधिक विषम आकृतिवाले भाग अलग से बनाकर बाद में जोड़ दिये जाते हैं। यदि आकृति की यथार्थता पर बहुत ध्यान दिया जाय तो चाक द्वारा बने पात्र अर्द्ध शुष्क अवस्था में खराद यन्त्र पर खराद लिये जाते हैं, या कारीगर द्वारा साफ कर लिये जाते हैं।

अम्लरोधक पात्र प्रायः साँचों पर हाथ से दबाकर बनाये जाते हैं। इनके विभिन्न भाग प्लास्टर साँचों पर प्रायः अलग-अलग बनाये जाते हैं। दो भागवाले साँचों का प्रयोग किया जाता है। साँचे का प्रत्येक अद्धा लचीले मिश्रण-पिण्ड की पट्टियाओं से भर दिया जाता है। बाद में इसे हाथ से या बड़ी गद्दी से दबाते हैं, जिससे मिश्रण-पिण्ड साँचे के आकार का हो जाय। अब साँचे के दोनों भाग मिला दिये जाते हैं और मिट्टी के दोनों टुकड़े मिट्टी-घोला द्वारा जोड़ दिये जाते हैं। इसके पश्चात् साँचे को कुछ समय ऐसा ही रखा छोड़ दिया जाता है जिसके बाद दूसरा कारीगर पात्र निकाल कर उसे साफ करता है। यह कारीगर आवश्यकता से अधिक मिट्टी को हटा देता है और किसी दूसरे आ गये दोष को भी यथासम्भव दूर कर देता है।

यदि पात्र की गर्दन या किसी दूसरे भाग में चूड़ियाँ काटने की आवश्यकता हो जिससे कि इसमें ढक्कन, नल आदि कसा जा सके, तो ये चूड़ियाँ बहुत-सी विधियों में से किसी एक विधि का प्रयोग करते हुए बनायी जाती हैं। साधारण विधि है कि जब पात्र साँचे में ही हो तभी पात्र के उस भाग में एक पेंच घुसा कर चूड़ियाँ काट ली जायँ। इस पेंच पर चूड़ियाँ इच्छित आकार की होती हैं। यह क्रिया बिलकुल उसी प्रकार की है, जिस प्रकार बोतल पर चूड़ीदार डाट लगायी जाती है। कभी-कभी प्रारम्भ में चूड़ियाँ एक साधारण पेंच द्वारा काट ली जाती हैं और बाद में एक यथार्थ पेंच की सहायता से सुधार दी जाती हैं।

नल, संघनन कुण्डलियाँ तथा ऐसी ही दूसरी वस्तुएँ एक यन्त्र द्वारा नल के भीतर से मिश्रण-पिण्ड को दबाकर बनायी जाती हैं। यह विधि वैसी ही है, जैसी कि स्वास्थ्य-सम्बन्धी नल तथा तार से काटी गयी ईंटों के बनाने की है। जब नल को टेढ़ा करना आवश्यक होता है, जैसा कि सघनन कुंडली बनाने में, तो यन्त्र से नल एक बेलन के ऊपर लेते हैं और सावधानी से उसे बेलन पर ही मोड़ते जाते हैं। कुछ सूख जाने पर नल बेलन पर से उतारकर मिट्टी के बने आधारों पर रखकर और अधिक सुखाया जाता है। कभी-कभी सघनन कुंडली को अलग-अलग भागों में बनाकर बाद में सब भाग जोड़ दिये जाते हैं। परन्तु इसमें परिश्रम अधिक लगता है और मिश्रण-पिण्ड में अधिक तनाव सहनशीलता आवश्यक हो जाती है।

यन्त्रों द्वारा दबाव-विधि बहुत छोटी वस्तुओं, जैसे डाट आदि, के बनाने के लिए प्रयुक्त की जाती है। इस कार्य के लिए स्क्रू प्रेसों का प्रयोग किया जाता है तथा मिश्रण-पिण्ड में महीन छर्री आदि मिलाकर कम लचीला बना लिया जाता है।

इस प्रकार के पात्रों में ढलाई-विधि का प्रयोग बहुत ही कम किया जाता था, परन्तु आधुनिक काल में पानी की अल्प मात्रा का प्रयोग करते हुए बनाये गये मिट्टी-घोले से बड़े पात्रों को आंशिक शून्य की उपस्थिति में ढालना कुछ ही वर्ष हुए प्रारम्भ किया गया है और यह पता चला है कि ढले हुए बड़े पात्र हाथ के बने पात्रों की अपेक्षा श्रेष्ठ होते हैं। ढलाई-विधि सस्ती तथा सादी होने के कारण निर्माण व्यय भी कम लगता है।

कभी-कभी पात्र पर महीन मिट्टी का सरन्ध्र प्रलेप चढ़ा देते हैं। इसके लिए प्रयोग की जानेवाली मिट्टी मिश्रण-पिण्ड की मिट्टी से महीन पिसी होती है। प्राय.

इस प्रलेप को उचित रजकों से रंग भी देते हैं। परन्तु यदि मिश्रण-पिण्ड का सगठन ठीक प्रकार से बनाया गया है तो इसकी आवश्यकता नही होती।

पात्र साधारण रूप से सुखाये जाते हैं। केवल इस बात का ध्यान रखा जाता है कि सूखने की गति विशेषकर बाहर निकले हुए भागो पर अधिक तेज न हो।

कड़े मिट्टी-पात्र प्रलेपित हो भी सकते हैं, नही भी। प्रलेपहीन पात्रों को अधिक घना होना चाहिए, जिनमे उसमे सर्वाधिक रसद्रव्य रोधक्ता विकसित हो जाय। उचित मिश्रण-पिण्ड से बने पात्र पर नमक-प्रलेपन सर्वोत्तम प्रलेपन-विधि है। दूसरे प्रलेप कम सक्षारण-रोधक होते हैं। अत अच्छे रासायनिक पात्रो पर दूसरे प्रलेप शायद ही कभी प्रयोग किये जाते हो। डुबाव-विधि के लिए एक सस्ता प्रलेप ब्लास्ट भट्ठी के धातुमल मे चूना तथा बालू मिलाकर बनाया जा सकता है। परन्तु इसमें लेड आक्साइड या बोरैक्स का प्रयोग नही करना चाहिए, कारण इन आक्साइडों की उपस्थिति में पात्र पर अम्ल का सक्षारक प्रभाव सरलता से होता है। प्रलेपहीन पात्र आवश्यक आकार मे सरलता से काटे या खरादे जा सकते हैं।

पात्र नमक द्वारा अधोगति भट्ठियो में प्रलेपित किये जाते हैं। भट्ठी मे पात्र इस ढग से रखा जाता है कि भट्ठी चूल्हे से निकली नमक-वाष्प, प्रलेपित होनेवाले पात्र के प्रत्येक भाग पर पहुँच सके।

नाली, नल—पानी निकालने के नल या तो गलनशील मिट्टियों, बालू तथा छर्री के मिश्रण से बनते हैं या निम्नकोटि की अग्नि-मिट्टियो से। इन वस्तुओं के निर्माण मे प्रयोग होनेवाली मिट्टी धोयी नही जाती, वरन् खान से निकली मिट्टी सीधी ही प्रयोग की जाती है। परन्तु कभी-कभी मिट्टी के गुण सुधारने के लिए कुछ काल तक बाहर खुली छोडकर मिट्टी पर प्राकृतिक क्रिया होने दी जाती है।

मिश्रण-पिण्ड बनाने के लिए मिट्टी और छर्री उचित अनुपात (जैसे दो तिहाई गलनशील मिट्टी और एक तिहाई छर्री) में मिलाकर एक साथ पीसे जाते हैं। रेत अलग पीसी जाती है। उसके बाद एक मिश्रण-कुण्ड में रेत तथा मिट्टी-छर्री-मिश्रण पानी के साथ मिलाया जाता है। यह अच्छा होगा कि इस गीले पदार्थ को कुछ दिनों ठण्डे स्थान पर रखकर अम्ल क्रिया होने दी जाय। उसके बाद पगयन्त्र में दबाकर दबाव-विधि से पात्र बना ले। मोरी-नल विशेष प्रकार के नल-प्रेसो द्वारा बनाये जाते हैं। वस्तुएँ अपने भार द्वारा ही अपना आकार न खो दें, अत दबाव-क्रिया

ऊर्ध्वाधर होती है। २ इंच से १८ इंच व्यास तक के नल पेटी से चलनेवाले साधारण प्रेसो द्वारा बनाये जाते हैं। परन्तु बड़े नलो के लिए सीधे जलवाष्प दबाववाले यन्त्र प्रयोग में लाये जाते हैं। नल-कोने तथा नल-जोड़ आदि साँचो द्वारा बनाये जाते हैं।

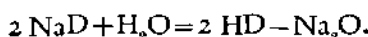
जब नल काफी कड़े हो जाते है, तो उन्हें साफ किया जाता है और दोषपूर्ण भाग को हाथ से ठीक किया जाता है। यह सफाई तथा दोष दूर करने के समय नल एक पहिये पर घूमता रहता है। नलो को बन्द करने के ठट्ठों पर भी उसी समय चक्र काट लिये जाते है, जिससे सीमेण्ट या मसाला उन्हें अच्छी तरह जोड सके। इसके पश्चात् नल सुखाने के लिए सुखानेवाले कमरो में रखे जाते हैं। ये कमरे भट्ठी की छत के ऊपर बनाये जाते हैं जिससे भट्ठी के व्यर्थ जानेवाले ताप का उपयोग हो सके। इन नलों को सूखने में ३—५ दिन तक लगते हैं।

मोरी-नलों को भट्ठी में रखते समय उनका चौड़ा भाग नीचे की ओर खड़ा करके रखा जाता है। इन नलों को भट्ठी के फर्श पर न रखकर बिना पके गोलाकार मिट्टी के आधारों पर रखा जाता है। ये आधार नल के मिश्रण-पिण्ड से ही बनाये जाते हैं, अन्यथा पकाने समय आधार तथा नल के असमान आकुचन से नल टेढ़ा हो जायगा। इन नलो को भट्ठी के भीतर वृत्ताकार रखा जाता है। भट्ठी के जिस स्थान पर गरम गैसें घुसती हैं, उसके पास छोटे नलों को वृत्ताकार रखा जाता है। एक के ऊपर दूसरा करके तीन-चार नल एक-दूसरे के ऊपर रखे जाते हैं। दूसरे चक्र में मध्यम आकार के नल वृत्ताकार रखे जाते हैं। उसके पश्चात् बड़े नलो का चक्र आता है। इस प्रकार रखने का कारण यह है कि बड़े नल बदलते हुए उच्च तापक्रम में नही पकाये जाने चाहिए और प्रथम तथा द्वितीय चक्र में तापक्रम अधिक रहता है तथा बदलता भी रहता है। नलो को ऐसे रखना चाहिए कि एक नल स्तम्भ के नलो के चौड़े भाग दूसरे नल स्तम्भ के नलों के चौड़े भाग से सटे रहें। इससे नलो के स्तम्भ गिरने नही पाते। बड़े नलो के बीच में छोटे नल रखे जाते हैं। परन्तु इसके लिए बड़ा नल छोटे नल से काफी बड़ा होना चाहिए, जिससे उसके बीच में गैसें जाने के लिए खाली स्थान पर्याप्त रहे। अन्यथा छोटे नल के बाहरी और बड़े नल के भीतरी तल पर प्रलेप अच्छा नही होगा।

विभिन्न प्रकार की विषम आकृति के नल सबसे ऊपर रखे जाते हैं। ये विषम आकृति के नल साधारण तौर पर रखे जा सकते हैं, परन्तु आवश्यकता होने पर उन्हें उसी मिश्रण-पिण्ड से बने छोटे-छोटे आधारो द्वारा रोका जा सकता है।

मोरी-नल साधारणत गोलाकार अधोगति भट्ठियों में पकाये जाते हैं।

नमक-प्रलेपन—पात्र-तल पर नमक-प्रलेप केवल सोडा-सिलीका, एल्यूमिना-काँच की एक परत होती है। नमक का प्रयोग इसके सस्ते होने और काफी अधिकता से मिलने के कारण किया जाता है। नमक अपेक्षाकृत न्यून तापक्रम (८२०° सें०) पर ही गलकर वाष्प बन जाता है तथा गलने और वाष्प बनने में इसका रासायनिक सगठन नही बदलता। नमक के विच्छेदन के लिए जलवाष्प की उपस्थिति आवश्यक है। क्रिया इस प्रकार होती है—



$$2\,NaD + H_2O = 2\,HD - Na_2O.$$

मिश्रण-पिण्ड में सिलीका एल्यूमिना के अनुपात की अधिकतम तथा न्यूनतम सीमाओं पर नमक-प्रलेप के गुण आधारित होते हैं। बैरिजर (Barringer) के सीमा-निर्धारण के अनुसार न्यूनतम सीमा के लिए ४ ६ भाग सिलीका के लिए एक भाग एल्यूमिना और अधिकतम सीमा के लिए १२ ५ भाग सिलीका के लिए एक भाग एल्यूमिना होता है। मिट्टी में अधिक एल्यूमिना रहने पर मिट्टी, पकाने के साधारण तापक्रम पर सोडियम आक्साइड से सरलतापूर्वक क्रिया नही करती तथा सिलीका अत्यधिक रहने पर चढा हुआ नमक-प्रलेप अम्ल तथा पानी द्वारा सरलता से नष्ट हो जाता है।

नमक-प्रलेपन के लिए सर्वोत्तम तापक्रम का अभी तक पता नही चल सका है, परन्तु व्यवहार से विदित होता है कि ११४०° सें० से १२५०° सें० का तापक्रम काफी सन्तोषजनक है। नमक-प्रलेपन का समय ३ से ४ घण्टे तक होता है तथा समय के अनुपात में ही नमक की मात्रा लगती है।

नमक-वाष्प केवल प्रलेपित होनेवाली वस्तुओं पर ही क्रिया नहीं करता, वरन् भट्ठी की दीवारों पर भी क्रिया करके उन्हें शीघ्रता से नष्ट कर देता है। भट्ठी की दीवारों पर नमक वाष्प की क्रिया रोकने के लिए भट्ठी बनाने में ऐसी ईंटों का प्रयोग किया जाता है, जिनमें एल्यूमिना अत्यधिक हो तथा मुक्त सिलीका बिलकुल न हो या बहुत थोडी हो। दूसरी विधि में प्रत्येक बार पात्र पकाने से पूर्व भट्ठी का भीतरी भाग अधिक एल्यूमिनावाली चीनी मिट्टी से पोत दिया जाता है।

नमक प्रलेपित नलों को पकाने की क्रिया पाँच विभिन्न कालों में बाँटी जा सकती है। यद्यपि प्रत्येक काल में थोडे-बहुत दूसरे काल भी चलते रहते हैं।

(१) **जलवाष्प-काल या धूमकाल**—यह काल सर्वाधिक कठिनाई उपस्थित करता है तथा बड़े आकार के मोटे मोरी नलों को बनाने में इस काल का काफी महत्त्व है। यह पकाने की क्रिया प्रारम्भ होने से उस समय तक चलता है, जब तक कि सारा नमी-जल न निकल जाय। इस काल में लगभग १५०° सें० का तापक्रम रहता है तथा इसमें २४ घंटे से ९६ घंटे तक का समय लगता है। इस काल में नमी-जल को धीरे-धीरे अधिक समय में निकाला जाता है, अन्यथा नल में बहुत-से दोष आ जायेंगे।

अधोगति भट्ठियों में तली पर रखे गये नलों पर अधिक आर्द्रता या नमी रहती है। परिणाम-स्वरूप तली पर रखे हुए नलों में फफोला दोष अधिक पाया जाता है। यदि इस काल में भट्ठी के अन्दर आनेवाली गरम गैसों के आने की गति बढ़ा दी जाय, तो नलों के चौड़े मुँह के जोड़ चटक जाते हैं। प्रारम्भ में पकाने की गति अति शीघ्र होने से भट्ठी के ऊपरी भाग में रखे नलों में दोष आ जाते हैं। पकाने की प्रारम्भिक गति अति धीमी तथा उसके बाद पकाने की गति तेज होने से भट्ठी की तली में रखे नलों में दोष आ जाते हैं।

(२) **तापन-काल**—यह काल जलवाष्प-काल से प्रारम्भ होकर आक्सीकरण-काल तक चलता है। इस काल का तापक्रम १५०° सें० से ४५०° सें० तक माना जाता है। यदि कारीगर विशेष ध्यानपूर्वक कार्य करे, तो इस काल में तापक्रम शीघ्रता से बढ़ाया जा सकता है, कारण इस काल में केवल तापक्रम बढ़ता है, कोई रासायनिक क्रिया नहीं होती। इस काल में प्राय २० से ३० घंटे तक का समय लगता है।

(३) **आक्सीकरण-काल**—अधिक कार्बनवाली मिट्टियों से बने पात्रों को सफलतापूर्वक पकाने के लिए यह काल काफी महत्त्वपूर्ण है। अपूर्ण आक्सीकरण नलों के लिए बहुत ही हानिकर है, कारण इससे नल का भीतरी भाग स्पज-जैसा सरन्ध्र हो जाता है, आकृति बिगड़ जाती है और नल की आवाज भी कम हो जाती है। यह देखने के लिए कि कितना आक्सीकरण हो चुका है, भट्ठी के अन्दर से निश्चित समयान्तर से परीक्षण के लिए नलों के परीक्षण-खण्ड निकाले जाते हैं तथा उनमें कार्बन की मात्रा निर्धारित की जाती है। जब निकाले परीक्षण-टुकड़े में कार्बन बिलकुल न रहे, तो आक्सीकरण पूर्ण हुआ समझना चाहिए। ये परीक्षण-

खण्ड भट्ठी द्वार के पास ही रखे जाते हैं जिससे कुछ ईंटें हटाकर सरलता से निकाले जा सकें। भट्ठी का तापक्रम ५५०° सें० हो जाने पर ये परीक्षण-खण्ड बराबर समयान्तर से निकाले जाते हैं। इस काल में लगभग ८० से ९० घण्टे तक का समय लगता है, तब जाकर भट्ठी का औसत तापक्रम लगभग ८००° सें० होता है।

(४) **काँचीयकरण-काल**—यह काल आक्सीकरण काल के पश्चात् एकदम प्रारम्भ हो जाता है और यदि काँचीयकरण प्रारम्भ होने से पूर्व आक्सीकरण पूरा नहीं हुआ, तो आगे चलकर उसके पूरे होने की सम्भावना बहुत ही कम है, कारण जब पात्र पर मिट्टी की पतली परत काँचीय हो गयी, तो अन्दर हवा जा ही नहीं सकती। अन्दर कार्बन जलाने के लिए कार्बन तक हवा का पहुँचना आवश्यक है। तापक्रम बढ़ने पर मृत्पात्र के अन्दर कार्बन जल जाता है। कार्बन जलने के लिए या कार्बन मोनोक्साइड बनाने के लिए आक्सीजन आवश्यक है। कार्बन यह आवश्यक आक्सीजन आसपास के आक्सीजन-युक्त कणों से लेता है। यदि कार्बन से बनी गैसें बाहर न निकल पायीं, तो पात्र को फुला देती है और इस प्रकार नल के अन्दर का भाग स्पंज-जैसा हो जाता है तथा आकृति नष्ट हो जाती है।

काँचीयकरण-काल में दो महत्त्वपूर्ण बातें ध्यान देने योग्य होती हैं। ये हैं उचित समय में आवश्यक तापक्रम प्राप्त करना तथा सम्पूर्ण भट्ठी में ताप का समान विभाजन करना। काँचीयकरण-काल लगभग ८००° सें० से प्रारम्भ होकर लगभग ११६०° सें० तक जाता है और साधारणतः इसमें लगभग ३६ घण्टे का समय लगता है। यह समय, भट्ठी में प्रयोग किये गये कोयलों के प्रकार, गरम गैसों के आने की गति, अग्नि बक्सों के आकार तथा संख्या और मिट्टी के प्रकार के अनुसार काफी बदलता रहता है।

तापक्रम अतिशीघ्र बढ़ाने से भट्ठी के अन्दर रखे सब पात्रों का काँचीयकरण समान रूप से नहीं हो पाता। पकाने की तेज गति से अवकारक वातावरण उत्पन्न हो सकता है, ताप भट्ठी के ऊपरी भाग में ही रहता है, ऊपर तथा बाहरी चक्र में रखे गये नल बहुत अधिक पक जाते हैं तथा बड़े नलों के भीतर रखे गये छोटे नल ठीक से नहीं पक पाते। इस अवस्था में प्रलेप करने पर भट्ठी के ऊपरी भाग में रखे गये नलों पर प्रलेप बहुत अच्छा होता है, परन्तु तली के नल तथा बड़े नलों के भीतर रखे छोटे नल लगभग प्रलेपहीन ही रहते हैं। गरम गैसों के आने की गति नियन्त्रित करके

और भट्ठी चूल्हे की आग को बढ़ाकर भट्ठी के भीतर ताप शोषण किया जाता है, जिससे ताप समान रूप से विभाजित हो सके। जब ऊपरी नलों का तापक्रम व काँचीयकरण इतना हो कि वे प्रलेपित किये जा सकें, तभी ताप-शोषण प्रारम्भ कर देना चाहिए। ताप-शोषण के समय यह ध्यान रहे कि भट्ठी का तापक्रम गिरने न पाये, कारण एक बार गिरे हुए तापक्रम को फिर उसी तापक्रम पर लाना बहुत कठिन होता है। जब ताप-शोषण चल रहा हो चूल्हे पर होकर आनेवाली ठण्डी हवा को नियन्त्रित करके तापक्रम स्थिर रखना चाहिए। इस प्रकार भट्ठी की तली तक भी समान ताप पहुँच जाता है और मोटे नलों के भीतरी भाग भी अच्छी तरह पक जाते हैं।

(५) **नमक-क्षेपण-काल**—जब परीक्षण-खण्डों द्वारा नलों में उचित कठोरता मालूम पड़े और काँचीयकरण प्रारम्भ हो जाय, तो भट्ठी को नमक-प्रलेप के लिए निम्नलिखित विधि से तैयार करना चाहिए। भट्ठी के चूल्हों की राख ठीक प्रकार से साफ की जाय। इस राख की सफाई के लिए दो पास के चूल्हे एक साथ साफ न करके एक-एक चूल्हा छोड़कर साफ किया जाय, कारण सभी चूल्हे एक साथ साफ करने से भट्ठी का तापक्रम गिर जायगा। सफाई के बाद प्रत्येक चूल्हे में नया कोयला डालकर उसे तब तक जलने दिया जाय, जब तक कि धुआँ आदि समाप्त होकर नयी लौ न आ जाय तथा वाष्पशील पदार्थ न निकल जायँ। इसके लिए साधारणतः लम्बी लौवाले कोयले, जिन्हें बिटूमिनस कोल कहते हैं, के लिए १५ से २० मिनट लगते हैं तथा छोटी लौवाले कोयले या इंजिन कोयले के लिए कुछ कम समय लगता है।

इस समय अग्नि सर्वाधिक तीव्र होती है। तब नमक भट्ठी के चूल्हे पर थोड़ा-थोड़ा करके डाला जाता है। नमक चूल्हे में एक ही स्थान पर नहीं डाल दिया जाता वरन् पूरे चूल्हे पर छिड़ककर डाला जाता है। एक बार में नमक की अधिक मात्रा डालने से आग की तीव्रता कम हो जाती है और बिना जला नमक बच जाता है। एक बार नमक डालकर उसे लगभग १० मिनट का समय दिया जाता है, जिससे सम्पूर्ण नमक वाष्प बन जाय। इसके बाद नमक की दूसरी मात्रा डाली जाती है। तत्पश्चात् थोड़ा कोयला डालते हैं तथा चूल्हे से आनेवाली हवा को बन्द कर देते हैं। तीसरी बार नमक डालने पर जब नमक वाष्प बन जाता है तो दुबारा फिर थोड़ा कोयला डालकर भट्ठी की आँच बढ़ा दी जाती है। डाले गये नमक को वाष्पशील होने का समय देते हुए तीन बार और नमक छोड़ा जाता है। प्रत्येक तीन बार नमक डालने के पश्चात् परीक्षण-खण्डों को निकालकर प्रलेपन-क्रिया के विकास का पता

लगा लेना चाहिए। प्रत्येक तीन बार नमक डालने के पश्चात् चूल्हे को हिला दिया जाय, अर्थात् थोड़ा साफ कर दिया जाय। जैसे-जैसे नमक-प्रलेपन होता जाता है, पात्र कठोर होना जाता है, कारण नमक में द्रावक प्रभाव होता है। अधिकांशत ६ बार नमक डालने से अच्छा प्रलेप विकसित हो जाता है, परन्तु कुछ मिट्टियों को प्रलेपित करना काफी कठिन होता है और प्रलेपन के उचित विकास के लिए ६ बार से भी अधिक नमक डालना होता है।

नमक-प्रलेपन-क्रिया ऊष्मा-शोषक है। अत प्रत्येक बार नमक डालने के पश्चात् थोड़ा ईंधन भी डालना चाहिए जिससे भट्ठी का तापक्रम न गिरने पाये। चूल्हे के ऊपर ठण्डी हवा कभी न भेजी जाय। यदि भट्ठी की ऑक्सीकरण शक्ति काफी कम हो तथा वातावरण अवकारक हो तब ठण्डी हवा के भेजे बिना काम ही न चलेगा। चूल्हे के ऊपर ठण्डी हवा जाने से तापक्रम कम होता जाता है। अत नमक के वाष्पशील होने की दक्षता कम होती जाती है। सर्वोत्तम परिणाम के लिए हवा चूल्हे के नीचे से भेजी जाय, ऊपर से नहीं। कारण नीचे से जाने पर हवा ऊपर पहुँचने तक गरम हो लेती है तथा कोयले के अच्छे प्रकार जलने में सहायक भी होती है।

इस क्रिया में चूल्हे की सफाई तथा ईंधन को चलाते रहना आवश्यक है। इस क्रिया में नमक का कुछ भाग पिघलकर कोयले की राख से मर्षण करके मृदु काँचीय धातुमल बनाता है। यह धातुमल चूल्हे की जाली या तली से बहकर नीचे गिरता है। गिरते समय ठण्डी हवा के स्पर्श से ठण्डा होकर चूल्हे की जाली पर ही जमकर उसके छिद्रों को बन्द कर देता है और इस प्रकार हवा के आने में बाधा डालता है। अत चूल्हे की जाली या तली को समय-समय पर हिलाते रहना काफी महत्त्वपूर्ण है, कारण इससे यह कठोर धातुमल जाली पर न जमकर नीचे गिर जाता है।

नमक-प्रलेपन के लिए आवश्यक नमक तथा कोयले की मात्रा पात्र की मिट्टी के प्रकार तथा भट्ठी की आकृति पर निर्भर करती है। बहुत साधारण रूप में एक टन नली के लिए २० पौंड नमक तथा २५० पौंड कोयले से अधिक नहीं लगना चाहिए। यदि पूरी जाँच के बाद पता चले कि किसी विशेष अवस्था में कोयले व नमक की मात्रा इससे अधिक लगती है और किसी भी दशा में कम नहीं की जा सकती तो दूसरी बात है। नमक क्षेपण-काल ५ घण्टे से २५ घण्टे तक हो सकता है। परन्तु अधिकांश अवस्थाओं में ६ घण्टे का समय लगता है।

नमक-प्रलेप का रंग पात्र के संगठन तथा भट्ठी के वातावरण पर निर्भर करता है। नमक-प्रलेप का प्राकृतिक रंग सुनहरा पीला है। अवकारक वातावरण में यह कार्बन अवशोषित कर लेता है और रंग बादामी या हलका काला तक हो सकता है। शेलमिट्टी से बने नलों का रंग काला होता है। अतः नमक प्रलेप भी उसी हिसाब से काला दीखता है। कभी-कभी व्यापार में रंगीन कड़े मिट्टी-पात्रों की माँग होती है। ये रंगीन पात्र नमक-प्रलेपन-विधि को नियन्त्रित करके बनाये जाते हैं। इस विधि को अंग्रेजी में फ्लैशिंग (Flashing) कहते हैं। हिन्दी में इसे 'अङ्गार-लेपन-विधि' कहा जा सकता है।

इस विधि में पात्र-तल पर धुआँ की एक पतली परत चढ़ायी जाती है। उसके बाद जो कार्बन पात्र के रन्ध्रों में घुस गया है उसे छोड़कर तल पर का कार्बन आक्सीकारक वातावरण में जलाकर साफ कर दिया जाता है। इसके पश्चात् अवकारक वातावरण द्वारा धुएँ की दूसरी परत फिर चढ़ायी जाती है और पात्र-तल पर का कार्बन पूर्व प्रकार से ही जलाकर साफ कर दिया जाता है। यह बारी-बारी से आक्सीकारक तथा अवकारक वातावरण पात्र-तल के लौह यौगिक को लाल अवस्था में परिवर्तित कर देता है। अब इस पात्र पर तीव्र आक्सीकारक आँच के साथ नमक-प्रलेप चढ़ाने पर रंग गाढ़े लाल रंग से लेकर गाढ़े बादामी रंग तक प्राप्त होता है। यह रंग कारीगर की कुशलता तथा मिट्टी में उपस्थित लौह आक्साइड की मात्रा पर निर्भर करता है।

दोष—सफलतापूर्वक पात्रों को पकाने में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं और उन्हें दूर करना पड़ता है। इन दोषों या कठिनाइयों को दूर करने के लिए कारीगर को उनका पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। पात्र पकाने में मुख्य रूप से निम्नलिखित दोष आ सकते हैं—

१. पपड़ी छूटना—यह दोष जलवाष्प-काल में पात्र के अन्दर जलवाष्प बनने के कारण होता है। दबाव अधिक बढ़ने पर यह जल-वाष्प पात्र-तल को टुकड़ों के रूप में तोड़ता हुआ निकल जाता है। यह दोष पगयन्त्र में मिट्टी दबाते समय बनी भिन्न परतों के कारण भी हो सकता है। यही परतें बाद में जलवाष्प या पात्र के अन्दर से निकलनेवाली दूसरी गैसों द्वारा तोड़कर फेंक दी जाती हैं।

२. फफोला-दोष—पकाये हुए नलों में फफोले प्रायः पाइराइटीज या दूसरे पदार्थों से बनी गैसों के कारण होते हैं। पात्र-तल काँचीय हो जाने से अन्दर बनी

गैसें निकल नहीं सकतीं। तापक्रम अधिक बढ़ने पर इनका आयतन तथा दबाव काफी बढ़ जाता है और पात्रतल पर फफोले पड़ जाते हैं।

३. तल फुंसियाँ—इस दोष में पात्रतल पर ठोस फुंसियाँ पड़ जाती हैं। यह दोष पात्रतल पर या पात्रतल के पास लौह यौगिकों के अवकरण के कारण होता है। ये अवकृत लौह यौगिक पिघलकर सिलिका से संयोग कर लेते हैं। इन पिघले हुए लौह यौगिक कणों की आकृति गोल होती है। अतः वे पात्रतल में बाहर निकले हुए रहते हैं। जिन पात्रों पर फुंसियाँ पड़ती हों उन्हें पकाते समय बारी-बारी से अवकारक तथा आक्सीकारक वातावरण में यहाँ तक पकाना चाहिए कि फुंसियाँ विकसित होकर अवशोषित हो जायँ।

४. पात्र-तल चटकना—जलवाष्प काल में अति शीघ्रता से गरम करने पर पात्र चटक जाता है। यह चटक पात्रतल पर या नलों के चौड़े भागों के जोड़ पर सूक्ष्म दरारों के रूप में प्रकट होती हैं। ये दरारें न तो पकाते समय भरी जाती हैं और न प्रलेप से ही ढक पाती हैं।

५. प्रलेप-तल चटकना—भट्ठी ठण्डी करने की गति अत्यधिक होने से प्रलेप-तल पर सूक्ष्म दरारें पड़ जाती हैं। विशेष कर उस समय जब पात्र-मिश्रण-पिण्ड का सगठन प्रलेप के लिए उपयोगी न हो। यदि प्रलेप चटकने की सम्भावना हो तो उन पात्रों को बड़ी सावधानी से धीरे-धीरे ठण्डा करना चाहिए, जिसमें पात्र का मृदुकरण (Annealing) अधिकतम हो। सर्वोत्तम ढंग ऐसी अवस्था में पात्र-मिश्रण-पिण्ड का सगठन बदलना होता है। जिन पात्रों की मिट्टियों में एलूमिना अधिक हो उन पात्रों पर प्रलेप चटकने की धारणा अधिक रहती है। ऐसी मिट्टियों में मुक्त बालू मिलाने से यह दोष दूर हो जाता है।

६. धूमशोषित प्रलेप—इस दोष में पात्रतल देखने में गनमेटल जैसा चमकहीन होता है। इस दोष का कारण प्रलेप द्वारा कार्बन को अधिक मात्रा में अवशोषित कर लेना है। गन्धक गैसें भी प्रलेप को चमकहीन बना देती हैं।

कभी-कभी भट्ठी से निकालकर बाहर खुले में रखने के पश्चात् पात्रतल पर एक श्वेत छादनी आ जाती है। यह भट्ठी के अन्दर नमकवाष्प अधिक होने के कारण होती है। यह नमकवाष्प पात्रतल पर जम जाता है। वैसे तो पहली वर्षा द्वारा यह छादनी घुलकर दूर हो जाती है, परन्तु इसका बनना रोकने के लिए नमक प्रलेपन पूर्ण होने के

पश्चात् मन्दी आँच से पात्रों को थोड़ा और पकाना चाहिए, साथ ही भट्ठी के अन्दर गरम हवा भेजकर नमक वाष्प निकाल देना चाहिए।

नलों की मुख्य परीक्षा उनकी दबाव-रोधक शक्ति को नापने से होती है। दबाव-रोधक शक्ति-बल पम्प की सहायता से नापते हैं। परीक्षण नल पानी से पूरी तरह भर दिया जाना चाहिए। परीक्षा एक नल पर या कई जुड़े हुए नलों पर की जा सकती है।

काँचीय टालियाँ—काँचीय टालियाँ प्राय गलनशील मिट्टियों से बनायी जाती हैं, परन्तु कभी अधिक दुर्गल मिट्टी में सहज गलनशील मिट्टी को मिलाकर भी बनायी जाती हैं। टालियाँ प्राय. एक रग की होती हैं, परन्तु कभी-कभी उनके तल को विभिन्न रंगों से चित्रित किया जाता है। इन्हें चित्रित टालियाँ (Encaustic tiles) कहते हैं। विशेष रूप से जब फर्श के लिए श्वेत टालियाँ बनानी हों तो उन्हें चीनी मिट्टी, फेल्सपार और चकमकी के मिश्रण से बनाया जाता है।

कुछ काँचीय श्वेत टालियों के मिश्रण-पिण्ड नीचे दिये जाते हैं —

श्वेत केओलिन	२५	२८	२२
मगमा अग्निमिट्टी	५	७	८
अजमेर फेल्सपार	५०	४५	५५
स्फटिक चूर्ण	२०	२०	×
चकमक चूर्ण	×	×	१५
योग	१००	१००	१००

ये श्वेत मिश्रण-पिण्ड सरलतापूर्वक कोबाल्ट मैंगनीज या क्रोमियम के आक्साइडों के रंजकों द्वारा नीले, बादामी या हरे रँगे जा सकते हैं।

इन टालियों की मुख्य विशेषताएँ हैं—(१) अधिकाधिक घर्षण-रोधक शक्ति, (२) उच्च दबाव तथा आघात शक्ति, (३) पूर्णरूपेण काँचीय रचना जिससे धूलिकण न चिपक सकें और द्रवों के दाग न पड़ें।

मिश्रण-पिण्ड बनाने के लिए विभिन्न मिट्टियों को उचित अनुपात में मिलाकर पैन-रोलर यन्त्र में पीसा जाता है। पिसे हुए मिश्रण-चूर्ण को एक मिश्रण-कुण्ड में डाला जाता है। इसी में पानी तथा उचित रंजक डालकर तीनों को खूब मिलाया जाता है।

पानी, रजक तथा मिट्टियों को मिलाने से प्राप्त पिण्ड क्षैतिज पगयन्त्र में दबाया जाता है। पगयन्त्र से मिट्टी के लोंदे बच्चों द्वारा ले जाये जाकर विशेष प्रकार की बनी सुखाने वाली भट्ठियों में सुखाये जाते हैं। ये भट्ठियाँ कोयले से या दूसरी भट्ठियों के व्यर्थ ताप मात्रा का एक रूप से गरम की जाती हैं।

ये सूखे हुए पिण्ड चूर्णक यन्त्र में इतने महीन पीस लिये जाते हैं कि २५ नम्बर की चलनी से निकल जायें। शुष्क दबाव-विधि से टाली बनाने के लिए अधिक महीन चूर्ण उपयोगी नहीं होता। पिसे चूर्ण में प्रायः ५-६ प्रतिशत तक नमी रहती है। आवश्यकता होने पर मिट्टी को चूर्ण करने से पूर्व पानी मिलाया जा सकता है कारण चूर्ण हो जाने पर पानी को समान रूप से मिलाना सम्भव नहीं है। चूर्ण रंगों के आधार पर अलग-अलग कमरों में रखे जाते हैं और आवश्यकता पड़ने पर दबावघरों को ले जाये जाते हैं।

टालियाँ बनाने के लिए मिश्रण-चूर्ण को दबाकर इच्छित आकृति प्रदान की जाती है। चूँकि मिश्रण-चूर्ण घना नहीं होता तथा न्यूनाधिक मात्रा में हवा उसके अन्दर रहती है, अतः पूरा दबाव एक बार में ही नहीं लगाया जाता। चूर्ण के बीच की हवा टालियों को पूर्णरूपेण ठोस नहीं होने देती और स्लेट की भाँति परतदार बना देती है। इस प्रकार की टाली ठोस न होने के कारण बिलकुल व्यर्थ हो जाती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए प्रारम्भ में थोड़ा दबाव लगाने के पश्चात् थोड़े समय तक टाली को ऐसा ही छोड़ देते हैं। इस बीच में हवा का निकलना स्पष्ट रूप से अनुभव किया जा सकता है। दूसरी बार अधिक दबाव लगाने से टाली ठोस बन जाती है और उसमें आवश्यक शक्ति आ जाती है। हवा का ठीक प्रकार से निकलना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है और यह मुख्य रूप से चूर्ण के प्रकार पर निर्भर करता है। साथ ही प्रेस तथा ठप्पों की बनावट और क्रियाविधि का भी हवा के निकलने में कुछ प्रभाव पड़ता है। अधिक महीन पिसे चूर्ण के बीच अधिक हवा होगी, अतः ठप्पों में अधिक ऊँचाई तक भरना होगा और प्रायः इससे परतदार टालियाँ बन जायँगी। साथ ही चूर्ण को महीन पीसने में व्यय भी अधिक होगा। महीन चूर्ण के प्रयोग से कारखाने में मिट्टीकण अधिक उड़ेंगे, जो कारीगरों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। कुछ कम महीन चूर्ण में ये सब असुविधाएँ नहीं रहतीं।

चूर्ण मिश्रण-पिण्डों से टालियाँ, हस्त-चालित स्पिण्डल प्रेस, घर्षण-चालित स्पिण्डल प्रेस या द्रव-चालित प्रेस द्वारा बनायी जाती हैं। हस्त-चालित स्पिण्डल प्रेस केवल विशेष

आकृति की टालियों, जैसे कोने की टालियों आदि के बनाने में काम आता है, कारण इन प्रेसों से उत्पादन कम होता है और इन्हें चलाना कठिन है। इसी से साधारण टालियों के बनाने में इनका प्रयोग नहीं किया जाता। द्रव-चालित प्रेस केवल बड़े कारखानों में ही उपयोगी होते हैं। लगभग सभी छोटे कारखानों में केवल घर्षण-चालित स्पिण्डल प्रेस का ही प्रयोग किया जाता है, कारण यह साधारण है। इससे उत्पादन भी अधिक होता है और इसे खरीदने में भी अधिक पूंजी नहीं लगानी पड़ती।

चित्रित टालियाँ (Encaustic or Inlaid tiles)—इस प्रकार की टालियाँ बनाने के लिए विभिन्न रंगीन चूर्णों को दबाव-विधि द्वारा मुख्य टाली के तल पर इस प्रकार लगाया जाता है कि टाली-तल पर विभिन्न इच्छित रंगीन नक्शे बन जायें। मुख्य टाली के पिण्ड से रंगीन चूर्ण अधिक गलनशील रखा जाता है, जिससे वह पिघलकर टाली को मजबूती से पकड़ ले। विभिन्न रंगीन चूर्ण विशेष बुद्धिमत्तापूर्ण विधियों से लगाये जाते हैं।

टालियाँ प्रायः बिना सुखाये ही पकाने के लिए भेज दी जाती हैं, परन्तु इन्हें पकाने में जलवाष्प-काल का समय बढ़ा देते हैं। इन्हें पकाने के लिए प्राय गोलाकार अधोगति भट्ठियों का प्रयोग किया जाता है, परन्तु अधिक उत्पादन के लिए प्राय अविराम भट्ठियों का प्रयोग होता है। प्रयोग की जानेवाली मिट्टी के प्रकार तथा पकाने के ताप-क्रम के अनुसार पकाने में कुल २२० से २३० घण्टे तक का समय लगता है। फर्श के लिए काँचीय टालियाँ १२८०° से १३००° सें० के बीच पकायी जाती हैं। कतिपय सहज गलनशील मिट्टियों का प्रयोग करने पर पकाने का तापक्रम कुछ कम भी हो जाता है।

अच्छी काँचीय टालियों की रन्ध्रता ३ प्रतिशत से कम होती है तथा घर्षण-शक्ति प्राकृतिक कठोर पत्थर के बराबर होती है।

अष्टम अध्याय

प्रलेपित मृत्पात्र

प्रलेपित मृत्पात्रों में वे सभी मृत्पात्र आ जाते हैं, जो अर्द्धकाँचीय तथा सच्छिद्र हों और जिनके तल उचित चिक्कन-प्रलेप से प्रलेपित हों। अंग्रेजी में इन पात्रों को केवल अर्दनवेअर (Earthen-ware) कहा जाता है। अर्दनवेअर शब्द का, कभी-कभी कुछ लोग प्रलेपहीन मृत्पात्रों के लिए, प्रयोग कर बैठते हैं, जो अशुद्ध है। साधारण मिट्टियों से बने प्रलेपहीन मृत्पात्रों को पक्के मिट्टी-बर्त्तन या टेरा-कोटा (Terra-cotta) कहते हैं। आधुनिक काल में प्रलेपित मृत्पात्र, जलने पर श्वेत रहनेवाली चीनी मिट्टी और बॉल-मिट्टियों से तथा जलने पर लाल या मासल हो जानेवाली साधारण मिट्टियों से बनाये जाते हैं। इन प्रयोग की जानेवाली मिट्टियों के आधार पर दोनों प्रकार के प्रलेपित मृत्पात्रों में से प्रथम को उत्कृष्ट प्रलेपित मृत्पात्र या श्वेत मृत्पात्र और द्वितीय प्रकार के मृत्पात्रों को साधारण प्रलेपित मृत्पात्र या प्रलेपित टेरा-कोटा कहते हैं। इन दोनों प्रकार के पात्रों पर प्रयोग किये जानेवाले प्रलेपों में भी काफी अन्तर होता है। इंग्लैण्ड में अधिकता से बननेवाले आधुनिक उत्कृष्ट प्रलेपित मृत्पात्रों पर प्राय सीसायुक्त क्षारीय प्रलेप चढ़ा रहता है। यह प्रलेप प्रयोग से पूर्व काँचित कर लिया जाता है। ये पात्र नित्यप्रति के घरेलू उपयोग के लिए बहुत ही उपयोगी हैं, कारण किसी प्रकार के भोजन का उन पर कोई हानिकर प्रभाव नहीं होता। साधारण प्रलेपित मृत्पात्रों पर अकाँचित सीसायुक्त प्रलेप चढ़ा रहता है, जिस पर तनु अम्लों तथा क्षारों की क्रिया हो जाती है। अत इस प्रकार के पात्रों का उपयोग प्राय घरेलू सजावट की वस्तुओं के रूप में किया जाता है।

मिश्रण-पिण्ड तथा प्रलेप समान होने पर भी इंग्लैण्ड में बनी श्वेत मृद्वस्तुएँ दूसरे देशों की अपेक्षा श्रेष्ठ होती हैं। ये मूल्य में सस्ती तथा घरेलू कार्यों के लिए पर्याप्त उपयोगी होती हैं। इन वस्तुओं के मिश्रण-पिण्ड बनाने के लिए चीनी मिट्टी, बॉल-

मिट्टी, चकमकी और कार्निश पत्थर प्रयोग किये जाते हैं। चीनी मिट्टी श्वेतता प्रदान करती है तथा बॉल-मिट्टी आवश्यक लचीलापन प्रदान करके कच्चे पात्रों को शीघ्र बनाने में काफी सीमा तक सहायक होकर उनके निर्माण-व्यय को घटाती है। निस्तापित चकमकी से पात्र को श्वेतता और कठोरता दोनों ही प्राप्त होती हैं एवं कार्निश पत्थर द्रावक का कार्य करता है।

उपर्युक्त कच्चे मालों को महीन पीसकर विभिन्न मिश्रण-कुण्डों में उनका घोला अलग-अलग बना लिया जाता है। इन विभिन्न घोलों को आगे चलकर ठीक प्रकार से मिलाने के लिए यह आवश्यक है कि सभी घोले एक तरलतावाले रखे जायँ, यद्यपि उनके घनत्व भिन्न होंगे। इसके लिए इँग्लैण्ड में साधारणत निम्नलिखित नियमों का पालन किया जाता है।

बॉल-मिट्टी का घोला ऐसा बनाया जाता है कि एक पाइण्ट का भार २४ औंस हो। एक पाइण्ट मिट्टी घोला का भार २६ औंस, चकमकी, या स्फटिक-घोले का भार ३२ औंस तथा कार्निश पत्थर या फेल्सपार घोले का भार ३१—३२ औंस हो।

पिसे हुए पदार्थों का मिश्रण गीली अवस्था में किया जाता है। प्रत्येक प्रकार के घोले का निश्चित आयतन एक ऊर्ध्व मिश्रण-कुण्ड में डाला जाता है। इस कुण्ड में ऊर्ध्वाधर धुरी होती है, जिस पर मिश्रक पखे लगे रहते हैं। दूसरे देशों की अपेक्षा इँग्लैण्ड में पदार्थों को अधिकतर गीली अवस्था में ही मिलाया जाता है। इस विधि का लाभ यह है कि पात्र-मिश्रण-पिण्ड के सगठन का हिसाब लगाते समय खनिज पदार्थों की नमी बाधा नहीं डालती। इस विधि में असुविधा यह है कि प्रत्येक घोले के लिए एक अलग भण्डार कुण्ड बनाना पडता है तथा घोला चलाते रहना पडता है जिससे ठोस कण जमकर बैठ न जायें।

मिश्रित घोले को चलनियों से छानते हुए चुम्बक पर ले जाया जाता है जिससे पिछली क्रियाओं में आ गयी या स्वय मिट्टी पदार्थों में उपस्थित लौह-अशुद्धि दूर हो जाय। ये चलनियाँ आवश्यकतानुसार ८० से १२० नम्बर तक की होती हैं। बाद में घोला जल-निष्कासन यन्त्रों में भेज दिया जाता है। मिश्रित घोले में बॉल-मिट्टी होने पर शक्तिशाली जल-निष्कासक की आवश्यकता पडती है। पोरसिलेन मिश्रण-घोले के लिए इतने शक्तिशाली जल-निष्कासक की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि उसमें बॉल-मिट्टी नहीं रहती। यदि किसी मिट्टी-घोले को जल-निष्कासन यन्त्र के प्रयोग बिना

नीचे मन्दी आँच पर सुखाया जाय तो पिण्ड अधिक लचीला तथा कार्योपयोगी बनता है। जल-निष्कासकों में प्राप्त मिश्रण-पिण्ड पगयन्त्र में भेजा जाता है, जिसके बाद पात्र बनाने के लिए मिश्रण-पिण्ड तैयार है। आधुनिक वायु-निष्कासक पगयन्त्रों के प्रयोग से आगे चलकर पात्र में आनेवाले बहुत-से दोष दूर हो जाते हैं और वस्तुएँ अच्छी बनती हैं।

मिश्रण-पिण्ड-संगठन—इँग्लैण्ड के अतिरिक्त दूसरे देशों में प्रायः चकमक और कार्निश पत्थर के बदले स्फटिक, फेल्सपार पेगमेटाइट और खड़िया का प्रयोग किया जाता है। विदेशी प्रलेपित मृत्पात्रों के कुछ विशेष मिश्रण-पिण्डों के संगठन नीचे दिये जाते हैं—

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)
चीनी मिट्टी	१०	३५	२५	५०	२४	२५
बॉल-मिट्टी	४५	२०	२५	/	४०	३०
चकमक	३५	३२	३४	३०	२५	३०
कार्निश पत्थर	१०	१३	१६	/	/	/
फेल्सपार	×	×	×	१८	१०	/
पेगमेटाइट	×	×	×	×	×	१०
खड़िया	×	×	×	२	१	५

मिश्रण-पिण्ड १ इँग्लैण्ड का मलाई रंग का मिश्रण-पिण्ड है। मिश्रण-पिण्ड २ इँग्लैण्ड का श्वेत मिश्रण-पिण्ड और ३ इँग्लैण्ड के ग्रेनाइट नामक पात्रों के लिए मिश्रण-पिण्ड है। प्रायः ०.०२ से ०.०५ प्रतिशत तक कोबाल्ट लवण इन मिश्रण-पिण्डों की श्वेतता-वृद्धि के लिए प्रयोग किये जाते हैं। कोबाल्ट लवण की इतनी थोड़ी मात्रा को डालने की सर्वोत्तम विधि यह है कि इसे कोबाल्ट के घुलनशील लवणों के रूप में डाल जाय। बाद में थोड़ी अमोनिया की सहायता से अवक्षेपित करा लिया जाय। मिश्रण-पिण्ड ४, ५ तथा ६ दूसरे यूरोपीय देशों के प्रलेपित मृत्पात्रों के मिश्रण-पिण्ड हैं, जो प्रायः स्टाइनगुत, फिआन्स और मैजोलिका आदि पात्रों के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन पात्रों में बॉल-मिट्टी के स्थान पर कम लोहवाली अग्निमिट्टी डाली जाती है। चकमक के स्थान पर निस्तापित स्फटिक का प्रयोग किया जाता है। थोड़ी मात्रा में चूना या खड़िया विरंजक की भाँति कार्य करके पकी हुई वस्तु को अधिक श्वेत बनाते हैं। परन्तु अर्द्ध-काँचीय पात्र में चूना ५ प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए, अन्यथा पात्र पकाने के तापक्रम का परास घट जाता है और पात्र में विकृति भी आ सकती है। उत्कृष्ट प्रलेपित रसपात्रों का प्रारम्भिक पकाव प्रायः ११६०° से १२००° सें० के बीच होना है। उसके

पश्चात् उनपर प्रलेप लगाकर प्रलेप-पकाव कम तापक्रम पर किया जाता है। परन्तु आधुनिक प्रवृत्ति के अनुसार पात्र का प्रारम्भिक पकाव कम तापक्रम ९००° से १०००° सें० पर किया जाता है। उसके बाद पात्र तथा प्रलेप दोनों को साथ-साथ उच्च तापक्रम पर पकाते हैं। इससे चटक दोष का भय कम हो जाता है।

भारतीय पदार्थों से बने कुछ उत्कृष्ट प्रलेपित मृत्पात्रों के मिश्रण-पिण्डों के संगठन नीचे दिये जाते हैं—

	(१)	(२)	(३)	(४)
कटनी अग्निमिट्टी	×	४०	×	×
मगमा अग्निमिट्टी	३०	×	×	×
राजमहल केओलिन	२०	१५	४८	४५
निस्तापित स्फटिक	३२	३०	३४	३६
मिहीजाम फेल्सपार	१३	१५	१६	१५
संगमरमर चूर्ण	५	×	२	४

इसमें प्रयोग की जानेवाली अग्निमिट्टी प्रयोग से पूर्व अच्छे प्रकार धो लेनी चाहिए और चुम्बक द्वारा लौहकण दूर कर देने चाहिए। इन अग्निमिट्टियों की उपस्थिति से मिश्रण-पिण्ड का लचीलापन बढता है। परन्तु पात्र में हलका मलाई रंग उत्पन्न होता है। यह रंग नीले रंजक की उचित मात्रा से छिपाया जा सकता है। उपर्युक्त मिश्रण-पिण्ड लगभग ११६०° सें० पर पकते हैं।

पकाने की अन्तिम अवस्था में अर्द्ध कांचीय वस्तुएँ कठोर रहती हैं। अत: किन्हीं विशेष आधारों की आवश्यकता नही होती, जब कि कांचीय पदार्थ, पकाने के अन्तिम तापक्रम पर कुछ पिघल-से जाते हैं। अत. इन्हें रोकने के लिए आधारों का होना आवश्यक है।

पात्र के पतले टुकड़े का सूक्ष्मदर्शी में परीक्षण करने पर देखा जाता है कि कांचीय पात्र में स्फटिक पूर्णत. या अंशत घुल गये हैं, जब कि अर्द्ध कांचीय पात्रों में स्फटिककण अप्रभावित रहते हैं और अपने मौलिक कोणों सहित आकृति में रहते हैं। कांचित भाग और मूलाइट कणों का उत्पादन अर्द्ध कांचीय पात्रों की अपेक्षा कांचीय पात्रों में अधिक होता है। यह अन्तर दोनों पात्रों के भिन्न संगठन के कारण नही, वरन् पकाने के भिन्न तापक्रम के कारण होता है।

टाली मिश्रण-पिण्ड—दीवारों की टालियाँ बनाने के मिश्रण-पिण्ड में विभिन्न मिश्रणों का प्रयोग होता है। चटक-दोष से छुटकारा पाने के लिए चकमकी की अधिक

मात्रा तथा कार्निश पत्थर की न्यून मात्रा का प्रयोग किया जाता है। इंगलैण्ड और अमेरिका में प्रयुक्त होनेवाले विशेष मिश्रण-पिण्डों के संगठन नीचे दिये जाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि टालियाँ बनाने में फेल्सपार के स्थान पर कार्निश पत्थर का प्रयोग करने से टालियों का ऐंठना कम हो जाता है तथा पकाव तापक्रम का परास भी बढ़ जाता है।

बॉल-मिट्टी	२३.६	२२.००
चीनी मिट्टी	१८.२	३०.२५
चकमक	३८.१	३५.७५
कार्निश पत्थर	१०.१	१२.००

दबाव-विधि से टालियाँ बनाने के लिए, मिश्रण-चूर्ण बनाने के लिए, जल-निष्कासकों से प्राप्त मिट्टी को कृत्रिम सुखानेवाले प्रकोष्ठों में सुखाया जाता है। इस सुखाने में पात्र पकाने की भट्ठी के व्यर्थ ताप का उपयोग किया जाता है। सूखी हुई मिट्टी को महीन चूर्ण करके चलनी से छान लिया जाता है। छानने के लिए प्रायः आवश्यकतानुसार २० से ४० नम्बर तक की चलनियों का प्रयोग किया जाता है। यह छना हुआ चूर्ण दबाव-विधि से टालियाँ बनाने के लिए तैयार है। इस चूर्ण में पानी ६ से ९ प्रतिशत तक रहता है।

कभी-कभी उत्कृष्ट प्रलेपित मृत्पात्र रंगीन भी होते हैं और विभिन्न नामों, जैसे जेसपर, बासाल्ट, सीमिचन आदि, से बेचे जाते हैं। इन पात्रों के मिश्रण-पिण्डों के कुछ संगठन नीचे दिये जाते हैं—

	(१)	(२)	(३)	(४)
लचीली मिट्टी	६७	७८	५०	५०
निस्तापित स्फटिक	१०	१५	×	३०
अस्थिराख	२०	×	×	×
बेराइटीज	×	५	×	×
फेल्सपार	×	×	१०	१०
कोबाल्ट लवण	३	२	×	×
हैमेटाइट	×	×	३०	×
मैंगनीज-डाई-आक्साइड	×	×	१०	×
थोरियम अर्थ	×	×	×	१०
योग	१००	१००	१००	१००

१—आसमानी नीला जेसपर मिश्रण-पिण्ड।
२—नीला जेसपर मिश्रण-पिण्ड।
३—काला बासाल्ट मिश्रण-पिण्ड।
४—सीमियन लाल मिश्रण-पिण्ड।

इन मिश्रण-पिण्डों को ११४०° से ११६०° सें० पर निस्तापित करो। रगो का पूरा प्रभाव दिखाने के लिए प्राय ये पात्र प्रलेपित नही किये जाते वरन् उभरे हुए नक्शो से सजाये जाते हैं।

पात्रो का निर्माण साधारण रूप से किया जाता है, जिसका वर्णन पिछले अध्यायो में किया जा चुका है। सभी गोल वस्तुओं को बनाने के लिए प्राय चाक-विधि या जाली-विधि का प्रयोग किया जाता है। विषम आकृतिवाली वस्तुओं के बनाने में ढलाई-विधि का प्रयोग विश्व-प्रचलित है।

सुखाना—पात्र, बनाने के पश्चात् साँचो सहित सुखानेवाले प्रकोष्ठो में ले जाये जाते हैं। ये स्थान पात्र बनानेवाले कारीगरो के पीछे पास ही बने होते हैं, जिससे अधिक दूर न जाना पड़े। ये स्थान वाष्प-कुंडलियो द्वारा गरम किये जाते हैं और तापक्रम प्राय. ३०° से ४०° से० तक रखा जाता है। बड़े कारखानो में सुखाने के प्रकोष्ठ अलग से बनाये जाते हैं, कारण शीघ्रता से सुखाने के लिए अपेक्षाकृत अधिक गरम वातावरण होना चाहिए और यदि यह वातावरण ढलाईघर में ही उत्पन्न किया जाय तो ढलाई-घर गरम और वाष्पमय हो जायगा, जो कारीगरो के स्वास्थ्य के लिए हानिकर है।

कुम्हार का यह साधारण अनुभव है कि कभी-कभी सुखाने पर पात्र काफी चटके हुए निकलते हैं। सुखाते समय पड़ी इन चटकों के बहुत-से कारण, सारांश रूप में इस प्रकार है—

(१) मिश्रण-पिण्ड का सगठन तथा उसमे पानी की असमानता। यदि मिश्रण-पिण्ड मे लचीली मिट्टी कम रहे तो यह पिण्ड कणो को जोड़कर रखने की शक्ति खो देता है और मिट्टी के आकुचन के कारण उत्पन्न विकृति नही सहन कर पाता। लचीले पिण्ड मे अत्यधिक पानी डालने से भी पात्र को सुखाते समय उसके चटक जाने की सम्भावना रहती है। यदि उचित पगयन्त्र-क्रिया द्वारा मिट्टी न बनायी गयी हो, तो भी मिट्टी, विभिन्न भागो पर असमान आकुचन के कारण चटक जायगी।

(२) दोषपूर्ण पात्र-निर्माण। प्रोफाइल प्रयोग करने से पूर्व साँचे के भीतर मिट्टीपिण्ड को हाथ से दबाकर थोडा उठा देना चाहिए। मिट्टी हाथ से दबाते समय उँगलियो द्वारा ऊँची-नीची नालियाँ-जैसी न बन जायें। सर्वोत्तम परिणाम उस समय निकलता है, जब पिण्ड से प्रोफाइल हटाने पर पिण्ड का पूरा भाग चमकता हुआ रहे और साँचे मे पिण्ड पर मुक्त पानी या गाढा घोल न रहे। यदि पात्र बनाने के अन्त तक पिण्ड अत्यधिक सूख जाय, तो पात्र तल खुरदरा और कम ठोस होगा, अत सुखाते समय चटक जायगा। इस दोष पर जिग्गर की गति का भी काफी प्रभाव पडता है। ऐसा अनुमान है कि साधारण प्यालो तथा छोटी वस्तुओ को बनाने के लिए जिग्गर की गति ३०० से ३२५ चक्र प्रति मिनट तक काफी है। इससे कम गति होने पर प्रोफाइल मिट्टी को साफ काटने के बजाय रगडती रहेगी। यदि प्रोफाइल पर्याप्त मजबूत नही है, तो चिपचिपी मिट्टी पर यह हिलती रहेगी और असमान दबाव उत्पन्न करेगी। परिणाम-स्वरूप पात्र सुखाने पर चटक जायगा। साचो की रन्ध्रता की समानता पर भी ढले पात्र की प्रकृति निर्भर करती है।

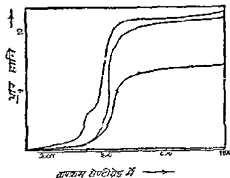
(३) दोषपूर्ण सुखाव। सुखाने की गति बहुत मन्द होने के कारण उत्पन्न दोषों का वर्णन तृतीय अध्याय में किया जा चुका है।

सूखने के पश्चात् पात्र रेगमाल द्वारा साफ किये जाते हैं। पकाने के लिए रखते समय दो प्याले आमने-सामने मुँह करके जोड दिये जाते हैं ताकि वे पकाते समय अपनी आकृति न खो दें। उन्हें जोडते समय उनके हैण्डिल एक ही ओर रखे जाते हैं। इस कार्य के लिए चिपकना गोंद, डैक्सट्रिन, पानी तथा थोडे से साधारण गोंद को या जिलेटिन को गरम करके सरलतापूर्वक बनाया जा सकता है।

रासायनिक संगठन—साधारण मृत्पात्रों के मिश्रण-पिण्ड विभिन्न पदार्थों से प्राप्त बहुत-से यौगिकों के मिश्रण होते हैं। इनमें से कुछ, जैसे चूना, मैगनीशिया, लौह आक्साइड उच्च तापक्रम पर स्थायी रहते हैं। दूसरे, जैसे स्फटिक और चकमक उसी रासायनिक संगठनवाले दूसरे केलासों में बदल जाते है, परन्तु केओलिन और फेल्सपार जैसे कुछ यौगिक उच्च तापक्रम पर विच्छेदित हो जाते हैं। साधारण मिट्टी की वस्तुएँ पकाते समय केवल आंशिक गलन अवस्थाओं तक ही गरम की जाती हैं। प्रलेपित मृत्पात्र बनाने में ताप का प्रभाव केवल पात्र को आकुंचित करके काफी कठोर कर देना है। पकाने की क्रिया उस तापक्रम तक नहीं ले जाते कि पात्र पूर्णरूपेण काँचीय हो सके

गलन-तापक्रम के आसपास पात्र की विकृति रोकने के लिए मिश्रण-पिण्ड संगठन में डाले गये द्रावकों का सावधानीपूर्वक अध्ययन किया जाना चाहिए। दूसरे द्रावकों की अपेक्षा पोटाश फेल्सपार मन्द तथा सुरक्षित द्रावक है, कारण तरल फेल्सपार की श्यानता अधिक होती है। उच्च तापक्रम पर जब पात्र कुछ नरम होता है, अधिक श्यान द्रावक रहने से पात्र में अपने ही भार के कारण विकृति नहीं होने पाती। सोडा सिलीकेट की अपेक्षा पोटाश सिलीकेट अधिक श्यान होता है। मैगनीशिया की अपेक्षा फेरस आक्साइड अधिक तरल और अधिक गलनशील द्रावक बनाता है। इस दृष्टि से चूना बहुत ही हानिकारक द्रावक है, कारण यह बहुत कम श्यान द्रव बनाता है जिसके कारण पात्र जरा-सा भी अधिक पकने से विकृत हो जाता है। द्रावक का अन्तिम प्रभाव मिश्रण-पिण्ड के अन्दर बने सुद्राव मिश्रण के बनने पर ही आधारित होता है। इन सुद्राव मिश्रणों का बनना मिश्रण-पिण्ड में उपस्थित विभिन्न भास्मिक आक्साइडों की उपस्थिति तथा सिलीका की मात्रा पर निर्भर करता है।

प्रलेपित मृत्पात्र पर प्रलेपन-क्रिया की सफलता या असफलता मुख्य रूप से पात्र-मिश्रण-पिण्ड में उपस्थित सिलीका की मात्रा पर निर्भर करती है। व्यावहारिक अनुभव के अनुसार ११२०° से ११८०° सें० तक पकनेवाले पात्रों में सिलीका की सम्पूर्ण मात्रा ७० से ७५ प्रतिशत तक होनी चाहिए। ऐसे मिश्रण-पिण्डों में एल्यूमिना की औसत मात्रा २४ प्रतिशत होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में प्रलेपित मृत्पात्रों में स्फटिक या चक-मक की मात्रा सदैव ३० प्रतिशत से अधिक होनी चाहिए। अन्यथा प्रलेप में चटक-दोष आ जाने की सम्भावना रहती है। इन सब बातों के होते हुए भी अन्तिम प्रभाव, प्रारम्भिक तथा प्रलेप पकाव के तापक्रमों और पकाने की दशाओं पर निर्भर करता है।



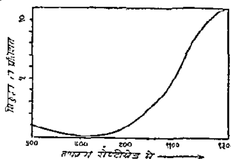
चित्र २६. पकाते समय विभिन्न पदार्थों की भारहानि

पकाने का प्रभाव—प्रलेपित मृत्पात्र-पिण्ड को पकाने के समय उसके अन्दर होनेवाली क्रियाओं को समझने के लिए यहाँ दिये हुए तीन रेखाचित्रों का अध्ययन काफी लाभदायक

होगा। चित्र २६ में भिन्न तापक्रमों पर पकाने से तीन भिन्न पदार्थों, केओलिन (K), एक कोयले की खान से निकली अग्निमिट्टी (F) तथा साधारण प्रलेपित मृत्पात्र पिण्ड (E) की भारहानि दिखाते हुए तीन रेखाचित्र दिये गये हैं। दबाव विधि से २ इंच भुजा की वर्गाकार टालियाँ बनाकर तथा उन्हें कई दिन तक हवा में सुखाकर परीक्षण-खण्डों के रूप में प्रयोग किया गया था। इन टालियों को तौलकर विद्युत् भट्ठियों द्वारा धीरे-धीरे बढ़ते तापक्रम में पकाया गया था। तापक्रम उत्तापमापक की सहायता से नापा गया था।

रेखाचित्र से पता चलता है कि ४६०° सें० से नीचे केओलिन में बहुत कम भार-हानि होती है, जब कि अग्निमिट्टी लगभग ३५०° सें० तक धीरे-धीरे भार खोती जाती है। उसके बाद ४००° तक भारहानि अकस्मात् अधिक हो जाती है। ये दो अवस्थाएँ कोयले की खान से निकली अग्निमिट्टी में उपस्थित विभिन्न कार्बनिक पदार्थों के कारण हैं, जो भिन्न-भिन्न तापक्रमों पर जल जाते हैं। प्रलेपित मृत्पात्र में लगभग ४५०° सें० तक लगभग एक प्रतिशत भारहानि होती है। परन्तु इसके पश्चात् तीनों रेखाचित्रों में आकस्मिक वृद्धि होती है। यह आकस्मिक भारहानि केलास जल के निकल जाने के कारण होती है और साधारण मृत्पात्र में यह हानि पूरे पिण्ड की ६ से ८ प्रतिशत तक होती है। चूँकि इस भारहानि का अधिकांश भाग केलास जल की हानि के कारण होता है, जो वाष्प बन जाता है तथा इस तापक्रम पर उसका आयतन काफी अधिक होता है, अतः यह स्पष्ट है कि प्रलेपित मृत्पात्र, प्रारम्भिक पकाव में धीरे-धीरे पकाये जायँ और इस वाष्प को बाहर ले जाने के लिए काफी हवा भट्ठी में भेजी जाय।

चित्र २७ में प्रलेपित मृत्पात्र (E) पर तापजनित आयतन परिवर्तन दिखाया गया है।



चित्र २७. प्रलेपित मृत्पात्र में आयतन परिवर्तन

रेखाचित्र से पता चलता है कि ८००° सें० तक आयतन-वृद्धि होती रहती है। यह आयतन-वृद्धि मुख्य रूप में मिश्रण-पिण्ड में उपस्थित स्फटिक केलासों के रूपान्तर के कारण होती है। ८००° सें० से ऊपर १०००° सें० तक मिश्रण-पिण्ड में बहुत धीरे-

धीरे आकुंचन प्रारम्भ होता है, परन्तु इससे अधिक तापक्रम पर आकुंचन की गति बहुत तेज हो जाती है। प्राय ऐसा सोचा जाता है कि यह आकुंचन निर्जलित मिट्टी से प्राप्त मुक्त एल्यूमिना तथा मुक्त सिलीका का आपस में संयोग करके मूलाइट बनने और तरल द्रावक में मुक्त सिलीका तथा मुक्त एल्यूमिना के कुछ कण घुल जाने के कारण होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि इस तापक्रम पर एक दूसरा क्रांतिक परिवर्तन होता है। अत उस समय पकाने की गति धीमी कर देनी चाहिए। अन्तिम तापक्रम पर ताप-शोषण का महत्त्व इस कारण होता है कि इस तापक्रम पर आकुंचन की गति अत्यधिक होती है।

अब हम अच्छा परिणाम पाने के लिए प्रारम्भिक पकाव के उचित तापक्रम का कुछ अनुमान कर सकते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में तापक्रम बढ़ने की गति तब तक धीमी रहे, जब तक कि पूरी भट्ठी का तापक्रम लगभग १५०° सें० नहीं हो जाता, अर्थात् सारा नमी जल एवं द्रवित जल वाष्प बनकर दूर नहीं हो जाता। इसके बाद यह तापक्रम बढ़ने की गति उस समय तक बढ़ायी जा सकती है, जब तक कि तापक्रम ४५०° सें० नहीं हो जाता या भट्ठी का भीतरी भाग लाल होना प्रारम्भ नहीं हो जाता। इस समय से लगभग ६००° सें० तक यह गति कम होनी चाहिए। ६००° सें० पर पूरी भट्ठी लाल ठोस के रूप में होती है। ६००° सें० से ९००° सें० तक तापक्रम बढ़ने की गति काफी बढ़ायी जा सकती है और उसके बाद ९५०° सें० से ११२०° सें० तक तापक्रम धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। अन्तिम तापक्रम पर पात्रों के आकार व उनके ठोस होने की सीमा के अनुसार न्यूनाधिक काल तक ताप-शोषण कराना चाहिए।

प्रलेपित मृत्पात्रों की बड़ी भट्ठियों में पकाने की वास्तविक क्रिया के आधार पर पात्र पकाने का निर्देश नीचे दिया गया है—

तापक्रम-परास	पकाव-समय	तापक्रम-वृद्धि की गति
१५०° सें० तक	१५ घण्टा	१०° सें० प्रति घण्टा
१५०° से ४५०° सें० तक	१५ ,,	२०° सें० ,, ,,
४५०° ,, ६००° सें० तक	१५ ,,	१०° सें० ,, ,,
६००° ,, ९५०° सें० तक	१४ ,,	२५° सें० ,, ,,
९५०° ,, ११२०° सें० तक	१४ ,,	१२° सें० ,, ,,
	योग ७३ घण्टा	

टाली पकाना—टालियाँ एक-दूसरे के ऊपर स्तम्भों में बिना रेत की तह दिये रखी जाती हैं। सबसे नीचे पूर्व पकायी हुई टाली रहती है, जो स्तम्भ की सब टालियों का भार सह सके। एक स्तम्भ में लगभग १२ टालियाँ होती हैं। सबसे ऊपरी टाली के ऊपर एक प्रारम्भिक पकाव में पकी हुई टाली रख दी जाती है, जिससे टालियाँ साफ रहें। एक इंच से कुछ अधिक स्थान प्रत्येक टाली स्तम्भ के ऊपर छोड़ दिया जाता है, जिससे सैगर के भीतर गरम गैसें बह सकें। टालियाँ दबाव यन्त्रों से बनकर सीधी भट्ठी में आती हैं। अतः जलवाष्प काल में पकाव-गति बहुत धीमी होनी चाहिए। टालियों के *प्रारम्भिक पकाव में लगभग १३० से १४० घण्टे तक का समय लगता है और अन्तिम* तापक्रम ११००° सें० होता है। भट्ठी ठण्डी करने में लगभग एक सप्ताह लग जाता है, कारण शीघ्रता से ठण्डी करने में टालियों के चटकने का भय रहता है।

टालियों के प्रारम्भिक पकाव के लिए निम्नलिखित निर्देश कार्योपयोगी है—

१००° सें० तक	तापक्रम	३० घण्टों में लाया जाता है।
१००° सें० से १५०° सें० ,,	,,	१० ,, ,, ,, ,, ,,
१५०° ,, ,, २००° ,, ,,	,,	४ ,, ,, ,, ,, ,,
२००° ,, ,, ४००° ,, ,,	,,	१२ ,, ,, ,, ,, ,,
४००° ,, ,, ७००° ,, ,,	,,	२३ ,, ,, ,, ,, ,,
७००° ,, ,, ९००° ,, ,,	,,	२० ,, ,, ,, ,, ,,
९००° ,, ,, ११००° ,, ,,	,,	३० ,, ,, ,, ,, ,,
	योग	१२९ घण्टे।

तापशोषण अधिक काल तक न करने से चटक-दोष आ जायगा।

प्रारम्भिक पके हुए पात्रों में दोष—प्रारम्भिक पकाव के पश्चात् पात्र भट्ठी से निकालकर छाँटे जाते हैं और दोषपूर्ण पात्र छाँटकर अलग कर दिये जाते हैं। सुनियन्त्रित कारखानों में भी प्रारम्भिक पकाव में पात्रों के नष्ट होने का औसत १०-१५ प्रतिशत तक होता है। प्रारम्भिक पकाव के समय उत्पन्न दोष साधारण रूप में इस प्रकार हैं—

१. **माल्य-दोष**—इसमें पात्रतल पर छोटी-छोटी रेखाएँ उभर आती हैं। मूल रूप में यह दोष मिश्रण-पिण्ड बनाते समय उसके बीच रह गयी हवा के बुलबुलों के कारण

होता है। पात्र-निर्माण के समय दबाव आदि के कारण ये बुलबुले फैलकर लम्बी रेखाओं के रूप में हो जाते हैं। पात्र पकाते समय यही हवा पात्र-तल को फुलाकर उस-पर उभरी हुई रेखाओं को जन्म देती है, जो देखने में माला-जैसी लगती है। ये दोष ढलाई तथा जॉली दोनों विधियों से बने पात्रों पर देखे जाते हैं। ये दोष पकाने से पूर्व पात्र को रगड़ने और बाद में रगड़कर साफ करने से दूर हो सकते हैं।

२. पात्रों का टेढ़ापन—प्रारम्भिक पकाव में ठीक प्रकार से न रखने या भट्ठी में अधिक पक जाने पर पात्र टेढ़े हो जाते हैं। अधिक पक जाने की अवस्था में पात्र काँचीय होगा तथा सैगर में ठीक न रखने से पात्र अकाँचीय होगा। इस आधार पर हम पता लगा सकते हैं कि पात्र सैगर में ठीक न रखने से टेढ़ा हुआ है या अधिक पक जाने से।

३. काले चिह्न-दोष—इस दोष में पात्र पर छोटे-छोटे काले चिह्न पड़ जाते हैं। ये चिह्न, पात्र को सैगर में रखते समय प्रयोग में आयी रेत में लौह की उपस्थिति से या कच्चे सैगरों में पात्र रखकर पात्र पकाने से होते हैं। यदि भट्ठी-गैस में अधिक धूममय हो तो लौह-कणों के अवकरण से काले चिह्न पड़ जाते हैं। वातावरण आक्सीकारक होने पर इन चिह्नों का रंग बादामी हो जाता है।

४. चटक-दोष—इसमें पात्र चटक जाता है। यह दोष पात्र को सैगर तथा भट्ठी में ठीक ढंग से न रखने से, प्रारम्भ में पकाव गति के अत्यधिक होने से, पकाते समय अत्यधिक ठण्डी हवा के भट्ठी में प्रवेश करने से तथा भट्ठी को अत्यधिक शीघ्रता से ठण्डा करने से होता है। पात्र-मिश्रण-पिण्ड में अधिक महीन पिसा चकमक भी पकाते समय चटक-दोष उत्पन्न करने में सहायक होता है।

५. बादामी रंग-दोष—इस दोष में पात्रतल पर बादामी रंग की छाप लग जाती है। वातावरण के बारी-बारी से अवकारक तथा आक्सीकारक होने से यह दोष आ जाता है। इसका कारण सप्तम अध्याय में वर्णन किया जा चुका है।

६. छादनियाँ या काँचीय चकत्ते—इस दोष में पात्रतल पर श्वेत छादनी आ जाती है। यह छादनी पात्र-मिश्रण-पिण्ड में उपस्थित घुलनशील लवणों के कारण होती है। यह दोष किनारों पर अधिक प्रकट होता है, कारण वहाँ से वाष्पीकरण सर्वाधिक होता है। पात्रतल पर इस छादनी के रहने से प्रलेप पात्र को नहीं पकड़ पाता और छूटकर गिर जाता है। कभी-कभी यह छादनी अधिक पकने पर काँचीय भी हो जाती है।

प्रारम्भिक पकाव के पश्चात् टालियों में मुख्य रूप से दो दोष पाये जाते हैं। प्रथम दोष में असमान आकुंचन के कारण टाली एक ओर कम चौडी होकर पच्चड़ या फन्नी की आकृति की हो जाती है। दूसरे दोष में टाली चटक जाती है।

पच्चड-दोष मुख्य रूप से दोषपूर्ण दबाव-क्रिया तथा दोषपूर्ण पकाव-क्रिया के कारण होता है।

यदि टाली-निर्माण के समय दबाव चारों ओर समान नही है, तो पकाते समय टाली में असमान आकुंचन होगा और टाली एक ओर दूसरी ओर की अपेक्षा कम चौडी हो जायगी। अत उसकी आकृति फन्नी-जैसी हो जायगी। इसी कारण इस दोष को फन्नी या पच्चड़ दोष कहते हैं। इसी प्रकार पकाते समय यदि सैगर के एक ओर का तापक्रम दूसरी ओर से भिन्न है, तो असमान आकुंचन होंगे और यह दोष आ जायगा। प्रारम्भिक पकाव का यह दोष मुख्य रूप से सैगरों को भट्ठी में ठीक प्रकार से न रखने के कारण होता है।

टाली-मिश्रण-पिण्ड में बहुत महीन पिसी हुई सिलीका की मात्रा अत्यधिक रहने के कारण टालियाँ प्राय. चटक जाती हैं। इस दोष को आधुनिक कारखानो में पिसी हुई सिलीका के कण-आकार को नियन्त्रित करके दूर किया जाता है। यह कण-आकार-नियन्त्रण, पिसी हुई सिलीका के तल-अङ्क (Surface factor) को निर्धारित करके करते हैं। तल-अङ्क-निर्धारण-विधि त्रयोदश अध्याय में वर्णित की जायगी। साधारण उपयोगी पिसी हुई सिलीका का तल-अङ्क २३५ से २४० तक होता है तथा इस सिलीका का विश्लेषण इस प्रकार है—

महीन सिलीका	५० प्रतिशत
मध्यम सिलीका	३५ ,,
मोटी सिलीका	१५ ,,

चूंकि टालियाँ पकाने से पूर्व सुखायी नही जाती, अत पकाते समय तापक्रम धीरे-धीरे बढाना चाहिए। इसी प्रकार पकाव के पश्चात् विशेष कर ८००° से० तापक्रम आ जाने पर भट्ठी को ठण्डी भी धीमी गति से और समान रूप से करना चाहिए। यदि ये सावधानियाँ नही बरती गयी तो ये दोनो दोष आ जाने की सम्भावना रहेगी।

विकन-प्रलेप—प्रलेपित मृत्पात्रों पर प्रारम्भिक पकाव के पश्चात् प्रयोग किये जानेवाले प्रलेप क्षारीय सीसायुक्त या चूनेदार होते हैं। आवश्यकतानुसार प्रलेप विभिन्न तापक्रमों पर पकाये जाते हैं। प्रायः ये प्रलेप इतने पर्याप्त स्वच्छ और पारदर्शक होते हैं कि इनके नीचे पात्रतल पर के रंगीन चित्र स्पष्ट दीखते रहते हैं। अधिक क्षारीय प्रलेपों का प्रयोग अब बहुत ही कम होता है, कारण उनमें चटक दोष की धारणा अधिक रहती है।

क्षारीय प्रलेप निम्नलिखित सूत्र से बनाया जा सकता है—

० ७ क्षार }
० ३ चूना } ० १५ एल्यूमिना, २ ५ सिलीका।

क्षार और चूना की आपेक्षिक मात्राएं प्रलेपित होनेवाले मृत्पात्र के मिश्रण-पिण्ड के संगठन पर निर्भर करती हैं। अधिक क्षारीय प्रलेप अधिक सिलीकावाले मिश्रण-पिण्डों के लिए उपयोगी हैं तथा चूनेदार प्रलेप कम सिलीकावाले मिश्रण-पिण्डों के लिए उपयोगी हैं।

सीसायुक्त प्रलेप कांचित करके या बिना कांचित किये ही प्रयोग किये जाते हैं। अकांचित प्रलेप घरेलू उपयोग की वस्तुओं, विशेष कर भोजन-पात्रों पर नहीं प्रयोग किया जाता। कारण इससे सीसा-जनित विष उत्पन्न हो जाता है।

एक सीसायुक्त अकांचित प्रलेप का संगठन इस प्रकार है—

१ ० लैड मोनोक्साइड. ०·१५ एल्यूमिना. १ ७५ सिलीका।

यह प्रलेप स्वच्छ तथा पारदर्शक होता है और निम्नलिखित पदार्थों से बनाया जा सकता है—

सफेदा	६७·३ भाग
चकमक	२२·६ भाग
चीनी मिट्टी	१०·१ भाग

यदि प्रलेप अपारदर्शक बनाना हो तो जिंक आक्साइड का प्रयोग करते हुए निम्नलिखित अवयवों से बनाया जा सकता है—

सफेदा	५४	भाग
चीनी मिट्टी	२०	,,
चकमक	१६	,,
जिंक आक्साइड	८	,,
खटिया	२	,,
योग	१००	

बरडूल (E Berdull) द्वारा आविष्कृत निम्नलिखित तीन काँचित प्रलेप अधिक सीसा होने पर भी सीसा-जनित विपदोष से मुक्त हैं।

(१) ६५०° सें० से ६७०° सें० पर पकनेवाला—

०·५ क्षार ०·५ लैंड मोनोक्साइड	०·१५ एल्यूमिना	२·५५ सिलीका ०·४५ बोरैक्स

(२) ७९०°—८००° सें० पर पकनेवाला—

०·२ बेरियम आक्साइड ०·८ लैंड मोनोक्साइड	०·१५ एल्यूमिना	२·५ सिलीका ०·४५ बोरैक्स

(३) १०००° सें० पर पकनेवाला—

०·१५ बेरियम आक्साइड ०·८५ लैंड मोनोक्साइड	०·१५ एल्यूमिना	३·० सिलीका ०·४ बोरैक्स

प्रलेपित मृत्पात्रों पर प्रयोग किये जानेवाले सीसायुक्त प्रलेप प्राय सीसा और बोरैक्स को अलग-अलग काँचित करके, इन काँचितों को मिलाकर बनाये जाते हैं।

इसका कारण यह है कि सीसा और बोरैक्स को अलग-अलग काँचित करने से प्रलेप में सीसा-जनित विपदोष का भय नहीं रहता। इससे प्रलेप की अम्लों में घुलनशीलता कम हो जाती है। चूँकि काँचितों में केवल काँचीय पदार्थ होते हैं, इनमें कोई लचीला अवयव नहीं होता। अत काँचित मिश्रण को लचीला बनाने के लिए कुछ चीनी मिट्टी या सफेदा मिलाया जाता है। लचीला पदार्थ न मिलाने से सूखने पर लगाया हुआ प्रलेप पात्रतल से छूट जायगा। प्रलेप और काँचित मिश्रणों के अवयव नीचे दिये जाते हैं—

बोरैक्स कांचित।

० ५५ कैलशियम आक्साइड ० १० पोटैशियम ,, ० ३५ सोडियम ,,	० २७ एल्यूमिना	२ ३ सिलीका ० ७ बोरैक्स

सीसा—कांचित।

० ९ लेड मोनोक्साइड ० १ क्षार	० १५ एल्यूमिना, २ ५३ सिलीका।

प्रलेप-मिश्रण।

० ३५ लेड मोनोक्साइड ०·३५ कैलशियम आक्साइड ० ३० क्षार	० २८ एल्यूमिना	२ ८ सिलीका ० ४५ बोरैक्स

यह प्रलेप १०२०° सें० से १०४०° सें० तक पकता है।

कांचितो और प्रलेपो के अवयव-सूत्रों की गणना त्रयोदश अध्याय में की गयी है।

दो और कांचित सीसा प्रलेप नीचे दिये जाते हैं।

(१) ९८०° से १०२०° सें० तक पकनेवाला—

कांचित मिश्रण		प्रलेप-मिश्रण	
लाल सीसा	६७	कांचित	८२
स्फटिक	२८	चीनी मिट्टी	१०
चीनी मिट्टी	५	स्फटिक	८
योग	१००	योग	१००

(२) १०४०° से १०६०° सें० पर पकनेवाला—

कांचित मिश्रण		प्रलेप-मिश्रण	
लाल सीसा	२०	कांचित	८२
बोरैक्स	२२	फेल्सपार	१०
स्फटिक	३०	चीनी मिट्टी	८
फेल्सपार	१७	योग	१००
संगमरमर	११		
योग	१००		

लेखक द्वारा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में निकाले गये कुछ काँचित सीसा प्रलेप नीचे दिये जाते हैं—

(अ) १०००° से १०४०° सें० के बीच पकनेवाला—

काँचित-मिश्रण		प्रलेप-मिश्रण	
लाल सीसा	२०	काँचित	८२
बोरैक्स	२०	स्फटिक	१०
फेल्सपार	१८	चीनी मिट्टी	८
स्फटिक	३२	योग	१००
खड़िया	१०		
योग	१००		

(आ) १०६०° से ११००° सें० के बीच पकनेवाला—

काँचित-मिश्रण		प्रलेप-मिश्रण	
लाल सीसा	२०	काँचित	८०
बोरैक्स	१८	फेल्सपार	१०
फेल्सपार	२०	केओलिन	१०
स्फटिक	३५	योग	१००
खड़िया	७		
योग	१००		

उत्कृष्ट प्रलेपित मृत्पात्रों के लिए उपयोगी दो अकाँचित सीसा प्रलेप नीचे दिये जाते हैं। प्रलेप (१) का पकाव तापक्रम १०००° से १०४०° सें० तक और प्रलेप (२) का ११००° से ११२०° सें० तक है।

	(१)	(२)
सफेदा	६०	४०
स्फटिक	२५	२५
फेल्सपार	७	१५
चीनी मिट्टी	३	५
जिंक आक्साइड	×	५
संगमरमर	५	१०
योग	१००	१००

सीसा-रहित प्रलेप—दीवार की श्वेत टालियो में प्राय: सीसा-रहित प्रलेप प्रयोग किये जाते हैं, कारण लैड आक्साइड का भार अधिक होने के कारण एक ही तल ढकने के लिए आवश्यक सीसा-रहित प्रलेप की अपेक्षा सीसा के प्रलेप की मात्रा अधिक लगेगी। कभी-कभी सीसायुक्त प्रलेप सीसा-रहित प्रलेप से तीन गुना तक लगता है। सीसा-जनित विष का भय दूर करने के लिए घरेलू उपयोग की वस्तुओ पर आजकल सीसा-रहित प्रलेप का काफी प्रयोग होता है। सीसा-रहित प्रलेपो की अपेक्षा सीसायुक्त प्रलेपो मे काँचीयपन अधिक होता है और पकाव तापक्रम का परास भी अधिक होता है। केलासीकरण की धारणा भी कम पायी जाती है।

सीसा-रहित प्रलेपो के कुछ अवयव-सगठन नीचे दिये जाते हैं—

(क) सीसा-रहित अकाँचित प्रलेप—

फेल्सपार	४०	४५	५०
स्फटिक	२५	२०	२२
खडिया	१०	१०	१८
चीनी मिट्टी	१०	१०	१०
बेरियम कार्बोनेट	×	१५	×
जिंक आक्साइड	१५	×	×
योग	१००	१००	१००

उपर्युक्त प्रलेप लगभग १२००° सें० पर पकते हैं। अन्तिम प्रलेप प्रथम दो की अपेक्षा कम तापक्रम पर पकता है।

(ख) सीसा-रहित काँचित प्रलेप—

(१) ०·३ सोडियम आक्साइड ०·७ पोटैशियम ,,	०·३८ एल्यूमिना	३·८ सिलीका १·० बोरैक्स
(२) ०·४८ कैलसियम आक्साइड ०·४१ सोडियम ,, ०·११ पोटैशियम ,,	०·२९ एल्यूमिना	३·५३ सिलीका ०·९ बोरैक्स

ये प्रलेप लगभग १०००° सें० पर पकते हैं। कैलशियम आक्साइड के एक अंश के बदले बेरियम आक्साइड लाभ सहित डाला जा सकता है। बेरियम आक्साइड से प्रलेप की चमक और गलनशीलता बढ़ती है। परन्तु अधिक मात्रा होने पर चटक-दोष की धारणा आ जाती है।

११६०° सें० पर पकनेवाले दो और सीसा-रहित प्रलेपों के संगठन दिये जाते हैं। प्रथम जर्मनी तथा दूसरा अमेरिका से निकला है।

(क) ०.०५ पोटैशियम आक्साइड	} ०.३१ एल्यूमिना	२.५ सिलीका
०.१५ सोडियम ,,		०.४५ बोरैक्स
०.२४ कैलशियम ,,		
०.१५ मैगनीशियम ,,		
०.४१ स्ट्रौंशियम ,,		
(ख) ०.४९ कैलशियम आक्साइड	} ०.३१५ एल्यूमिना	२.७६४ सिलीका
०.२१ क्षारीय ,,		०.२८७ बोरैक्स
०.१० मैगनीशियम ,,		
०.०८ बेरियम ,,		
०.११४ जिंक ,,		
०.००६ लीथियम ,,		

प्रलेप में स्ट्रौंशियम आक्साइड, प्राकृतिक खनिज स्ट्रौंशिएनाइट अर्थात् स्ट्रौंशियम कार्बोनेट के रूप में डाला जा सकता है, या बनाये हुए स्ट्रौंशियम आक्साइड (SrO) के रूप में डाला जा सकता है। लीथियम आक्साइड (Li_2O) को लियोसार खनिज के रूप में डालते हैं।

सीसा-रहित प्रलेपों के अवयव चुनते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए—

(१) भास्मिक आक्साइडों की संख्या यथासम्भव अधिक रहनी चाहिए। साधारणत पाँच आक्साइड अच्छा परिणाम देते हैं।

(२) लीथिया (Li_2O), स्ट्रौंशिया (SrO)—क्षारों में लीथियम आक्साइड सबसे अधिक शक्तिशाली द्रावक है और स्ट्रौंशियम आक्साइड क्षारीय मिट्टियों में सर्वाधिक शक्तिशाली द्रावक है। प्रलेप में सीसे के स्थान पर इन दोनों आक्साइडों का

मिश्रण डालना सर्वोत्तम होता है। इससे प्रलेप गलनाङ्क भी कम हो जाता है और प्रलेप अधिक चिकना तथा चमकीला होता है।

(३) **जिंक आक्साइड** (ZnO)—यद्यपि जिंक आक्साइड Al_2O_3 तथा SiO_2 के साथ उच्च तापक्रम पर गलनेवाला सुद्राव मिश्रण बनाता है, परन्तु प्रलेप में ० २ अणु तक इसकी उपस्थिति से प्रलेप की चमक और तरलता बढ़ जाती है। परन्तु अत्यधिक मात्रा में जिंक आक्साइड रहने से प्रलेप का केलासीकरण हो जाता है।

(४) **मैगनीशिया** (MgO)—सीसा-रहित प्रलेप में चूना के बदले मैगनीशिया ० १५ अणु तक डालने से प्रलेप की चमक या प्रलेप तल बनावट को कोई हानि नहीं पहुँचती। इससे प्रलेप की तरलता बढ़ती है। इसकी उपस्थिति में प्रलेप में क्षारों की मात्रा बढ़ायी जा सकती है, कारण इसका ताप प्रसार गुणक कम है।

(५) **बेरीटा** (B_2O)—सेगर के समय से ही प्रलेप में लैड आक्साइड के बदले बेरीटा का प्रयोग होता आया है। जिंक आक्साइड की भाँति बेरीटा भी, Al_2O_3 तथा SiO_2 के साथ उच्च तापक्रम पर सुद्राव मिश्रण बनाता है। परन्तु एक बार बनने के पश्चात् उसकी अधिक तरलता सीसे की भाति ही रहती है। अत बेरीटा PbO के बदले डाला जा सकता है। चूँकि बेरियम आक्साइड और लैड आक्साइड दोनों ही विषैले हैं, अत भोजन पात्रों के लिए प्रयोग करने के पूर्व इन्हें कॉचित कर लेना चाहिए।

(६) **फ्लोराइड**—फ्लोरीन में द्रावक शक्ति काफी अधिक है, जिसका उपयोग सीसा-रहित प्रलेप बनाने में किया जा सकता है। क्राईओलाइट (Cryolite-AlF_3, $3NaF$) या सोडियम सिलीको फ्लोराइड के रूप में फ्लोरीन डालने से प्रलेप में क्षारों की मात्रा बढ़ जाती है, जिससे चटक-दोष आ सकता है। परन्तु फ्लोरस्पार (CaF_2) के रूप में डालने से यह भय नहीं रहता। फ्लोराइडों से पात्र-प्रलेप की श्वेतता में भी वृद्धि होती है।

सीसा-रहित प्रलेप में केलासीकरण की धारणा होने के कारण इन प्रलेपों को बड़ी सावधानीपूर्वक पकाना चाहिए। अन्यथा प्रलेप की चमक जाती रहती है। भट्ठी में प्रलेप पकते ही तापक्रम शीघ्रता से ८००° सें० ले आना चाहिए, जिससे केलासीकरण न होने पाये। इसके पश्चात् भट्ठी को धीरे-धीरे ठण्डा करें, जिससे चटक-दोष या फबी-दोष न आने पाये।

अनुज्ज्वल प्रलेप (Matt Glaze)—यदि प्रलेप में केलासीकरण होने दिया जाय, तो पात्र की चमक कम हो जाती है। यदि प्रलेप नियन्त्रित करके ठीक ढंग से बनाया जाय, तो यह चमकहीन प्रलेप भी बड़ा सुन्दर दीखता है। सुनियन्त्रित चमकहीन प्रलेप को अनुज्ज्वल या मेट (Matt) प्रलेप कहा जाता है। अनुज्ज्वल प्रलेप अपारदर्शक होता है। प्रलेप में सरलता से केलास बननेवाले आक्साइडों, जैसे CaO तथा ZnO की मात्रा अधिक होने पर तथा एल्यूमिना की मात्रा कम होने पर और प्रलेप को धीरे-धीरे ठण्डा करने पर प्रलेप अनुज्ज्वल हो जाता है। एल्यूमिना से पिघले हुए प्रलेप की श्यानता बढ़ जाती है और केलासीकरण में बाधा पड़ती है। जिस मेजोलिका प्रलेप में ६७ भाग सफेदा, २३ भाग स्फटिक, १० भाग चीनी मिट्टी हो, उसमें १० भाग खड़िया मिलाने से मनोहारी अनुज्ज्वल प्रलेप बनता है। १० भाग जिंक आक्साइड डालने से प्रलेप चमकदार तो रहेगा, परन्तु छोटे-छोटे अपारदर्शक चकत्ते पड़ जायेंगे। यदि जिंक आक्साइड बढ़ाकर २० भाग कर दिया जाय तो पूरा प्रलेप केलासीकृत हो जायगा और प्रलेप-तल अपारदर्शक हो जायगा। प्राकृतिक चीनी मिट्टी की अपेक्षा निस्तापित चीनी मिट्टी का प्रभाव प्रलेप की अनुज्ज्वलता पर अच्छा पड़ता है। इसका कारण यह है कि निस्तापित चीनी मिट्टी में मूलाइट केलासों का केलासीकरण पूर्व ही हो चुका होता है।

सीसा-रहित अनुज्ज्वल प्रलेप बनाने के लिए काँचित मिश्रण तथा प्रलेप-मिश्रण के संगठन नीचे दिये जाते हैं—

काँचित मिश्रण

बोरैक्स	४० भाग
फेल्सपार	२० ,,
स्फटिक	२५ ,,
खड़िया	१५ ,,
योग	१००

प्रलेप-मिश्रण

काँचित	७० भाग
चीनी मिट्टी	१० ,,
जिंक आक्साइड	२० ,,
योग	१००

	(१)	(२)	(३)	(४)
सफेदा	६०	५८	६०	६५
स्फटिक	२४	२०	२२	२५
फेलसपार	×	७	×	५
अग्नि-मिट्टी	१२	१०	१२	२
लौह आक्साइड	×	५	१	×
पाइरोलूसाइट	४	×	३	×
कोबाल्ट आक्साइड	×	×	२	×
क्रोमिक आक्साइड	×	×	×	३
	१००	१००	१००	१००

प्रलेप १ बैंगनी बादामी, २ गाढ़ा बादामी, ३ काला और ४ हरे रंग का है।

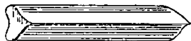
यह प्रलेप ९५०° सें० और १०००° सें० के बीच पकते हैं। प्रलेप साधारण प्रलेपों की अपेक्षा कुछ अधिक मोटा लगाना चाहिए।

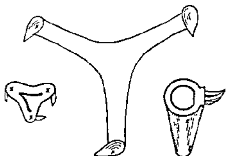
प्रलेप घोले में डुबोने के पश्चात् सर्वप्रथम पात्र, कृत्रिम सुखानेवाले प्रकोष्ठों में या सुखानेवाले ताखों में सुखाये जाते हैं। इसके पश्चात् पात्र की तली से प्रलेप को ब्रुश द्वारा खुरचकर छुटा दिया जाता है, जिससे प्रलेप पकाव के समय पात्र सैगर से न चिपक जाय। कभी-कभी पात्र के तल भागों पर प्रलेप में डुबोने से पूर्व तेल लगा दिया जाता है जिससे इन भागों पर प्रलेप ही नहीं चढ़ता।

जब बड़े पात्रों को, जिन्हें उठाने आदि में कठिनाई पड़ती है, प्रलेपित करना हो तो बौछार-विधि का प्रयोग किया जाता है। दीवारों की टालियों को प्रलेपित करने के लिए कई प्रकार के यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। सर्वाधिक उपयोग किये जानेवाले एक ऐसे यन्त्र में दो बेलन होते हैं, जिनके बीच से होकर टालियों को गुजरना पड़ता है। ऊपर के बेलन पर मोटी रबड़ की परत चढ़ी रहती है। यह ऊपरी बेलन टाली को नीचे के बेलन पर दबाता है। नीचे के बेलन का आधा भाग प्रलेप घोले में डूबा रहता है और बेलन घूमता रहता है। अतः इस प्रलेप की पतली परत टालियों पर चढ़ जाती है।

कोणवाली या दूसरे प्रकार की टालियों के लिए, जो बेलन के बीच में नहीं गुजर सकतीं, प्रलेपित करने की दूसरी विधि है, जिसमें ऊपर से प्रलेप की फुहार छोड़ी जाती है।

प्रलेप पकाव के लिए पात्रों का सैगर में रखना—प्रलेप पकाने के लिए पात्रों को सैगर में रखते समय कुछ सावधानी तथा बुद्धिमत्ता की आवश्यकता है। प्रलेपित पात्र एक दूसरे को बिना छूते हुए रखे जायें। अन्यथा उच्च तापक्रम पर, जब प्रलेप पिघल जायगा, पात्र एक दूसरे में चिपक जायेंगे। इसके लिए भिन्न आकृति तथा आकार के दुर्गल आधारों का उपयोग किया जाता है। ये आधार इन वस्तुओं को केवल बिन्दुओं या छोटे भागों पर रोकते हैं। इन आधारों के, उनकी आकृतियों के अनुसार, विभिन्न नाम होते हैं। इन आधारों का प्रयोग करने की विधि भी एकदम उन पर रखे गये पात्रों की आकृति पर ही निर्भर करती है। इनमें से कुछ का वर्णन नीचे किया जाता है—





चित्र २८. प्रलेप पकाव के हेतु पात्रों को रखने के लिए विभिन्न आधार

थिम्बल (Thimble)—ये खोखले शंकु होते हैं, जो एक दूसरे में ठीक बैठ जाते हैं तथा कुछ बाहर निकले रहते हैं। तश्तरी जैसी चपटी वस्तुएँ रखने के लिए इनका प्रयोग किया जाता है।

काक स्पर (Cock-spur)—ये छोटे त्रिभुजाकार आधार होते हैं, जिनमें नीचे की ओर तीन पाये लगे रहते हैं। इन पायों पर ये रुके रहते हैं। ऊपर तीनों कोनों से तीन ठोस सूच्याकार भाग निकले रहते हैं, जिन पर पात्र रखा जाता है। ये आधार तश्तरी जैसी चपटी वस्तुओं को एक दूसरे से अलग करने के लिए उपयोग में लाये जाते हैं।

सैडिल (Saddles)—ये ठोस त्रिगुणाकार लम्बे टुकड़े होते हैं, जिनके ऊपरी किनारे तीक्ष्ण होते हैं। इनसे पात्र के प्रलेप तल पर छोटा चिह्न नहीं पड़ने पाता।

हेड पिन (Head pins)—ये त्रिभुजाकार छोटे टुकड़े होते हैं, जिन पर विभिन्न आकार की वस्तुएँ रखी जाती हैं।

प्रलेपित मृत्पात्रों को रखनेवाले सैंगरों का भीतरी भाग ब्रुश की सहायता से प्रलेप-घोले से पोत दिया जाता है। व्यय में कमी करने के विचार से यह प्रलेप-घोला प्राय. प्रलेप-घोला रखनेवाले हौज के धोवन से प्राप्त किया जाता है। सैंगर के भीतरी तल पर प्रलेप पोतने का कारण यह है कि उच्च तापक्रम पर सैंगर तल द्वारा प्रलेप-वाष्पो के अवशोषण का भय नहीं रहता है। प्रलेप पकाव के तापक्रम के अनुसार प्रलेप पकाने में २० से ३० घण्टे तक का समय लगता है।

सजावट—उत्कृष्ट प्रलेपित मृत्पात्रों को सजाने के लिए हस्त चित्रकारी का प्रयोग अधिक किया जाता है। यह चित्रकारी प्रलेपन से पूर्व पात्र-तल पर या प्रलेपन के पश्चात् पके हुए प्रलेपतल पर की जा सकती है। पात्रतल पर चित्रकारी के लिए विशेष प्रकार के अन्त.प्रलेप रंजकों का प्रयोग किया जाता है। प्रलेपतल पर चित्रकारी के लिए प्रलेपतल अर्थात् एनामेल रंजकों का प्रयोग किया जाता है।

चित्रों तथा रंजकों के उचित चुनाव के पश्चात् पात्र जलचित्र-विधि या बौछार-विधि द्वारा सुन्दर तथा कलात्मक ढग से सजाये जा सकते हैं।

प्रलेपतल रंजन पकाव—प्रलेप पकाने के पश्चात् प्रलेप-तल पर जो रंजकों द्वारा सजावट की जाती है, उसे पका लेना चाहिए, जिससे प्रयोग किये गये रंजक पिघलकर प्रलेप-तल पर स्थिर हो जायँ। पात्र निर्माण के इस अन्तिम पकाव को एनामेल रंजन पकाव कहते हैं। इस पकाव में १० से १५ घण्टे तक का समय लगता है और तापक्रम ७००° से ९००° सें० तक होता है। इस पकाव के लिए साधारण बन्द भट्ठियों का प्रयोग किया जाता है, जिन्हें मफल भट्ठी (Muffle-furnace) कहते हैं। भट्ठी का ऊपरी अर्द्धभाग निचले अर्द्ध भाग की अपेक्षा सदैव अधिक गरम होता है। अतः जलविधि या बौछार-विधि से सजाये गये पात्रों को भट्ठी के ऊपरी भाग में रखा जाता है, कारण इन्हें उच्च तापक्रम पर पकाना आवश्यक होता है। भट्ठी के अन्दर कोयले का धुंआ आदि नहीं पहुँचना चाहिए, अन्यथा सजावट के रंग खराब हो जायँगे। प्रत्येक बार पात्र पकाने के पश्चात् भट्ठी का भीतरी भाग चीनी मिट्टी और थोड़े सोडा सिलीकेट के मिश्रण का घोला बनाकर उससे पोत दिया जाता है तथा जोड़ आदि पर की दरारें मिट्टी और महीन छर्री से भरकर बन्द कर दी जाती है।

नवम अध्याय

टेरा-कोटा

टेरा-कोटा शब्द उन सभी सरन्ध्र मृत्पात्रो के लिए प्रयोग किया जाता है, जो साधारण मिट्टियों से बनाये जाते है और प्रलेपहीन होते है। हिन्दी में इसे 'पकी मिट्टी की वस्तुएँ' कहा जा सकता है। इस वर्ग की मुख्य वस्तुओ मे साधारण ईंटे, खपडे, टालियाँ तथा साधारण मिट्टी मे बनी घरेलू तथा अन्य उपयोग की प्रलेपहीन वस्तुएँ आती है।

ईंटें, टालियाँ आदि मृद्वस्तुएँ बनाने के लिए मिट्टी ऐसी हो कि जिसके कुछ भाग का द्रवणाक अपेक्षाकृत कम हो तथा कुछ भाग कम गलनशील हों, कारण ऐसी वस्तुएँ केवल कडी होने तक ही पकायी जाती हैं, जिससे वे वायु और पानी के प्रभाव से नष्ट न हो सकें। मिट्टी का कम गलनशील भाग वस्तु की आकृति बनाये रखता है, तथा गलनशील भाग पिघलकर वस्तु को कडा रखता है। ईंट बनानेवाले मिट्टी-मिश्रण-पिण्ड में न्यूनाधिक मात्रा में मृत्सार अवश्य रहता है, जिससे उसमें लचीलापन आ जाता है। परन्तु साथ ही चट्टानो के लचकहीन चूर्ण अवश्य मिले रहते हैं और इन लचकहीन पदार्थों का पूरे मिश्रण-पिण्ड के गुणो पर महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। मिट्टी मे प्रायः पाये जानेवाले फेल्सपार तथा औगाइट (Augite) के अवशेष अधिक गलनशील होते हैं। मृत्सार स्वय दुर्गल पदार्थ है। अत मृद्-वस्तुओं की आकृति बनाये रखने में सहायक होता है। स्फटिक और दूसरे दुर्गल खनिज भी वस्तुओं को आकृति बनाये रखने में सहायक होते हैं। अभी तक निश्चित रूप से पता नही चल सका है कि सर्वोत्तम परिणाम पाने के लिए मिट्टी मे दुर्गल और गलनशील अवयव किस अनुपात मे रखे जायें।

मिट्टी के विषय में दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसके पात्रों के सुखाने तथा पकाने में आकुचन यथासम्भव कम हो। सुखाने समय के आकुचन से उत्पन्न कठिनाइयो

या दोषों को तो वस्तु-निर्माण के समय पानी की यथासम्भव कम मात्रा का प्रयोग करने से या सुखाते समय टेढ़ी हो गयी ईंट या टाली जैसी वस्तुओं को पुन दबाव लगाकर सीधा करने से छुटकारा पाया जा सकता है। परन्तु पकाते समय के आकुचन से उत्पन्न कठिनाइयों को नियन्त्रित करना कठिन है। यदि पकाते समय आकुचन अत्यधिक हो तो पात्र की आकृति नष्ट हो जाती है। मृद्-वस्तु को सुखाने के पश्चात् उसमें रन्ध्रता जितनी ही कम होगी वस्तु की आकृति स्थिर रखना उतना ही सरल होगा।

पकाने पर रंग—यदि साधारण मिट्टी में वेनेडिक अम्ल या टिटैनिक अम्ल जैसे तत्वों को छोड दें, क्योंकि मिट्टी में इनकी मात्रा बहुत ही थोड़ी होती है, तो मिट्टी को रग प्रदान करनेवाले पदार्थों की संख्या सीमित हो जायगी। व्यावहारिक रूप से देखा जाय तो साधारण मिट्टी में रजक यौगिकों में केवल लौह तथा मैंगनीज के आक्साइड हैं। चूना तथा मैंगनीशिया के कार्बोनेट इनके रंगों की आभाओं पर प्रभाव डालते है। आक्साइडों के रंजनगुण उनकी भौतिक अवस्था और रासायनिक सगठन पर निर्भर करते हैं। पकाने के पश्चात् मिट्टी की अवस्था का भी रजक के रजन गुणों पर प्रभाव पड़ता है। साधारण मिट्टियों में मैंगनीज आक्साइड इतनी कम मात्रा में रहता है कि इसका रगोत्पादक प्रभाव बहुत ही कम होता है। मैंगनीज केवल लौह आक्साइड से उत्पन्न रंग की आभाएँ उत्पन्न करने और इन्हें विकसित करने में सहायता देता है। चूना, मैंगनीशिया और एल्यूमिना में स्वय कोई रजन शक्ति नही है, परन्तु इनकी उपस्थिति से लौह आक्साइड द्वारा उत्पन्न रग काफी बदल जाता है।

यदि मिट्टी में लौह आक्साइड की मात्रा कम है और एल्यूमिना की अधिक है तथा पकाने का तापक्रम उच्च है, तो पकाने के बाद रग न्यूनाधिक पीला या पीला बादामी होगा। एल्यूमिना की मात्रा कम होने पर यह रग पीले बादामी से लाल बादामी रग तक की आभाएँ उत्पन्न करेगा। पाँच प्रतिशत से कम लौह आक्साइड होने पर लाल रग विकसित नहीं होता। लौह की मात्रा और अधिक होने पर यह रग और भी गाटा हो जाता है। चूना तथा मैंगनीशिया लौह आक्साइड की ओर शक्तिशाली विरजक का कार्य करते हैं। अर्थात् लौह से उत्पन्न रग को कम कर देते हैं। यदि चूने की मात्रा लौह आक्साइड की मात्रा से दुगुनी है, तो काफी उच्च तापक्रम पर लौह आक्साइड का लाल रंग पूर्णतया नष्ट हो जाता है और यह रग पीले हरे रग में परिवर्तित हो जाता है। पकाते समय भट्ठी के अन्दर के वातावरण का भी रजकों पर काफी महत्व-

हो जाने पर भी, उपर्युक्त क्रिया के कारण मिट्टी का रंग काला ही रहता है। शेल्डान (Sheldon) ने १९३५ ई० में इस विचार का विरोध करते हुए कहा, कि केलासी-करण का और केलासों के घोल का रंग पर प्रभाव पड़ता है। जब विकसित लाल कण, विशेष कर काँचित तरल पदार्थ में, घुल जाते हैं, तो मिट्टी का रंग बदल जाता है। इन केलासों का घुलना, उच्च तापक्रम, अवकारक वातावरण तथा डोलोमाइट से बने काँच की उपस्थिति पर निर्भर करता है।

ईंटें—बहुत प्राचीन काल से ही मकान बनाने के लिए पकी मिट्टी से बनी ईंटों का प्रयोग होता आया है। ईंटों से मकान बनाना बहुत ही सुविधाजनक भी है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि मिस्र-निवासी ईंटों का प्रयोग बीस हजार वर्ष पूर्व से करते आ रहे हैं और भारतवर्ष में रहने के लिए मकान बनाने के लिए ईंटों का प्रयोग चार हजार वर्ष ईसा पूर्व से होता आया है।

विभिन्न देशों में ईंटों के आकार काफी भिन्न होते आये हैं। मिस्र तथा रोम की प्राचीन ईंटें आधुनिक ईंटों की अपेक्षा बहुत बड़ी बनती थी, परन्तु भारतवर्ष में प्राचीन काल की ईंटें वर्तमान ईंटों से बहुत छोटी होती थी। आधुनिक काल में सभी देशों में ईंटों का आकार ९"×४५"×३" के लगभग रखा जाता है। इँग्लैण्ड की ईंटों का प्रामाणिक आकार ९"×४$\frac{३}{८}$"×२$\frac{५}{८}$" है। ईंट की चौड़ाई इतनी हो कि चपटी पड़ी हुई ईंट, ईंट उठानेवाले की उँगलियों के बीच में सरलता से आ जाय। मकान बनाने में सुविधा के लिए ईंट की लम्बाई चौड़ाई से दूनी होनी चाहिए। ईंट की मोटाई ३" से अधिक नहीं होनी चाहिए।

ईंट-निर्माण—ईंट-निर्माण की प्राचीनतम विधि साँचे की सहायता से हाथ से ईंटें बनाना है। यह विधि भारत तथा दूसरे ऐसे देशों में अब भी प्रयोग में लायी जाती है, जहाँ पर केवल स्थानीय माँग पूरी करने के लिए, केवल स्थानीय मिट्टियों का प्रयोग करते हुए छोटे-छोटे भट्ठे बनाये जाते हैं। ईंट बनाने से पूर्व साँचे में अन्दर काफी रेत लगा ली जाती है। मिट्टी का लोंदा भी साँचे में डालने से पूर्व रेत में काफी लपेट लिया जाता है। ईंट बनानेवाला बनी हुई मिट्टी के ढेर से आवश्यक मिट्टी काटकर रेत में लपेटकर साँचे में रख उसे हाथ से दबाता है। साँचा भर जाने पर आवश्यकता से अधिक मिट्टी एक तार द्वारा काट दी जाती है। यह तार एक धनुषाकार लकड़ी के सिरों के बीच लगा रहता है। प्रत्येक बार ईंट बनाने के लिए साँचे में मिट्टी डालने

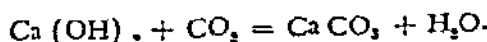
मिलाकर न्यून तापक्रम (५००° सें०) पर पकाने से ही ईंट में वही गुण आ जाते हैं, जो उच्च तापक्रम पर पकाई ईंट में होते हैं।

साधारण ईंटों को पकाने के लिए विभिन्न भट्ठियों का प्रयोग होता है। परन्तु आजकल सुरंग भट्ठियों के प्रयोग की धारणा बढ़ती जा रही है। सुरंग भट्ठी में ईंधन तथा परिश्रम कम लगता है और ईंटें टूटती भी कम है। ईंटों के गुण भी सुधर जाते हैं।

फर्शी ईंटें या नीलाभ ईंटें—ये ईंटें फर्श के लिए प्रयोग की जाती हैं और अधिक लौह आक्साइडवाली मिट्टियों से बनायी जाती हैं। प्रारम्भ में पकाने की क्रिया साधारण रूप से होती है, परन्तु पकाने के अन्तिम काल में ईंटों के रन्ध्र बन्द हो जाने से पूर्व अग्नि-द्वार पर कोयले की काफी मात्रा डालकर तथा भट्ठी में वायु का जाना यथासम्भव कम करके भट्ठी के अन्दर शक्तिशाली अवकारक वातावरण उत्पन्न किया जाता है। परिणाम-स्वरूप अवकृत लौह आक्साइड सिलीका से संयोग करके ईंट के तल पर काला या नीलाभ काला रंग उत्पन्न करता है। यदि अवकरण प्रारम्भ होने से पूर्व ही ईंट के रन्ध्र बन्द हो गये, तो ईंट के अन्दर के भाग लाल या बादामी रहेंगे और ऊपरी तल पर नीले चकत्ते रहेंगे। ये नीले चकत्ते स्थायी नहीं होते। भट्ठी को उसी अवकारक वातावरण में ठण्डा करना चाहिए, अन्यथा ईंट तल पर का कुछ लौह आक्साइड पुनः आक्सीकृत हो जायगा और ईंट तल पर लाल चकत्ते भी पड़ जायेंगे। जिनसे नीले रंग की शोभा नष्ट हो जायगी। अवकारक वातावरण में ईंट का काचीयकरण अच्छा होता है और ईंट अधिक मजबूत हो जाती है। इसी मजबूती के कारण इन ईंटों का प्रयोग साधारणतः फर्श बनाने में किया जाता है।

बालू-चूना ईंटें—रेतीले जिलों में, जहाँ मिट्टी पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलती, बालू-चूना ईंटों का निर्माण सफल हो सकता है। इन ईंटों के निर्माण में बड़े कारखानों से प्राप्त धातुमल तथा बड़े शहरों की मोरियों से प्राप्त रेत आदि का भी सफल तथा लाभदायक उपयोग किया जा सकता है। तथाकथित बालू-चूना ईंटें बुझे हुए चूने को रेत के साथ मिलाकर बनायी जाती हैं तथा उन पर उच्च दबाववाले जलवाष्प की क्रिया करायी जाती है। ईंट में होनेवाली क्रियाएँ इस प्रकार समझी जा सकती हैं—

वातावरण की क्रिया से चूने का पुनः कार्बोनेट बन जाता है। इस प्रकार अवक्षेपित चूना कार्बोनेट कुछ चिपचिपा रहता है, जिसमें गीली अवस्था में बालू-कणों को जोड़कर रखने की शक्ति काफी होती है। परन्तु सूखने पर यह काफी कड़ा हो जाता है।



$$Ca(OH)_2 + CO_2 = CaCO_3 + H_2O.$$

क्लेव में लगभग १० घण्टो तक पकायी जाती है। औटोक्लेव में १८०° सें० के तापक्रम तथा १२० पौंड प्रतिवर्ग इंच दबाववाली जलवाष्प का, ईंटें पकाने के लिए प्रयोग किया जाता है। इस औटोक्लेव में पकाने के पश्चात् ईंटो का प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु अभी भी वे थोड़ी भुरभुरी होती हैं। खुले स्थानो में कुछ सप्ताह या मास रखने से उनके गुणो में भी सुधार आ जाता है और मजबूती भी बढ जाती है। बालू-चूना ईंटे भी उन्ही सब कार्यो के लिए प्रयोग की जाती हैं, जिनके लिए साधारण ईंटो का प्रयोग होता है। परन्तु बालू-चूना ईंटो को पकाने में, मिट्टी की ईंटो को पकाने मे होनेवाली असुविधाएँ व परेशानियाँ नही होतीं। बालू-चूना ईंटो का औसत दबाव-बल लगभग २५०० पौंड प्रतिवर्गइंच है। साधारण गृह-निर्माण में प्रयोग होनेवाली ईंटो का दबाव बल १५०० से २५०० पौड प्रति वर्ग इच होता है। परन्तु पुल आदि के निर्माण में प्रयोग होनेवाली उत्तम श्रेणी की ईंटो का दबाव बल बहुत अधिक होता है। बालू-चूना ईंटों से दूसरा लाभ यह है कि इनमें मिट्टी ईंटों की भाँति छादनी नही आती है। भारतवर्ष में बगाल, आसाम जैसे नम स्थानो को यह गुण वरदान-स्वरूप है।

खपड़े और छत की टालियाँ—रहनेवाले मकानों की छत ढकने के लिए खपडो का प्रयोग बहुत प्राचीन काल से होता आया है। जिन टालियो को पश्चिमी देशो मे रोमन टालियाँ कहते हैं, उन टालियो के विकसित रूप का प्रयोग भारत में उस काल के बहुत पूर्व होता था जिस काल में रोम निवासियो ने उनका प्रयोग सीखा था। वास्तव में रोम निवासियो ने खपडो का प्रयोग ग्रीक निवासियो से सीखा और ग्रीक निवासियो ने इस कला को पूर्वी देशो से सीखा था।

इँग्लैण्ड में चपटे खपडो का प्रयोग अधिक होता है। ये खपडे १० से १५ इंच तक लम्बे और ५ से १० इच तक चौडे होते हैं। इनके एक सिरे पर एक या दो हुक निकले रहते हैं जिससे बालू छत पर ये आधारो पर से सरक न जायें।

मारसेल टाली (Marselles Tiles)—इन टालियो में नालियाँ और उठे हुए किनारे होते हैं। इन टालियो का प्रयोग फ्रास और दूसरे यूरोपीय देशो में काफी होता है। इन टालियो का प्रयोग करते समय एक टाली का किनारा दूसरी टाली की नाली में घुसा रहता है। अत एक टाली साधारण खपडे की अपेक्षा अधिक क्षेत्र ढक लेती है। इन टालियो की मोटाई लगभग आधा इच होने से इनमे मजबूती भी अधिक होती है। इन खपडो का प्रयोग अच्छे प्रकार के मकानो की छत बनाने में होता है।

भारतवर्ष में इस प्रकार की टालियों का निर्माण सर्वप्रथम दक्षिणी भारत में मंगलौर नामक स्थान में प्रारम्भ हुआ था। अतः दक्षिणी भारत में इन टालियों को 'मंगलौर टालियाँ' कहते हैं। परन्तु उत्तर भारत में इन टालियों का निर्माण बंगाल के वर्नपुर नामक स्थान में प्रारम्भ होने से इन्हें उत्तरी भारत में 'वर्न टाली' कहा जाता है।

टालियों के कारखाने प्रायः वहीं बनाये जाते हैं, जहाँ कार्योपयोगी मिट्टियाँ अधिकता से उपलब्ध हों। यह तो साधारण अनुभव की बात है कि मिट्टी पाने के स्थानों पर मिट्टी खोदने पर मिट्टी की भिन्न तहें निकला करती हैं। अतः इसमें महत्त्वपूर्ण ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन भिन्न परतों से प्राप्त मिट्टियाँ इस प्रकार मिलायी जायें कि मिश्रण-पिण्ड सन्तोषजनक बने। उपलब्ध भिन्न मिट्टियों को ठीक प्रकार मिलाने का ज्ञान इस उद्योग में अत्यावश्यक है और इस ज्ञान की पूर्णता के लिए किये गये प्रयत्न कभी व्यर्थ नहीं जाते। यदि मिट्टियों पर, विशेष कर पगयन्त्र में किया के पश्चात्, कुछ दिनों तक अम्लक्रिया होने दी जाय तो अच्छा परिणाम निकलता है। इस कार्य के लिए रेतीली मिट्टी अच्छी होती है, कारण यदि मिट्टी अधिक लचीली हुई, तो सुखाते और पकाते दोनों समय आकुंचन अधिक होता है। परिणाम-स्वरूप सुखाते तथा पकाने के समय टालियाँ ऐंठ जाती हैं। रेत कणों का आकार सूक्ष्म होना चाहिए, अन्यथा पकी हुई टालियों की रन्ध्रता बढ़ जायगी, जो नहीं होनी चाहिए।

टालियाँ बनाने की दो विधियाँ हैं। एक है लचीली विधि; दूसरी है अर्द्ध-शुष्क विधि। ये दोनों विधियाँ ईंटें बनाने की विधियों के समान हैं। लचीली विधि से साधारण खपड़े हाथ द्वारा लकड़ी के साँचों में मिट्टी दबाकर ही बनाये जाते हैं। परन्तु मोटी टालियाँ बनाने के लिए धातवीय साँचों का तथा यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी इन साँचों के अन्दर जिप्सम प्लास्टर की तह लगी रहती है। लचीली-विधि से खपड़े बनाने के लिए प्रयोग की जानेवाली मिट्टी बहुत मुलायम नहीं होनी चाहिए। मुलायम मिट्टी में कठोर मिट्टी की अपेक्षा अधिक आकुंचन होने के कारण मुलायम मिट्टी से बने पात्र में अपेक्षाकृत अधिक रन्ध्रता होती है। अर्द्ध-शुष्क-विधि से, मिश्रण-पिण्ड से टालियाँ बनाने के लिए पालिश किये हुए ढलवाँ लोहे के साँचों का प्रयोग होता है, कारण इसमें अधिक दबाव का प्रयोग किया जाता है, जो लकड़ी का साँचा नहीं सहन कर सकता। साँचे में मिट्टी चिपक न जाय, इसके लिए हर बार प्रयोग से पूर्व साँचे के अन्दर थोड़ा तेल पोत दिया जाता है। इस विधि से बनी टालियाँ सन्तोष-

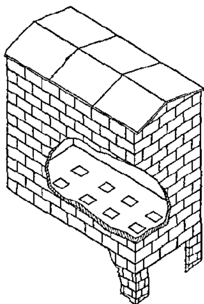
जनक नहीं होती, कारण अधिक दबाव द्वारा बनी टालियों में परत-दोष अधिक पाया जाता है तथा साँचे भी शीघ्र घिस जाते हैं।

भारतवर्ष में साधारण मकानों में प्रयोग किये जानेवाले खपड़े थोड़े परिवर्त्तन सहित रोमन टालियों के प्रकार के होते हैं। ये खपड़े सदैव लचीली-विधि से बनाये जाते हैं। खपड़े खपड़े हाथ द्वारा दबाकर लकड़ी के साँचों का प्रयोग करके बनाये जाते हैं। इन साँचों में प्रयोग से पूर्व अन्दर की ओर रेत छिड़ककर उसकी पतली तह लगा दी जाती है। दो खपड़ों के जोड़ को ढकनेवाले गोल खपड़ों को 'नरिया' कहते हैं। नरिया कुम्हार के चाक पर भी बनायी जाती है।

टाली पकाना—टालियाँ अधोगति विराम भट्ठियों में सर्वोत्तम पकती हैं। अविराम भट्ठियों का प्रयोग तभी किया जा सकता है, जब उत्पादन अत्यधिक हो और भट्ठी इस कार्य के लिए विशेष रूप से बनायी गयी हो। न्यू कैमल प्रकार की क्षैतिज भट्ठियों का टालियों और ईंटों दोनों के पकाने में काफी प्रयोग होता है। भट्ठी में टालियाँ रखने का ढंग विशेष रूप से उनकी आकृति पर निर्भर करता है। टालियाँ प्राय पास-पास खड़ी करके रखी जाती हैं। परन्तु दो टालियों के बीच में इतना स्थान रखा जाता है कि गरम गैसें बह सकें। भट्ठी में टालियाँ कुछ नम अवस्था में ही रखी जाती हैं। अन्यथा भट्ठी में रखते समय उनके टूट जाने से काफी हानि होती है। यदि टालियों में नमी की अनुपस्थिति के कारण कुछ लचीली शक्ति न हो, तो उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर उठाकर रखने में टूट जाने का भय रहता है। टालियाँ पकाने में पकी हुई टाली के रंग पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इसके लिए भट्ठी के वातावरण का नियन्त्रण परमावश्यक है। टालियाँ पकानेवाली भट्ठियों को गरम और ठण्डा बहुत धीरे-धीरे किया जाता है अन्यथा टालियाँ चटक जायँगी।

टाली-निर्माण में टाली का रंग काफी महत्त्वपूर्ण होता है। साधारणत: टालियाँ लाल रंग की बनायी जाती हैं, परन्तु कुछ देशों में काली टालियों का भी प्रयोग किया जाता है। चिकने तल-सहित लाल रंग की टालियाँ बनाने के लिए, उन्हें पकाने से पूर्व लाल गेरू और सोडा सिलीकेट घोल मे पोत दिया जाता है। यह पोतना उस समय विशेष रूप से उपयोगी होता है, जब प्रयोग की गयी मिट्टी में लौह आक्साइड की मात्रा कम तथा चूने की मात्रा अधिक हो और मिट्टी समांग न हो। इस पोताई के कारण टाली के तल पर रंग की एक पतली परत चढ़ जाती है तथा

देहाती कुम्हार अब भी मृद्-वस्तुओं को खुले भट्ठों में पकाता है, जिनमें पकाने की क्रिया पर कोई नियन्त्रण सम्भव नहीं है और आवश्यकता होने पर तापक्रम भी अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता। पकाने के समय ठीक प्रकार से न रखे जाने पर भी पात्र टूट जाते हैं तथा ठीक प्रकार से न पकाये जाने के कारण भी पात्रों की काफी हानि होती है। ठीक प्रकार से पात्रों का पकना मौसम की अनुकूलता या प्रतिकूलता पर निर्भर करता है। खुले भट्ठों में ईंधन के अपूर्ण दहन तथा ताप-विकिरण के कारण तापहानि नहीं नियन्त्रित की जा सकती। उचित ढंग से बनायी गयी भट्ठी के प्रयोग से आधुनिक पकाने की क्रिया में काफी सुधार हो सकता है। इससे पात्र भी श्रेष्ठ बनेंगे और पकाते समय पात्र-हानि भी कम हो जायगी।



चित्र २९. कुम्हार की एक सादी भट्ठी

चूंकि भारतीय गाँवों में लकड़ी सुगमता से मिलनेवाला ईंधन है, अतः यहाँ ईंधन के रूप में लकड़ी का उपयोग करनेवाली छोटी भट्ठियाँ सर्वाधिक उपयोगी होंगी। चित्र २९ में इसी प्रकार की एक सादी ऊर्ध्वगति भट्ठी का चित्र दिया गया है, जो साधारण ईंटों द्वारा थोड़े मूल्य में ही बनायी जा सकती है।

इस भट्ठी के प्रकोष्ठ में पात्र रखने के पश्चात् भट्ठी की छत को मिट्टी की पटियाओं से अस्थायी रूप से बन्द किया जा सकता है। पकाव-क्रिया भट्ठी की छिद्रमय तली के नीचे लकड़ी जलाकर की जाती है। लकड़ी जलने से उत्पन्न लम्बी लपटें भट्ठी की तली के छिद्रों में होकर पात्रों पर पहुँच जाती हैं। पात्रों को गरम करने के पश्चात् गरम गैसें भट्ठी बन्द करने के लिए रखी मिट्टी की पटियाओं के जोड़ों में होकर निकल जाती हैं। चूंकि लकड़ी जलाने में कोयले की अपेक्षा धुआँ कम उठता है। अतः इस प्रकार की भट्ठियों में विशेष रूप से टेरा-

दशम अध्याय

दुर्गल वस्तुएँ

दुर्गल पदार्थ—*दुर्गलता* या तापसहता शब्दों का प्रयोग, कुछ विशेष अवस्थाओं में, किसी पदार्थ की ताप के प्रति रोधकशक्ति के लिए किया जाता है। परन्तु साधारणतया ऐसे किसी भी पदार्थ को तापसह नहीं माना जाता, जो १३५०° से १४००° सें० से *कम तापक्रम पर गलने का थोड़ा भी बाहरी चिह्न प्रकट करे।*

साधारणतया दुर्गल पदार्थों की दुर्गलता निम्नलिखित अवस्थाओं पर निर्भर करती है—

(क) भट्ठी के अन्दर भट्ठी-गैसों की क्रिया।

आक्सीकारक वातावरण में ग्रेफाइट और कार्बोरण्डम जल जाते हैं, जब कि अवकारक वातावरण में क्रोमाइट और हैमेटाइट अवकृत होकर अपनी दुर्गलता खो बैठते हैं।

(ख) प्रयोग के समय दबाव का प्रभाव।

दबाव की उपस्थिति में अधिक एल्यूमिनावाली केओलिन की अपेक्षा अधिक *सिलीकामय अग्नि-मिट्टी उच्च तापक्रम सहन कर सकेगी।* परन्तु दबाव न होने पर केओलिन की दुर्गलता साधारणतया अधिक होती है। डाक्टर मेलर ने दिखाया है, कि २ ५२ पौंड प्रति वर्ग इंच दबाव की प्रत्येक वृद्धि से चीनी मिट्टी का विकृति-तापक्रम २०° सें० घट जाता है।

(ग) भट्ठी के अन्दर रासायनिक क्रिया।

कुण्ड में मैगनीशिया ईंटों या डोलोमाइट ईंटों पर पिघले हुए काँच की क्रिया बड़ी सरलता से होती है। जब कि चूने तथा सीमेण्ट की भट्ठियों में सिलीकाईंटों पर क्रिया हो जाती है।

इसी कारण अपनी रासायनिक क्रियाओ के आधार पर दुर्गल पदार्थ निम्नलिखित भागो मे बाँटे जाते हैं—

१ अम्लीय पदार्थ—सिलीकामय चट्टाने, अग्निमिट्टियाँ, केओलिन, सिली-मेनाइट और केईनाइट आदि ।

२ भास्मिक पदार्थ—इसमे मैगनेसाइट, डोलोमाइट, जिरकोनिया, बौक्साइट, हैमेटाइट तथा भास्मिक धातुमल आदि हैं ।

३ उदासीन पदार्थ—इस प्रकार के पदार्थों मे क्रोमाइट ग्रेफाइट, कार्बोरण्डम आदि हैं ।

दुर्गल वस्तुएं बनाने के लिए प्रयुक्त सिलीकामय पदार्थों मे सिलीकामय खनिज, जैसे स्फटिक क्वार्टजाइट, गैनिस्टर (Ganister) आदि तथा स्वेत बालू हैं । सिलीकामय खनिजो का सगठन काफी भिन्न होता है । परन्तु दुर्गल वस्तुएँ बनाने के लिए उनमे कम से कम ९० प्रतिशत सिलीका (SiO_2) अवश्य होनी चाहिए तथा उनमे मुख्य रूप से एल्यूमिना, लोहा तथा क्षार ही अपद्रव्य के रूप मे रहें, जिसमे भी लोह तथा क्षार दोनो मिलकर ५ प्रतिशत से अधिक न हो ।

यद्यपि केलासीय स्फटिक भारतवर्ष में अधिकता से पाया जाता है, परन्तु दुर्गल वस्तु-निर्माण में प्राय इसका प्रयोग नहीं किया जाता, कारण स्फटिक काफी कठोर होने से इसको चूर्ण करने में अधिक व्यय पड़ता है । क्वार्टजाइट एक चट्टान होती है, जिसमें स्फटिक केलास रहते हैं तथा सिलीसिक अम्ल इन स्फटिक केलासो को सीमेण्ट की भाँति जोड़कर रखने का कार्य करता है । अपद्रव्यों के कारण क्वार्टजाइट मे स्फटिक के छोटे केलास पीले से बादामी रग तक के होते हैं । क्वार्टजाइट रन्ध्रहीन होता है और तोड़ने पर चिकना तल प्राप्त होता है ।

गैनिस्टर (Ganister)—ये जलज (Sedimentary) सिलीकामय चट्टानें हैं जिनके कण बहुत ही सूक्ष्म होते हैं । इस खनिज मे लगभग १० प्रतिशत तक मिट्टी रहती है और यह पानी के साथ पीसने पर लचीला पिण्ड बनाता है । स्फटिक और क्वार्टजाइट की ईंटें बनाने के लिए कोई और लचीला खनिज मिलाना पड़ता है । परन्तु गैनिस्टर चूर्ण से ईंटे बनाने के लिए किसी बाहरी लचीले पदार्थ के मिलाने की आवश्यकता नहीं होती । नीचे क्वार्टजाइट तथा मृदु गैनिस्टर के विशेष विश्लेषण दिये जाते हैं ।

	मृदु गैनिस्टर	क्वार्टज़ाइट
सिलीका ..	८८·४	९७·८५
एल्यूमिना ..	६·४	१·८१
फेरिक आक्साइड ..	१ ७	०·३८
चूना ..	० ७	×
मैगनीशिया ..	०·४	×
क्षार ..	×	×
हानि ..	२ ४	०·३२

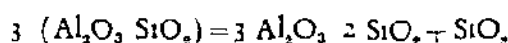
दुर्गल वस्तु-निर्माण के लिए उपयोगी श्वेत बालू में सिलीका ९५ प्रतिशत से अधिक होनी चाहिए और चूना, लोहा तथा क्षार में से प्रत्येक ०·५ प्रतिशत से कम होना चाहिए। कण-आकार यथासम्भव समान हो और यह २० से २५ नम्बर तक की चलनी से छन जाय।

गैनिस्टर के प्राप्तिस्थान—(इलाहाबाद जिले में) बरगढ, जबलपुर, वीकानेर, (बडौदा में) पेण्डनलू और सनखेदा तथा (पंजाब में) जैंजोन।

सिलीमेनाइट ($Al_2O_3\ SiO_2$)—प्राकृतिक सिलीमेनाइट की रचना लम्बे सुई आकारवाले केलासो से होती है। इसका गलनाङ्क काफी उच्च, १८५०° सें० है। यह प्रायः बादामी से भूरे रंग का होता है और पीसने में काफी कठोर होता है। पीसे हुए चूर्ण में प्राय पीसनेवाले यन्त्रो से लोह आ जाता है। इस लौह को विद्युत्-चुम्बक से दूर कर देना चाहिए। इसके चूर्ण में लचीलापन बिलकुल नही होता। अत. इससे वस्तुएँ बनाने के लिए इसमें चीनी मिट्टी मिलायी जाती है। लौह की थोड़ी मात्रा रहने से भी इसकी दुर्गलता काफी कम हो जाती है।

सिलीमेनाइट के प्राप्तिस्थान—आसाम में खासी तथा सारे पहाड, नान्गस्टन, (रीवाँ में) पिपरा, (मध्यप्रदेश में) भण्डारा।

केईनाइट (Kyanite-$Al_2O_3\ SiO_2$)—यद्यपि सिलीमेनाइट और केईनाइट के रासायनिक संगठन एक ही है, परन्तु उनके भौतिक गुण भिन्न होते हैं। पर्याप्त उच्च तापक्रम पर गरम करने पर ये दोनों ही मूलाइट केलासो में बदल जाते हैं। केईनाइट सबसे कम तापक्रम पर अधिक आयतन वृद्धि के साथ मूलाइट केलासो में बदल जाता है, जब कि सिलीमेनाइट उच्च तापक्रम पर बहुत ही कम आयतन वृद्धि के साथ मूलाइट में बदलता है।



$$3\ (Al_2O_3\ SiO_2) = 3\ Al_2O_3\ 2\ SiO_2 + SiO_2$$

केईनाइट के प्राप्ति-स्थान—भारतवर्ष में इस खनिज का ९० प्रतिशत से अधिक भाग बिहार के सिंहभूमि जिले में प्राप्त होता है। दूसरी छोटी खानें अजमेर, मारवाड़, राजपूताना तथा मैसूर में हैं। उड़ीसा के मयूरभंज में भी केईनाइट की अच्छी खानें पायी जाती है। सन् १९५० ई० में इस खनिज का वार्षिक उत्पादन १२ हजार टन था। स्फटिक की तह सहित केईनाइट की कुछ दूसरी खानें भी उड़ीसा के गंगपुर नामक स्थान में पायी जाती हैं।

सिंहभूमि से प्राप्त केईनाइट का विश्लेषण इस प्रकार है—

सिलीका ३८.५ एल्यूमिना ५७.५५, टिटैनियम आक्साइड ०.४ फेरिक आक्साइड १.०१ चूना तथा मैगनीशिया नगण्य क्षार ०.६ तथा हानि १.८।

इसकी अग्नि-परीक्षा का परिणाम इस प्रकार है—

	१०००° सें०	११००° सें०	१२००° सें०	१३००° सें०	१४००° सें०
आयतन परिवर्तन		१.६(−)	३.८(−)	२०.०(+)	२२.४(+)
निरपेक्ष घनत्व	३.२५	३.२६	३.२३	२.८९	२.८३

गलनताप १३३०° सें० से अधिक है।

उपर्युक्त परिणामों से स्पष्ट है कि १२००° सें० तक पदार्थ में आकुंचन होता है। परन्तु इस तापक्रम से ऊपर आयतन में एकाएक वृद्धि होने लगती है और घनत्व कम होने लगता है। यह परिवर्तन केईनाइट के मूलाइट में परिवर्तित होने का सूचक है।

मैगनीशिया—प्राकृतिक अयस्क मैगनेसाइट को निस्तापित करने से मैगनीशिया प्राप्त होता है। मैगनीशिया का सन् १८६८ ई० में प्रथम बार, लोह गलानेवाली भट्ठियों में दुर्गल परत लगाने के लिए प्रयोग किया गया था। परन्तु इसका अधिक उपयोग इस्पात बनाने की भास्मिक विधि के प्रयोग के पश्चात् हुआ। इस्पात बनाने की यह विधि टामस और गिलक्राइस्ट (Thomas and Gil Christ) ने सन् १८८० ई० में निकाली थी।

शुद्ध मैगनीशियम आक्साइड लगभग २८००° सें० पर गलता है। परन्तु व्यापारिक मैगनीशिया काफी कम तापक्रम पर ही पिघल जाता है, कारण उसमें लोहा, मिट्टी, सिलीका आदि अपद्रव्य रहते हैं। शुद्ध मैगनीशियम आक्साइड ईंटे

बनाने के काम नहीं आ सकता, कारण इससे कठोर पिण्ड नहीं बनेगा। अत. ईंटें बनाने के लिए ६ से ८ प्रतिशत तक अपद्रव्य या द्रावकवाले अशुद्ध मैगनीशिया का प्रयोग करते हैं।

मैगनेसाइट मुख्य रूप से भूरे तथा सूक्ष्मकणीय पिण्ड के रूप में प्रकृति में मिलता है, जिसमें लगभग ८५ प्रतिशत से ९० प्रतिशत तक $MgCO_3$ होता है। चूना, लौह मिट्टी और सिलीका मुख्य अपद्रव्य हैं तथा पकाने के पश्चात् अवकृत लौह के कारण पिण्ड का रंग काला हो जाता है।

मैगनेसाइट को ८००° से ९००° सें० पर निस्तापित करने से इसका भार केवल आधा रह जाता है और कास्टिक मैगनीशिया या दाहक मैगनीशिया में परिवर्तित हो जाता है। यह दाहक मैगनीशिया पानी के साथ चूने की भाँति बुझकर ताप उत्पन्न करता है। दाहक मैगनीशिया को और अधिक गरम करने पर इसका घनत्व बढ़ता है और एक केलासीय कठोर पिण्ड में परिवर्तित हो जाता है जिसे मृत मैगनीशिया या पेरीक्लेज़ (Periclase) कहा जाता है। इस परिवर्तन में काफी आकुंचन होता है और आपेक्षिक घनत्व बढ़ जाता है। मैगनेसाइट का आपेक्षिक घनत्व ३०२ है, जब कि पेरीक्लेज़ का आ० घ० ३·६ से ३·६५ तक होता है। मृत मैगनीशिया बनाने के लिए निस्तापन तापक्रम १४००° सें० से १६००° सें० तक होता है। अशुद्ध मैगनेसाइट कम तापक्रम पर निस्तापित किया जाता है। अन्तिम पदार्थ अर्थात् मृत मैगनीशिया को ऐसा बनाना चाहिए, कि उसे पकाने पर उसमें और अधिक आकुंचन न हो। मृत मैगनीशिया को पीसकर उसमें पानी मिलाने से लचीलापन नहीं उत्पन्न होता, परन्तु इसमें ८ से १० प्रतिशत दाहक मैगनीशिया मिला देने से ईंट बनाने के लिए आवश्यक लचीलापन आ जाता है। इस निस्तापित पदार्थ को प्राय घूमनेवाले छिद्रमय बेलनों में पानी से धोकर इसका चूना दूर कर दिया जाता है। अन्तिम पीसने की क्रिया बॉल-यन्त्र में होती है।

भारत में मैगनेसाइट के प्राप्तिस्थान—(१) मद्रास में सलेम के पास खड़िया पहाड, जिनमें ९६ से ९७ प्रतिशत तक मैगनीशियम कार्बोनेट रहता है। इसका प्रयोग ईंटें बनाने में तथा निर्यात के लिए मृत मैगनीशिया बनाने में होता है। भारतीय उत्पादन का लगभग ९० प्रतिशत मैगनेसाइट इस स्थान से प्राप्त होता है।

(२) कुर्ग में सेरिंगला।

(३) मद्रास में त्रिचनापल्ली जिला।

(४) मैसूर में हसन और मैसूर ज़िले।

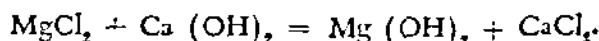
(५) आन्ध्र में कर्नूल ज़िला।

कुछ विशेष स्थानों के मैगनेसाइटों के विश्लेषण नीचे दिये जाते हैं—

अवयव	मैसूर मैगनेसाइट	सेलम मैगनेसाइट	साल्सबर्ग मैगनेसाइट
चूना	०.८	०.३	०.२
मैगनीशिया	४६.१	४६.३	४७.१
लौह आक्साइड	०.१	०.२	०.१
एल्यूमिना	०.१	०.३	१.१
सिलीका		०.२	२.२
कार्बन-डाई-आक्साइड	५२.१	५१.०	५०.०

विश्व के बढ़ते हुए इस्पात उद्योग में मैगनीशिया ईंटों की बढ़ती हुई माग को ध्यान में रखते हुए मैगनीशिया प्राप्त करने के दूसरे साधन खोजे गये थे। समुद्री पानी से साधारण नमक बनाने के उद्योग में प्राप्त उपजात मैगनीशियम क्लोराइड, मैगनीशिया प्राप्त करने का अच्छा साधन सिद्ध हुआ है।

अमरीका में प्रशान्त महासागर के किनारे पर स्थित एक कारखाने में घुलनशील मैगनीशियम लवण पर चूने की क्रिया करायी जाती है। यह चूना समुद्री सीपों को निस्तापित करके बनाया जाता है। इस क्रिया में अघुलनशील मैगनीशियम हाइड्रौक्साइड अवक्षेपित हो जाता है।



$$MgCl_2 + Ca\,(OH)_2 = Mg\,(OH)_2 + CaCl_2.$$

अवक्षेप को घूर्णक (Rotary) भट्ठों में निस्तापित करके मृत मैगनीशिया बनाया जाता है। इसे अधिक उपयोगी बनाने के लिए निस्तापन से पूर्व इसमें उपयुक्त द्रावक मिला दिये जाते हैं।

शुद्ध मृत मैगनीशिया बनाने के लिए शुद्ध मैगनेसाइट को विद्युत्-भट्ठों में पकाया जाता है। अशुद्ध मृत मैगनीशिया की अपेक्षा शुद्ध मृत मैगनीशिया प्रयोग के समय अधिक दबाव सहन कर सकता है। यह पका हुआ पदार्थ पानी के साथ महीन पीसने पर बड़े कणों को जोड़कर रखता है। अतः शुद्ध मृत-मैगनीशिया ईंटें बनाने के लिए कण जोड़कर रखनेवाले किसी द्रावक की आवश्यकता नहीं होती।

मैगनीशिया ईंटें बनाने की पुरानी विधि में मृत मैगनीशिया को इतना महीन

पीसा जाता था कि २० नम्बर की चलनी से छन जाय। उसके पश्चात् ५,००० से ६,००० पौंड प्रति वर्ग इन्च के दवाव पर, दवाव-विधि से ईंटे बनाकर, वे १३००° से १४००° सें० पर पकायी जाती थी। नवीन विधि में यह पकाने की क्रिया नही होती। अत इसमें निर्माण-व्यय काफी सीमा तक कम हो गया है।

नवीन विधि मे पीसने के बाद चूर्ण को छानकर विभिन्न आकार के कण अलग-अलग कर लिये जाते हैं। इन भिन्न आकार के पदार्थों के सुनियन्त्रित मिश्रण के साथ कुछ रासायनिक यौगिक मिला दिये जाते हैं। इस नवीन विधि से ईंटें बनाते समय प्रयुक्त होनेवाला दवाव बहुत अधिक, लगभग १०,००० पौंड प्रति वर्ग इंच होता है।

ऐसा कहा जाता है कि असाधारण उच्च दवाव से मैगनीशिया के सूक्ष्म कण रासायनिक यौगिक की उपस्थिति में अर्द्धतरल अवस्था मे आ जाते हैं और पदार्थ इतना कठोर हो जाता है कि वाद में इसे पकाकर ठोस व कठोर करने की आवश्यकता नही रहती।

सरन्ध्र मैगनेसाइट ईंटें—बाजार में एक प्रकार की नयी मैगनीशिया ईंटें आती हैं। इन ईंटो में लौह की मात्रा कम होती है। ये ईंटें भास्मिक और अम्लीय दोनों प्रकार के धातुमलो को सह सकती हैं। इस ईंट की मुख्य विशेषता इसकी अत्यधिक सरन्ध्रता है, जो लगभग ३२ प्रतिशत होती है। साधारणतया अधिक सरन्ध्र ईंटें धातुमल से शीघ्र ही क्रिया कर वैठती हैं, परन्तु इस ईंट के निर्माण में मुख्य रूप से रन्ध्रो के आकार और आकृति को नियन्त्रित किया जाता है। साधारण सरन्ध्र ईंटो मे रन्ध्र एक दूसरे से मिले रहने के कारण केशिका क्रिया होती है और अवशोषण अधिक होता है। परन्तु इन ईंटो के रन्ध्र एक दूसरे से मिले नही होते, अत केशिका क्रिया नहीं हो पाती और अवशोषण कम हो जाता है। इस प्रकार इन ईंटो के ऊपरी रन्ध्रो में धातुमल घुसकर एक पतली परत के रूप मे ईंट पर फैल जाता है और धातुमल का अन्दर जाना वन्द कर देता है। इस प्रकार ये ईंटें अपनी अधिक रन्ध्रता और प्रत्यास्थता लोच को स्थिर रखते हुए धातुमल और तापक्रम परिवर्तनो को अधिक सह सकती हैं। इन ईंटो में लौह और एल्यूमिना की अनुपस्थिति से ये ईंटें अम्लीय धातुमल से भी अप्रभावित रहती हैं, कारण शुद्ध मैगनीशिया १६००° सें० से कम तापक्रम पर सिलीका से सयोग नही करता।

फोर्स्टेराइट—यह एक खनिज है, जिसका रासायनिक सगठन $2MgO.SiO_2$ है और आजकल भास्मिक दुर्गल ईंटो के बनाने में प्रयोग किया जाता है।

MgO तथा SiO_2 की प्रकृति में पाये जानेवाले अन्य यौगिकों में टाल्क, सर्पेन्टाइन (Serpentine—$3MgO. 2SiO_2. 2H_2O$) आदि विभिन्न हाइड्रेटेड मैगनैसाइट हैं। फोर्स्टेराइट ईंटों के उपयोग ने इन प्राकृतिक मैगनीशियम खनिजों के उपयोग की सम्भावना को जन्म दिया है। ५७ ३ प्रतिशत MgO तथा ४२ ७ प्रतिशत SiO_2 के मिश्रण को काफी गरम करने से फार्स्टेराइट बनता है। बोवेन और एण्डरसन ने पता लगाया कि MgO और SiO_2 में बननेवाले यौगिकों में फोर्स्टेराइट का द्रवणांक सर्वाधिक है। लोहा रहने पर उच्च तापक्रम पर यह मैगनेसियो फेराइट ($MgO\ Fe_2O_3$) में परिवर्तित हो जाता है।

श्रेष्ठ फोर्स्टेराइट इंटों की दुर्गलता काफी अधिक होती है। इनका मद्युताप १७१०° सें० से अधिक होता है। इनकी असाधारण दुर्गलता और उच्च दवाव की उपस्थिति में कार्यक्षमता साधारण मैगनेसाइट ईंटों से अधिक है।

डोलोमाइट—डोलोमाइट शब्द वैसे प्राय सभी मैगनीशियम और कैलसियम कार्बोनेटों के पत्थरों के लिए प्रयोग किया जाता है। परन्तु वास्तव में यह एक निश्चित खनिज है, जिसका रासायनिक विश्लेषण इस प्रकार है—

मैगनीशियम आक्साइड	..	२१-२२ प्रतिशत
चूना	..	३०-३१ ,,
कार्बन डाई आक्साइड	..	४७-४८ ,,

इसका रासायनिक संगठन सूत्र $MgCO_3 CaCO_3$ से प्रकट किया जा सकता है। चूना पत्थर से डोलोमाइट कठोरता, आपेक्षिक घनत्व तथा ठण्डे नमक के अम्ल की क्रिया द्वारा निम्न प्रकार से पहचाना जा सकता है। डोलोमाइट चूना पत्थर से अधिक कठोर होता है तथा इसका आपेक्षिक घनत्व भी अधिक होता है (डोलोमाइट २८से २९ तक और कैलसाइट २ ७५)। ठण्डे नमक के अम्ल की डोलोमाइट पर क्रिया उतनी तेज नहीं होती जितनी कि कैलसाइट पर।

डोलोमाइट भट्ठी की भीतरी दुर्गल परत के रूप में उन सभी अवस्थाओं में प्रयुक्त होता है, जिनमें मैगनेसाइट का प्रयोग किया जाता है। परन्तु मैगनेसाइट की परत अधिक टिकाऊ और अधिक कार्योपयोगी होती है। इस कारण डोलोमाइट सस्ता होने पर भी भट्ठियों में डोलोमाइट के स्थान पर मैगनेसाइट की परत लगायी जाती है।

मैगनेसाइट की भांति डोलोमाइट को भी उच्च तापक्रम पर खूब निस्तापित कर लेना चाहिए, जिससे यह पूरी तरह आकुंचित हो जाय।

निस्तापन से पूर्व लगभग १० प्रतिशत कैलशियम क्लोराइड डालने से डोलोमाइट को अलग से बुझाने की आवश्यकता नहीं होती। यह कैलशियम क्लोराइड डोलोमाइट ईंटे बनाने में दूसरे कणों को जोड़कर रखने का कार्य करता है। इस कार्य के लिए एच० जी० स्रुख्ट (H. G. Schrucht) ने लौह आक्साइड डालने की भी सलाह दी है। कुछ निर्माण-कर्त्ता १० प्रतिशत तक केओलिन का भी प्रयोग करते हैं।

डोलोमाइट में सबसे बड़ी कमी यह है कि डोलोमाइट अधिक शुद्ध होने पर इससे मजबूत ईंटे बनाना बड़ा कठिन है। इस कमी का कारण यह है कि इसमें उपस्थित मुक्त चूना अधिक काल तक विशेष कर नम स्थानों में रखने पर पानी और कार्बन डाई आक्साइड अवशोषित कर लेता है, जिससे मृत डोलोमाइट चूर्ण हो जाता है। इस परेशानी को दूर करने के लिए कभी-कभी डोलोमाइट की पकी हुई ईंट पर कोलतार जैसे नमी अवशोषित न करनेवाले पदार्थों की परत पोत दी जाती है, जिससे कुछ समय तक ईंट वातावरण की नमी से सुरक्षित रहे।

सिलीका की अधिक मात्रा रहने पर डोलोमाइट मौनो कैलशियम सिलीकेट ($CaO. SiO_2$) बनाता है, जिसका द्रवणांक कम है। अत इस दशा में ईंटे न्यून तापक्रम पर आकृति खो सकती हैं। सिलीका की मात्रा कम रहने पर डोलोमाइट डाई कैलशियम सिलीकेट ($2CaO. SiO_2$) बनाता है। यह बहुत ही उच्च तापक्रम पर पिघलता है और साथ ही शुद्ध डोलोमाइट की ईंटो में कणों को जोड़कर रखने का कार्य भी करता है तथा उच्च दबाव पर कार्य-क्षमता भी बढ़ा देता है। मैगनेसाइट ईंटो की अपेक्षा डोलोमाइट ईंटो में चूनावाले धातुमलो की ओर अधिक प्रतिरोधक शक्ति है, कारण धातुमल का चूना, कैलशियम डाई सिलीकेट से क्रिया करके और अधिक दुर्गल ट्राईकैलशियम सिलीकेट ($3CaO. SiO_2$) बनाता है।

उपयोग—(१) भास्मिक विधि की खुली इस्पात भट्ठियो तथा बेसेमर परिवर्त्तक भट्ठियो में दुर्गल परत के लिए। (२) सीसे की भट्ठियो में, जिनमे धातुमल अधिक भास्मिक होता है। (३) ताम्र प्रद्रावण भट्ठियो में। (४) भास्मिक मिश्र धातुओ (Alloys) को गलानेवाली घरियाओ के बनाने में।

डोलोमाइट के प्राप्तिस्थान—आसाम में जयन्ती पहाड़ियो के पास। गंगपुर

(बंगाल में)। जबल्पी से प्राप्त होनेवाला डोलोमाइट सम्भवतः भारत का सर्वोत्तम डोलोमाइट है। इस डोलोमाइट की विशेषताएँ, इसमें सिलीका लोहा आदि अपद्रव्यों तथा क्षारों का न्यून मात्रा में होना है, जैसा कि निम्नलिखित विश्लेषण से देखा जा सकता है—

कैलसियम कार्बोनेट	..	५२.००
मैगनीशियम कार्बोनेट	..	४६.३०
लौह आक्साइड	..	०.२९
सिलीका	..	०.२०
एल्यूमिना	.	०.५३
क्षार		०.१८

जिरकोनिया (ZrO_2) तथा **जिरकोन** ($Zr\ SiO_4$)—ये दो खनिज मुख्य रूप से ब्राजील, लंका और ट्रावनकोर में पाये जाते हैं। जिरकोनिया को दुर्गल पदार्थों की भाँति प्रयोग करने से पूर्व शुद्ध कर लेना आवश्यक है। जब कि जिरकोन से केवल लौहकणों को दूर करके वैसा ही प्रयोग किया जा सकता है।

जिरकोनिया को शुद्ध करने की अनेक विधियाँ हैं। उनमें से एक में जिरकोनिया को सर्वप्रथम नमक के अम्ल या गन्धकाम्ल के साथ गरम करके लौह और टिटैनियम (Ti) को दूर कर देते हैं। उसके बाद उसे सोडा के साथ गलाकर पानी में अच्छी तरह मिलाकर छान लेते हैं। यह घोल गाढ़ा करके इसमें केलास बनने दिये जाते हैं। ये केलास सोडियम जिरकोनेट के केलास होते हैं। इन केलासों को अमोनिया के साथ क्रिया कराकर निस्तापित करने पर शुद्ध जिरकोनियम आक्साइड अर्थात् जिरकोनिया मिलता है।

दुर्गल पदार्थ के रूप में प्रयोग करने के लिए शुद्ध जिरकोनियम आक्साइड को १४००° सें० पर निस्तापित करके उसका सारा आकुंचन निकाल देते हैं। जिरकोन गरम करने पर आकुंचित नहीं होता। अतः इसे निस्तापित करने की आवश्यकता नहीं होती। केवल लौह अपद्रव्य विद्युत्-चुम्बक द्वारा दूर कर दिये जाते हैं।

इन खनिजों के गलनांक बहुत अधिक (२५००° सें०), तापचालकता कम तथा लम्ब-प्रसार-गुणक बहुत ही कम (०००००००८४) है। अतः इनका प्रयोग मुख्यतः चिनगारी प्लग, उच्चतनाव विद्युत्-रोधक और विशेष प्रकार की रासायनिक प्रयोगशाला की परीक्षण-भट्ठियाँ बनाने में होता है।

ट्रावनकोर के समुद्री किनारे की रेत से जिरकोन का उत्पादन सर्वप्रथम मेसर्स ट्रावनकोर मिनरल कम्पनी लिमिटेड द्वारा १९२२ ई० में प्रारम्भ हुआ था। इसके बाद एसोशिएटेड मिनरल कम्पनी लिमिटेड तथा ऐफ० ऐक्स पेरीरा एण्ड सन्स लिमिटेड आदि दूसरी कम्पनियो ने उत्पादन प्रारम्भ किया था। अब ये सब कारखाने ट्रावनकोर कोचीन की सरकार द्वारा ले लिये गये हैं। ट्रावनकोर के इस समुद्री किनारे की रेत से जिरकोन का कुछ वर्षों का उत्पादन दिया जा रहा है—

१९३५ ई० मे ६६५४ टन
१९३६ ई० मे २२१० ,,
१९३७ ई० में १३२९ ,,
१९३८ ई० में १४५० ,,

साधारणत १,००० से १,५०० टन जिरकोन प्रतिवर्ष ट्रावनकोर की इस रेत से उत्पन्न किया जा सकता है। अब चूँकि अलवेई का विरल-मृदा (Rare-earths) कारखाना इस मोनोजाइट रेत की १,५०० टन मात्रा को प्रतिवर्ष उपयोग में लायेगा। अत जिरकोन के उत्पादन के और बढ जाने की सम्भावना है। परन्तु भारतीय उद्योग के लिए जिरकोन की बहुत थोडी मात्रा पर्याप्त होती है अत शेष सारे उत्पादन का निर्यात कर दिया जाता है। इधर कुछ वर्षों से इसका निर्यात बाजार दूसरे देशो ने, विशेष कर आस्ट्रेलिया ने, अपने हाथ में ले लिया है। अत सन् १९४९ ई० के बाद जिरकोन का उत्पादन बिलकुल बन्द हो गया था।

बॉक्साइट—इस खनिज को अशुद्ध एल्यूमिनियम हाइड्रोक्साइड समझा जाता है, जिसमे सिलीका टिटैनियम आक्साइड तथा फेरिक आक्साइड मुख्य अपद्रव्य होते हैं। विभिन्न स्थानो से प्राप्त बौक्साइटो का रासायनिक सगठन काफी भिन्न होता है। परन्तु दुर्गल वस्तुओ के निर्माण में प्रयोग होनेवाले एक अच्छे नमूने का सगठन इन सीमाओ के बीच होना चाहिए—

एल्यूमिना	५०—९० प्रतिशत
सिलीका	३—५ ,,
लौह आक्साइड	०५—४ ,,
टिटैनियम आक्साइड	८ प्रतिशत से कम
पानी	१०—३० प्रतिशत

शुद्ध बौक्साइट जिप्सम से मुलायम होता है और आपेक्षिक घनत्व लगभग २.९ होता है, पर अशुद्ध बौक्साइट काफी कठोर होता है।

बौक्साइटों में विभिन्न अपद्रव्यों के कारण उनके रंग भी भिन्न होते हैं। इन्हीं रंगों के आधार पर व्यापारिक बौक्साइटों को निम्नलिखित तीन भागों में बाँटा जाता है—

श्वेत बौक्साइट—इस वर्ग के बौक्साइटों का रंग प्रायः हल्का भूरा या थोड़ा पीला होता है। इस प्रकार के बौक्साइटों में सबसे कम लोहा रहने के कारण दुर्गल वस्तु-निर्माण में इसका उपयोग होता है। इस प्रकार के खनिज में मुख्य अपद्रव्य सिलीका होता है।

लाल बौक्साइट—इस वर्ग के बौक्साइटों का रंग ईंट जैसा लाल होता है। यह रंग मुख्य रूप से लौह आक्साइड अपद्रव्य के कारण होता है। इसे दुर्गल पदार्थ की भाँति कभी नहीं प्रयोग किया जाता।

नीला बौक्साइट—इस प्रकार के बौक्साइट का नीला रंग मुख्य रूप से कलिल फेरस सल्फाइड अपद्रव्य के कारण होता है। दुर्गल पदार्थ की भाँति प्रयोग होनेवाले बौक्साइट में लौह की ५ प्रतिशत से अधिक मात्रा आपत्तिजनक होती है।

सिलीकामय अपद्रव्यों को दूर करने के लिए बौक्साइट चूर्ण को घूर्णक ड्रम में जलधारा से धोया जाता है। अपद्रव्य एल्यूमिना से हल्के होते हैं अतः जलधारा उन्हें बहाकर ले जाती है।

पिसे हुए बौक्साइट में लचीलापन नहीं होता। अतः यह अकेला ही ईंटें बनाने के काम में नहीं आ सकता। अग्निमिट्टी की ईंटों में इसे छर्री के स्थान पर प्रयोग किया जा सकता है। इसके डालने से अग्निमिट्टी ईंटों की तापसहता काफी सीमा तक बढ़ जाती है। बौक्साइट से ईंटें बनानी हों तो सर्वप्रथम बौक्साइट में २०-२५ प्रतिशत चीनी मिट्टी मिलाकर पानी के साथ इसका मिश्रण-पिण्ड बना लेते हैं। इन पिण्डों के बड़े-बड़े लोंदे बनाकर उन्हें लगभग १२००° से० पर निस्तापित किया जाता है, जिससे उनका सारा आकुंचन निकल जाय। इसके पश्चात् इन निस्तापित लोंदों को पीसकर छर्री बनाकर इसके साथ लचीली अग्निमिट्टी मिलाकर ईंटें बना ली जाती हैं।

यदि केवल शुद्ध बौक्साइट का प्रयोग करना हो तो धुले हुए बौक्साइट चूर्ण के साथ चूने का पानी मिलाकर वस्तुएँ बना ली जाती हैं। परन्तु प्रायः इसका उपयोग अग्निमिट्टियों की दुर्गलता बढ़ाने के लिए किया जाता है।

बौक्साइट से बनी दुर्गल वस्तुएँ उन भट्ठियों के लिए विशेप उपयोगी होती हैं जिनमें उच्च तापक्रम तथा अधिक संवेग शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। जैसे चूर्ण-भट्ठियाँ तथा पडलिंग-भट्ठियाँ आदि।

बौक्साइट के प्राप्तिस्थान—बम्बई में बेलगाँव तथा कोल्हापुर।

कश्मीर में जम्मू के पास चकरगाँव।

मध्य प्रदेश में जबलपुर और कटनी के बीच तथा बालाघाट जिला।

आन्ध्र में विशाखपत्तनम् जिला।

बिहार में पालामऊ जिले में मोहबन्द, राँची जिले के लोहारडागा के पश्चिम में।

उडीसा में गंजाम जिला, काला हाँडी।

काला हाँडी के एक विशेप बौक्साइट का विश्लेपण नीचे दिया जाता है—

सिलीका	०·९३
एल्यूमिना	६७·८८
फैरिक आक्साइड	४·०९
टिटैनियम आक्साइड	१·०४
चूना	०·३६
गरम करने पर हानि	२६·४७

लौह अयस्क—हैमेटाइट (Fe_2O_3) और मैगनेटाइट (Fe_3O_4) भी कभी-कभी दुर्गल ईंटों के बनाने में प्रयोग किये जाते हैं। फैरिक आक्साइड, आक्सीकारक वातावरण में, सिलीकामय धातुमलों की ओर काफी प्रतिरोधक शक्ति रखता है। अत. इन लौह अयस्कों से बनी ईंटें वाष्पित्र गैस नालियाँ तथा ऐसे दूसरे स्थानों में प्रयोग की जा सकती है, जहाँ गरम गैसों के साथ हवा की काफी मात्रा हो। कभी-कभी इन ईंटों को लौह गलानेवाली भट्ठियों में परत देने के लिए प्रयोग किया जाता है। इसमें इस दुर्गल परत का कुछ अंश अवकृत हो जाता है, जो आगे चलकर प्राप्त कर लिया जाता है।

लौह अयस्क के प्राप्तिस्थान—बिहार में सिंहभूमि जिला। उडीसा में मयूरभंज। मध्यप्रदेश में रायपुर और चाँदा। मैसूर में भद्रावती।

भास्मिक धातुमल—टामस और गिलक्राईस्ट-विधि द्वारा इस्पात बनानेवाले

कारखानों में प्राप्त धातुमल को भास्मिक धातुमल कहा जाता है। यह धातुमल डोलोमाइट ईंटें बनाने में ईंट कणों को जोड़कर रखने का कार्य करता है। अकेला भास्मिक धातुमल दुर्गल पदार्थ के रूप में नहीं प्रयोग किया जा सकता, कारण इसमें चूना और सिलीका की अधिक मात्रा रहती है। इसका मुख्य उपयोग सीमेण्ट बनाने में होता है।

इस भास्मिक धातुमल को कभी-कभी टामस-धातुमल भी कहा जाता है। इसके संगठन की सीमाएँ नीचे दी जाती हैं—

सिलीका	३० से ३६ प्रतिशत
एल्यूमिना और फैरिक आक्साइड	१० से १७ ,,
चूना	४८ से ५० ,,
मैगनीशिया	०·० से ०·३ ,,

ग्रेफाइट—यह भूरे काले रंग का एक खनिज है जो कार्बन का केलासीय रूप होता है। इसे प्लम्बेगो या काला सीसा भी कहते हैं। प्रकृति में ग्रेफाइट दो रूपों, चूर्ण रूप तथा परतमय रूप, में पाया जाता है। इस चूर्ण रूप ग्रेफाइट को पहले अकेलासीय कार्बन समझा जाता था, परन्तु शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शी से देखने पर पता चलता है, कि इसकी रचना सूक्ष्म केलासीय है। दुर्गल घरियाओं को बनाने के लिए उत्तम परतमय ग्रेफाइट लंका में मिलता है। यदि ग्रेफाइट अधिक परतमय हुआ, तो बनी हुई वस्तुओं में परतदोष आ जायगा। अत वस्तु के टूटने की सम्भावना बढ़ जायगी। लंका के ग्रेफाइट के कण कोण-सहित हैं। अत इसमें वस्तु में परत-दोष नहीं आता, जैसा कि दूसरे परतमय ग्रेफाइटों से बनी वस्तुओं में होता है। चूर्ण ग्रेफाइट मुख्य रूप से धातु के ढलाई-कारखानों में तथा काली सीसे की पेंसिलें बनाने के कारखानों में प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी लकड़ी के कोयला और अलकतरा को विद्युत्-भट्ठी में गरम करके कृत्रिम ग्रेफाइट बनाया जाता है। कार्बोरण्डम उद्योग से भी उपजात के रूप में ग्रेफाइट प्राप्त होता है।

श्रेष्ठ दुर्गल वस्तुएँ बनाने में प्रयोग किये जानेवाले ग्रेफाइट में कम से कम ९० प्रतिशत कार्बन होना चाहिए तथा गाइका लौह यौगिक आदि अपद्रव्य यथासम्भव अनुपस्थित हों। ग्रेफाइट के अपद्रव्यों को प्लवन (Floatation) विधि से या बर (Burr) यन्त्र में पीसकर दूर किया जाता है।

वाष्पशील पदार्थों को दूर करने के लिए प्रयोग से पूर्व खनिज को ८००° से ९००° सें० पर निस्तापित करते हैं। भारतीय तथा लका के ग्रेफाइटो में वाष्पशील पदार्थ ५ प्रतिशत तक होते हैं।

परतमय ग्रेफाइट के राख बनानेवाले अवयव बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। यदि परतदार ग्रेफाइट उचित आकार का और पर्याप्त कठोर है, तो १५ प्रतिशत तक राख होने पर भी यह कार्योपयोगी रहता है। माइका की उपस्थिति बहुत ही आपत्तिजनक है, कारण प्रयोग की साधारण अवस्थाओ में यह सरलता से पिघलकर घरिया पर छिद्रो को जन्म देती है। कार्बोनेट भी नही रहने चाहिए, अन्यथा गरम करने पर वे विच्छेदित होकर वस्तु को सरन्ध्र कर देते हैं। थोडी मात्रा में गन्धक प्राय मिला रहने पर भी इसकी उपस्थिति, विशेष कर पाइराइटीज के रूप में, बहुत ही आपत्तिजनक है। ग्रेफाइट की राख १०००° सें० तक नही गलनी चाहिए।

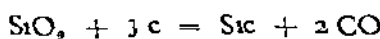
घरिया-निर्माण में उपयोगी ग्रेफाइट का कण-आकार बहुत ही छोटी सीमाओ के बीच होता है। दुर्गल वस्तु को कठोर और ठोस बनाने के लिए यह कण-आकार-नियन्त्रण बहुत ही आवश्यक है।

प्राकृतिक ग्रेफाइटो का आपेक्षिक घनत्व २·०१ से २·५८ तक होता है। इसकी तापचालकता अधिक तथा प्रसार-गुण बहुत कम है। अत आकस्मिक तापक्रम परिवर्तनो का इस पर कोई बुरा प्रभाव नही पडता। अग्निमिट्टी में ग्रेफाइट की थोडी मात्रा मिला देने से अग्नि-मिट्टी पर आकस्मिक तापक्रम-परिवर्तनो का हानिकर प्रभाव काफी कम हो जाता है और तापचालकता भी काफी बढ जाती है। इस दिशा में दूसरे कार्बन पदार्थों से ग्रेफाइट बहुत श्रेष्ठ है, कारण यह हवा में बहुत धीमी गति से जलता है। ग्रेफाइट में लचीलापन बिलकुल नही होता है। अत. इसकी घरिया आदि बनाने के लिए इसमें चीनी मिट्टी, बॉल-मिट्टी तथा अग्निमिट्टी आदि लचीले पदार्थ डाले जाते हैं। ये पदार्थ कणो को जोड़कर रखने का कार्य करते हैं। शुद्ध ग्रेफाइट की चीनी मिट्टी पर कोई क्रिया नही होती, परन्तु ग्रेफाइट के अपद्रव्य दुर्गल मिट्टियो के लिए द्रावक का कार्य कर सकते हैं।

भारतवर्ष में ग्रेफाइट निम्नलिखित स्थानो पर खोदा जाता है—मध्यप्रदेश के बेतूल क्षेत्र में, उडीसा के पटना, सम्बलपुर और अथमलिक क्षेत्र में; आन्ध्र में विशाखपतनम् के पास, मैसूर के कोलार जिला में तथा हैदराबाद एव राजपूताना में। इन

खानों में से आन्ध्र और उड़ीसा की केवल कुछ खानों में ही परतमय ग्रेफाइट मिलता है। कुछ समय पूर्व लन्दन की मॉरगल क्रूसीबिल कम्पनी लिमिटेड द्वारा ट्रावनकोर के वेलानोद, कुलेन तथा वेगानूर नामक स्थानों से श्रेष्ठ प्रकार का परतमय ग्रेफाइट खोदकर निकाला जाता था। इस कम्पनी द्वारा सन् १९०१ से १९११ ई० तक ३५,००६ टन ग्रेफाइट निकाला गया था। परन्तु इसके बाद खुदाई अकस्मात् बन्द कर दी गयी। खुदाई बन्द करने का कारण जहाँ तक सम्भव है, यह रहा होगा कि उस समय ८०० से ९०० फुट की गहराई पर खुदाई करना उतना सरल नहीं था, जितना आज है। उन खानों में अब फिर से खुदाई प्रारम्भ होने की सम्भावना है।

कार्बोरण्डम—कार्बोरण्डम सिलीकान कार्बाइड (SiC) होता है और विशेष प्रकार की घरियाएँ तथा मफल-भट्ठियाँ बनाने के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण दुर्गल पदार्थ है। साधारण प्रयोग की दुर्गल वस्तुएँ बनाने के लिए यह बहुत ही मँहगा है। कार्बोरण्डम प्रकृति में नहीं पाया जाता, कृत्रिम होता है। शक्तिशाली विद्युत्-धारा की उपस्थिति में सिलीका और कोक में संयोग कराकर इसे बनाया जाता है।



$$SiO_2 + 3C = SiC + 2CO$$

५५ भाग रेत तथा ३५ भाग कोक को १० भाग लकड़ी के बुरादे और २-४ भाग साधारण नमक के साथ मिलाकर विशेष प्रकार की विद्युत्-भट्ठी में डाला जाता है।

लगभग १८००° सें० पर आंशिक गलना प्रारम्भ हो जाता है। क्रिया हो जाने के पश्चात् पदार्थों को धीरे-धीरे ठण्डा किया जाता है, जिससे केलासीकरण अच्छा हो। लकड़ी का बुरादा पदार्थों को सरन्ध्र बनाये रखने के लिए डाला जाता है, जिससे कार्बन मोनोक्साइड गैस सरलता से निकल जाय। साधारण नमक डालने से लौह-अशुद्धि वाष्पशील लौह क्लोराइड के रूप में उड़ जाती है।

पिघले पिण्ड के बीच में ग्रेफाइट तथा उसके चारों ओर केलासीय तथा अकेलासीय कार्बोरण्डम और दूसरे अपद्रव्य रहते हैं। धोकर तथा गन्धकाम्ल की क्रिया द्वारा इस अशुद्ध कार्बोरण्डम को इन पदार्थों से अलग किया जाता है। कार्बोरण्डम केलास काफी कठोर होते हैं। यह गाढ़े पीले से भूरे या नीलाभ काले तक बहुत-से रंगों के होते हैं। परन्तु विशुद्ध कार्बोरण्डम रंगहीन होता है। इसका आपेक्षिक घनत्व ३.१७ से ३.२ तक और द्रवणांक २३००° सें० से अधिक होता है। इसके द्रवणांक का निश्चित रूप से पता नहीं चल पाया है। इसमें लचीलापन बिलकुल नहीं होता।

व्यापार में सिलीकान कार्बाइड बहुत-से व्यापारिक नामों से बेचा जाता है। उदाहरणार्थ क्रिस्टोलोन (Crystolone), सिलफ़ैक्स (Silfrax), ग्लोबार, कार्बोफ़ैक्स (Carbofrax) आदि।

कार्बोरण्डम शान पत्थरों के रूप में भी प्रयोग किया जाता है, कारण कठोरता के क्षेत्र में हीरे के बाद इसी का स्थान है।

क्रोमाइट—यह क्रोमियम आक्साइड और लौह आक्साइड का मिश्रण है, जिसे प्राय क्रोम आइरन अयस्क कहा जाता है। एक अच्छे क्रोमाइट में ६८ से ७० प्रतिशत तक क्रोमियम आक्साइड होता है। परन्तु इतना अच्छा अयस्क कम पाया जाता है। दुर्गल-वस्तु-निर्माण मे प्रयोग होनेवाले अयस्क में प्राय. ३५ से ४० प्रतिशत क्रोमियम आक्साइड होता है और ६ प्रतिशत से कम सिलीका होती है।

क्रोमाइट का आपेक्षिक घनत्व लगभग ४·५ है और यह २०००° सें० से अधिक तापक्रम पर पिघलता है। क्रोमाइट में सर्वाधिक आकुचन ५००° सें० के आसपास पाया जाता है, जो सम्भवत. अणु-एकत्रीकरण (Polymerisation) के कारण होता है। इसमें १० से १५ प्रतिशत तक कैओलिन मिलाने से इसकी दुर्गलता में कोई विशेष कमी नही आती। धातुमलो की इस पर क्रिया नही होती अत खुली भट्ठियों में दुर्गल परत लगाने के लिए इसका काफी प्रयोग किया जाता है।

दुर्गल वस्तुएँ बनाने के अतिरिक्त क्रोमाइट विशेष प्रकार के इस्पातो, अनेक रस-द्रव्यो तथा वर्णको के बनाने में भी प्रयोग किया जाता है। दुर्गल-वस्तु-निर्माण के लिए क्रोमाइट अयस्क में क्रोमिक आक्साइड की मात्रा के साथ उसकी भौतिक अवस्थाओं और उसमे उपस्थित अपद्रव्यो के प्रकार भी काफी विचारणीय होते हैं। यदि अयस्क में उपस्थित सिलीका अपद्रव्य सरपेण्टाइन के रूप मे है, तो इससे बनी वस्तुओं की दुर्गलता काफी कम हो जाती है। विभिन्न रस-द्रव्यो को बनाने के लिए अधिक फेरिक आक्साइड वाली अयस्क अधिक उपयोगी होती है, कारण इस पर क्षारो की क्रिया सरलता से होती है। क्रोमियम धातु प्राप्त करने के लिए श्रेष्ठ प्रकार की अयस्क काम में लायी जाती है, जिसमें ४८ प्रतिशत या अधिक क्रोमियम आक्साइड हो तथा सिलीका, गन्धक, फास्फोरस आदि अपद्रव्य कम हो।

क्रोमाइट अयस्क के प्राप्तिस्थान—क्रोमाइट अयस्क मैसूर, उड़ीसा तथा बिहार के सिंहभूमि जिले में मिलती है। बिलोचिस्तान मे भी काफी श्रेष्ठ प्रकार की अयस्क

पायी जाती है। यहाँ कुछ स्थानों से प्राप्त क्रोमाइट अयस्कों के विश्लेपण दिये जाते हैं—

अवयव	मैसूर अयस्क	बिलोचिस्तान अयस्क	सिंहभूमि अयस्क
क्रोमिक आक्साइड	५१ ०	५६ ०	५१ ०२
फेरिक आक्साइड	२२ ५	१३ ०	१९ ४८
एल्युमिना	७ ५	११ ०	—
सिलीका	४ ५	१ ०	२ ९०
चूना	० ५	१ ०	—
मैगनीशिया	१२ ५	१५ ०	—

उडीसा प्रदेश के कोइन्झार में नौगाली गाँव के निकट बौला जगलो मे क्रोमाइट की बडी अच्छी खानें हैं। ये खानें सबसे पास के रेलवे स्टेशन भद्रक से ३५ मील दूर हैं। इन खानो की खोज के बाद एक दम सन् १९४३ ई० से ही उत्पादन प्रारम्भ हो गया था। इन खानो में ५० फुट की गहराई तक सब प्रकार के अयस्क के २००,००० टन होने का अनुमान किया जाता है। परन्तु इसे अभी भी सिद्ध करना शेष है। कोइन्झार अयस्क में ४० से ५३ प्रतिशत तक क्रोमिक आक्साइड है। अत यह धातु उत्पादन श्रेणी की है। निम्नलिखित सारणी में कोइन्झार से प्राप्त ५ विशेष क्रोम अयस्कों के विश्लेपण दिये गये है।

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
	%	%	%	%	%
क्रोमिक आक्साइड	४७ ०	४५ ६	५३·३	५३·२	४७·६
लौह	१२ २	१४ ५	११ ३	११ ७	१२·२
सिलीका	१० ०	११ ६	४·७	४ ०	१० ०
फेरस आक्साइड	१५ ७	१८ ६	१४ ५	१५ ०	१५ ७
अनुपात क्रोमियम लौह	२ ६/१	२ २/१	३ २/१	३ १/१	२ ५६/१

क्रोम मैगनेसाइट—लौह सहित मैगनेसाइट या क्रोमाइट की ईंटें अधिक दबाव पर कार्य नही कर सकती तथा तापक्रम परिवर्तनो को सहन नही कर सकती। यद्यपि सिलीका ईंटो का सह्यताप क्रोमाइट ईंटो के सह्यताप से कम है, परन्तु इन्ही कारणो से

भास्मिक इस्पात-विधि की भट्ठियों के उन भागों पर क्रोमाइट ईंटों का प्रयोग नहीं किया जाता, जिन भागों में दबाव या तापक्रम-परिवर्त्तन अधिक रहता है और अब भी इनके स्थान पर सिलीका ईंटों का प्रयोग किया जाता है।

इधर कुछ वर्षों के अन्वेषण कार्य द्वारा क्रोम और मैगनीशिया ईंटों की इस कठिनाई को दूर करने का प्रयत्न किया गया है। इन अन्वेषण कार्यों से पता चला है कि क्रोम और मैगनीशिया को मिला देने से क्रोम मैगनीशिया ईंट का दबाव तथा तापक्रम-सहन करने की शक्ति बढ़ जाती है। इस प्रकार की काफी ईंटें बाजार में विभिन्न नामों से बिकती हैं। इन क्रोम मैगनीशिया ईंटों में सबसे बड़ा दोष यह है कि प्रयोग के समय ये लौह को अवशोषित करके फूल जाती हैं।

नीचे कुछ विशेष प्रकार की दुर्गल ईंटों के तुलनात्मक भौतिक गुण दिये जाते हैं—

दुर्गल ईंट	सह्यताप सेण्टीग्रेडों में	रन्ध्रता प्रतिशत में	दबाव पर दुर्गलता सेण्टीग्रेडों में Ta	Te
१. सिलीका ईंट	१६८०से अधिक	१९९०	१६७०°	१७१०°
२. भारतीय क्रोमाइट	१७७५° ,, ,,	२०७५	१४२५°	१४२५°
३. अमेरीका की क्रोमाइट	,, ,, ,,	१५८०	१४४४°	१४६०°
४. भारतीय मैगनसाइट	,, ,, ,,	२४·८०	१५२०°	१५२०°
५. आस्ट्रिया की मैगनेसाइट	,, ,, ,,	१६७०	१३००°	१५००°
६. कम लौहयुक्त मैगनेसाइट	,, ,, ,,	२५८०	१६८८°	१७२०°
७ इँग्लैण्ड की क्रोम मैगनेसाइट	१७५५° ,, ,,	२२३०	१५२०°	१५६०°
८ आष्ट्रिया ,, ,, ,,	,, ,, ,,	२०४०	—	—
९ जर्मनी ,, ,, ,,	,, ,, ,,	२५२०	१६६०°	१७४५°
१०. फार्स्टेराइट	१८५०° ,, ,,	—	१६४०°	१७३७°

नोट—Ta = प्राथमिक गलन तापक्रम।

Te = विकृति तापक्रम।

दुर्गल वस्तुएँ बनाने में प्रयोग होनेवाले कुछ खनिजों के उत्पादन नीचे दिये जाते हैं।

उत्पादन इकाइयाँ सैकड़ा टनों में—

वर्ष	क्रोमाइट	ग्रेफाइट	बेंटोनाइट	चीनी मिट्टी
१९४४	३०६	९ २३	२९२	४६५
१९४५	३११	१३ ००	३३७	६७३
१९४६	२४०	१६ ००	१३५	७२८
१९४७	३४७	१२ ००	१८३	६६६
१९४८	२२५	१६ ००	१२६	४१२
१९४९	१०८	११ ००	१९९	४२४
१९५०	१६७	१६ ००	३५५	५३६
१९५१	१६७	१७ ००	४२५	६९१
१९५२	३५२	२९ ००	२६२	८६०

छर्री—अनुभव से पता चला है कि अग्निमिट्टियों में कुछ छर्री मिलाकर बनायी गयी दुर्गल वस्तुओं के गुण काफी सुधर जाते हैं। छर्री प्रायः साफ, टूटी अग्निईंटों या सैगरों को मोटे चूर्ण के रूप में पीसकर बनाते हैं। इस छर्री चूर्ण को बाद में तीन वर्गों में बाँटा जाता है। बड़ी छर्री, मध्यम छर्री तथा महीन छर्री। बड़ी छर्री के कणों का औसत व्यास लगभग ७ मिलीमीटर, मध्यम का ३ मिलीमीटर तथा महीन का ३ मिलीमीटर से कम होता है। इन विभिन्न कण आकारवाली छर्रियों को मिलाने के अनुपात काफी भिन्न होते हैं। परन्तु इन्हें सदैव इस अनुपात में मिलायें कि बड़े कणों के बीच के स्थान को छोटे कण भर दें। इससे वस्तु का घनत्व और शक्ति बढ़ जाती है। अनेक कारखानों में, विशेषकर भारत तथा इंग्लैण्ड के कारखानों में छर्री-कण-आकार-विभाजन की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। परन्तु जर्मनी में छर्री के वर्गीकरण पर अधिक ध्यान दिया जाता है। टूटे सैगर अग्निमिट्टी के साथ ही चूर्णक यन्त्रों में पीसे जाते हैं और उसके बाद इस चूर्ण को पानी के साथ मिलाकर सैगर आदि दुर्गल वस्तुएं बनायी जाती हैं। छर्री से बनी हुई दुर्गल वस्तुओं पर छर्री का प्रभाव सारांशतः इस प्रकार पड़ता है—

(अ) छर्री की मात्रा का प्रभाव

(१) सुखाव तथा पकाव आकुंचन दोनों काफी कम हो जाते हैं, कारण छर्री रहने से वस्तु के लिए मिश्रण-पिण्ड बनाने में पानी की कम मात्रा की आवश्यकता होती है।

(२) मिट्टी में छर्री की मात्रा जितनी ही अधिक होगी, मिश्रण की तनन एव संपीडन क्षमताएँ उतनी ही कम होगी।

(३) छर्री-मिट्टी-मिश्रण की आभासित रन्ध्रता वढ जाती है। छर्री मिलाते समय उसपर की गयी क्रियाओ का भी मिश्रण-पिण्ड की प्रकृति और रन्ध्रता पर काफी प्रभाव पडता है। यदि छर्री, जलने पर कम ठोस हो जानेवाली मिट्टियो से बनायी गयी है, तो पात्र अधिक सरन्ध्र होता है। यदि अग्निमिट्टी के साथ मिलाने से पूर्व छर्री को पानी में डालकर उसे पानी अवशोषित कर लेने दिया जाय, तो अग्निमिट्टी के सूक्ष्म कण छर्री के रन्ध्रो में नही घुस सकेंगे। अत ऐसी दशा में वस्तु अधिक सरन्ध्र होगी। परन्तु यदि सूखी छर्री के साथ मिट्टी मिलाकर उसपर पानी डाला जाय, तो मिट्टी के सूक्ष्म कण छर्री के रन्ध्रो में घुसकर वस्तु की रन्ध्रता कम कर देते हैं।

(आ) छर्री के कण-आकार का प्रभाव

(१) छर्री के भिन्न कण-आकारो का आकुचन पर कोई नियमबद्ध प्रभाव नही पडता, परन्तु उच्च तापक्रम पर बहुत महीन छर्री अधिक आकुचन उत्पन्न करती है। इसका कारण यह है कि कण कुछ पिघल जाते हैं।

(२) बडे आकार की छर्री से मिश्रण की शक्ति पकाने के पूर्व और पश्चात् दोनो अवस्थाओ में कम हो जाती है। अग्नि-मिट्टी और मोटी छर्री के मिश्रण की अपेक्षा, मिट्टी और महीन छर्री का मिश्रण अधिक दवाव सहन कर सकेगा। बडे कणवाली छर्री वस्तुओं को भुरभुरा बना देती है।

(३) छर्री के कण बडे रहने पर पकाते व ठण्डा करते समय वस्तु की तापक्रम-परिवर्तन-रोधक शक्ति काफी बढ जाती है।

(४) मध्यम कण-आकारवाली छर्री की अपेक्षा महीन छर्री से रन्ध्रता अधिक आती है। परन्तु महीन छर्री से उच्च तापक्रम पर काँचीयपन शीघ्र होता है।

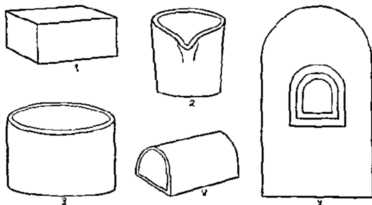
इन सब बातो का ध्यान रखते हुए प्राय विभिन्न कण-आकारवाली छर्रियो को उचित अनुपात में मिलाकर छर्री-मिश्रण का प्रयोग किया जाता है। यह अनुपात इस बात पर निर्भर करता है कि बननेवाली वस्तु किस कार्य के लिए प्रयोग की जायगी।

छर्रियो का रासायनिक सगठन अग्निमिट्टी के समान ही होना चाहिए और प्रयोग मे पूर्व छर्री यथासम्भव उच्च तापक्रम पर पका ली गयी हो। यूरोपीय देशो में प्रायः अग्निमिट्टियो को लगभग १४००° सें० पर पकाकर छर्री बनायी जाती है और इसे

शेमोटे (Chamotte) के नाम से बेचते हैं तथा इंग्लैण्ड में छर्री को ग्राग (Grog) कहते हैं।

छर्री शब्द प्राय पकी हुई मिट्टियों के चूर्ण के लिए प्रयोग किया जाता है, परन्तु कभी-कभी यह शब्द चूर्ण सिलीका या निस्तापित बौक्साइट, कार्बोरण्डम आदि के लिए भी प्रयोग किया जाता है।

दुर्गल वस्तुएँ—उपर्युक्त दुर्गल पदार्थों से बनी वस्तुएँ दुर्गल वस्तुएँ कहलाती हैं। विभिन्न उद्योगों में प्रयोग की जानेवाली भिन्न दुर्गल वस्तुओं में मुख्य रूप से दुर्गल ईंटें, सँगर, मफल, घरियाएँ और काच गलाने के भाण्ड आदि हैं।



चित्र ३० विभिन्न दुर्गल वस्तुएँ

१ अग्निईंट २ घरिया ३ सँगर, ४ मफल ५ काच गलाने का भाण्ड।

दुर्गल ईंटें—दुर्गल ईंटे अधिकतर अग्नि-मिट्टियों से बनायी जाती हैं। अग्नि मिट्टी के अतिरिक्त दूसरे दुर्गल पदार्थ भी इस कार्य के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। जब दुर्गल ईंटें अग्निमिट्टियों से बनायी जाती हैं, तब उन्हें अग्निईंट भी कहा जाता है। विशेष अवस्थाओं में शुद्ध रेत, स्फटिक चूर्ण, क्वार्टजाइट तथा केओलिन उद्योग से प्राप्त रेत आदि जैसे अधिक सिलीकामय पदार्थों से भी दुर्गल ईंटें बनायी जाती हैं। इन्हें सिलीका ईंटें कहा जाता है। विशेष कार्यों के लिए प्रयोग की जानेवाली ईंटों के

बनाने के लिए प्राय मैगनेसाइट, क्रोमाइट, बौक्साइट, ग्रेफाइट या कार्बोरण्डम-जैसे विशेष दुर्गल पदार्थ प्रयोग किये जाते हैं।

उपयोग—अग्निमिट्टियों से बनी दुर्गल ईंटें मुख्यत भट्ठियो, गैस-नल, वाष्पित्र आदि की दुर्गल परत बनाने में प्रयुक्त की जाती हैं। अर्द्ध सिलीका ईंटें अधिकतर भट्ठियो की गोलाकार छत तथा मेहराबे, क्यूपोला (Cupola) और घरिया भट्ठी आदि के बनाने के काम आती हैं, कारण इनमें आयतन का अपरिवर्तित रहना आवश्यक है। अर्द्धसिलीका ईंटो पर धातुमल की या दूसरे रासायनिक सक्रिय पदार्थो की क्रिया शीघ्रता से होती है। यदि यह धातुमल आदि गुणो में भास्मिक हो तो ईंटो पर क्रिया और भी शीघ्रता से करते हैं। अर्द्धसिलीका ईंटें अधिकतर कोक बनानेवाली भट्ठियो के निर्माण में प्रयोग की जाती हैं। अच्छी अग्निईंटो या सिलीका ईंटो की अपेक्षा अर्द्धसिलीका ईंटें सदैव ही कम दुर्गल होती हैं, कारण अग्निमिट्टी में रेत गैनिस्टर या सिलीका-चट्टान-चूर्ण डालने से उसकी दुर्गलता सदैव कम ही हो जाती है। जहाँ अधिक तापरोधक्ता और आकुचन के पूर्ण अभाव की आवश्यकता हो वहाँ शुद्ध सिलीका ईंटें, विशेषकर जिनमें थोड़ा चूना भी मिला हो, प्रयुक्त की जाती हैं। काँच भट्ठियो के ऊपरी भाग तथा गैसतापित भट्ठियो के सर्वाधिक गरम भागो के बनाने में सिलीका ईंटो का प्रयोग बहुत किया जाता है। इस कार्य के लिए अग्निईंटें कम उपयोगी होती हैं, कारण गरम करने पर सिकुड़ने के कारण अधिक कालिक प्रयोग के पश्चात् ये ईंटें गिर जाती हैं। परन्तु अग्नि-ईंटें, सिलीका ईंटो या अर्द्ध सिलीका ईंटो की अपेक्षा आकस्मिक ताप-परिवर्तन अधिक सह सकती हैं।

प्रकोष्ठ-भट्ठियो, कोक-भट्ठियो या मफेल-भट्ठियो के बीच की दीवारें बनाने के लिए मुख्य रूप से ग्रेफाइट प्लम्बेगोया कार्बोरण्डम ईंटो का प्रयोग होता है, कारण इन दीवारो में अधिक तापचालक्ता और आकस्मिक तापक्रम-परिवर्तनो को सहन करने की क्षमता अधिक होनी चाहिए। इन ईंटो में अम्लीय और क्षारीय धातुमलो के संक्षारक प्रभाव को सहने की शक्ति अधिक होती है। अत ये ताँबा, सीसा, एल्यूमिनियम, इस्पात आदि को गलानेवाली भट्ठियों में प्राय प्रयोग की जाती हैं। क्रोमाइट ईंटें उदासीन होती हैं और उन सभी कार्यो के लिए प्रयोग की जाती हैं, जिनमें कार्बन ईंटें प्रयोग की जाती हैं। परन्तु कार्बन ईंटो की अपेक्षा क्रोमाइट ईंटो में बाहरी धक्का व चोट सहने की शक्ति अधिक होती है।

जहाँ अधिक दुर्गलता तथा भास्मिक धातवीय आक्साइड और भास्मिक धातुमलों के लिए प्रतिरोधक शक्ति की आवश्यकता हो, वहाँ डोलोमाइट और मैगनीशिया भास्मिक ईंटे प्रयुक्त की जाती हैं। इन ईंटो का मुख्य उपयोग लौह और इस्पात उद्योग में भट्ठियो और परिवर्तको के अन्दर दुर्गल परत लगाने मे होता है। डोलोमाइट ईंटो का स्थान मैगनीशिया ईंटे लेती जा रही है, कारण डोलोमाइट ईंटे मैगनीशिया ईंटो की अपेक्षा कम टिकाऊ होती हैं। सोना, चाँदी और प्लैटीनम की शोधन-भट्ठियों तथा सीसा एण्टीमनी और ताम्र अयस्को के लिए प्रद्रावण-भट्ठियो के बनाने मे मैगनीशिया ईंटें अधिक उपयोगी है। सीमेण्ट की घूर्णक-भट्ठियों मे भी इनका प्रयोग किया जाता है। जिरकोनिया ईंटे और मैगनीशिया इंटे समान कार्यो के लिए प्रयोग की जाती हैं। परन्तु जिरकोनिया ईंटे अधिक दुर्गल तथा विद्युत्-भट्ठियों की छत व मेहराबों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। मैगनीशिया ईंटो की अपेक्षा बौक्साइट इंटे सीमेण्ट की घूर्णक भट्ठियो तथा सीसे की शोधन-भट्ठियों के लिए विशेष रूप से उपयोगी हैं। ठीक प्रकार से बनायी जाने पर बौक्साइट ईंटो मे असाधारण सक्षारण सहन-क्षमता आ जाती है।

दुर्गल ईंटे बनाने के लिए प्रयोग की जानेवाली अग्निमिट्टियों पर प्रयोग से पूर्व प्राकृतिक क्रियाएँ करा ली जाती हैं। प्राकृतिक क्रियाओ से मिट्टी समाग तथा कम ठोस हो जाती है। परिणाम-स्वरूप इसमें पानी अच्छी तरह मिलाया जा सकता है और मिश्रण-पिण्ड यन्त्र में समान रूप से गुजरता है। देखा गया है कि बहुत से कार्यो के लिए दुर्गल ईंटे दो या दो से अधिक मिट्टियो के मिश्रण से अच्छी बनती हैं। कारण ऐसा करने से ईंट मे सभी आवश्यक गुण लाये जा सकते हैं, जो एक ही मिट्टी मे होना कठिन है। आकुंचन को उचित सीमा के भीतर रखने के लिए अग्निमिट्टी के साथ थोड़ी छर्री की मात्रा भी मिलानी चाहिए। काँचित द्रावक तरल में मोटी छर्री की अपेक्षा महीन छर्री शीघ्रता से घुलकर ठोस ईंट बनाती है, जिसके कारण आकस्मिक तापक्रम-परिवर्त्तन से ईंट शीघ्र ही चटक जाती है। दुर्गल वस्तु-निर्माण मे प्रयोग किये जानेवाले पदार्थों के कण-आकार के नियन्त्रण से वस्तु मे अनेक उपयोगी गुण आ जाते हैं।

पकाते समय ईंट के अधिक गलनशील अवयव एक स्थान द्रव-सा बनाते हैं, जो शेष पदार्थों को जोड़कर रखने का कार्य करता है। इस स्थान द्रव पर (विशेषकर बड़े कणवाले पदार्थो का प्रयोग करने पर) दबाव की उपस्थिति में वस्तु की दुर्गलता निर्भर

करती है। ईंट के अगलनशील कणों को जोडकर रखनेवाला मिट्टी से प्राप्त श्यान द्रव छर्री में उपस्थित श्यान द्रव से भिन्न होता है, चाहे छर्री उसी मिट्टी से क्यों न बनी हो। इसका कारण यह है कि छर्री बनाते समय मिट्टी को उच्च तापक्रम पर पकाने के कारण मिट्टी का द्रावक कम गलनशील पदार्थों को अपने में इतना घुला लेता है, कि वह अधिक श्यान और कम गलनशील हो जाता है। इस प्रकार छर्री का यह द्रावक कम गलनशील और अधिक श्यान होता है। जब मिट्टी और छर्री को साथ-साथ पकाया जाता है, तो छर्री की अपेक्षा मिट्टी के द्रावक शीघ्र गल जाते हैं और स्वतन्त्र रूप से अपना कार्य प्रारम्भ कर देते हैं। ईंटों को उच्च तापक्रम पर पूर्णतया पका देने से द्रावक कडा हो जाता है और कम गलनशील पदार्थों को अब और अधिक नहीं घुला सकता। अत इससे बनी हुई ईंट दबाव पर अधिक दुर्गल होती है। अर्द्ध सिलीका ईंटें कभी-कभी कैओलिन शोधन कारखानों से प्राप्त रेतों से भी बनायी जाती हैं। परन्तु इन रेतों में प्रायः फेल्सपार माइका आदि गलनशील पदार्थ रहते हैं। अत इनसे बनी ईंटें द्वितीय श्रेणी की होती हैं। इन ईंटों का आकुंचन बहुत ही कम होता है, कारण उनमें सिलीका की मात्रा अधिक रहती है।

दुर्गल ईंट-निर्माण—अग्नि-ईंटें बनाने की सर्वसाधारण विधि में अग्नि-मिट्टियों को छर्री के साथ चूर्ण कर लिया जाता है। परन्तु श्रेष्ठ ईंटें बनाने के लिए यह विधि सन्तोषजनक नहीं है। अच्छी ईंटें बनाने के लिए मिट्टियाँ पूर्व ही अलग-अलग चूर्ण कर ली जाती हैं और विभिन्न कण आकारवाली छर्रियों को उचित अनुपात में मिलाकर छर्री-मिश्रण बना लिया जाता है। इसके बाद मिट्टी में छर्री-मिश्रण की उचित मात्रा मिलाते हैं। बाद में एक मिश्रक में मिट्टी तथा, छर्री-मिश्रण के मिश्रण में पानी की उचित मात्रा मिलाकर लचीला पिण्ड बना लिया जाता है। मिश्रक से पिण्ड पगयन्त्र में जाता है। ये पगयन्त्र क्षैतिज और ऊर्ध्वाधर दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं। परन्तु क्षैतिज पगयन्त्र को प्राथमिकता दी जाती है, कारण इसमें मिट्टी अच्छी प्रकार गूँधी जाती है।

विपरीत दिशा-मिश्रकों के विकास से पदार्थों के कण-आकार का नियन्त्रण सरल हो गया है, कारण इन मिश्रकों में पदार्थ थोड़े पिसने के साथ-साथ मिलते भी जाते हैं। यह यन्त्र पैन-यन्त्र की भाँति होता है। परन्तु इसमें भारी बेलनों के स्थान पर मिश्रक पखे लगे रहते हैं और एक हलका बेलन होता है। यन्त्र का बाहरी ड्रम एक दिशा में घूमता

है तथा मिश्रक पंखे और बेलन उसकी विरुद्ध दिशा में घूमते हैं। हल्का बेलन घूमकर मिश्रण को गूंधता है, परन्तु कण-आकार को छोटा नहीं करता। आवश्यकता होने पर इस अवस्था में पानी या और कोई कणों को जोड़कर रखनेवाला पदार्थ डाला जा सकता है।

यदि अग्नि-मिट्टी कड़ी हो तो मिश्रण को पगयन्त्र में भेजने से पूर्व उसे एक या अधिक दिन तक अवशोषण गड्डों में रख दिया जाता है। इसमें मिश्रण-पिण्ड पानी को समान रूप से अवशोषित कर लेता है, जिससे आगे की क्रियाओं में सरलता होती है।

ईंटें बनाने के लिए अनेक प्रकार के यन्त्र प्रयोग किये जाते हैं। परन्तु हाथ से ईंटें बनाना अब भी प्रचलित है। कुछ लोगों का विश्वास है कि हाथ से बनी ईंटें यन्त्रों से बनी ईंटों की अपेक्षा अधिक अच्छी होती हैं, कारण यन्त्रों से बनाने पर अधिक दबाव के कारण ईंट अधिक ठोस हो जाती है। यन्त्रों द्वारा अधिक दबाव से बनी ईंटों में आन्तरिक तनाव कभी-कभी काफी अधिक हो जाता है। जब ईंटों की आकृति, स्पष्टता और आकार तथा यथार्थता अधिक महत्त्वपूर्ण हो, तो प्राय हस्तचालित प्रेसों का प्रयोग किया जाता है। परन्तु इस विधि से उत्पादन कम हो जाता है।

इंग्लैण्ड में हाथ से बनी ईंटों के लिए कम मुलायम मिट्टी का प्रयोग करते हैं। एक कुशल कारीगर केवल एक बच्चे की सहायता से, हाथ से २००—२५० ईंटें प्रति घंटा बना सकता है। ये ईंटें इतनी यथार्थ होती हैं, कि दुबारा दबाने की आवश्यकता नहीं होती। अमेरिका में हाथ से ईंटें बनाने के लिए मुलायम मिश्रण-पिण्ड का प्रयोग करते हैं। परन्तु इन ईंटों की आकृति व आकार में यथार्थता लाने के लिए इन्हें दुबारा दबाना पड़ता है। अमेरिका में एक कारीगर दो बच्चों की सहायता से प्रति घंटा ४०० ईंटें हाथ से बना सकता है। ये ईंटें आंशिक रूप से सूख जाने पर दबाव यन्त्रों में दबायी जाती हैं। यहाँ पर भी एक मनुष्य दो बच्चों की सहायता से एक घण्टे में लगभग उतनी ही ईंटें दबा कर ठीक कर देता है जितनी कि बनानेवाला कारीगर एक घण्टे में बनाता है।

यन्त्रों से ईंटें बनाने के लिए साधारणतया तीन विधियाँ प्रचलित हैं। लचीली विधि, अर्द्ध-लचीली विधि तथा अर्द्धशुष्क विधि। लचीली विधि में काफी नरम मिश्रण-पिण्ड का प्रयोग किया जाता है, जैसा कि हाथ से बनी ईंटों के लिए प्रयोग किया जाता

है। इस विधि में ईंटें अधिकतर तार से काटकर बनायी जाती हैं। इस कार्य लिए मिश्रक में अच्छी प्रकार मिलाया हुआ मिश्रणपिण्ड विशेष प्रकार के पगयन्त्र में रखा जाता है। इस पगयन्त्र से मिश्रण-पिण्ड एक ठोस डण्डे के रूप में निकलता है। इस डण्डे की चौड़ाई और मोटाई बननेवाली ईंट की चौड़ाई और मोटाई के समान होती है। अतः इसमें से जितनी लम्बी ईंट बनानी हो, उतने लम्बे टुकड़े काट लिये जाते हैं। इस ठोस डण्डे से पहले ६ ईंटों की लम्बाई के बराबर टुकड़ा काट लिया जाता है, जो आगे चलकर एक लकड़ी में लगे तारों की सहायता से ६ बराबर भागों में काट दिया जाता है। इस प्रकार एक बार में ६ या ८ से अधिक ईंटें बनती हैं और तख्तों पर सुखाने के लिए ले जायी जाती हैं। जब आकृति व आकार में यथार्थता लानी हो तो कुछ सूख जाने के बाद इन ईंटों को दुबारा दबाया जाता है।

अर्द्ध लचीली विधि में मध्यम कण आकार का अग्नि-मिट्टी चूर्ण, छर्री और पानी की उचित मात्राएँ एक मिश्रक में मिलायी जाती हैं, जिससे नरम पिण्ड बन जाय। इस पिण्ड को एक नाँद-मिश्रक में ले जाते हैं, जहाँ इसमें अग्नि-मिट्टी का महीन चूर्ण मिलाकर इसे कुछ कड़ा कर लिया जाता है। इस पिण्ड को पगयन्त्र में ले जाकर विशेष प्रकार के यन्त्रों की सहायता से ईंटें बनायी जाती हैं। इस विधि में यद्यपि इतना अधिक पानी नहीं मिलाया जाता कि ईंट ऐंठ जाय या आकुंचित हो जाय, परन्तु फिर भी अग्नि-मिट्टी के सभी गुण तथा लचीलापन विकसित हो जाता है। चूँकि इस विधि में अधिक दबाव की आवश्यकता नहीं पड़ती, अतः अधिक दबाव से बनी ईंटों में उच्च दबाव के कारण आने वाले दोषों से भी छुटकारा मिल जाता है।

अर्द्ध-शुष्क-विधि से ईंटें बनाने के लिए काफी शक्तिशाली प्रेस की आवश्यकता पड़ती है। इस विधि में छर्री तथा मिट्टी के मिश्रण को अर्द्ध-शुष्क चूर्ण के रूप में प्रयोग किया जाता है। चूर्ण में केवल इतना पानी रहता है कि दबाने पर वह ठोस हो जाय। पानी की मात्रा प्रायः १० प्रतिशत से अधिक नहीं रहती और यह पानी जलवाष्प के रूप में चूर्ण में मिलाया जाता है, कारण इतनी थोड़ी मात्रा में द्रव पानी को समान रूप से मिलाना कठिन है। यह विधि शैल और दूसरी शुष्क मिट्टियों के लिए प्रयोग की जाती है, जिनमें लचीलापन कम होता है। इस कार्य के लिए अनेक प्रकार के प्रेसों का प्रयोग किया जाता है, जो दो तीन बार में थोड़ा-थोड़ा करके काफी दबाव डाल सकते हैं। दबाव कितना ही अधिक क्यों न हो, केवल एक बार दबाने से ईंट मज़बूत नहीं बनती।

ढग से गरम किये गये स्थान उन देशो में आवश्यक होते हैं, जिनमें धूप कम निकलती है। पश्चिमी देशो में सुखाने के लिए भट्ठी के व्यर्थ ताप का उपयोग करते हैं। सुखानेवाले प्रकोष्ठ में उचित स्थानो पर पखे लगाने से सुखाने की गति काफी तेज की जा सकती है। पंखों से हवा का प्रवाह बन्द नही होता।

दुर्गल ईटों के गुण—वैसे तो दुर्गल ईटो के गुण उन पदार्थों पर निर्भर करते हैं, जिनसे वे बनायी जाती हैं। परन्तु ईट बनाने तथा पकाने के समय उन पदार्थों पर की गयी क्रियाओ का भी ईटो के गुणो पर प्रभाव पडता है। दुर्गल ईंटो के मुख्य गुण सारांशत: इस प्रकार है—

दुर्गलता–ईटो की दुर्गलता उन अवस्थाओ पर निर्भर करती है, जिनमें ईंट का परीक्षण किया जा रहा है। यदि परीक्षा के समय वातावरण आक्सीकारक हो तथा तापक्रम १०° सें० प्रति मिनट की गति से बढ रहा हो, तो दुर्गल ईट का गलनताप १५८०° सें० होता है। श्रेष्ठ प्रकार की दुर्गल वस्तुओ में १६७०° सें० से नीचे गलने का कोई चिह्न नही प्रकट होना चाहिए।

अधिक काल तक गरम करने का ईट पर प्रभाव उसके सगठन पर निर्भर करता है। सिलीका ईटे प्रारम्भिक गलन तापक्रम आते ही एक दम विकृत हो जाती हैं, जब कि अग्निमिट्टी ईंटे बहुत धीरे-धीरे विकृत होती हैं। इस विकृति का मुख्य कारण अग्नि-मिट्टी को अधिक काल तक गरम करने पर सिलीमेनाइट या मूलाइट केलासो का बनना बताया जाता है। यदि निर्माणकर्त्ता द्वारा दुर्गल ईट पूरी तरह से पकायी नही गयी, तो आगे चलकर प्रयोग के समय अग्नि-मिट्टी से बनी ईट में आकुचन और सिलीका ईट मे प्रसार होगा। ईट के आकुचन तथा प्रसार की परीक्षा के लिए परीक्षण टुकडे (३"×२"×२") को दो घण्टे में १४१०° से० तक गरम करके आक्सीकारक वातावरण में इसी तापक्रम मे २ घण्टे तक और रखा जाता है। अच्छी दुर्गल ईंटो के इस परीक्षण मे एक प्रतिशत से अधिक आकुंचन या प्रसार नही होना चाहिए।

रचना—प्रयोगकर्त्ता प्राय ईंट की रचना को कम महत्त्व देते हैं। परन्तु इसका काफी महत्त्व होता है। खुरदरी रचनावाली ईंटे, चिकनी रचनावाली ईंटो की अपेक्षा आकस्मिक तापक्रम परिवर्तनो को अधिक सहन कर सकती है। परन्तु चिकनी रचना-वाली ईंटे खुरदरी रचनावाली ईंटो की अपेक्षा धातुमलो और भट्ठी-गैसो की क्रिया के सक्षारक प्रभाव को अधिक काल तक सह सकती हैं। ईंट के तल पर बनी रक्षक परत ही

प्राय. धातुमलों और भट्ठी-गैसो की क्रिया के क्षारक प्रभाव को सहन करती है। यह परत उच्च दबाव से बनायी गयी ईंटों में बन जाती है, कारण उच्च दबाव से मिट्टी के कुछ सूक्ष्मतम कण ऊपरी तल पर आ जाते हैं जिससे एक पतली तथा ठोस परत बन जाती है। इस परत के कारण ईंट का ऊपरी तल रन्ध्रहीन हो जाता है, जब कि भीतरी भाग सरन्ध्र ही रहता है। इस ठोस, कठोर परत से ईंट की घर्षण-रोधकता बढ जाती है, जो कभी-कभी काफी महत्त्वपूर्ण विशेषता सिद्ध होती है।

भट्ठी के अन्दर दुर्गल ईंट के तल पर बने धातुमल और साधारण भट्ठी-ईंधन की राख के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि धातुमल का सगठन दुर्गल ईंट की थोडी मात्रा तथा राख की बहुत अधिक मात्रा से बने मिश्रण के सगठन के समान ही होता है। गरम ईंधन-राख ईंट के तल पर जमकर एक काचीय परत बनाती है। यह परत और अधिक गरम करने पर ईंट के कुछ भाग को घुलाना प्रारम्भ कर देती है और अन्त में भट्ठी की दीवार के सहारे नीचे को बह जाती है। इस प्रकार ईंट का कुछ भाग धीरे-धीरे घुलकर नष्ट हो जाता है। यदि ईंट का तल इतना पर्याप्त कठोर हो, कि इस द्रव को ईंट मे घुसने से रोक सके तो ईंट का नष्ट होना कुछ कम ही जाता है।

प्रामाणिक दुर्गल ईंटो की रचना समान होनी चाहिए तथा उसके तल मे छिद्र या दरारें नही होनी चाहिए। ईंट के सब ओर के तल यथार्थ समतल और कम सरन्ध्र हों। दुर्गल ईंटो की रन्ध्रता प्राय आयतन के विचार से १२ प्रतिशत से कम और भार के विचार से ६ प्रतिशत से कम नही होती।

दबाव-शक्ति--ईंटो की कठोरता उनमे बने सीमेण्ट जैसे पदार्थों के कारण होती है जो अगलनशील अवयवो के कणो को जोडकर रखते हैं। यह जोडनेवाला पदार्थ प्रयुक्त किये जानेवाले पदार्थों में उपस्थित द्रावको के पिघलने से बनता है। इसका बनना ईंटो के पकाने के समय तथा तापक्रम और ईंट निर्माण में प्रयुक्त किये गये दबाव पर निर्भर करता है। ठण्डी अवस्था में ईंटो की दबाव-शक्ति अधिकाश अवस्थाओं में आवश्यक दबाव शक्ति से बहुत अधिक होती है। परन्तु किसी भी अवस्था मे यह १८०० पौंड प्रति वर्ग इच से कम नही होनी चाहिए।

चूँकि दुर्गल ईंटें उच्च तापक्रम पर प्रयुक्त की जाती हैं, अत ठण्डी अवस्था मे दबाव शक्ति की अपेक्षा प्रयोग के उच्च तापक्रम पर दबावशक्ति अधिक महत्त्वपूर्ण है। बौडिन (Bodin) ने दिखाया था कि कुछ अग्नि-मिट्टी और बौक्साइट से बनी ईंटो की

दवाव शक्ति १०००° सें० पर अधिकतम होती है। उसके आगे तापक्रम बढ़ने पर यह शीघ्रता से घटने लगती है। दवाव की उपस्थिति मे अग्नि ईंटो की विकृति का कारण किसी सीमा तक यह वताया जाता है कि मिश्रण में द्रावको की थोडी मात्रा दवाव की उपस्थिति में अगलनशील सूक्ष्म कणों से रासायनिक क्रिया करती है, जो साधारण दवाव की अवस्थाओ में बहुत धीरे-धीरे होती है। द्रावको की उपस्थिति के अतिरिक्त और भी कई कारणो से ईंट कमजोर हो जाती है। वाट ने सुझाव रखा कि १२००° सें० के लगभग अग्नि-ईंटों की विकृति सिलीमेनाइट के शीघ्र केलासीकरण के कारण होती है। दवाव की उपस्थिति में केलासीकरण की गति अत्यधिक शीघ्र होने से ईंट विकृत हो जाती है। अग्नि-ईंटो को २५ पौंड प्रति वर्ग इंच दवाव पर १३५०° सें० तक गरम करने से उनमे कोई विचारणीय विकृति नही होनी चाहिए। इसी दवाव पर सिलीका ईंटो को *१५८०° सें० का तापक्रम सहना चाहिए।*

चटक कर टूटना—आकस्मिक तापक्रम-परिवर्तन से जब ईंट चटकती है, तो प्राय: देखा जाता है, कि दरारें छोटी-छोटी न होकर एक रेखा के रूप में ईंट के अन्दर तक चली जाती है। अत ईंट टुकडो में टूट जाती है। उसे अग्रेजी में स्पॉलिंग (Spalling) कहते हैं। यह दोष ईंट की रचना पर निर्भर करता है। अधिक ठोस ईंट की अपेक्षा कम ठोस ईंट कम टूटेगी। इस क्षेत्र में इसी कारण अग्नि-मिट्टी ईंटें सिलीका ईंटो की अपेक्षा श्रेष्ठ, समझी जाती हैं। इसकी परीक्षा करने के लिए पहले से तौली हुई ईंट को १३५०° सें० तक गरम करके १५ मिनट तक उस पर ठण्डी हवा वहाते हैं। इस प्रकार १० वार परीक्षण के पश्चात् ईंट को पुन तोला जाता है। अच्छी दुर्गल ईंट में इस *परीक्षण के कारण टुकडे टूट जाने से भार में १२ प्रतिशत से अधिक हानि नही* होनी चाहिए। इन अवस्थाओ में मैगनीसिया ईंटें पूर्णतया नष्ट हो जाती हैं।

सैगर—सैगर विभिन्न आकार और आकृति के अग्निमिट्टी के बक्स होते हैं जिनमें रखकर वस्तुएँ पकायी जाती हैं। जिससे वस्तुएँ लौ के सीधे सम्पर्क में न आयें और भट्ठी-गैसो से सुरक्षित रहे। ये गोलाकार या चौकोर होते हैं।

मृद्-वस्तु निर्माण में प्रयोग होनेवाली दुर्गल वस्तुओ में सबसे महत्वपूर्ण सैगर ही है। ये प्राय अग्नि-मिट्टियो और छर्री के मिश्रण से बनाये जाते हैं। छर्री का कार्य सरन्ध्र बनाना होता है। बननेवाली वस्तु की मजबूती तथा मिट्टी के लचीलेपन का ध्यान रखते हुए छर्री का अनुपात यथासम्भव अधिक रखना चाहिए। छर्री से सैगर

में रन्ध्रता आती है, जिससे सैगर में आकस्मिक तापक्रम परिवर्तनों को सहन करने की क्षमता आ जाती है और आकुंचन कम होता है। जिस पदार्थ से छर्री बनायी जाती है, उसे अच्छी तरह पका लेना चाहिए, जिससे मिट्टी में मिलाकर इससे बनी दुर्गल वस्तुओं को पकाने पर छर्री में आकुंचन न हो।

सैगर निर्माण हेतु छर्री मिट्टी का मिश्रण बनाने के लिए, लचीली और अल्प लचीली या रेतीली दो प्रकार की मिट्टियों का प्रयोग करना लाभदायक होता है। दोनों प्रकार की मिट्टियाँ किस अनुपात में डाली जायँ, यह सदैव परीक्षण से निश्चय किया जाता है। सैगर में साधारणतः छर्री ५०-६० प्रतिशत होती है। सैगर निर्माण प्रारम्भ करने के लिए निम्नलिखित अवयव-अनुपात में मिश्रण बनाना लाभदायक होगा—

लचीली मिट्टी	३० भाग
अल्पलचीली या रेतीली मिट्टी	१७ ,,
मोटी छर्री	३० ,,
मध्यम छर्री	२३ ,,
योग	१००

चीनी और पोरसिलेन तश्तरी या दूसरी चपटी वस्तुओं को रखने के लिए छोटे सैगर बनाने में महीन छर्री प्रयोग की जाती है।

सर्वप्रथम शुष्क अवस्था में ही छर्री और मिट्टी की तहें एक दूसरे के ऊपर फैला दी जाती हैं। उसके बाद ऊपर से पानी छिड़कते हुए उन्हें पानी के साथ मिलाया जाता है। पानी फुहार के रूप में छोड़ा जाता है और मिट्टी, छर्री, पानी को एक यन्त्र द्वारा मिलाया जाता है। मिला हुआ पिण्ड एक दो बार पगयन्त्र में भेजकर काफी गूंधा और दबाया जाता है। यह गूंधा हुआ पिण्ड तब ढेर बनाकर ठण्डे स्थान में रखा रहने दिया जाता है और कुछ दिनों या कुछ सप्ताह तक यहां उस पर अम्लक्रिया होने दी जाती है।

सैगर निम्नलिखित विधियों में से किसी एक के द्वारा बनाये जाते हैं।

हाथ से बनाना—इस विधि में महीन छर्री छिड़की हुई मेज पर हाथ से पिण्ड को पीटकर पटिया बना ली जाती है। बाद में इस पटिया को लकड़ी के ढांचे के चारों ओर लपेटकर सैगर की दीवारें बना ली जाती हैं। मिश्रण-पिण्ड इतना कड़ा हो, कि यह लकड़ी के हथौड़े से पीटने पर चादर के रूप में फैल जाय, परन्तु हथौड़ा पिण्ड में धँसने न पाये। इसके बाद सैगर की तली के लिए पटिया बनायी जाती है और उसे

उचित आकार में काट लेते हैं। इसके बाद ढाँचे समेत सैगर की दीवारें तलीवाली पटिया पर खड़ी की जाती हैं। दीवारों की पटियाओं के जोड़ सावधानीपूर्वक एक लकड़ी के चाकू द्वारा दबाकर मिला दिये जाते हैं। तली और दीवार की पटियाएँ भी जोड़ दी जाती हैं। अब ढाँचा उठा लिया जाता है और सैगर के अन्दर की ओर भी उसी प्रकार जोड़ आदि ठीक कर दिये जाते हैं। इँग्लैण्ड में प्राय. सैगर की तली बनानेवाले मिश्रण-पिण्ड में दीवार बनानेवाले मिश्रण-पिण्ड की अपेक्षा छर्री अधिक अनुपात में रहती है। एक कारीगर इस विधि से ४० से ५० सैगर तक प्रति दिन बना सकता है।

यन्त्र दबाव-विधि—इस विधि से किसी भी आकृति और आकार के सैगर बनाये जा सकते हैं। पानी का यथासम्भव कम प्रयोग करते हुए मिश्रण-पिण्ड ठीक बनाया जाय जिससे दबाने से ठीक सैगर बन सकें। लचीले मिश्रण-पिण्ड की अपेक्षा अल्प लचीले मिश्रणपिण्ड से अच्छा परिणाम निकलता है। इस विधि में सबसे बड़ा दोष यही है कि सैगर की दीवारों की अपेक्षा उसकी तली पर अधिक दबाव पड़ता है, जिसके कारण सैगर में असमान मजबूती आ जाती है और दीवार जल्दी टूट जाती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए केवल वे सैगर ही इस विधि से बनाये जाते हैं, जिनकी ऊँचाई चार इंच से अधिक न हो। अधिक ऊँचे सैगर इस विधि से बनाने पर तीन-चार बार के प्रयोग के पश्चात् दीवारों पर चटक जाते हैं। विद्युत्-चालित यन्त्रों से एक मनुष्य ३०० से ४०० तक तीन इंच ऊँचे सैगर प्रति दिन बना सकता है।

जॉली विधि—जॉली यन्त्र से केवल गोलाकार सैगर ही बनाये जा सकते हैं। इसके लिए मिश्रण-पिण्ड इतना मुलायम होना चाहिए कि प्रोफाइल आसानी से कार्य कर सके। इस विधि में प्रयुक्त होनेवाले साँचे प्राय दो भागों में बनाये जाते हैं। सैगर की दीवारें बनाने के लिए साँचे का भाग एक से दो इंच तक मोटा चक्र होता है। चक्र की मोटाई सैगर के आकार पर निर्भर करती है। सैगर की तली ऊपर की ओर कुछ उठी हुई होती है जिससे तली के निचले भाग में मेहराब जैसी बन जाय। इससे तली में मजबूती आ जाती है। जॉली से सैगर बनाने की क्रिया साधारण मृत्पात्र बनाने की क्रिया-जैसी ही है। परन्तु प्रत्येक बार प्रयोग से पूर्व साँचे में महीन मिट्टी-चूर्ण छिड़क दिया जाता है, जिससे साँचे से सैगर सरलतापूर्वक निकल आयें। साँचे में छिड़कने के लिए यह मिट्टी-चूर्ण प्राय दबाव विभाग की सफाई से प्राप्त धूल होती है। सैगर बनाने के लिए प्रोफाइल लकड़ी के लगभग एक इंच मोटे टुकड़े में लगी रहती है, जिससे प्रयोग के समय वह मजबूती से रुकी रहे और कार्य कर सके।

ढलाई विधि—काँच-घर के भाण्ड जैसे सैगर कभी-कभी प्लास्टर के साँचे द्वारा ढलाई-विधि से बनाये जाते हैं। इस कार्य के लिए ढलाई घोला बनाने में क्षारों का प्रयोग करके छर्रों को अधिक अनुपात में डाला जा सकता है। अतः इस प्रकार सैगर की दुर्गलता भी बढ़ायी जा सकती है। परन्तु इस विधि में व्यय अधिक पड़ता है। इसमे यह विधि कम प्रचलित है।

सैगर लकड़ी के ताखो पर सुखाये जाते हैं। गीले सैगर एक दम सीधे लकड़ी के ताखो पर नही रखे जाते, वरन् प्लास्टर या लोहे की पटियाओं पर रखे जाते हैं। यूरोप मे, जहाँ पर दो प्रकोष्ठवाली भट्ठियाँ प्रयुक्त की जाती हैं, ये सुखानेवाले ताख प्राय दूसरे प्रकोष्ठ के चारो ओर बनाये जाते हैं। नलो-द्वारा भट्ठियों का व्यर्थ ताप इन ताखो मे बहाया जाता है। इंग्लैण्ड मे एक प्रकोष्ठवाली भट्ठियाँ प्रयोग करने के कारण सैगर सुखाने के लिए अलग से कमरे बनाये जाते हैं, जिन्हे वाष्पित्र के फाल्तू ताप से गरम किया जाता है। सैगर बहुत शीघ्रता से नही सुखाने चाहिए, अन्यथा सुखाते समय सूक्ष्म दरारे पड जाती हैं, जो आगे प्रयोग करने के समय बढ जाती हैं।

सैगर उसी भट्ठी मे पकाये जाते हैं, जिसमे साधारण पात्र पकाये जाते हैं, परन्तु कच्चे सैगरो को खाली ही पकाना चाहिए। एक प्रकोष्ठवाली साधारण भट्ठी में सबसे ऊपर का भाग कच्चे सैगर पकाने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। परन्तु यूरोपीय देशो की दो प्रकोष्ठवाली भट्ठियों मे ऊपरी प्रकोष्ठ प्राय कच्चे सैगरो को पकाने के लिए रखा जाता है। ऊपर के प्रकोष्ठ मे सैगर या तो खाली रखे रहते हैं या उनमे हलके पात्र रख दिये जाते हैं। इस प्रकार की पकावविधि सस्ती होते हुए भी सन्तोषजनक नहीं है, कारण सैगर पूरी तरह पक नही पाते और यदि उन्हे भट्ठी मे रखते या भट्ठी से निकालते समय सावधानी न बरती गयी तो ऐंठ सकते हैं और टूट सकते हैं।

प्रलेपित मृत्पात्रों, विशेषकर सीसा-प्रलेप से प्रलेपित मृत्पात्रों को रखने के लिए प्रयुक्त किये जानेवाले सैगर प्राय अन्दर की ओर प्रलेप घोले से पोत दिये जाते हैं, जिससे सैगर प्रलेप वाष्पों को न अवशोषित कर सके। इस कार्य के लिए प्रलेप प्राय प्रलेप रखनेवाले कुण्डों या नांदो को धोने से प्राप्त किया जाता है। यदि बार-बार गरम व ठण्डा करने के कारण सैगर की तली से छोटे-छोटे टुकड़े टूटकर गिरने प्रारम्भ हो जायँ, तो इस सैगर तली का बाहरी भाग भी प्रलेप-घोले से पोत दिया जाता है। इस प्रकार पोतने से सैगर का कार्यकाल भी बढ जाता है। सैगरो को नम स्थानों मे

रखने या किसी प्रकार उनकी नमी अवशोषित कर लेने से भी सैगरों का जीवन कम हो जाता है।

सैगरो को कई बार प्रयोग करने के पश्चात् उनकी दीवारो में दरारें पड जाती हैं, या किनारे टूटकर गिरने लगते हैं। पता लगने पर इन स्थानों की मरम्मत कर देनी चाहिए। इन दरारो की मरम्मत करने के लिए उपयोगी सीमेण्ट उचित अनुपात मे छर्री, व्यर्थ प्रलेप या सोडा सिलीकेट मिलाकर बनाया जा सकता है। थोड़ा लचीलापन लाने के लिए इसमें थोडी चीनी मिट्टी मिलायी जा सकती है। परन्तु अधिक चीनी मिट्टी डालने से सीमेण्ट में आकुंचन होगा और जोड टूटकर गिर जायेंगे। जब सोडा सिलीकेट डालकर सीमेण्ट बनाया गया हो तो सैगर को पुन प्रयोग करने से पूर्व दुबारा काफी उच्च तापक्रम पर गरम कर लें, कारण सोडा सिलीकेट की उपस्थिति में यह सीमेण्ट काफी उच्च तापक्रम पर कडा होता है।

सैगर के जीवनकाल अर्थात् कार्यकाल के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। प्रयोग के समय की अवस्थाओं के अनुसार वे ३ से २५ पकाव तक चल सकते हैं। जो सैगर साधारण अवस्थाओं में १५ पकाव तक चलता है उत्पादन शीघ्र कर देने से वह ८ या ९ पकाव ही चलेगा। टाली कारखानों में सैगर २५ पकाव तक चल जाते हैं, कारण साधारण मृत्पात्रों की अपेक्षा टालियाँ धीरे-धीरे पकायी व ठण्डी की जाती हैं। यूरोपीय देशो के कुछ पोरसिलेन कारखानों में जहाँ बहुत ही उच्च तापक्रम पर तथा शीघ्र गति से पात्र पकाये जाते हैं, सैगर केवल ३ पकाव तक ही कार्य करता है। श्वेत मृत्पात्रों को पकाने में सैगर का औसत काल ६ पकाव तक है।

सैगर बनाने के लिए विभिन्न पदार्थ—कुछ लेखकों ने सैगर निर्माण में कार्बोरण्डम को एक सन्तोषजनक पदार्थ बताया है। परन्तु दूसरे लेखकों का कहना है, कि गलित स्फटिक चूर्ण का प्रयोग करके कम मूल्य में ही कार्बोरण्डम से अच्छे या कम-से-कम वैसे ही सैगर बनाये जा सकते हैं। इनमें कार्बोरण्डम-जैसा अवकारक प्रभाव का भय भी नहीं रहता। गलित स्फटिक चूर्ण को किसी भी दुर्गल मिट्टी के साथ छर्री के स्थान पर भी प्रयुक्त किया जा सकता है। मार्ल और अग्नि-मिट्टियों के स्थान पर बॉल मिट्टी और चीनी मिट्टी का मिश्रण डालने से सैगर का कार्य काल बढ जाता है। सैगर जितने ही उच्च तापक्रम पर प्रयोग किया जाय, बॉल-मिट्टी की मात्रा उतनी कम प्रयोग करनी चाहिए। उचित मिट्टी-मिश्रण के साथ ५०-६० प्रतिशत गलित स्फटिक चूर्ण

का प्रयोग करने से जल्दी-जल्दी गरम व ठंडा करने में सैगर जल्दी नहीं टूटता। गलित स्फटिक चूर्णवाले सैगर को बजाने पर बड़ा धीमा शब्द निकलना चाहिए। जो सैगर अच्छा शब्द उत्पन्न करते हैं, वे अपेक्षाकृत शीघ्र ही चटक जाते हैं। मैके (H Thue Macke) ने सन् १९३४ ई० में पता लगाया कि सैगर के साधारण मिश्रणपिण्ड में लगभग १५ प्रतिशत टाल्क प्रयोग करने से सूखी तथा पकी हुई दोनों अवस्थाओं में सैगर में अधिक मजबूती आ जाती है और सम्पूर्ण आकुंचन तथा प्रसार-गुणक कम हो जाता है। टाल्क की इस मात्रा से सैगर का तल चिकना होता है, और ताप-परिवर्तन अधिक सह सकता है।

मफल (Muffle)—मफल, दुर्गल बक्स या प्रकोष्ठ होते हैं, जिनमें रखकर पात्रों को लौ या ईंधन-गैसों के सीधे सम्पर्क से बचाकर गरम किया जा सकता है। मफल और सैगर के काम समान हो हैं। अन्तर केवल इतना है कि मफल भट्ठी के अन्दर स्थायी रूप से बने होते हैं, उन्हें सैगरों की भाँति आसानी से हटाया नहीं जा सकता। मफल विभिन्न आकारों के बनाये जाते हैं। छोटे मफल अलग-अलग भागों में नहीं बनाये जाते, वरन् पूरा मफल एक साथ ही बनाया जाता है। इसकी तली चपटी और छत गोलाई लिये रहती है। बड़े मफल प्राय कई भागों में दुर्गल ईंटों या दुर्गल टालियों से बनाये जाते है। जोड़ पर विशेष प्रकार की टालियाँ या ईंटे प्रयुक्त की जाती हैं, जिनमें किनारे व नालियाँ रहती हैं। एक टाली की नाली में दूसरी टाली का किनारा रहता है। इस प्रकार भट्ठी-गैसें मफल में अन्दर नहीं जा पाती।

चूँकि मफल या प्रकोष्ठ में ताप उसकी दीवारों से होकर घुसता है, अत. मफल या प्रकोष्ठ दीवारें कार्योपयोगी मजबूती का ध्यान रखते हुए यथासम्भव पतली हों और दीवारों की ताप-चालकता अधिक हो। ईंटों से बनी बड़ी मफल की दीवारें $4\frac{1}{2}$ इंच मोटी तथा छोटी मफल की दीवारें $\frac{1}{2}$ से $\frac{3}{4}$ इंच तक मोटी होती हैं।

एक अच्छी मफल में निम्नलिखित गुण आवश्यक होते हैं—(१) आकस्मिक तापक्रम परिवर्तनों की सहनक्षमता। (२) दीवारों की उच्च ताप-चालकता। (३) उच्च तापक्रम पर तली का मजबूत रहना। तापक्रम-परिवर्तन-रोधकता, अग्नि-मिट्टी और छर्रों का उचित अनुपात से बना मिश्रण-पिण्ड प्रयोग करने से लायी जा सकती है। आकस्मिक तापक्रम-परिवर्तनों को कम सरन्ध्र पदार्थ की अपेक्षा अधिक सरन्ध्र पदार्थ अधिक सह सकता है। अग्नि-मिट्टी की ताप-चालकता उसमें ग्रेफाइट

कार्बोरण्डम या कार्बन मिलाकर काफी बढ़ायी जा सकती है। इन कार्बनिक पदार्थों को मिलाकर बनायी गयी मफल दीवारों को बाहर की ओर अग्निमिट्टी के घोल से पोत देना चाहिए, अन्यथा ये कार्बनिक पदार्थ जलकर निकल जायेंगे और मफल की दीवार कमजोर हो जायगी। प्रयोगशालाओं के लिए छोटी मफल बनाने के लिए गलित स्फटिक काफी लाभदायक होता है, कारण इस मफल को भी बिना चटकने के भय के शीघ्रता से गरम व ठण्डा किया जा सकता है। गलित स्फटिक से बनी मफल, भट्ठी-गैसों के लिए अपारगम्य होती है, जब कि अग्नि-मिट्टी और छर्रो से बनी मफल में यह गुण नहीं होता। एक साथ पूरी बनायी जानेवाली छोटी मफल की तली बनाने में विशेष सावधानी रखनी चाहिए। तली ऐसी हो कि उच्च तापक्रम पर वस्तुओं के भार से यह टूट न जाय। तली बनाने में मोटी और महीन छर्रियों को उचित अनुपात में प्रयुक्त करने से तली से भार सहने की क्षमता बढ जाती है। कार्बोरण्डम की थोड़ी मात्रा से तली की मजबूती काफी बढ जाती है। छर्रो को अग्नि-मिट्टी के साथ मिलाने से पूर्व उसे पानी में डाल रखना चाहिए जिससे मफल अधिक सरन्ध्र रहे। मफल का सरन्ध्र रहना परमावश्यक है।

मफल निर्माण—छोटी मफल लकडी के ढाँचे की सहायता से हाथ से अच्छी बनती है। अल्प लचीला तथा कड़ा मिश्रण-पिण्ड भीगे हुए पटसन के कपड़े पर पीटकर उचित मोटाई में फैला दिया जाता है। इस चपटे पिण्ड को एक लकडी के ढाँचे के चारों ओर लपेट देते हैं। बाद में यह पटसन का कपडा छुडा लिया जाता है और चपटे पिण्ड के दो सिरों को जोडकर लकड़ी के करण (Tool) से चिकना करके ठीक कर दिया जाता है। इसी प्रकार मफल का पिछला भाग बनाकर जोड दिया जाता है। जोडते समय अधिक पानी का प्रयोग न करें, अन्यथा सुखाते समय जोड चटक जायगा। जब मिट्टी कुछ सूख जाय तो लकड़ी का ढाँचा निकाल लिया जाता है और मफल छिद्रमय लकडी के तख्तों पर धीरे-धीरे सुखायी जाती है। सुखाते समय मफल का पीछे का भाग नीचे रहना चाहिए। छोटी मफल सैगरों की भाँति ढालकर भी बनायी जा सकती है। कभी-कभी मफल का खोखला भाग यन्त्रों की सहायता से बनाकर उसमें तली हाथ से जोड़ दी जाती है।

छोटी मफलों को सुखाने में बडी सावधानी की आवश्यकता है, कारण इनके शीघ्र या असमान सुखाव से इनके चटक जाने या ऐंठ जाने की सम्भावना होती है। सुखाते समय पडी छोटी दरारों का पकाने से पूर्व पता नहीं चल पाता और पकाने के बाद उन्हें

किसी प्रकार सुधारा नहीं जा सकता। भारतवर्ष-जैसे गरम देशों में प्रथम स्तर में उन्हें ठण्डे स्थान में सुखाना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो इस काल के सुखाव के लिए कमरा धरातल के नीचे बनाया जाय तो अच्छा। बाद में गरम तालों में या खुली धूप में रखकर सुखाया जा सकता है।

अधोगनि भट्ठियों में पकाने के लिए मफलों को भी सँगरों की भाँति एक दूसरे के ऊपर रखकर उच्च तापक्रम पर पकाया जाता है। कच्चे सँगरों के पकाने की भाँति इन्हें साधारण मृत्तान भट्ठी के ऊपरी भाग में रखकर भी पकाया जा सकता है।

घरियाएँ—घरियाएँ दुर्गल पदार्थों से बनायी जाती हैं। घरियाओं की आकृति प्रायः साधारण गिलास-जैसी होती है, जिसका ऊपरी भाग खुला रहता है। ये विशेष प्रकार के दुर्गल पदार्थों से बनायी जाती हैं। इनका प्रयोग प्रलेप तथा एनामेल निर्माण में काँचितों के प्रद्रावण तथा धातु और मिश्रधातुओं के गलाने में होता है। घरियाएँ सभी आकार की होती हैं। सबसे छोटी घरिया प्रयोगशाला के प्रयोग के लिए होती है और सबसे बड़ी घरियाओं में लोहा, तांबा आदि गलाये जाते हैं। प्रयोगशाला में रासायनिक विश्लेषण के लिए घरिया अधिक दुर्गल रासायनिक पोरसिलेन से बनायी जाती है। जब कि सोने तथा चाँदी के शोधन के लिए क्यूपेला नामक छोटी-छोटी घरियाएँ अस्थिराख से बनायी जाती हैं, कारण अस्थिराख में ताँबे, सीसे आदि के आक्साइडों को अवशोषित करने का गुण है। यह आक्साइड सोने तथा चाँदी में प्रायः अपद्रव्य के रूप में रहते हैं। गलित सोने और चाँदी को अस्थिराख अवशोषित नहीं कर पाती।

घरियाओं में उत्तम दुर्गलता के साथ-साथ आकस्मिक तापक्रम परिवर्तनों को सहन करने की क्षमता भी होनी चाहिए, कारण गलित पदार्थ को गिराने के लिए उच्च तापक्रम पर ही घरियाओं को भट्ठी से बहुत शीघ्रता से निकाला जाता है। जिस पदार्थ से घरिया बनी है, उस पदार्थ पर घरिया में गलाये गये गलित पदार्थ की रासायनिक क्रिया नहीं होनी चाहिए। अतः विशेष कार्यों के लिए उपयोगी घरिया बनाने में दुर्गल पदार्थों का चुनाव बड़ी सावधानी से करना चाहिए।

घरिया बनाने में प्रयुक्त किये गये कच्चे मालों के आधार पर घरियाओं को मोटे रूप से निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है। (क) अग्नि-मिट्टी की घरियाएँ। (ख) प्लम्बेगो तथा ग्रेफाइट की घरियाएँ। (ग) विशेष घरियाएँ।

अग्नि-मिट्टी की घरियाएँ—साधारण कार्यों और विशेषकर चिक्कन-प्रलेप तथा काँच

कलइयोंको काँचित बनानेके लिए अग्नि-मिट्टी की घरियाएँ प्रयोग की जाती हैं। ये घरियाएँ अधिक दुर्गल होती हैं और अधिकांश गलित पदार्थों का संक्षारक प्रभाव सहन कर सकती हैं। परन्तु इनमें आकस्मिक तापक्रम-परिवर्तनों को सहन करने की क्षमता कम होती है। अतः कुछ बार प्रयुक्त करने के पश्चात् वे चटक जाती है। अग्नि-मिट्टी की घरियाएँ अधिक दुर्गल अग्नि-मिट्टी तथा उसी अग्नि-मिट्टी से बनी २५ प्रतिशत छर्री के मिश्रण से बनायी जाती हैं। जब अग्नि-मिट्टियों के साथ बॉल-मिट्टी भी प्रयुक्त की जाय, तो छर्री ५० प्रतिशत तक डाली जा सकती है, जैसा कि लन्दन की घरियाओं में होता है। हैसियन (Hessian) सिलीकामय घरियाएँ बनाने के लिए अग्निमिट्टी के साथ शुद्ध बालू भी मिला दी जाती है। ये घरियाएँ सोना, चाँदी आदि बहुमूल्य धातुएँ गलाने के काम आती हैं। इन घरियाओं में प्रायः मुक्त सिलीका और मिट्टी की समान मात्राएँ रहती हैं। मजबूत घरिया बनाने के लिए मिट्टी काफी लचीली होनी चाहिए।

प्लम्बेगो घरियाएँ—ये घरियाएँ अधिक दुर्गल और आकस्मिक तापक्रम-परिवर्तनों की ओर काफी सहनशील होती हैं। चूँकि कार्बन रासायनिक क्रियाओं की ओर उदासीन है, अतः लगभग सभी धातुएँ और मिश्र धातुएँ इन घरियाओं में गलायी जा सकती हैं। इन घरियाओं की ताप-चालकता भी अधिक होती है। इन घरियाओं में केवल एक दोष है। वह यह कि यदि इन घरियाओं का तल अग्नि-मिट्टी घोले से पोत न दिया जाय तो वे शीघ्र ही आक्सीकृत हो जाती हैं। साधारण अग्नि-मिट्टी में ५ से ८ प्रतिशत ग्रेफाइट या गैस कार्बन मिलाकर घरिया बनाने से घरिया के दुर्गल गुण सुधर जाते हैं और उनमें आकस्मिक तापक्रम परिवर्तनों को सहने की क्षमता भी बढ़ जाती है। ये मिश्र घरियाएँ प्रायः शुद्ध इस्पात और पीतल जैसी सुग्राही मिश्र धातुओं को गलाने के लिए प्रयोग की जाती है, कारण इन्हें गलाने में अधिक कार्बन की उपस्थिति हानिकर होती है। साधारण प्लम्बेगो घरियाएँ एक भाग लचीली अग्नि-मिट्टी और दो से तीन भाग तक ग्रेफाइट या कोक चूर्ण मिलाकर बनायी जाती हैं। ये घरियाएँ प्रायः ढलवाँ लोहा, नरम इस्पात, कठोर इस्पात तथा ताँबा आदि के गलाने के काम आती हैं।

अग्नि-मिट्टी की घरियाओं की अपेक्षा कम सरन्ध्र तथा अधिक टिकाऊ होने और गलित पदार्थों को कम अवशोषित करने के कारण, ग्रेफाइट या प्लम्बेगो घरियाएँ सोना, चाँदी आदि मूल्यवान् धातुओं और मिश्र धातुओं को गलाने के काम आती हैं। इन घरियाओं का तल अधिक चिकना होने के कारण इनमें गलित पदार्थ गिराने में भी सरलता रहती है। गलित पदार्थ घरिया में नहीं लगा रहता।

ग्रेफाइट या प्लम्बेगो घरियाएँ बनाने के लिए ग्रेफाइट को ८००° से ९००° से० पर निस्तापित किया जाता है, जिससे वाष्पशील पदार्थ निकल जायें। उसके बाद इसे ८० से ९० नम्बर तक की चलनी से छाना जाता है। अग्नि-मिट्टी अलग से चूर्ण करके ६० से ८० नम्बर तक की चलनियों से छानी जाती है। यदि छर्रों का उपयोग करना हो, जैसा कि बड़ी घरियाओं में होता है, तो छर्रों को चूर्ण करके ३० से ४० नम्बर तक की चलनियों से छान लिया जाता है। अब इन पदार्थों को उचित अनुपात में लेकर अच्छी तरह मिला लिया जाता है। इसमें पानी मिलाकर कुछ समय तक अम्लक्रिया होने के लिए छोड़ दिया जाता है। अम्लक्रिया से मिश्रण-पिण्ड की कार्योपयोगिता बढ़ जाती है। अम्लक्रिया होने के पश्चात् पिण्ड पगयन्त्र में गूँधा जाता है और अब घरियाएँ बनाने के लिए पिण्ड तैयार है।

बड़ी घरियाओं को हाथ से बनाना ठीक समझा जाता है, कारण इससे घरिया अधिक मजबूत और अच्छी बनती है। हाथ से बनाने के लिए एक घरिया के लिए पर्याप्त मिश्रण लेकर एक तिपाई पर जोर से पटक दिया जाता है, जिससे मिश्रण-पिण्ड ठोस रचना का हो जाय। इसके बाद इसे हाथ से लकड़ी या प्लास्टर के साँचे में घरिया की आकृति दे दी जाती है। यह घरिया बहुत धीरे-धीरे सुखायी जाती है, अन्यथा सूक्ष्म दरारें पड़ जाती हैं। छोटी घरियाओं को बनाने के लिए दबाव विधि या जॉली विधि का प्रयोग किया जाता है। जॉली विधि की अपेक्षा दबाव विधि से बनी घरियाएँ अधिक ठोस होती हैं। स्वर्णकारों के लिए सोना चाँदी गलाने के लिए प्लम्बेगो घरियाएँ हस्त-चालित दबाव यन्त्रों से बनायी जाती हैं।

पकाने से पूर्व प्लम्बेगो या ग्रेफाइट घरियाओं को धुली हुई महीन अग्नि-मिट्टी और सोडा सिलीकेट के घोले से बहुत पतला पोत दिया जाता है। इस पोतने के कारण पकाने पर घरिया के ऊपर नमक प्रलेप की भाँति सोडा एल्यूमिनो सिलीकेट की पारदर्शक परत चढ़ जाती है। इस परत के कारण घरिया का ग्रेफाइट सरलता से आक्सीकृत नहीं हो पाता तथा घरिया तल भी चिकना रहता है। ग्रेफाइट घरियाएँ मफल भट्ठियों में ९००° से ९५०° से० पर सर्वोत्तम पकती हैं। मफल में वातावरण अवकारक रखा जाता है। इसके लिए जब मफल ८००° से० से ऊपर उष्मा पर होती है, तो मफल में बने छिद्रों से उसमें कोयला-चूर्ण या लकड़ी के टुकड़े फेंके जाते हैं।

विशेष घरियाएँ—विशेष कार्यों के लिए विभिन्न प्रकार की घरियाएँ बनायी जाती

है। इनके निर्माण में कभी-कभी एलण्डम अर्थात् गलित एल्यूमिना चूर्ण, कार्बोरण्डम, क्रोमाइट तथा जिरकोनिया आदि विशेष दुर्गल पदार्थों का प्रयोग किया जाता है।

एलण्डम (Alundum) घरियाएं—ये घरियाएं अत्यधिक दुर्गल तथा ताप की अच्छी चालक होती हैं। इनका मूल्य अधिक होने के कारण साधारण औद्योगिक कार्यों में इनका प्रयोग नहीं किया जाता।

गलित सिलीका घरियाएं—जब गलित पदार्थ भारिमक गुणोंवाला न हो तो ये घरियाएँ काफी लाभदायक सिद्ध होती हैं। पोरसिलेन घरियाओं की भाँति ये घरियाएँ भी चिकनी और रन्ध्रहीन होती हैं तथा पोरसिलेन घरियाओं की अपेक्षा आकस्मिक तापक्रम-परिवर्तन अधिक सह सकती हैं। अतः प्रयोगशालाओं के साधारण कार्यों के लिए पोरसिलेन घरियाओं का स्थान गलित सिलीका घरियाएँ धीरे-धीरे लेती जा रही हैं। इन घरियाओं को बनाने के लिए स्फटिक को १७००° सें० से ऊपर गलाकर उसे घरिया की आकृति में जमा दिया जाता है।

घरिया-निर्माण—दुर्गल घरियाएँ भी उन विभिन्न विधियों से बनायी जा सकती हैं, जिनसे गोल मृत्पात्र बनाये जाते हैं। ये विधियाँ हैं—(१) प्लास्टर साँचों द्वारा ढालना, (२) जॉली विधि, (३) चाक विधि, (४) यन्त्रचालित प्रेसों में दबाकर (५) हाथ से दबाकर।

जब मिट्टी या मिश्रण-पिण्ड अधिक लचीला न हो, तो घरिया निर्माण के लिए ढलाई विधि अधिक उपयोगी होती है। अधिक लचीले मिश्रण-पिण्ड से ढलाई विधि द्वारा सन्तोषजनक घरियाएँ नहीं बन सकती। ढलाई-घोल साधारण रूप से सोडा सिलीकेट या सोडा कार्बोनेट को थोड़ी मात्रा डालकर बनाया जाता है। ढलाई-घोले का घनत्व ३६ औंस प्रति पाइण्ट होना चाहिए। यदि मिट्टी में घुलनशील सल्फेट हो तो विद्युद्विश्लेष्यों को डालने से पूर्व बेरियम कार्बोनेट की थोड़ी मात्रा डालकर उन्हें अवक्षेपित कराकर दूर कर देना चाहिए, कारण घुलनशील सल्फेट विद्युद्विश्लेष्यों के रूप में प्रयुक्त क्षारों की क्रिया में बाधा डालते हैं। अधिक उत्पादन के लिए जॉली विधि अच्छी रहती है। परन्तु इस विधि से केवल मध्यम आकार की घरियाएँ ही बनानी चाहिए। बड़ी घरियाओं के लिए जॉली विधि का प्रयोग कभी न करें। जॉली विधि के लिए मिश्रण-पिण्ड काफी नरम होना है। अतः घरिया की दीवारें कम ठोस रह जाती हैं, जो नहीं होना चाहिए।

किसी विशेष आकृति की बड़ी घरिया बनाने के लिए चाक-विधि का प्रयोग अच्छा होता है। चूंकि चाक से केवल बहुत ही योग्य और उत्तरदायी व्यक्ति ही अच्छी घरिया बना सकता है तथा निर्माण गति भी धीमी होती है, अत इस विधि से बनी घरियाओं का मूल्य अधिक पड़ता है।

छोटे और मध्यम आकार की घरियाएँ बनाने के लिए प्राय हस्तचालित या यन्त्रचालित दवाव यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। दवाव विधि से बनी बड़ी घरियाओं मे वही दोष आ जाते हैं, जो इस विधि से बने बड़े सैगरो में आ जाते हैं। बाज़ार मे घरियाएँ बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के दवाव यन्त्र मिलते हैं, जिनमें से प्रत्येक मे कोई न कोई कमी होती है। एक आधुनिक यन्त्रचालित दवाव यन्त्र से दो मनुष्य ६ इंच व्यासवाली ७५० घरियाएँ प्रतिघण्टा बना सकते हैं।

अत्यधिक बड़ी घरियाएँ बनाने के लिए हाथ से दवाकर बनाना सर्वोत्तम विधि है। इस विधि में छोटी मफल निर्माण की भाँति वे उलटकर रखे हुए लकड़ी के ढाँचों पर बनायी जाती हैं या इस्पात के साँचों में इस्पात करण (Tool) की सहायता से बनायी जाती हैं। घरिया की तली दीवारों से मोटी होती है। अत आवश्यक मोटाई की तली ढाँचे पर पहले बना ली जाती है। उसके बाद हाथ से धीरे-धीरे आवश्यक मोटाई की दीवारें बना दी जाती हैं। कभी-कभी लकड़ी का ढाँचा घूमती हुई ऊर्ध्वाधर धुरी पर रखा जाता है और एक लकड़ी के करण द्वारा उसके चारो ओर घरिया बना दी जाती है। इस्पात के साँचों की सहायता से घरिया बनाने के लिए मिश्रण-पिण्ड साँचे में रखा जाता है और इस्पात के करण को हाथ से घुमाते हुए साचे में पिण्ड दवाया जाता है।

घरियाओ को पकाने और सुखाने में वही सावधानिया रखी जाती हैं, जो छोटी मफलों को सुखाने व पकाने मे रखी जाती हैं।

एकादश अध्याय

ईंधन, भट्ठियाँ तथा चूल्हे

ईंधन—जो पदार्थ ताप उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं, ईंधन कहलाते हैं। इन पदार्थों को सरलतापूर्वक जलकर यथासम्भव अधिकतम ताप उत्पन्न करना चाहिए। औद्योगिक कार्यों में अधिकतर प्रयोग होनेवाले सब ईंधनों को सेल्यूलोज (Cellulose) से निकला हुआ समझा जाता है और उन्हें निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता है—

अवस्था	प्राकृतिक ईंधन	कृत्रिम ईंधन
ठोस ईंधन	लकड़ी, पीट (Peat), लिगनाइट या बादामी कोयला, बिटूमिनी कोयला तथा ऐन्थ्रासाइट कोयला।	काठकोयला, कोक, कोयला ईंटें।
द्रव ईंधन	पेट्रोलियम तेल।	शेल तथा अलकतरा से प्राप्त आसुत तेल, स्प्रिट।
गैस ईंधन	प्राकृतिक पेट्रोलियम गैस।	कोयला गैस, कोक भट्ठी गैस, उत्पादक गैस तथा तेल गैस।

ठोस ईंधन

लकड़ी—जब से मनुष्य ने अग्नि का उपयोग सीखा, उसी समय से लकड़ी विश्व-प्रचलित ईंधन रही है। हवा में सुखाने पर भी लकड़ी में नमी, लगभग २० प्रतिशत रहती है। अतः इसका ऊष्मीय मान (Calorific-value) बहुत कम है। इस कारण, यह अत्यधिक उच्च तापक्रम उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त नहीं की जा सकती। परन्तु यह शीघ्र ज्वलनशील है, काफी लम्बी लौ के साथ जलती

है तथा जलने पर कालिख तथा राख कम उत्पन्न करती है। हवा की अनुपस्थिति में १६०° सें० या अधिक तापक्रम पर गरम करने से लकड़ी काठ-कोयला में परिवर्तित हो जाती है। ईंधन के रूप में काठ-कोयला का ऊष्मीयमान अधिक है। सस्ती मिलने तथा कृत्रिम साधनों से अधिक सुखा लेने पर लकड़ी अच्छा ईंधन है।

पीट कोयले (Peat coals)—पीट आंशिक रूप से विच्छेदित निम्नस्तर के वनस्पति पदार्थ, यथा मौस (Moss) आदि हैं। ये पदार्थ अपने वनस्पति गुण खोकर आंशिक रूप से कोयला बन गये हैं जिनका रंग बादामी से काले तक होता है। ताजे खोदे गये पीट में कभी-कभी ९० प्रतिशत तक पानी रहता है और हवा में सुखाने पर इसमें लगभग २० प्रतिशत पानी रह जाता है। पीट का संगठन बदलता रहता है, परन्तु इसमें लकड़ी की अपेक्षा राख अधिक और ऊष्मीय मान कम होता है।

लिगनाइट कोयले (Lignite coals)—लिगनाइट, कोयले का वह रूप है, जो पीट और कोयले के बीच की अवस्था में होता है। लिगनाइटों के भौतिक गुण और रासायनिक संगठन काफी भिन्न होते हैं। श्रेष्ठ प्रकार का कोयला बादामी कोयला कहलाता है और यह यूरोप के देशों में तथा भारत में आसाम एवं दक्षिणी भारत के साउथ आर्कटिक जिले में पाया जाता है। इसमें पानी की मात्रा ४० से ६० प्रतिशत तक रहती है। सूखा लिगनाइट आर्द्रताग्राही है। यूरोपीय देशों में लिगनाइट को चूर्ण करके उसमें अलकतरा, डामर या पिच (Pitch) मिलाकर छोटी-छोटी ईंटें बनायी जाती हैं। ये ईंटें कारखानों तथा घरेलू उपयोग में ईंधन की भाँति प्रयोग होती हैं। अलकतरा डामर ईंट को जोडकर रखने का कार्य करता है तथा जिस लिगनाइट से ईंट बनी है, उसकी अपेक्षा ईंट की आर्द्रताग्राहता कम और ऊष्मीयमान अधिक कर देता है।

बिटूमिनी कोयले—इनमें वाष्पशील हाइड्रो कार्बनों की मात्रा सर्वाधिक होती है और लम्बी पीली लौ सहित जलते हैं। यह निश्चित किया जा चुका है कि जिन बिटूमिनी कोयलों में वाष्पशील पदार्थों की मात्रा मध्यम अर्थात् १६ से २० प्रतिशत के बीच रहती है, वही प्रयोग में सबसे सस्ते पड़ते हैं। वाष्पशील अवयव अधिक होने पर गैसें बिना जले ही निकल जाती हैं और कम रहने पर ईंधन के लिए चूल्हे में होकर हवा की अधिक मात्रा भेजनी पड़ती है। बिटूमिनी कोयले लम्बी लौ के साथ जलकर अधिक ताप उत्पन्न करते हैं। अतः ये कोयले मृत्पात्र तथा काँच भट्ठियों के लिए अधिक

उपयोगी ईंधन है। कोयला चुनते समय उसमे राख की मात्रा तथा राख की गलनशीलता पर ध्यान देना काफी महत्त्वपूर्ण है।

एन्थ्रासाइट कोयले (Anthracite-coals)—इस प्रकार के कोयलो में वाष्पशील पदार्थों की मात्रा सबसे कम होती है तथा स्थिर कार्बन अधिक होता है। ये कोयले छोटी लौ के साथ जलने के कारण स्थानीय उच्च तापक्रम उत्पन्न करते है। उच्च तापक्रम पर प्रयुक्त होनेवाली भट्ठियों, विशेषकर मृत्पात्र, कॉच, तथा सीमेण्ट भट्ठियो के लिए ये कोयले उपयोगी नही है। इन्हें मुख्य रूप से धातु-उत्पादन भट्ठियों, घरिया भट्ठियो तथा जलगैस उत्पादन में प्रयुक्त किया जाता है।

कोक (Coke)—हवा की अनुपस्थिति में कोयले के आसवन (Distillation) से उसके वाष्पशील भाग गैस बनकर निकल जाते हैं। जो ठोस भाग बच जाता है, उसे कोक कहते हैं। कोक मे कोयले की लगभग सम्पूर्ण राख तथा स्थिर कार्बन रहता है। राख की केवल थोडी-सी मात्रा वाष्पशील होकर निकल जाती है। भट्ठी कार्य के लिए एक अच्छे कोयले में ८५ प्रतिशत से कम कार्बन नही रहना चाहिए और राख की मात्रा १० प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। एन्थ्रासाइट की भाँति कोक भी घरियाओं आदि वस्तुओ को सीधे गरम करने में प्रयुक्त किया जाता है।

ठोस ईंधनों का औसत प्रतिशत संगठन

ईंधन	कार्बन	हाइड्रोजन	आक्सीजन और नाइट्रोजन	ऊष्मीय मान	राख
सेल्यूलोज	४४ ४	६ २	४९ ४	४१५०	——
शुष्क बलूत या ओक (Oak) लकड़ी	५० १६	६ ०२	४३ ४	५०३५	० ३७
शुष्क पीट	५७·०	६·१	३४·९	४५००	५—१०
शुष्क लिगनाइट	५६—८५	५—७	१०—३७	५०००—७६००	५—१०
विटूमिनी कोयला	८२	५	१३	८५००	१०—२०
एन्थ्रासाइट	९०	३	३	८८००	९—१५
कोक	८९	०५	२·५	७०००	१०—१४

कुछ भारतीय कोयलों का औसत संगठन

कोयले की खानें	स्थिर कार्बन	वाष्पनील अवयव	नमी	राख	विशेष विवरण
१ आसाम	४८ ९९	४३ ५८	३ ११	४ २४	३ १४ प्रतिशत गन्धक।
२. रानीगंज (बंगाल)	५४ ९५	३३·९५	२ ५७	११ १०	—
३ झरिया (बिहार)	५६ ८०	२८·१०	१ ७०	१५ १०	राख १२–२१ प्रतिशत तक होती है।
४ डाल्टनगंज (बिहार)	४२·००	३० ९०	६·६०	१९ ५०	—
५. मध्यप्रदेश	४५ ८०	३४ ५०	४ ५०	१५ २०	ऊष्मीय मान ५,७०० है तथा संगठन काफी बदलता रहता है।
६. उमरिया (मध्य-भारत)	६६ ७१	१९ ७१	५·४६	८·१२	—
७. तालचर (उडीसा)	४४ ११	३५ ६५	११·३३	८ ९१	—
८. सिन्गेरिनी (हैदराबाद)	५६·५०	२५ २५	७ ६०	१०·६५	इसमें लौह पाइ-राइटीजअपद्रव्य काफी मात्रा में रहता है।
९. पंजाब	४०·००	३७·००	९·००	१०·००	लगभग४ प्रतिशत गन्धक रहता है।

द्रव ईंधन

औद्योगिक भट्ठियों में प्रयुक्त किये जानेवाले द्रव ईंधनों में प्राकृतिक पेट्रोलियम के भारी अंश तथा शेल और अलकतरा के आसवन से प्राप्त तेल आते हैं। इन तेलों की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित होनी चाहिए—

(क) इनका ऊष्मीय मान अधिक हो। शेरमान तथा कोफ समीकरण द्वारा द्रव-ईंधन का सन्निकट ऊष्मीय मान निकाला जा सकता है। साधारणतया जिन तेलों का आपेक्षिक घनत्व कम होता है, उनका ऊष्मीय मान अधिक होता है।

(ख) ईंधन, तेल का दमकांक (Flash point) अधिक होना चाहिए। यदि

ईंधन तेल कम तापक्रम पर ही जलने लगता है, तो तेल में एकाएक आग लग जाने का डर है। इन तेलो का दमकाक ६०° सें० से अधिक होना चाहिए।

(ग) ये तेल न तो अधिक श्यान हो और न ०° से० पर गाढे हो जायँ। ईंधन तेलो की श्यानता तापक्रम के साथ काफी घटती है। भिन्न स्थानो से प्राप्त समान घनत्ववाले एक ही तेल की श्यानताएँ भी भिन्न होती हैं। अत्यधिक श्यान तेल विना पूर्व गरम किये ज्वालक (Burner) में सरलता से वह नही सकते।

(घ) इन तेलो में गन्धक एक प्रतिशत से कम, पानी दो प्रतिशत से कम तथा रेत, मिट्टी, धूल आदि ठोस नाममात्र के लिए होने चाहिए।

पेट्रोलियम—पेट्रोलियम ससार के विभिन्न देशो में थोडा-बहुत पाया जाता है। पृथ्वी से ताजा निकलने पर इसका रग तथा इसकी तरलता काफी भिन्न होती है। रग पीले से लगभग काले तक होता है। आपेक्षिक घनत्व ०·७७ से १·०६ तक होता है। रासायनिक संगठन के विचार से यह विभिन्न हाइड्रो-कार्बनो से मिलकर बना होता है। ससार में पाये जानेवाले पेट्रोलियम मुख्य दो प्रकार के होते हैं—(अ) पैराफिन-जनक तेल, (आ) एसफाल्ट-जनक तेल। एसफाल्ट-जनक तेल गहरे रग के तथा अधिक श्यान होते हैं। भट्ठियो में जलाने के लिए अशोधित ईंधन तेल इन्ही प्राकृतिक पेट्रोलियमो के आसवन से, उनके हलके अंश दूर करके, मिलते हैं।

प्राकृतिक पेट्रोलियम से प्राप्त हलके तेल अन्त दहन इजिनो तथा प्रकाश उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। विभिन्न स्थानो से प्राप्त पेट्रोलियमो द्वारा प्राप्त होनेवाले भारी तेलो का अनुपात काफी भिन्न होता है। अमेरिका के पेट्रोलियम से लगभग २० प्रतिशत भारी तेल मिलता है, जोकि औद्योगिक भट्ठियो में प्रयुक्त किया जाता है। बोर्नियो से प्राप्त पेट्रोलियम से ७५ प्रतिशत भारी ईंधन तेल निकलता है।

शेल तेल—स्काटलैण्ड, न्यू साउथ वेल्स तथा न्यूजीलैण्ड में मिलनेवाली शेल मिट्टियो के आसवन से कुछ ईंधन तेल प्राप्त किये जाते हैं। एक टन शेल मिट्टी से १८ से ४० गैलन तक अशोधित तेल प्राप्त होता है। इस अशोधित तेल से आसवन द्वारा मूल्यवान् हलके तेल, जैसे मोटर स्प्रिट, नैफ्था, स्नेहक तेल (Lubricating oil) आदि, निकाल लिये जाते है और तब बचा हुआ तेल, ईंधन तेल के रूप में प्रयोग किया जाता है।

अलकतरा तेल (Tar oils)—अलकतरा के आसवन से मूल्यवान् हलके तेल, अन्य वाष्पशील यौगिक तथा पिच के अतिरिक्त अन्य तेल मिलते हैं जिन्हे ईंधन तेलो के रूप मे प्रयोग किया जाता है।

अलकतरा के आसवन से विभिन्न तापक्रमो पर प्राप्त विभिन्न पदार्थ नीचे दिये जाते हैं—

(१) हलके तेल जो १००° से० तक के तापक्रम पर मिलते हैं। इन तेलो से मोटर स्प्रिट, बेन्जोल आदि प्राप्त किये जाते हैं।

(२) मध्य या कार्बोलिक तेल, जो १७०° से २३०° स० तक के तापक्रम पर मिलते हैं। इन तेलो से टार अम्ल, नैफ्थेलीन आदि प्राप्त किये जाते हैं।

(३) क्रीओजोट तेल (Creosote oils) जो २३०° से २७०° सें० तक के तापक्रम पर मिलते हैं। ये तेल जीवाणुनाशक तथा काष्ठ-रक्षक की भाँति प्रयुक्त किये जाते हैं।

(४) एन्थ्रासीन (Anthracene) जो २७०° से ३२०° सें० तक के तापक्रम पर मिलते हैं। इनसे कृत्रिम रग बनाये जाते हैं।

(५) पिच (Pitch)—अलकतरा से वाष्पशील द्रव पदार्थों को दूर करने पर जो काला ठोस पदार्थ बच जाता है उसे पिच कहते हैं। इस पिच पर अम्लीय या क्षारीय पदार्थों की कोई क्रिया नही होती तथा इसे सडक बनाने मे प्रयुक्त किया जाता है। अलकतरा के आसवन में हलके तेल तथा पिच को छोड़ शेष तरल तेलो को व्यापार में अलकतरा तेल कहा जाता है। इनका प्रयोग ईंधन तेलो के रूप में या विभिन्न रासायनिक यौगिको के बनाने मे किया जाता है।

विभिन्न द्रव ईंधनो का औसत संगठन

द्रव ईंधन	कार्बन	हाइड्रोजन	आक्सीजन तथा नाइट्रोजन	गन्धक	ऊष्मीय मान
पेट्रोल तेल	८४ ५	१२ ५	२ ०	० ५–१ ०	१०९००
शेल तेल	८७ ५	११ १	१ ५	० ४	१०६००
अलकतरा तेल	८७ ९	८ १	३ ५	० ५–१ ०	८९००

द्रव ईंधनो का बौछारीकरण—द्रव ईंधन मे आग लगा देने से यह ऊपरी तल पर पीली कज्जलीय लौ-सहित जलता है। यह कज्जलीय लौ भट्ठी के अपेक्षाकृत ठण्डे

भागों के सम्पर्क में आने पर उन पर काला कार्बन जमा करती है। परन्तु यदि जलाने से पूर्व बौछार विधि द्वारा तेल को सूक्ष्म कणों में विभक्त कर दिया जाय या गरम करके वाष्पीकृत कर दिया जाय और हवा के साथ अच्छी तरह मिला दिया जाय, तो दहन शीघ्र और पूर्ण होता है तथा भट्ठी की दीवारों पर ठोस कार्बन के जम जाने का भय भी नहीं रहता। पुनर्जीवक (Recuperator) या पुनरुत्पादक (Regenerator) द्वारा पर्याप्त गरम की गयी हवा को तेल में भेजकर तेल वाष्पीकृत किया जाता है। परन्तु तेल के बौछारीकरण के लिए उच्च दबाववाली जलवाष्प या हवा का प्रयोग किया जाता है।

हल्के आसुतों को छोड़कर दूसरे साधारण द्रव ईंधन वाष्पीकृत होने के पश्चात् कुछ ठोस कार्बनिक पदार्थ छोड़ देते हैं। अतः वाष्पीकरण यन्त्र की समय-समय पर सफाई करनी पड़ती है। इसी कारण औद्योगिक अविराम भट्ठियों में वाष्पीकरण ज्वालक कम प्रयोग किये जाते हैं। इन ज्वालकों का नियन्त्रण भी सरल नहीं है।

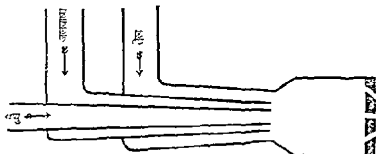
ईंधन तेलों के सभी दाहक यन्त्र बौछारीकरण सिद्धान्त पर आधारित होते हैं। इन्हें प्रायः तेलज्वालक कहा जाता है। बौछारीकरण का अर्थ ईंधन तेल को सूक्ष्म कणों में विभाजित कर देना होता है। ज्वालक में तेल एक भण्डार-कुण्ड से आता है। यह भण्डार-कुण्ड पर्याप्त ऊँचाई पर होता है, जिससे तेल अपने आप ज्वालक के भीतर आ सके।

तेल-ज्वालक विभिन्न प्रकार के होते हैं। परन्तु वे सभी न्यूनाधिक एक ही सिद्धान्त पर बने होते हैं।

इन ज्वालकों का साधारण सिद्धान्त यह है कि तेल और जलवाष्प या गरम वायु दो पृथक् सकेन्द्र-नलों से ज्वालक में भेजे जाते हैं। जलवाष्प या वायु अपने दबाव के कारण तेल को सूक्ष्म कणों में विभक्त कर देती है। यदि तेल अधिक श्यान हो, जैसा कि विशेष कर जाड़ों के दिनों में होता है, तो तेल को जलवाष्प नलों द्वारा भण्डार में ही गरम कर लिया जाता है। यह ज्वालक इस प्रकार बने होते हैं कि उन्हें भागों में निकाला जा सके और परिणाम-स्वरूप समय-समय पर आसानी से साफ किया जा सके।

होल्डेन बौछार यन्त्र या तेल-ज्वालक में तेल गुरुत्वाकर्षण बल द्वारा बाहरी नल में भेजा जाता है। साथ ही अन्दरवाले नल में जलवाष्प भेजा जाता है। तेल और जलवाष्प के इस खिंचाव प्रभाव के कारण बीच के नल से हवा स्वयं अन्दर प्रवेश करती है तथा बड़े प्रकोष्ठ में ज्वालक के सम्मुख भाग में स्थित चौड़े नल में तेल-

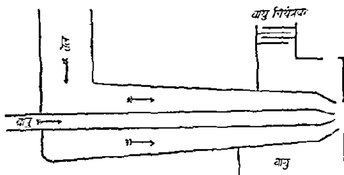
फुहार, जलवाष्प तथा वायु तीनों मिल जाते हैं। इस चौड़े नल में सामने की दीवार



चित्र ३१. होल्डेन जलवाष्प-बौछार यन्त्र

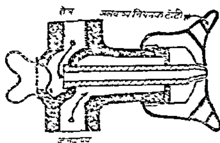
में विभिन्न कोणों पर कई छिद्र कटे होते हैं, जिनमें से होकर निकलने पर मिश्रण और भी अच्छी तरह मिल जाता है। इस प्रकार का ज्वालक रेलवे तथा समुद्री जहाजों के वाष्पित्रों में प्रायः प्रयुक्त किया जाता है।

कार्बोगिन ज्वालक विधि में तेल पर दो तरफ से वायु-धाराएँ टकराकर तेल को सूक्ष्म कणों में विभाजित कर देती हैं। बाद में तेलकण वायु से मिल जाते हैं। इस प्रकार के ज्वालक से लम्बी और तीव्र लौ निकलती है तथा कार्बन जमा नहीं होता। इसका प्रयोग प्रायः काँच भट्ठियों में किया जाता है।



चित्र ३२ कार्बोगिन वायु-बौछार यन्त्र

वेड ज्वालक में बौछारीकरण के लिए जलवाष्प और वायु दोनों ही प्रयुक्त किये जा सकते हैं। इंग्लैण्ड में मृत्पात्र भट्ठियों में इसका प्रयोग काफी होता है।



चित्र ३३. वेड ज्वालक।

केवल वायु-बौछार यन्त्र में, केवल जलवाष्प-बौछार यन्त्र की अपेक्षा लगभग आधे जलवाष्प की आवश्यकता होती है। वायु-बौछार यन्त्र में जलवाष्प की यह मात्रा वायु में दबाव उत्पन्न करने के काम आती है। कैरमोड (Kermode) के अनुसार जलवाष्प और वायु-बौछार यन्त्रों की आपेक्षिक दक्षताएँ इस प्रकार हैं। जलवाष्प-बौछार यन्त्र ६८·७५ प्रतिशत तथा वायु-बौछार यन्त्र ७८ से ८३ प्रतिशत।

विभिन्न बौछार यन्त्रों के लिए विभिन्न दबाव आवश्यक होते हैं। साधारणतया २० से ३० पौंड प्रति वर्ग इंच का दबाव पर्याप्त होता है।

मृत्पात्र भट्ठियों मे जलवाष्प-बौछार यन्त्र प्रयुक्त करने पर लगभग २० पौंड प्रति वर्ग इंच औसत दबाववाले शुष्क जलवाष्प का प्रयोग करना चाहिए। प्राय. प्रति पौंड तेल पर १·२५ पौंड जलवाष्प की आवश्यकता होती है।

जलवाष्प-बौछार यन्त्र के गुण-दोष

गुण—

(क) ज्वालक मे पहुँचने से पूर्व रास्ते में ही तेल, जलवाष्प द्वारा गरम हो जाता है, जिससे बौछारीकरण अच्छा होता है।

(ख) जलवाष्प का विच्छेदन होने के कारण दहन प्रकोष्ठ ठण्डे रहते हैं, जिससे दुर्गल ईंटें आदि अधिक दिन तक चलती हैं।

(ग) दहन प्रकोष्ठ में विच्छेदित जलवाष्प, जलगैस के रूप में भट्ठी में जाती है, जो वहाँ पुनः ईंधन का काम देती है।

(घ) अधिकांश मृद्वस्तु-कारखानों मे वाष्पित्र होते हैं। अत उनके व्यर्थ जलवाष्प का इनमें उपयोग किया जा सकता है।

अमेरिका में प्राकृतिक गैस ईंटों के कारखानों मे अधिक प्रयोग की जाती है। ये गैसें पुनरुत्पादको में नही प्रयुक्त की जा सकती, कारण उच्च तापक्रम पर इनमें उपस्थित हाइड्रो-कार्बन विच्छेदित होकर मुक्त कार्बन जमा करते हैं। अत. उच्च तापक्रम की भट्ठियों में इनका प्रयोग सीमित है। कभी-कभी गैस को दबाया भी जाता है, जिससे उसके उच्च क्वथनाकवाले अवयव द्रवीभूत हो जाते हैं, जिन्हें द्रव ईंधन की भाँति बेच दिया जाता है।

कोयला गैस—हवा की अनुपस्थिति मे गैस कोयला अर्थात् लम्बी लौ सहित जलने वाले बिटूमिनी कोयला के आसवन से कोयला गैस प्राप्त होती है। यह आसवन क्रिया विशेष प्रकार की दुर्गल भट्ठियों में की जाती है। कोयला के अतिरिक्त कोक, गैस कार्बन, अलकतरा और अमोनिया उपजात के रूप में मिलती हैं। एक टन अच्छे कोयले से इन पदार्थों की निम्नलिखित मात्राएँ मिलती हैं।

(क) कोयला गैस	१०,००० से १२,००० घनफुट या १८ प्रतिशत
(ख) अलकतरा	१४ गैलन या ६ प्रतिशत
(ग) अमोनिया (द्राव)	८ प्रतिशत
(घ) कोक	६८ प्रतिशत

कोयला गैस का औसत संगठन

हाइड्रोजन	..	४४ ८ प्रतिशत
मीथेन	..	३४ ५ ,,
असम्पृक्त हाइड्रोकार्बन	..	४ ५ ,,
कार्बन मोनोक्साइड	..	७ ८ ,,
कार्बन डाई आक्साइड	..	० २ ,,
नाइट्रोजन आक्सीजन आदि	..	८ २ ,,
योग		१०० ०

कोयला गैस का औसत ऊष्मीय मान ५०० ब्रिटिश ऊष्मीय मात्रक (B T.U) प्रति घनफुट होता है।

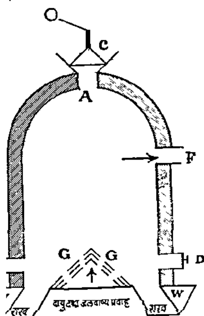
कोक भट्ठी गैस—धातु उत्पादन के लिए कोक बनाते समय उपजात के रूप में हमें कोक भट्ठी गैस मिलती है। इसका सगठन कोयला गैस से बहुत कुछ मिलता-जुलता होता है। अन्तर केवल इतना होता है कि कोक भट्ठी गैस मे नाइट्रोजन और कार्बन मोनोक्साइड की मात्रा अधिक रहती है। इन दोनों गैसो की अधिक मात्रा रहने

ए कोयले के ढेर को चार मडलो में बाँटा जा सकता है—(१) राख-मडल
) दहन-मडल (३) विच्छेदन-मडल तथा (४) आसवन-मडल।

वायु और जलवाष्प सर्वप्रथम लोहे की जाली की छडो में होकर राख-मंडल में त करती हैं। यह वायु और जलवाष्प राख को ठण्डा रखती हैं और इस प्रकार को गलकर ठोस कंकड होने से बचाती हैं।

इसके बाद गरम वायु और जलवाष्प दहन-मंडल में प्रवेश करती है। इस मंडल ार्बन के पूर्ण दहन से कार्बन डाई-आक्साइड बनकर काफी ताप उत्पन्न करता है। ताप से तृतीय मडल का कोयला उज्ज्वल रक्त-ऊष्मा पर रहता है। एक पौंड र्न से कार्बन-डाई-आक्साइड बनने पर १४,६४७ ब्रि० ऊ० मा० ताप उत्पन्न होता है।

यह सब गरम गैसें अब विच्छेदन-मडल में पहुँचकर कार्बन मोनोक्साइड और ड्रोजन में विच्छेदित हो जाती हैं। चूँकि जलवाष्प और कार्बन डाई आक्साइड के इस विच्छेदन में काफी ताप की आवश्यकता पड़ती है, अत. स्पष्ट है कि जलवाष्प की केवल सीमित मात्रा ही भेजी जानी चाहिए और कोयला को उच्च तापक्रम पर रखना चाहिए।



चित्र ३४. गैस उत्पादक

यदि उत्पादक गैस कोयले से बनायी गयी है, तो कोयले की ऊपरी सतह अर्थात् आसवन-मंडल से उसमें उपस्थित हाइड्रोकार्बन आसुत हो जायँगे और इस प्रकार गैस में विभिन्न हाइड्रोकार्बनो की मात्रा अधिक हो जायगी। यदि गैस कोक या एन्थ्रासाइट से बनायी गयी है, तो उसमें हाइड्रोकार्बन *नाममात्र को रहेंगे। यदि कोयला* की तह कम मोटी है और जल-

वाष्प की मात्रा कम है तो गैस उत्पादक अधिक गरम होकर हाइड्रोकार्बनों को हाइ-ड्रोजन तथा कज्जल में विच्छेदित कर देगा। इस कज्जल का कुछ भाग कार्बन डाई आक्साइड में परिवर्तित हो सकता है। परिणाम स्वरूप गैस में हाइड्रोजन और कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा अधिक होगी तथा कार्बन मोनोक्साइड कम रहेगी। हाइड्रो-कार्बनों के विच्छेदन से प्राप्त यह कज्जल गैस उत्पादक की नालियों को बन्द कर देती है।

परन्तु कम तापक्रम पर कार्बन मोनोक्साइड, कार्बन डाई आक्साइड तथा मुक्त कार्बन में विच्छेदिन होना प्रारम्भ कर देती है। यह विच्छेदन ५००° सें० के लगभग सर्वाधिक होना है और १०००° सें० पर समाप्त हो जाता है। इन दो कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए साधारण बिटूमिनी कोयले का प्रयोग करते समय उचित नियन्त्रण के लिए गैस उत्पादक ६००° सें० पर रखा जाता है। यद्यपि इस तापक्रम पर कार्बन मोनोक्साइड के विच्छेदन से कुछ कज्जल बनता है, परन्तु इस कज्जल का परिमाण उस कज्जल के परिमाण से कम होता है, जो उच्च तापक्रम पर हाइड्रोकार्बनों के विच्छेदन से प्राप्त होता है।

कोयले की तह का यह तापक्रम-नियन्त्रण जलवाष्प और वायु की उचित मात्राएँ भेजकर किया जाता है।

समीकरण $(C+H_2O=CO+H_2)$ के अनुसार १८ पौंड जलवाष्प को हाइड्रोजन में विच्छेदित करने के लिए १,२४,२०० ब्रि० ऊ० मा० ताप की आवश्यकता होती है, परन्तु साथ ही C से CO बनने में ५३,४०० ब्रि० ऊ० मा० ताप प्राप्त होगा। अतः प्रत्येक पौण्ड जलवाष्प विच्छेदित करने में ३९३३ ब्रि० ऊ० मा० ताप की आवश्यकता होगी। यह ताप C को CO या CO_2 में परिवर्तित करने से प्राप्त किया जाता है।

व्यवहार में गैस बनाते समय यह उद्देश्य रहता है कि CO की मात्रा अधिकतम और CO_2 की मात्रा न्यूनतम रहे। इसके लिए CO बनते ही गैस उत्पादक से बाहर ले जायी जाती है, जिससे $2CO+O_2=2CO_2$ की क्रिया कम हो जाय। CO को शीघ्रता से बाहर ले जाने के लिए कोयला यथासम्भव कम दबाकर भरा जाय, अन्यथा गैस निकलने में देर लगेगी। बिटूमिनी कोयले में गरम करने पर फूलकर एक ठोस पिण्ड बन जाने की धारणा होती है। परिणाम-स्वरूप हवा और गैसों का बहना बन्द

हो जाता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए कम ठोस रेतीले कोयले या कोक को बिटूमिनी कोयले के साथ मिला दिया जाता है। बिटूमिनी कोयले के वाष्पशील हाइड्रोकार्बन उत्पादक गैस में आ जाते हैं।

गैस उत्पादक से सीधी आनेवाली गैस को अशोधित उत्पादक गैस कहते हैं तथा इसे बिना किसी शोधन के ऐसे ही जलाया जाता है। अशोधित अवस्था में गैस का प्रयोग करनेवाली भट्ठियाँ गैस उत्पादक के सीधे सम्पर्क में होती हैं। इस दशा में गैस का तापक्रम, वातावरण-तापक्रम से अधिक होता है। यह अधिक ताप उद्योग में प्रयुक्त हो जाता है। जब अशोधित गैस को ठण्डा करके इससे जलवाष्प, अलकतरा, अमोनिया आदि दूर कर दिये जाते हैं, तो गैस शुद्ध हो जाती है और इसे विशुद्ध या शोधित गैस कहते हैं। यह गैस, गैस धारकों में रखी जा सकती है या नलों में बहाकर दूर ले जायी जा सकती है, कारण विशुद्ध गैस का कोई अंश जमता नहीं है, जिससे कि नल बन्द हो जायँ। उत्पादक गैस का ऊष्मीय मान कुछ कम है। अशोधित उत्पादक गैस का ऊष्मीय मान १२५ से–१७० ब्रि० ऊ० मा० प्रति घनफुट तथा शोधित गैस का औसत ऊष्मीय मान १२० ब्रि० ऊ० मा० प्रति घनफुट होता है।

उत्पादक गैस का संगठन

गैस उत्पादन का तापक्रम	कार्बन डाई आक्साइड	कार्बन मौनोक्साइड	हाइड्रोजन	मीथेन	नाइट्रोजन
४४०°सें०	५·५	२६ ८	१४ ६	३·४	४९ ७
८१०°सें०	६·०	२८ ३	२०·७	४ ८	४० २
९२५°सें०	३ ०	३२·७	१७·९	१·२	४५·२

तेल गैस (Oil gas)—यह गैस हवा की अनुपस्थिति में खनिज तेलों के विच्छेदन से प्राप्त होती है। विच्छेदन क्रिया विशेष प्रकार की लौह या अग्नि मिट्टी की भट्ठियों में की जाती है। इसमें प्रकाश-जनन तथा ताप-जनन शक्तियाँ अधिक होती हैं। कोयला गैस की अपेक्षा इस गैस में विशेषता यह है कि इसको दबाकर प्रयोग करने पर भी इसकी प्रकाश-जनन शक्ति कम नहीं होती। कोयला गैस दबाकर रखने पर उसके सभी द्रवणीय हाइड्रोकार्बन जमकर और तरल बनकर अलग हो जाते हैं।

वात-भट्ठी गैस—ढलवाँ लोहा के उत्पादन में यह गैस उपजात के रूप में मिलती

है। गैस का संगठन इस बात पर निर्भर करता है कि भट्ठी में कोक या कोयला में से किस ईंधन का प्रयोग किया गया था। नीचे इसका संगठन दिया जा रहा है—

संगठन	कोक प्रयोग करने पर	कोयला प्रयोग करने पर
CO	२७—३०	२७—३०
CO_2	९—१२	८—१०
H_2	१—२.५	४—५.५
CH_4	×	२.५—४
N_2	५७—६०	५५—५८

वैसे इस गैस का ऊष्मीय मान बहुत कम है, परन्तु कोक भट्ठी गैस के साथ मिलाने पर यह काफी अच्छे ईंधन की भाँति कार्य कर सकती है।

विभिन्न ईंधन गैसों का ऊष्मीय मान

(ब्रि० ऊ० मा० प्रति घनफुट में)

कोयला गैस	४५०—५००
कोक भट्ठी गैस	४००—५००
उत्पादक गैस	१२५—१७५
वात भट्ठी गैस	९५—१०५

भट्ठियाँ और चूल्हे

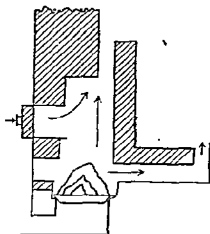
मृत्पात्र पकाते समय भट्ठी में विशेष अवस्थाओं के आवश्यक होने के कारण मृद्-उद्योग भट्ठियाँ दूसरी भट्ठियों से भिन्न होती हैं। मृद्-वस्तुओं की तापचालकता प्राय बहुत ही कम रहती है, जिसके कारण उन्हें पकाने का उच्च तापक्रम धीरे-धीरे बढ़ाया जाना चाहिए। ठण्डा करना भी न्यूनाधिक बहुत धीमी क्रिया है तथा वस्तुओं के ठण्डा होने में विकिरण द्वारा प्राप्त ताप का उपयोग किया जा सकता है, जैसा कि प्रकोष्ठ तथा सुरंग भट्ठियों में होता है।

प्रत्येक मृद्-उद्योग-भट्ठी को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

(क) भट्ठियों के लिए चूल्हे,

(ख) प्रकोष्ठ तथा

(ग) चिमनी या धूमनल।



चित्र ३५ मृद्-उद्योग-भट्ठियों के लिए क्षैतिज जालीवाला चूल्हा

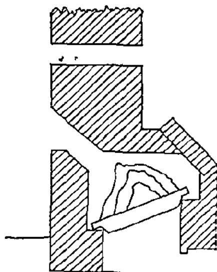
ईंधन वास्तव में चूल्हे में जलाया जाता है या गैसों में परिवर्तित किया जाता है। उसके बाद ये ताप या दहनशील गैसें उस प्रकोष्ठ में जाती हैं, जिसमें पकाने के लिए पात्र रखे जाते हैं। यहाँ दहनशील गैसें जलकर पात्रों को ताप देती हैं और उसके बाद गैस-नालियों में होती हुई चिमनी द्वारा बाहर निकल जाती हैं। चिमनी के कारण भट्ठी में गैसों का प्रवाह बना रहता है।

मृद्वस्तु भट्ठियों के चूल्हे की आकृति प्रयोग किये जानेवाले ईंधन और भट्ठी के अधिकतम तापक्रम के अनुसार भिन्न होती है।

लकड़ी जलाने के लिए जाली की आवश्यकता नहीं होती। लकड़ी का प्रयोग करनेवाली भट्ठियों में प्रायः एक ही चूल्हा होता है, जैसा कि टेरा-कोटा और छत की टालियाँ पकाने की भट्ठियों में होता है। चुनार के प्रसिद्ध प्रलेपित मृत्पात्र भी इसी प्रकार की भट्ठियों में पकाये जाते हैं। इस भट्ठी का नमूना चित्र २९ में दिखाया गया है।

कोयला जलाने के लिए सभी चूल्हों में लोहे के डंडों की जाली होती है। प्रलेपित मृत्पात्र भट्ठियों में लौह डंडे क्षैतिज अवस्था में रखे जाते हैं और जाली के पास ही बने हुए द्वार से कोयला डाला जाता है, जैसा कि चित्र ३५ में दिखाया गया है। प्रत्येक बार कोयला चूल्हे में डालने के पश्चात् कोयला डालनेवाला ईंधन-द्वार बन्द कर दिया जाता है। आवश्यक हवा की मात्रा चूल्हे में भेजने के लिए ईंधन-द्वार के ऊपर वायु-द्वार होता है। इस वायुद्वार में होकर जानेवाली हवा की मात्रा को नियन्त्रित किया

जा सकता है। इस प्रकार के चूल्हों में कोयला न्यूनाधिक पूरा जल जाता है और कोयला के दहन से उत्पन्न उत्तप्त गैसें दीवारों तथा तली सभी की ओर से प्रकोष्ठ में घुमती हैं।

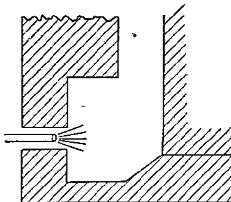


चित्र ३६. पोर्सलेन भट्ठी के लिए झुकी हुई जालीवाला चूल्हा

पोर्सलेन भट्ठियों में चूल्हे की जाली क्षैतिज न रखकर झुकी हुई रखी जाती है, जैसा कि चित्र ३६ में दिखाया गया है। इसका कारण यह है कि ये चूल्हे केवल अर्द्ध गैस उत्पादकों की भाँति ही कार्य करते हैं। इस कारण चूल्हे में कोयले की तह मोटी रखी जाती है और कोयला चूल्हे के ऊपरी भाग की ओर से डाला जाता है। चूल्हे में अधिक कोयला रहने के कारण गरम हवा चूल्हे में नहीं जाती। अतः आनेवाली हवा को चूल्हे में घुसने से पूर्व ही गरम करने का प्रबन्ध रखा जाता है। इस हवा को गरम करने के लिए भट्ठी के ही व्यर्थ ताप का उपयोग किया जाता है।

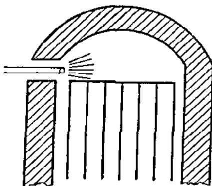
जब मृत्पात्र भट्ठियों में ईंधन के रूप में तेल का प्रयोग किया गया हो, तो तेल जलाने के लिए विशेष प्रकार के प्रकोष्ठ चूल्हों की आवश्यकता होती है। चित्र ३७ में एक ऐसा प्रकोष्ठ चूल्हा दिखाया गया है। इन तेल चूल्हों में इतना पर्याप्त स्थान होना चाहिए कि बौछारीकृत तेल पूरी तरह जल सके, जिससे भट्ठी प्रकोष्ठ में केवल गरम लौ और दहन-जनित गैसें ही घुसें। चूँकि तेल जलने पर, दहन-स्थान पर अत्यधिक ताप उत्पन्न होता है, अतः प्रकोष्ठ चूल्हों के चारों ओर अधिक दुर्गल पदार्थों की परत होनी चाहिए, जिससे अधिक ताप व्यर्थ न जाय। कभी-कभी तेल जलाने के लिए अलग से प्रकोष्ठ नहीं होता वरन् मुख्य भट्ठी के ऊपरी भाग में ही तेल-दहन-क्रिया की जाती है। चित्र ३८ में तेल-ज्वालक को भट्ठी के ऊपरी भाग में दिखाया गया है।

इसमें भट्ठी की गोलाकार छत के नीचे तेल दहन के लिए पर्याप्त स्थान होता है। तेल



चित्र ३७. तेल ईंधन के लिए प्रकोष्ठ चूल्हा

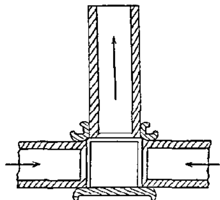
दहन के पश्चात् गरम लौ व गैसें, प्रकोष्ठ में रखी हुई पकनेवाली वस्तुओं के चारो ओर होकर नीचे चली जाती हैं।



चित्र ३८. भट्ठी की गोल छत के नीचे तेल-दहन

मृद्-उद्योग भट्ठियों में प्राकृतिक या कृत्रिम गैसीय ईंधन प्रयोग करने पर विशेष प्रकार के गैस-ज्वालक प्रयोग किये जाते हैं, जिससे ईंधन गैस के पूर्ण दहन के लिए

आवश्यक हवा और गैस का अनुपात नियन्त्रित किया जा सके। चित्र ३९ में इसी प्रकार का एक गैस-ज्वालक दिखाया गया है।


चित्र ३९. मृद्-उद्योग भट्ठियों के लिए गैस ज्वालक

मृद्-उद्योग भट्ठियों के क्षैतिज जालीवाले चूल्हे में प्रति वर्गफुट जाली के लिए ८ से १२ पौंड प्रतिघण्टा बिटूमिनी कोयला खर्च होता है। चूल्हे की जाली ४ फुट से अधिक लम्बी और ३ फुट से अधिक चौड़ी नहीं होनी चाहिए, अन्यथा चूल्हे की सफाई करते समय तापक्रम अधिक घट जायगा। जाली के लौह डंडों का अनुप्रस्थ काट (Cross-section) ४ सेण्टीमीटर वर्ग हो और जाली बनाते समय दो डंडों के बीच की दूरी भी ४ सेण्टीमीटर ही रखनी चाहिए। इस प्रकार बनी जाली में धातुमल न्यूनतम मात्रा में बनता है और इस प्रकार की जाली से केवल ३ प्रतिशत ही कोयला बिना जले हुए गिर जाता है।

ग्रीव्स वाकर (Greaves-Walker) के अनुसार जाली के क्षेत्रफल और भट्ठी के फर्श के क्षेत्रफल में अनुपात १ : (४ से ८) होना चाहिए। दुर्गल ईंटें पकाने के लिए यह अनुपात अधिक से अधिक १ : ४ हो सकता है। नमक प्रलेपन में सर्वोत्तम परिणाम के लिए ये सीमाएँ १ : (६ से ८) होनी चाहिए। जाली का क्षेत्रफल बढ़ाने से पकाव-गति भी बढ़ जाती है। उच्च तापक्रम पर पोरसिलेन-पात्र पकाने के लिए यूरोपीय देशों की भट्ठियों में यह अनुपात १ (३.५ से ५) तक रहता है। साधारण मृत्पात्र मफल प्रकोष्ठ के फर्श का क्षेत्रफल प्रायः चूल्हे की जाली के क्षेत्रफल का चौगुना रहता है।

चूल्हे की जाली और उसकी छत के बीच पर्याप्त स्थान रहना आवश्यक है। लम्बे चूल्हे में ताप एक ही स्थान पर केन्द्रित होकर उस भाग की दीवारों को अधिक गरम करके उन्हें हानि पहुँचाता है। चूल्हे से भट्ठी प्रकोष्ठ में लौ प्रवेश के लिए बने

लौ-द्वार की दीवारें ऊँची और गोलाकार होनी चाहिए। ऊँचे लौ-द्वार से पात्रों पर लौ प्रभाव नहीं पड़ता और ताप भट्ठी के केन्द्र पर अधिक जाता है। अर्द्धवृत्ताकार लौ-द्वार अधिक टिकाऊ होते हैं।

भट्ठी का प्रकोष्ठ वह स्थान है, जहाँ पात्र पकाने के लिए रखे जाते हैं। इन प्रकोष्ठों की आकृति गोल या चौकोर होती है। प्रकोष्ठ में वस्तुएँ रखते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि भट्ठी के अन्दर पात्रों को पकानेवाली गरम गैसों के ठीक प्रकार से बहने के लिए पात्रों के बीच उचित मार्ग रहे। प्रकोष्ठ के अन्दर प्रधान समस्या गैसों से पात्रों को अधिकाधिक ताप देने की तथा ताप को पूरे प्रकोष्ठ में समान रूप से वितरित करने की होती है, जिससे प्रकोष्ठ के सभी भाग समान रूप से गरम हों। यह भी ध्यान रखा जाय कि कहीं पात्रों के तापक्रम में आकस्मिक परिवर्तन न हो और पात्रों को दहन-जनित गैसों से तथा गैसों द्वारा ले जाये गये ईंधन के छोटे-छोटे कणों और राख से हानि न पहुँचे।

भट्ठी में गैसें दो विधियों से जाती हैं। एक तो चूल्हे पर दबाव उत्पन्न करके और दूसरे गैसें निकलनेवाले सिरे पर पखा या चिमनी द्वारा खिंचाव उत्पन्न करके। गैसों के अधिक दबाव पर रहने से प्रकोष्ठ से गैसों के बाहर निकल जाने का भय है और खिंचाव का प्रयोग करने पर प्रकोष्ठ दीवारों की सूक्ष्म दरारों में से ठण्डी हवा के अन्दर आ जाने का भय, परिणाम-स्वरूप प्रकोष्ठ का तापक्रम कम हो जाने का भय है। वातावरण से अधिक दबाव पर कार्य करनेवाली भट्ठियों की दीवारों व छतों का तापक्रम वातावरण से कम दबाव पर काम करनेवाली भट्ठियों के इन स्थानों के तापक्रम की अपेक्षा अधिक होता है। अतः वातावरण से अधिक दबाववाली भट्ठियों में दुर्गल परत का जीवन-काल कम हो जाता है। ईंधन के रूप में तेल या गैसों का प्रयोग करनेवाली भट्ठियाँ वातावरण से अधिक दबाव पर कार्य करती हैं। अतः खिंचाव उत्पन्न करने के लिए इनमें चिमनी की आवश्यकता नहीं होती।

भट्ठी-दीवार और छत—भट्ठी की दीवार इतनी मोटी हो कि वह तापक्रम के कुप्रभावों को सह सके तथा अत्यधिक ताप-विकिरण को रोक दे। परन्तु साथ ही एक अच्छे चूल्हे की अधिकतम मोटाई से अधिक मोटी भी न होनी चाहिए। भट्ठी की दीवार मोटी होने से चूल्हे में उत्पन्न ताप शीघ्रता से चूल्हे के बाहर नहीं जाता, वरन चूल्हे में ही केन्द्रित होकर चूल्हे की दीवारों को शीघ्र गलाकर मरम्मत का खर्च बढ़ा देता है।

छत गोलाकार होने पर भट्ठी की दीवारों के ऊपरी भाग से छत की ऊँचाई भट्ठी के व्यास की एक चौथाई होनी चाहिए। चौकोर भट्ठी के लिए यह दूरी भट्ठी के अन्दर की चौड़ाई की एक तिहाई होनी चाहिए।

भट्ठी छत के गोल भाग की ऊँचाई अधिक होने पर ईंधन अधिक लगता है, पकाने में समय अधिक लगता है, भट्ठी के ऊपरी भाग में रखे पात्र अधिक पक जाते हैं और भट्ठी की तली पर ताप कम पहुँचता है।

भट्ठी की गोलाकार छत मुख्य दीवार पर रखी हुई होनी चाहिए, अन्दर की दुर्गल परत पर नहीं। इससे भट्ठी की छत या दीवारों की दुर्गल परत की मरम्मत एक-दूसरे के काम में बाधा डाले बिना की जा सकती है।

ताप-पृथक्करण ईंटें

आधुनिक भट्ठियाँ प्रायः विशेष प्रकार की ताप-पृथक्करण ईंटों से ताप-पृथक्कृत की जाती हैं। यह ताप-पृथक्करण ईंटें अधिक सिलीकामय, अधिक सरन्ध्र प्राकृतिक मिट्टियों से बनायी जाती हैं। यह मिट्टी विशेष जीवाणुओं के अवशेषों से प्राप्त होती है तथा इसे इनफ्यूसोरियल या डाईऐटोमेसियस मिट्टी (Infusorial or Diatomaceous earths) कहा जाता है। नीचे जर्मनी तथा अमेरिका की दो इनफ्यूसोरियल मिट्टियों के विश्लेषण दिये जाते हैं—

प्राप्तिस्थान	सिलीका	एल्यूमिना	फेरिक आक्साइड	कैलशियम कार्बोनेट	पानी	हानि
ओवर हॉल (जर्मनी)	८७ ९	० १	०·७	० ७	८·४	२ ३
कैलीफोर्निया (अमेरीका)	८५ ३	५ ४	१·१	१ १	५·६	१·५

इस मिट्टी से बनी ईंटों को ठीक प्रकार से पकाने पर इनमें असंख्य रन्ध्र बन जाते हैं, जिसके कारण इन ईंटों की दुर्गलता बढ़ने के साथ-साथ इनकी ताप-चालकता काफी कम हो जाती है।

भट्ठी की दीवार में ये ईंटें रहने पर ताप-विकिरण द्वारा ताप-हानि में; १६-२० प्रतिशत कमी आ जाती है, साथ ही पकायी गयी वस्तुओं के गुण भी सुधर जाते हैं और पकाने का समय भी कम हो जाता है।

उच्च तापक्रम-पृथक्करण ईंटों के गुण

गुण	अग्नि ईंट	(क)	(ख)
भार पौंडों मे	८	३ ७	२ ५
१८००° से० पर आकुंचन	० ०	५ ६	२ ९
११०० ° से० पर ताप-चालकता	० ००४०	० ००१७	० ००११
तापक्रम-परिवर्तन-रोधकता	सन्तोषजनक	सन्तोषजनक	असन्तोषजनक

(क) = मिट्टी और कार्बनिक पदार्थों से बनी एक साधारण सरन्ध्र ईंट।

(ख) = डायटमोसियस मिट्टी से बनी हुई दुर्गल सरन्ध्र ईंट।

पूर्वलिखित कैलीफोर्निया की मिट्टी से बनी एक इंच मोटी परत के ताप-पृथक्करण गुण १२ इंच मोटी साधारण ईंट के समान होते हैं। निरन्तर गरम रहनेवाली भट्ठी में इन ईंटों की ४ इंच मोटी परत लगा देने से ५० से ७५ प्रतिशत ताप-विकिरण रुक जाता है।

उच्च तापक्रम पर ताप-विकिरण रोकने के लिए ईंट में रन्ध्र सूक्ष्म तथा एक दूसरे से असम्बद्ध होने चाहिए। बड़े तथा सम्बद्ध रन्ध्र होने पर उत्तप्त वायु में संवहन धाराएं उत्पन्न हो जाती हैं, जिससे ताप-विकिरण अधिक हो जाता है। रन्ध्र काफी सूक्ष्म होने चाहिए, जिससे दो तरफ भिन्न तापक्रम होने पर वायु में गति न उत्पन्न होने पाये।

गैस नालियाँ तथा चिमनी—भट्ठी में प्रयुक्त होनेवाले ईंधन के दहन से उत्पन्न गैसीय पदार्थ भट्ठी प्रकोष्ठ से विभिन्न गैस-नालियों में होकर चिमनी के रास्ते बाहर निकल जाते हैं। इन गैस-नालियों की संख्या इतनी हो कि गैसें भट्ठी-प्रकोष्ठ में कोई परेशानी उत्पन्न किये बिना ही सरलता से बाहर निकल जायें। इस कारण गैस-नालियाँ बनाते समय उनके आयतन पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

गणना करके देखा गया है कि एक किलोग्राम बिटूमिनी कोयले के जलने पर ७·५६ घनमीटर गैसें उत्पन्न होती हैं। परन्तु भट्ठी के अन्दर गैसों के प्रवाह को स्थिर रखने के लिए, कोयले के पूर्ण दहन के लिए आवश्यक हवा से ३०-३५ प्रतिशत अधिक हवा भेजी जानी चाहिए। मृद्-उद्योग-भट्ठियों की गैस-नालियों में गरम गैसों

का औसत वेग ८ से १० फुट प्रति सेकण्ड रहता है। अत: इस आधार पर गैस-नालियों के आयतन की गणना की जा सकती है।

चिमनी द्वारा गैसों में प्राकृतिक खिंचाव उत्पन्न होता है। चिमनी का यह खिंचाव, चिमनी के अन्दर की गरम गैसों तथा चिमनी के बाहर की ठण्डी हवा के समान आयतनों के भारों के अन्तर के कारण होता है। यह खिंचाव इतना पर्याप्त होना चाहिए कि भट्ठी तथा गैस-नालियों आदि की सभी गति-रोधक शक्तियों पर काबू पाकर चिमनी में गैसों के बहने की गति इतनी पर्याप्त हो कि बाहरी हवा का इस पर कोई विशेष प्रभाव न पड़े। इन सारी समस्याओं को सोचते हुए चिमनी बनाते समय चिमनी की ऊँचाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए, कारण चिमनी की ऊँचाई जितनी ही अधिक होगी, खिंचाव उतना ही अधिक होगा।

उच्च तापक्रमवाली भट्ठियों की चिमनियों के निर्माण में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। साधारणतया भट्ठियों के भट्ठी-प्रकोष्ठ का व्यास जितने फुट होता है, गोलाकार चिमनी का भीतरी व्यास या वर्गाकार चिमनी की भीतरी भुजा उतने ही इंच रखी जाती है। चिमनी के अन्दर की परत दुर्गल ईंटों की होनी चाहिए। इस परत का भीतरी भाग यथासम्भव चिकना होना चाहिए, जिससे गैसों के बहने में रोधन न्यूनतम हो। लगभग ढाई इंच वायु-स्थान भीतरी दुर्गल परत और बाहरी साधारण ईंटों की दीवार के बीच रखना चाहिए। चिमनी की बाहरी दीवार अच्छी प्रकार पकायी गयी ईंटों से बनानी चाहिए। चिमनी की भीतरी दुर्गल परत और बाहरी मुख्य दीवार के बीच स्थान-स्थान पर दुर्गल ईंटों के बन्धन दिये जाते हैं, जिससे वे मजबूती से खड़ी रहें। कारखाने की चिमनियों में गरम गैसों का वेग १० से २० फुट प्रति सेकण्ड के बीच रहता है तथा तापक्रम २५०° सें० के लगभग रहता है।

भट्ठियाँ

आधुनिक मृद्-उद्योग भट्ठियाँ निम्नलिखित भागों में बाँटी जा सकती हैं—

(क) विराम भट्ठियाँ

(१) छतहीन भट्ठियाँ।

(२) छतसहित भट्ठियाँ।

(i) ऊर्ध्वगति भट्ठियाँ।

(ii) अधोगति भट्ठियाँ।
(iii) क्षैतिज गति भट्ठियाँ।
(३) मफ्ल या बन्द भट्ठियाँ।

(ख) अविराम भट्ठियाँ

(१) आयताकार भट्ठियाँ।
(२) प्रकोष्ठ भट्ठियाँ।
(३) सुरंग भट्ठियाँ।
(४) वृत्ताकार सुरंग भट्ठियाँ।
(५) सुरंग बन्द भट्ठियाँ।

विराम भट्ठियों का प्रयोग उनके अल्प निर्माण-व्यय और कार्य-सरलता के कारण होता है। इस प्रकार की भट्ठियों में ईंधन-व्यय अधिक तथा भट्ठी में असमान तापक्रम होता है। बार-बार ठण्डे व गरम होने से भट्ठी की दीवार के चटक जाने का भी भय रहता है। इन्हीं सब दोषों के कारण आजकल विराम भट्ठियों का स्थान अविराम भट्ठियाँ लेती जा रही हैं। परन्तु फिर भी छोटे कारखानों में तथा बड़ी और विषम आकृति की वस्तुएँ पकाने के लिए सदैव विराम भट्ठियों का ही प्रयोग होता रहेगा, कारण विराम भट्ठियों में एक तो निर्माण-व्यय कम लगता है, दूसरे बड़ी तथा विषम आकृति के पात्र पकाने के लिए आवश्यक अवस्थाएँ इन भट्ठियों में सरलता से प्राप्त की जा सकती हैं।

अविराम भट्ठियों में, विराम भट्ठियों की अपेक्षा प्रारम्भिक निर्माण-व्यय अधिक लगता है। इस प्रकार की भट्ठियों में तापहानि केवल भट्ठी की दीवार और छत द्वारा ताप-विकिरण से ही होती है, कारण पात्र को ठण्डा करते समय पात्रों के विकीर्णित ताप का तथा गरम गैसों के ताप का उपयोग कर लिया जाता है। अविराम भट्ठियों के दूसरे लाभ सारांशत इस प्रकार हैं—

(१) भट्ठी की दुर्बल परत पर अधिक तनाव नहीं पड़ता, जिससे भट्ठी की दुर्बल परत की मरम्मत पर अधिक व्यय नहीं लगता।

(२) भट्ठी के अन्दर तापक्रम न्यूनाधिक समान ही रहता है, जिससे सभी भागों पर रखी हुई वस्तुएँ समान रूप से अच्छी प्रकार पकती हैं।

(३) भट्ठी में पकने के लिए वस्तुएँ रखने तथा पकी वस्तुएं भट्ठी से निकालने

की क्रिया अविराम होने के कारण, पात्र रखने व निकालने की मजदूरी में भी कुछ कमी हो जाती है।

ग्रीव्स वाकर की गणना के अनुसार ईंट पकाने की एक अविराम भट्ठी में सम्पूर्ण ताप का केवल १९ ५५ प्रतिशत ही वस्तुओं को पकाने में काम आता है। वाकर के अनुसार विभिन्न तापहानियों के प्रतिशत इस प्रकार हैं—

११००° सें० पर मकान की ईंटों के पकानेवाली भट्ठी का ताप-व्यय-विवरण इस प्रकार है—

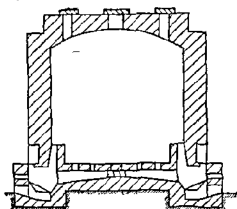
गरम गैसों द्वारा तापहानि	..	२७·३३ प्रतिशत
राख द्वारा ताप-हानि	..	३·५१ ,,
विकिरण और ठण्डे होने से तापहानि		४९·६१ ,,
ईंटों के पकाने के लिए ताप	..	१९·५५ ,,
योग		१००·००

अविराम सुरंग भट्ठी में ४५ प्रतिशत या अधिक ताप का उपयोग पात्र पकाने में होता है, जब कि विराम भट्ठियों में १९.५५ प्रतिशत ही ताप का उपयोग हो पाता है। नार्टन (Norton) के अनुसार साधारण आकार की १,००० ईंटों को १२७०° सें० तक पकाने में विभिन्न भट्ठियों में लगनेवाली कोयले की मात्रा इस प्रकार है—

अधोगति गोलाकार भट्ठियों में	..	२२०० पौंड
अधोगति चौकोर भट्ठियों में	..	१८०० पौंड
अविराम सुरंग भट्ठियों में	..	७००–८०० पौंड

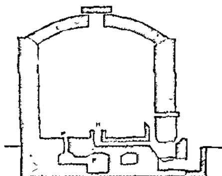
साधारण प्रकार की छतहीन भट्ठियों को अंग्रेजी में क्लैम्प (Clamp) कहा जाता है तथा हिन्दी में इन्हें भट्ठा या पजावा कहते हैं। इस प्रकार की भट्ठियाँ मुख्य रूप से साधारण ईंटें पकाने के काम आती हैं। पजावे के कई लाभ होते हैं; जैसे (१) कम निर्माण-व्यय, (२) आवश्यकतानुसार छोटा या बड़ा आकार, (३) कम ईंधन-व्यय, (४) ईंट बनाने के साथ-साथ पजावे में ही रखते जाने से ईंटों को रखने के लिए अलग से स्थान की आवश्यकता नहीं होती (५) पकी ईंटें पजावे से सीधी बेची जा सकती हैं या काम में लायी जा सकती हैं। अतः मजदूरी-व्यय कम हो जाता है। पजावे में दोष भी होते हैं; जैसे ईंटें अधिक टूट जाती हैं; कहीं ईंटें कम पकती हैं, कहीं अधिक। भट्ठे के बाहर की ओर रखी ईंटें अच्छी तरह नहीं पक

पानी, जिनकी मात्रा २०-२५ प्रतिशत तक होती है। वर्षा, तूफान आदि प्राकृतिक अवस्थाओं पर भी कोई नियन्त्रण नहीं किया जा सकता। प्राचीन पजावों में पहला सुधार यह किया गया कि पकनेवाली वस्तुओं को चारों ओर से पूर्व पकी हुई ईंटों की दीवार में घेर दिया जाय। जब इस दीवार युक्त छतहीन पजावे को छत से ढँक दिया गया तो वह आधुनिक भट्ठी का साधारणतम रूप हो गया। भट्ठी की छत पर धुआँ तथा गरम गैसों के निकलने के लिए छिद्र बने होते हैं। चूँकि इस प्रकार की भट्ठियों में गैसों का बहाव नीचे से ऊपर चिमनी की ओर होता है, अतः इन्हें ऊर्ध्वगति भट्ठियाँ कहा जाता है। चित्र ४० में एक ऊर्ध्वगति भट्ठी दिखायी गयी है।



चित्र ४०. ऊर्ध्वगति भट्ठी

अधोगति विराम भट्ठियाँ या तो एक प्रकोष्ठवाली होती हैं या दो प्रकोष्ठवाली। दो प्रकोष्ठ-वाली भट्ठियों में एक प्रकोष्ठ दूसरे प्रकोष्ठ के ऊपर बना होता है। इस प्रकार की एक प्रकोष्ठ-वाली गोलाकार भट्ठी चित्र ४१ में दिखायी गयी है।

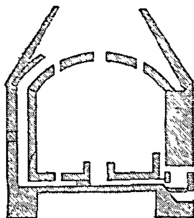


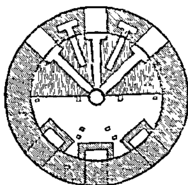
चित्र ४१. अधोगति भट्ठी

इस भट्ठी का प्रकोष्ठ गोलाकार है। परन्तु प्रकोष्ठ आयताकार या वर्गाकार भी हो सकते हैं। ऊर्ध्वगति भट्ठियों की अपेक्षा अधोगति भट्ठियों में ताप भट्ठी के सब भागों में समान रूप से वितरित होता है। अतः भट्ठी के एक भाग में रखे पात्रों के अधिक पकने की तथा दूसरे भाग में रखे पात्रों के कम

पकने की सम्भावना कम रहती है। ये भट्ठियाँ १० से १५ फुट तक ऊँची होती हैं और सभी चूल्हों से गरम गैसें व लौ भट्ठी-फर्श के नीचे बनी गैस-नालियों द्वारा एक मुख्य गैस-नाली (H) में इकट्ठी होकर भट्ठी में जाती हैं।

गरम गैसें व लौ भट्ठी में पहुँचकर ऊपर उठती हैं और भट्ठी की गोल छत से टकराकर परावर्तित होकर समानान्तर ताप-धाराओं के रूप में भट्ठी के फर्श पर आती हैं। यदि भट्ठी की छत ठीक आकृति की बनायी जाय तो ताप समान रूप से पूरी भट्ठी में वितरित हो जाता है। ऊपर से नीचे आते समय गैसें पकनेवाले पात्रों के बीच बहती हुई आती हैं और बाद में भट्ठी के फर्श पर बने छिद्र रास्तों द्वारा बाहर निकल जाती हैं। ये सभी रास्ते एक मुख्य भण्डार स्थान में जाकर खुलते हैं। यह भण्डार स्थान भट्ठी के फर्श के नीचे बनी एक गैस-नाली (F) द्वारा बाहरी चिमनी से जुड़ा रहता है। प्राय कई भट्ठियों के लिए एक चिमनी रहती है। भट्ठी की छत पर एक या अधिक छिद्र रहते हैं, जिन पर ढक्कन लगे रहते हैं। जब भट्ठी को ठण्डा करना हो तो इन छिद्रों का ढक्कन खोल, गरम गैसें बाहर निकाल कर, भट्ठी शीघ्रता से ठण्डी की जा सकती है।





चित्र ४२. इंग्लैण्ड की श्वेत मृत्पात्र भट्ठी

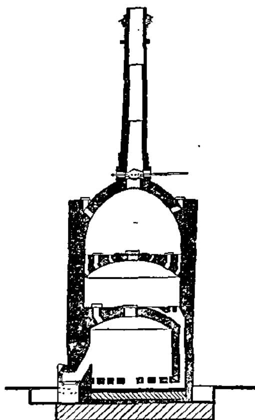
इंग्लैण्ड में उत्कृष्ट श्वेत मृत्पात्र बनाने के लिए एक विशेष प्रकार की अधोगति भट्ठी का अधिक प्रयोग होता है। चित्र ४२ में इस प्रकार की एक भट्ठी दिखायी गयी है। इसमें चूल्हों की संख्या ९ से ११ तक होती है। चूल्हों

में लौ, लौ-द्वारों तथा भट्ठी की तली के एक केन्द्रीय छिद्र से, भट्ठी में पहुँचती है। यह केन्द्रीय छिद्र भट्ठी-फर्श के नीचे बनी गैस-नालियों द्वारा प्रत्येक चूल्हे से जुड़ा रहता है। इस प्रकार भट्ठी के केन्द्र तथा परिधि से लौ और गरम गैंसे सीधी ऊपर जाकर छत से टकराती हैं। छत से टकराने के बाद इनकी गति नीचे की ओर हो जाती है। नीचे आकर भट्ठी-फर्श पर बने रास्तों द्वारा गैसें, गैस-नालियों में होकर, भट्ठी की छत पर बनी चिमनी द्वारा बाहर निकल जाती हैं। ये गैस-नालियां भट्ठी की दीवारों के बीच में बनी होती हैं। इसमें जानेवाली गैसों का ताप व्यर्थ नहीं जाता, कारण इस ताप से भट्ठी की दीवारें गरम रहती हैं। इस प्रकार की भट्ठी की ताप-दक्षता अधिक है। भट्ठी की छत के मध्य में गैसों के बाहर जाने के लिए एक बड़ा गैस-द्वार है, जिस पर ढक्कन लगा रहता है। इस केन्द्रीय गैस-द्वार के चारों ओर और छोटे-छोटे गैसद्वार ढक्कन-सहित होते हैं। इन छोटे गैस-द्वारों का उपयोग यह है कि जब भट्ठी का कोई भाग दूसरे भागों की अपेक्षा अधिक गरम हो जाता है, तो इस गरम भाग के ऊपर का गैस-द्वार थोड़ा खोलकर उस भाग को ठण्डा कर लिया जाता है। ये भट्ठियां प्राय १५ से २० फुट तक ऊँची और लगभग इतनी ही चौड़ी बनायी जाती हैं। समाई बराबर होने पर भी कम ऊँची भट्ठी की अपेक्षा कम चौड़ी भट्ठी में मजदूरी-व्यय अधिक लगता है और सैगर भी अधिक टूटते हैं।

दो प्रकोष्ठवाली भट्ठियों का जन्म एक प्रकोष्ठवाली भट्ठियों में पकाव-समय और ईंधन कम लगाने के लिए सुधार के रूप में हुआ था। पोरसिलेन पात्र पकाने के लिए इस प्रकार की एक विशेष भट्ठी चित्र ४३ में दिखायी गयी है। ऊपरी प्रकोष्ठ, निचले प्रकोष्ठ की गरम गैसों द्वारा गरम होता है और प्राय. इसमें प्रलेपन से पूर्व पात्रों का प्रारम्भिक पकाव होता है।

चूल्हों से लौ तथा गरम गैसें लौ-द्वारों से निचले प्रकोष्ठ में घुसती हैं। लौ-द्वार प्रकोष्ठ की दीवारों में बने होते हैं। भट्ठी में घुसकर लौ तथा उत्तप्त गैसें ऊपर चढ़ती हुई छत से टकराकर समानान्तर ताप-धाराओं में नीचे की ओर आती हैं। नीचे आते समय सैगरों के बीच से होती हुई आती हैं और भट्ठी-फर्श पर बने हुए छिद्रों में होकर भट्ठी-दीवारों में बनी गैस-नालियों में होती हुई ऊपर के प्रकोष्ठ में चली जाती हैं। ऊपरी प्रकोष्ठ से गैसें ऊपरी प्रकोष्ठ की छत पर बनी चिमनी द्वारा बाहर निकल जाती हैं।

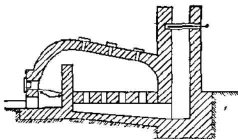
इन भट्ठियों में लौ-द्वार की दीवारें प्रकोष्ठ के अन्दर नहीं घुसी रहतीं, जिसके कारण प्रकोष्ठ में सैगर रखने के लिए अधिक स्थान रहता है। परन्तु इस प्रकार की भट्ठियों में प्रथम चक्र के पात्र अधिक पक जाते हैं। अतः सेवरेस पोरसिलेन भट्ठियों में इस कठिनाई को दूर करने के लिए सभी लौ-द्वारों के सामने एक गोलाकार ऊँची दीवार बनाकर एक वृत्ताकार नाली बना दी जाती है। इस गोल दीवार के कारण लौ तथा गरम गैसें सीधी ऊपर उठकर छत से टकराकर पात्रों को पकाती हैं। इस प्रकार इस दीवार से प्रथम चक्र में रखे पात्र अत्यधिक नहीं पकते।



चित्र ४३. पोरसिलेन-पात्र पकाने के लिए दो प्रकोष्ठवाली भट्ठी

कैसेल या न्यूकैसेल (Cassel or New Castle) प्रकार की दो क्षैतिज गति विराम भट्ठियों में प्रायः भट्ठी के सिरे पर केवल एक चूल्हा और दूसरे सिरे पर एक चिमनी होती है। भट्ठी की लम्बाई के समानान्तर लौ क्षैतिज दिशा में चलती है और बाद में चिमनी से होकर बाहर निकल जाती है। यदि इस प्रकार की भट्ठी की लम्बाई कम हो, तो ताप का वितरण सन्तोषजनक होता है। परन्तु अधिक लम्बी भट्ठियों में

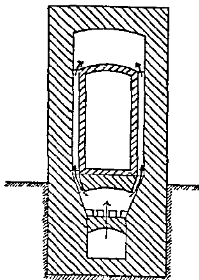
ताप-वितरण समान न होने के कारण पात्रों में दोष आ जाते हैं। उच्च तापक्रम पर



चित्र ४४. कैसेल क्षैतिज गति भट्ठी

पात्र पकाने के लिए ये भट्ठियाँ विशेष रूप से उपयोगी होती हैं, जैसे दुर्गल ईंट पकाने के लिए। परन्तु इनमें ईंधन अधिक व्यय होता है।

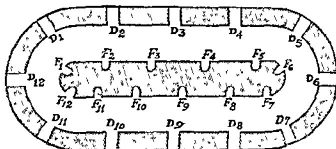
मफल या बन्द भट्ठियाँ—इन भट्ठियों का विशेष प्रयोग रंजन पकाव के लिए तथा ऐसे मृत्पात्रों को पकाने के लिए होता है, जिन्हें पकाते समय ईंधन गैसों तथा लौ के सीधे सम्पर्क से बचाना आवश्यक हो। विराम मफल भट्ठियाँ, दुर्गल पदार्थों से बने आयताकार प्रकोष्ठ होते हैं, जो बाहर से गरम किये जाते हैं। इस प्रकार की भट्ठी के अन्दर रखे पात्र केवल भट्ठी की दीवारों के ताप-चालन और ताप-विकिरण के कारण पकते हैं। अतः यह महत्त्वपूर्ण है कि इस भट्ठी की दीवारें व्यवहार में यथासम्भव पतली तथा ताप की अच्छी चालक हों। ये भट्ठियाँ इस प्रकार बनी होती हैं कि लौ और गरम गैसें भट्ठी की बाहरी दीवार तथा मफल प्रकोष्ठ की दीवारों के बीच के स्थान में बहकर एक गैस-नाली में इकट्ठी हो चिमनी के रास्ते बाहर निकल जाती हैं।



चित्र ४५. मफल भट्ठी

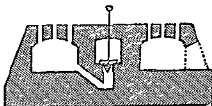
अविराम भट्ठियाँ

हाफमैन भट्ठी, आयताकार अविराम भट्ठियों का एक नमूना होती है। आधुनिक काल की दूसरी आयताकार भट्ठियाँ इधर-उधर थोड़े-बहुत सुधार करके इसी भट्ठी के सिद्धान्त पर बनायी गयी हैं। चित्र ४६ में हाफमैन भट्ठी का अधोदृश्य या प्लान दिखाया गया है। इस भट्ठी में एक आयताकार दहन-प्रकोष्ठ होता है,



चित्र ४६. हाफमैन भट्ठी का अधोदृश्य या प्लान (Plan)

जिसमें बाहर की ओर D_1, D_2, D_3....आदि १२ द्वार होते हैं तथा प्रकोष्ठ के अन्दर $F_1, F_2 F_3$....आदि १२ गैस-नालियाँ होती हैं। ये सारी गैस-नालियाँ एक मुख्य गैस नाली में खुलती हैं, जो कि बाहर की ओर स्थित एक चिमनी से जुड़ी रहती है। इन १२ द्वारों से पात्र-प्रकोष्ठ में रखे तथा पके हुए पात्र प्रकोष्ठ से बाहर निकाले जाते हैं।



चित्र ४७. हाफमैन भट्ठी का पार्श्व दृश्य

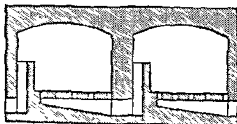
इन १२ गैस-नालियों का एक-दूसरे से एकदम कोई सम्बन्ध नहीं होता और वे १२ घंटु आकार के ढक्कनों द्वारा बन्द की या खोली जा सकती हैं। इन दो नालियों के बीच का स्थान प्रकोष्ठ कहलाता है और ये प्राय अस्थायी रूप से एक-दूसरे से अलग कर दिये जाते हैं। प्रारम्भ करने के लिए जिस प्रकोष्ठ में पात्र रखे हैं, उसके

पासवाले खाली प्रकोष्ठ में आग जलायी जाती है, जिससे पासवाला प्रकोष्ठ इतना गरम हो जाय कि बाद में इसमें ऊपर से कोयला डालने पर कोयला जलकर पकाव-क्रिया चालू रखे।

गरम गैसें एक प्रकोष्ठ से दूसरे प्रकोष्ठ में उस समय तक भेजी जाती हैं, जब तक कि उनका तापक्रम कम होकर २००° से १५०° सें० के बीच तक न पहुँच जाय। इस तापक्रम पर आ जाने के बाद गैसों को और प्रकोष्ठों में ले जाना व्यर्थ है। अतः इसके बाद मुख्य गैस-नाली में होकर चिमनी द्वारा वे बाहर निकाल दी जाती हैं।

उच्च तापक्रम पर पकनेवाले तथा हलके पात्र पकाने के लिए स्थायी प्रकोष्ठवाली अविराम भट्ठियाँ अधिक कार्योपयोगी होती हैं, कारण हाफमैन-जैसी भट्ठियों में, जिनमें गरम गैसें क्षैतिज दिशा में बहती हैं, भट्ठी के अन्दर के वातावरण के संगठन का नियन्त्रण सम्भव नहीं है। इन भट्ठियों में ताप-वितरण भी सन्तोषजनक नहीं होता।

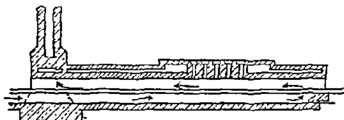
इन्हीं कारणों से उच्च तापक्रम पर उत्कृष्ट मृत्पात्र पकाने के लिए मैण्डहाइम (Mendheim) प्रकार की प्रकोष्ठ भट्ठियाँ अधिक प्रयोग की जाती हैं। इन भट्ठियों में अधिकतर गैसीय ईंधनों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार की भट्ठियों में गैस-नालियों की सहायता से एक प्रकोष्ठ अगले प्रकोष्ठ से जुड़ा रहता है। प्रकोष्ठों को जोड़नेवाली गैस नालियाँ प्रकोष्ठ के प्रथम सिरे पर प्रारम्भ होकर उस प्रकोष्ठ के फर्श के नीचे होती हुई, अगले प्रकोष्ठ के प्रथम सिरे पर ही खुल जाती हैं। पात्र पकाने के समय गरम गैसें ज़मीन के अन्दर बनी हुई बाहरी गैस नालियों से प्रत्येक प्रकोष्ठ में भेजी जाती हैं। बीच में एक चिमनी होती है जिसके द्वारा खिंचाव उत्पन्न होता है।



चित्र ४८. मैण्डहाइम प्रकोष्ठ भट्ठी

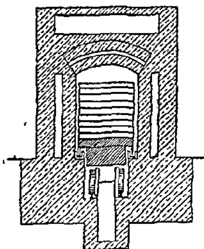
सुरंग भट्ठियाँ—मृत्पात्र पकाने के लिए सुरंग भट्ठी का विचार १६० वर्ष से

भी अधिक पूर्व से होता आया है। परन्तु व्यावहारिक रूप में इसका विकास केवल



चित्र ४९. बॉक सुरंग भट्ठी का काट-दृश्य

६० वर्ष पूर्व जर्मनी के ऑटो बॉक (Otto Bock) नामक व्यक्ति ने ही किया था। चित्र ४९ और ५० में इस भट्ठी के क्रमशः काट-दृश्य तथा पार्श्व-दृश्य दिये गये हैं।

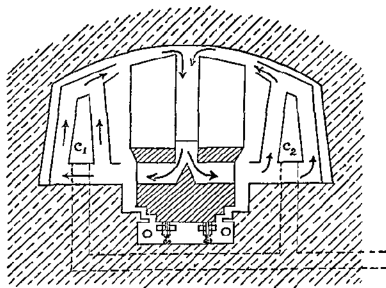


चित्र ५०. बॉक सुरंग भट्ठी का पार्श्व-दृश्य

इस प्रकार की भट्ठी में २०० से ३५० फुट लम्बी सुरंग होती है, जिसके भीतर लोहे की पटरी पर गाड़ियाँ या छकड़े ले जाये जाते हैं। इन सुरंगों की चौड़ाई ४ से १२ फुट तक होती है तथा गाड़ी के ऊपरी तख्ते और सुरंग छत के बीच लगभग ५ फुट स्थान रहता है। गाड़ियों पर दुर्गल तख्ते रखे रहते हैं, जिन पर पकानेवाले पात्र रखे जाते हैं। हर गाड़ी के दोनों ओर लोहे की चद्दरें लटकती रहती हैं। ये चद्दरें भट्ठी की दीवार से निकली रेत भरी नालियों में घुसी रहती हैं। इस प्रकार गाड़ियों के तख्तों पर की गरम हवा या गैसें गाड़ी के नीचे पटरियों पर नहीं आने पातीं। इससे लोहे की पटरियों तथा गाड़ी के पहियों को गरमी से हानि नहीं पहुँचती, जैसा कि चित्र ५० में दिखाया गया है।

बनाने में, सीधी सुरंग की अपेक्षा कम व्यय पड़ता है तथा एक ही समाई की वृत्ताकार सुरंग, सीधी सुरंग की अपेक्षा कम स्थान में ही बन जाती है। गाड़ियों में पात्र रखने और पके पात्र गाड़ियों से निकालने के लिए गाड़ियों को घुमाना भी नहीं पड़ता। इस प्रकार गाड़ियों में पात्र रखने और उनसे पात्र निकालने में मजदूरी व्यय भी कम हो जाता है।

ड्रेसलर अविराम मफल भट्ठी—सभी प्रकार के मृत्पात्र पकाने के लिए अविराम सुरंग मफल भट्ठियों का प्रयोग काफी किया जाता है। इस भट्ठी में १३००° सें० तक पात्र पकाये जाते हैं और इसमें पात्र रखने के लिए सैगरों की आवश्यकता नहीं होती, कारण इस प्रकार की भट्ठियों में ईंधन, लौ तथा गरम गैसें पात्रों के सीधे सम्पर्क में नहीं आतीं। चित्र ५१ में ड्रेसलर सुरंग भट्ठी दिखायी गयी है।



चित्र ५१. ड्रेसलर सुरंग भट्ठी

ड्रेसलर सुरंग भट्ठी के कार्य करने का ढंग काफी भिन्न होता है। जिस सिरे पर पके हुए पात्र निकाले जाते हैं, उसी सिरे पर दहन के लिए आवश्यक हवा घुसती है।

दहन-मण्डल जाने तक यह हवा पके हुए ठण्डे हो रहे गरम पात्रों को ठण्डा करती हुई स्वयं गरम हो जाती है। अत पात्र ठण्डे भी शीघ्रता से होते हैं और वह ताप भी व्यर्थ नहीं जाता। दहन-मण्डल के दोनों ओर अग्नि-मिट्टी और कार्बोरण्डम से बने हुए दो लम्बे-दहन-प्रकोष्ठ C_1 C_2 होते हैं। गरम हवा भट्ठी-फर्श के नीचे बनी हुई एक नाली में होकर इन दहन-प्रकोष्ठों में प्रवेश करती है। दहन-प्रकोष्ठों में ईंधन गैसें भी भेजी जाती हैं, जो इस गरम हवा के साथ जलकर प्रकोष्ठ के भीतर अत्यधिक ताप उत्पन्न करती हैं। दहन-प्रकोष्ठ की दीवार में कार्बोरण्डम होने से इसकी ताप-चालकता काफी अधिक होती है। अत ताप, सरलता से दहन-प्रकोष्ठ के बाहर आकर दहन-प्रकोष्ठ के बाहर सुरंग में रखे पात्रों को पकाता है। दहन-प्रकोष्ठ के अन्दर खिंचाव, चिमनी या पंखों की सहायता से उत्पन्न किया जाता है तथा गरम गैसें प्राय दूसरे कार्यों में प्रयोग कर ली जाती हैं।

मृद्-वस्तुओं को पकाने में सबसे नवीन सुधार विद्युत् द्वारा पकाने का है। बाजार में विद्युत् का प्रयोग करनेवाली कुछ भट्ठियाँ मिलती हैं और इन भट्ठियों में प्रलेप पकाव तथा पोरसिलेन और साधारण मृत्पात्रों के रंजन पकाव बड़ी सफलतापूर्वक होते हैं। इन भट्ठियों की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

(१) सभी प्रकार के धूम और वाष्प से रहित स्वच्छ आक्सीकारक वातावरण।
(२) समान तापक्रम होने के कारण सभी पात्र समान रूप से पकते हैं।
(३) कम व्यक्तियों की आवश्यकता और नियन्त्रण में सरलता।
(४) कम मरम्मत-व्यय।
(५) समय का अत्यधिक कम लगना।

इन भट्ठियों में केवल एक दोष है कि विद्युत् का व्यय अधिक हो जाता है।

विभिन्न भट्ठियों की आपेक्षिक दक्षताएँ—

अधोगति विराम भट्ठियाँ	१५–१९ प्रतिशत
हापमैन आयताकार भट्ठियाँ	२१–२३ ,,
सुरंग भट्ठियाँ (गैस दहन)	४१–४३ ,,
ड्रेसलर सुरंग भट्ठियाँ (गैस दहन)	४८–४९ ,,

द्वादश अध्याय

उत्तापमापन

भट्ठी के अन्दर तापक्रम नापने के लिए समय-समय पर विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है। साधारण विधि में पक्नेवाले पात्रों तथा भट्ठी-दीवारों के भीतरी भागों के रंग-परिवर्तन से तापक्रम ज्ञात किया जाता है। परन्तु इसके लिए विशेष अभिज्ञता की आवश्यकता होती है। नीचे भट्ठी के अन्दर रंग-परिवर्तन और उनसे सम्बन्धित सन्निकट तापक्रम दिये गये हैं।

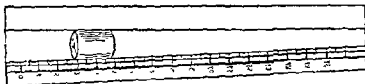
लाल रंग के प्रकट होने पर	..	५००°	सें०
गाढ़ा लाल	..	७००°	,,
चेरी (Cherry) लाल प्रकट होने पर	..	८००°	,,
उज्ज्वल लाल	..	१०००°	,,
उज्ज्वल नारंगी	..	१२००°	,,
उज्ज्वल श्वेत	..	१३००°	,,
अनुज्ज्वल श्वेत	..	१४००°	,,
झिलमिलाता श्वेत	..	१५००°	,,

इन रंगों को तभी देखना चाहिए जब भट्ठी के अन्दर लौ साफ हो जाय तथा उनमें कोई हाइड्रोकार्बन न रहे। तापक्रम-परीक्षक को अँधेरे में खड़ा होना चाहिए, जिससे उसकी आँखों पर धूप की विभिन्न चमकों का प्रभाव न पड़े।

मृत्तिका-उद्योग के सभी कारखानों में जहाँ एकदम ठीक तापक्रम पर पकाव आवश्यक होता है, वहाँ तापक्रम नापने के लिए उत्तापदर्शी (Pyroscope) या उत्ताप मापक (Pyrometer) का प्रयोग किया जाता है।

उत्तापदर्शी—ये विभिन्न खनिजों से बनी छोटी-छोटी वस्तुएँ होती हैं, जो मृद्-उद्योग भट्ठी के अन्दर का तापक्रम नापने के काम आती हैं। इनका सिद्धान्त यह है कि विशेष खनिजों से बने उत्तापदर्शी एक विशेष तापक्रम पर ही पिघलकर या सिकुड़कर अपनी आकृति खो देते हैं। इसलिए यह केवल एक बार तापक्रम नापने के काम

आ सकते हैं। समय-समय पर बाजार में विभिन्न प्रकार के उत्तापदर्शी मिलते रहते हैं। इनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण इस प्रकार के हैं—वैजवुड सिलिण्डर, सैगर शंकु, होल्ड-क्राफ्ट (Hold craft's) दण्ड, बुलर-चक्र (Buller's Ring) आदि।



चित्र ५२. वैजवुड उत्तापदर्शी

सन् १७८२ ई० में इँग्लैण्ड के प्रसिद्ध कुम्हार जोशिया वैजवुड ने मृद्-उद्योग भट्ठियों के अन्दर का तापक्रम नापने के लिए प्रथम उत्तापदर्शी बनाया था। यह उत्तापदर्शी इतना उपयोगी निकला कि उस समय के कुम्हारों ने सफलतापूर्वक १०० वर्ष तक इसका ही प्रयोग किया।

इस विधि में निश्चित संगठनवाली मिट्टी से बने बहुत से छोटे-छोटे सिलिण्डर भट्ठी के अन्दर रखे जाते हैं और पकाव की विभिन्न अवस्थाओं पर उन्हें निकालकर देखा जाता है। इन निकाले हुए सिलिण्डरों को ठण्डा करके एक विशेष आकुचनमापक की सहायता से उनका आकुचन देखा जाता है। इस आकुचनमापक से सीधा तापक्रम पढ़ा जाता है। यह विधि तभी उपयोगी हो सकती है, जब कि भट्ठी के अन्दर तापक्रम समान गति से बढ़ रहा हो, कारण ऐसी अवस्था में उत्तापदर्शी का आकुचन तापक्रम के अनुपात से होगा। परन्तु जिन अवस्थाओं में उत्तापदर्शी का आकुचन समान न हो जैसे ताप-शोषण-काल में, तो तापक्रम ठीक प्रकार से नहीं नापा जा सकता।

सैगर शंकु—यह वह विधि है जो जर्मनी के हेरमान सैगर ने १८८६ ई० में मृद्-उद्योग भट्ठियों के अन्दर का तापक्रम नापने के लिए निकाली थी। ये शंकु मृद्-उद्योग खनिजों, धुली कैओलिन, फेल्सपार, स्फटिक, संगमर्मर, फेरिक आक्साइड आदि द्वारा बनाये जाते हैं। प्रत्येक शंकु खनिजों के विशेष मिश्रण से बनाया जाता है और इस पर एक नम्बर लिखा रहता है। हर एक नम्बर का शंकु एक विशेष तापक्रम पर पिघलकर भट्ठी का तापक्रम बताता है। ये शंकु दो प्रमाणित आकारों में बनाये जाते हैं। साधारण आकार के शंकु *तीन भुजावाले* २½ इंच ऊँचे सूचीस्तम्भ (Pyramids) होते हैं। इनकी आधार भुजा, ऊँचाई की चौथाई होती है। छोटे आकार-

वाले शंकु लगभग १ इंच ऊँचे और चौथाई इंच आधार भुजावाले होते हैं। छोटे शंकु मुख्यतः छोटी-छोटी प्रायोगिक भट्ठियों के परीक्षण तथा अग्नि-मिट्टियों की दुर्गलता परीक्षण के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। बड़े शंकुओं का प्रयोग मृद्-उद्योग भट्ठियों में किया जाता है।

जब डाक्टर सैगर ने अपने इन शंकुओं को निकाला तो ११५०° सें० पर गलनेवाले शंकु को उसने १ नम्बर दिया। सैगर शंकु इतने उपयोगी सिद्ध हुए कि बाद में इन शंकुओं की श्रेणी अधिक उच्च तापक्रम के लिए क्रैमर (Crammer) द्वारा तथा कम तापक्रम के लिए हेक्ट (Hecht) द्वारा बढ़ायी गयी थी। कम तापक्रम नापनेवाले शंकु बनाने के लिए उचित अनुपात में बोरिक अम्ल और लैड आक्साइड का प्रयोग किया गया था। परिणाम-स्वरूप शंकु-श्रेणी में ६४ शंकु हो गये हैं। इन शंकुओं के आधुनिक नम्बर और इनके तापक्रम नीचे सारणी में दिये गये हैं।

शंकु नम्बर	तापक्रम	शंकु नम्बर	तापक्रम	शंकु नम्बर	तापक्रम
०२२	६००	०२अ	१०६०	१९	१५२०
०२१	६५०	०१अ	१०८०	२०	१५३०
०२०	६७०	१अ	११००	२६	१५८०
०१९	६९०	२अ	११२०	२७	१६१०
०१८	७१०	३अ	११४०	२८	१६३०
०१७	७३०	४अ	११६०	२९	१६५०
०१६	७५०	५अ	११८०	३०	१६७०
०१५अ	७९०	६अ	१२००	३१	१६९०
०१४अ	८१५	७	१२३०	३२	१७१०
०१३अ	८३५	८	१२५०	३३	१७३०
०१२अ	८५५	९	१२८०	३४	१७५०
०११अ	८८०	१०	१३००	३५	१७७०
०१०अ	९००	११	१३२०	३६	१७९०
०९अ	९२०	१२	१३५०	३७	१८२५
०८अ	९४०	१३	१३८०	३८	१८५०
०७अ	९६०	१४	१४१०	३९	१८८०
०६अ	९८०	१५	१४३५	४०	१९२०
०५अ	१०००	१६	१४६०	४१	१९६०
०४अ	१०२०	१७	१४८०	४२	२०००
०३अ	१०४०	१८	१५००	—	—

शकु ०१ का गलन-तापक्रम शकु १ के गलन-तापक्रम से एक शंकु कम है तथा शकु ०२ का गलन-तापक्रम शकु १ के गलन-तापक्रम से दो शकु कम है। पूरी श्रेणी ६००° से० पर गलनेवाले शकु ०२२ से प्रारम्भ होकर लगभग २०००° से० पर गलनेवाले शकु ४२ पर समाप्त होती है। सन् १९०९ ई० के लगभग यह सोचा गया कि सैगर शकु संगठन से लौह और सीसा के आक्साइड निकाल दिये जायँ, कारण इन आक्साइडों पर अवकारक वातावरण का हानिकर प्रभाव पड़ता है। अतः लौह और सीसा आक्साइड-वाले पुराने शकुओं के स्थान पर लौह सीसा आक्साइड रहित नये शकु बने। इनके नाम में अक के बाद, 'अ' (a) लगा दिया गया। शकु २१ से शकु २५ तक के पांच शकुओं के गलन-तापक्रम इतने पास-पास थे कि श्रेणी से उन्हें निकाल दिया गया।

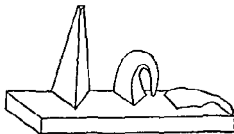
प्रयोग के समय सैगर शकु को अग्नि-मिट्टी के आधार पर रखा जाता है। भट्ठी में तापक्रम बढ़ने पर शकु नरम होना प्रारम्भ करता है और जब उसका गलनांक आ जाता है, तो इसका टेढ़ा होना प्रारम्भ होकर अन्त में ऊपरी सिरा आधार छू लेता है।

भट्ठी में पकाव-समय का भी शकु के टेढ़े होने पर काफी गहरा प्रभाव पड़ता है। ऊपर की सारणी में २ घंटे पकाव समय पर विभिन्न शकुओं के गलन-तापक्रम दिये गये हैं। परन्तु यदि पकाने का समय बढ़ा दिया जाय, तो शकु निश्चित तापक्रम से पूर्व ही नरम होना प्रारम्भ कर देते हैं। उदाहरणार्थ दो दिन तक भट्ठी में गरम करने पर शकु १०, १३००° सें० के स्थान पर १२००° से० पर ही टेढ़ा हो जायगा।

इससे यह स्पष्ट है कि यद्यपि सैगर शकुओं के गलन-तापक्रम सेण्टीग्रेडों में दिये रहते हैं, पर वे भट्ठी का एकदम निश्चित तापक्रम नहीं बताते। सैगर शंकुओं से शकु मिश्रण-पिण्ड पर ताप-जनित रासायनिक क्रिया का संकेत मिलता है। यह सैगर शकु का दोष नहीं, वरन् विशिष्ट गुण है। इसी गुण के कारण मृद्-उद्योग में शकु इतने लाभदायक सिद्ध हुए हैं। आगे चित्र में सैगर शकु के टेढ़े होने की विभिन्न अवस्थाएँ दिखायी गयी हैं।

पकाव-क्रिया में पकाने का समय उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना पकाने का तापक्रम। कम तापक्रम पर अधिक काल तक तापरोपण से भी पात्र या प्रलेप वैसा ही पक सकता है, जैसा कि उच्च तापक्रम पर शीघ्र पकाव में। भट्ठी में पकनेवाले पात्रों या प्रलेप और सैगर शकु पर ताप-क्रियाएँ लगभग निश्चित अनुपात में होती हैं। पात्र पकाने-वाला कारीगर केवल यह जानना चाहता है कि ताप ने पात्र या प्रलेप पर क्या क्रिया

की है और यह भट्ठी का वास्तविक तापक्रम आने बिना ही केवल सैंगर शंकुओं के टेढ़े होने से इसका पता लगा लेता है। यदि पकाव-क्रिया इसी प्रकार ठीक रखी जा सके तो भट्ठी के वास्तविक तापक्रम का कोई विशेष महत्व नहीं है।

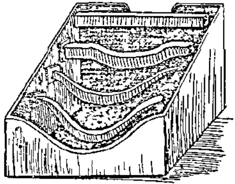


चित्र ५३. सैंगर शंकु के टेढ़े होने की विभिन्न अवस्थाएँ

सैंगर शंकु पर अवकारक गैसों का प्रभाव ताप-प्रभाव का उलटा होता है। कोयला गैस या भजित (Cracked) कार्बन शंकु के रन्ध्रों में घुसकर उसके तल पर एक दुर्गल परत बनाकर शंकु के टेढ़े होने में उस समय भी बाधा डालते हैं, जब भीतरी भाग में गलने के चिह्न प्रकट होने लगते हों। ऐसी अवस्थाओं में थोड़ी देर तक भट्ठी में ताजी हवा भेजने से शंकु एकदम टेढ़ा हो जायगा। गन्धक गैसों का सैंगर शंकु के गलन-तापक्रम पर काफी प्रभाव पड़ता है। *इन्हीं सब कारणों से विश्वसनीय कारखानों के* बने सैंगर शंकुओं को ही खरीदना चाहिए। प्रारम्भ में सैंगर शंकु बर्लिन के प्रशियन सरकार के रायल पोरसिलेन कारखाने में बनाये जाते थे। बाद में डाक्टर सैंगर और डाक्टर क्रेमर द्वारा प्रबन्धित मृद्-उद्योग की रासायनिक प्रयोगशालाओं में बनाये जाने लगे। इंग्लैण्ड में सैंगर शंकु स्ट्राक आन ट्रेण्ट की एक सुनियन्त्रित सरकारी प्रयोगशाला में बनाये जाते हैं। अमेरिका में ओर्टोन द्वारा निकाले गये शंकु कोलम्बस नामक स्थान में बनाये जाते हैं और उन्हें ओर्टोन शंकु कहा जाता है। भारतवर्ष में सैंगर शंकु बनाने का कोई विशेष कारखाना नहीं है और प्रतिवर्ष काफी संख्या में शंकु विदेशों से मँगाने पड़ते हैं। सरकार को इस ओर ध्यान देना चाहिए।

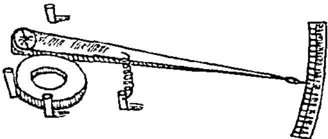
होल्ड क्राफ्ट दण्ड उत्तापदर्शी—इस प्रकार के उत्तापदर्शी भी सैंगर शंकु की भाँति ही होते हैं, अन्तर केवल इतना होता है कि इनके परीक्षण टुकड़े शंकु आकार के न होकर दण्ड आकार के होते हैं। विशेष आधारों पर इन्हें क्षैतिज अवस्था में रोका जाता है, *और क्रांतिक तापक्रम उस समय समझा जाता है, जब दण्ड आधार पर* लटक जाय।

प्राय तीन लगातार नम्बरवाले दण्ड एक बक्स में रखकर भट्ठी के अन्दर रखे जाते हैं, जैसा कि चित्र ५४ में दिखाया गया है। इन तीन दण्डो में से सर्वाधिक गलनशील दण्ड के लटक जाने पर परीक्षक को सावधान हो जाना चाहिए। बीच का दण्ड वास्तविक इच्छित तापक्रम पर लटकता है। तीसरे दण्ड से, जो इच्छित तापक्रम से उच्च तापक्रम पर लटकता है, यह पता चलता है कि भट्ठी का तापक्रम अत्यधिक तो नहीं हो गया है।



चित्र ५४. होल्ड काफ्ट दण्ड उत्तापदर्शी

बुलरचक्र उत्तापदर्शी—बुलर चक्र बिलकुल वेजवुड सिलिण्डरो की भाँति होते हैं। अन्तर केवल इतना होता है कि परीक्षण टुकडे चक्र-आकृति के होते हैं, जिन्हें भट्ठी से सरलता से निकाला जा सकता है। भट्ठी से निकाले गये चक्रो का आकुंचन एक



चित्र ५५. बुलर चक्र के लिए आकुंचन प्रमापी

विशेष प्रकार के आकुंचन प्रमापी की सहायता से निकाला जाता है। एक ऐसे आकुंचन प्रमापी को चित्र ५५ में दिखाया गया है।

इन चक्रों के प्रयोग से भट्ठी का तापक्रम नापा जाता है तथा पकाव के समय *भट्ठी के विभिन्न भागों में पकाव-क्रिया पर नियन्त्रण किया जाता है।*

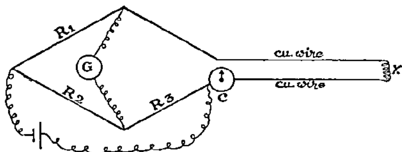
उत्तापमापी (Pyrometer)—भट्ठी के भीतर के उच्च तापक्रम को नापनेवाले यन्त्रों को उत्तापमापी या पाइरोमीटर कहते हैं। उत्तापदर्शी केवल एक बार तापक्रम नापने के काम आ सकता है। उत्तापमापी को बार-बार तापक्रम नापने के काम में लाया जाता है, कारण इन यन्त्रों का कार्य उन पदार्थों के भौतिक गुण-परिवर्त्तन पर आधारित होता है, जिनसे उत्तापमापी बनाया गया है। उत्तापमापी अनेक प्रकार के होते हैं। परन्तु जिनका मृद्-उद्योग में अधिक उपयोग होता है उनमें से मुख्य वैद्युतिक उत्तापमापी, विकिरण उत्तापमापी तथा प्रकाश उत्तापमापी हैं।

वैद्युतिक उत्तापमापी—वैद्युतिक उत्तापमापी दो भागों में बाँटे जा सकते हैं। *प्रथम प्रकार के वे है, जिनमें तापक्रम-परिवर्तन से धातुओं के विद्युत्-रोधकता-*परिवर्तन का सिद्धान्त प्रयोग किया जाता है। द्वितीय प्रकार के वे हैं जिनमें तापीय युग्म (Thermo couple) के जोड़ों पर असमान तापक्रम होने पर विद्युद्वाहक बल (E. M. F.) की उत्पत्ति का सिद्धान्त प्रयोग किया जाता है। प्रथम प्रकार के वैद्युतिक उत्तापमापी को प्रतिरोध उत्तापमापी तथा दूसरे प्रकार के उत्तापमापी को तापीय युग्म उत्तापमापी कहते हैं।

आधुनिक प्रतिरोध उत्तापमापी सन् १८८७ ई० में कलैण्डर द्वारा किये गये शोधकार्यों पर आधारित है। उसने पता लगाया कि प्रतिरोध उत्तापमापी में प्लेटीनम तार का प्रयोग सर्वोत्तम होता है। माइका ढाँचे के चारों ओर लपेटा हुआ प्लेटीनम तार १२००° सें० तक का तापक्रम सह सकता है। परन्तु १०००° सें० से अधिक तापक्रम पर इस तार को अधिक समय तक गरम नहीं करना चाहिए, कारण उच्च तापक्रम पर प्लेटीनम के अणु-विघटन के कारण तार का प्रतिरोध बदल जाता है, जिसके कारण उत्तापमापी द्वारा बताया गया तापक्रम वास्तविक तापक्रम से भिन्न हो जाता है। ३००° सें० से कम तापक्रम नापने के लिए शुद्ध निकिल के तार का प्रयोग किया जाता है। चित्र ५६ में एक प्रतिरोध उत्तापमापी दिखाया गया है।

इस उत्तापमापी यन्त्र में एक प्रतिरोध कुंडली (×) होती है, जो पोरसिलेन नल में रखी रहती है। यह कुंडली मुख्य ह्वीटस्टोन सेतु में (R_1, R_2, R_3)

ताँबे के तारों द्वारा जुड़ी रहती है। इस ह्वीटस्टोन सेतु और X के बीच एक परिवर्तनशील प्रतिरोध बक्स (C) जोड़ दिया जाता है, जिसे घुमाकर X का प्रतिरोध घटाया



चित्र ५६. एक विद्युत् प्रतिरोध उत्तापमापी

बढ़ाया जा सकता है। परिणाम-स्वरूप धारामापी (G) में विक्षेप (Deflection) भी घटाया बढ़ाया जा सकता है। प्रयोग करते समय प्रतिरोध बक्स C का प्रतिरोध ऐसा रखा जाता है कि धारामापी G में विक्षेप बिलकुल न हो। प्रतिरोध बक्स C का डायल (Dial) इस प्रकार अंशांकित किया जाता है कि धारामापी में विक्षेप शून्य होने पर डायल के अंक तापक्रम को सूचित करते रहें।

सावधानीपूर्वक प्रयोग करने पर इस उत्तापमापी में १०००° सें० तक केवल ±१° सें० की त्रुटि होती है, परन्तु इससे उच्च तापक्रम पर त्रुटि अधिक हो जाने की सम्भावना रहती है। इस प्रकार के उत्तापमापी अभिलेख यन्त्र (Recorder) के साथ भी प्रयोग किये जा सकते हैं, अतः वे प्रयोगशाला की भट्ठियों के लिए काफी उपयोगी हैं। परन्तु कारखानों की भट्ठियों के लिए वे उपयोगी नहीं हैं, क्योंकि असावधानी पूर्ण प्रयोग तथा भट्ठी गैसों द्वारा कुण्डली का प्रतिरोध बदल जाने के कारण इनके डायल के अंशांकन बदल जाते हैं।

तापीय युग्म उत्तापमापी—इस प्रकार के उत्तापमापी धातुओं के तापजनित विद्युत् गुणों के आधार पर बने होते हैं। इस गुण का पता सर्वप्रथम सीबेक (See back) ने १८२० ई० में लगाया था। अतः प्रायः इसे सीबेक प्रभाव कहा जाता है। उसने देखा कि यदि दो विभिन्न धातुओं के तारों से बने पूर्ण परिपथ (Circuit) के दो धातुजोड़ों को असमान तापक्रम पर रखा जाय तो परिपथ में विद्युत्-धारा बहने

लगती है। उसने यह भी पता लगाया कि ऐसी अवस्था में दोनो धातुजोड़ो पर दो विरुद्ध दिशावाले विद्युद्-वाहक बल रहते हैं। दो धातुजोडो पर असमान तापक्रम रहने पर बहनेवाली धारा की शक्ति निम्नलिखित बातो पर निर्भर करती है।

(क) दोनो धातुओं के प्रकार।

(ख) दो धातुजोड़ो के तापक्रमो का अन्तर।

(ग) दोनो धातुओ के वास्तविक तापक्रम।

तापीय युग्म बनाने में प्रयोग की जानेवाली धातुओ में निम्नलिखित गुण होने चाहिए।

(१) सक्षारण और आक्सीकरण के लिए प्रतिरोध शक्ति।

(२) अधिक विद्युद्-वाहक बल का विकसित होना।

(३) तापक्रम बढने पर विद्युद्-वाहक बल का धीरे-धीरे समान अनुपात में बढना।

तापीय युग्म दो प्रकार के होते हैं। प्रथम प्रकार के तापीय युग्मो में केवल विरल धातुएँ ही प्रयोग की जाती है। द्वितीय प्रकार के तापीय युग्मो में साधारण धातुएँ प्रयोग की जाती हैं।

विरल धातुवाले तापीय युग्मों से १४००° सें० तक का तापक्रम नापा जा सकता है, जब कि द्वितीय प्रकार के तापीय युग्म प्राय. ११००° सें० तक के तापक्रम ही नापने में प्रयोग किये जाते है।

सर्वाधिक प्रयोग में आनेवाले कुछ तापीय युग्म इस प्रकार है—

विरल धातु तापीय युग्म

(+)		(−)
र्‌होडियम	१०	प्लेटीनम १००
प्लेटीनम	९०	
योग	१००	

यह तापीय युग्म १४००° सें० तक का तापक्रम नाप सकता है।

साधारण धातु-युग्म

१.

(−)		(+)	
तांबा	५८.२८	लोहा	१००
निकिल	४१.७२		
योग	१००.००		

यह तापीय युग्म ११००° सें० तक का तापक्रम नाप सकता है।

२.

(+)		(−)	
निकिल	९०	निकिल	९४
क्रोमियम	१०	मैंगनीज	३
योग	१००	एल्यूमिनियम	२
		सिलीकान	१
		योग	१००

यह तापीय युग्म निरन्तर १०९०° सें० तक तथा आन्तरायिक रूप से १३१५° सें० तक प्रयुक्त किया जा सकता है।

३.

(+)		(−)	
शुद्ध लोहा	१००	तांबा	६०
		निकिल	४०
		योग	१००

इस युग्म का ९८०° सें० तक बिना किसी भय के प्रयोग किया जा सकता है।

४.

(+)		(−)	
निकिल	६४	तांबा	५५
लोहा	२५	निकिल	४५
क्रोमियम	११	योग	१००
योग	१००		

इस युग्म का ५४०° सें० तक प्रयोग किया जा सकता है।

साधारण धातुवाले तापीय युग्मों में निम्नलिखित गुण व दोष होते हैं—

गुण (i) ये काफी सस्ते होते हैं।

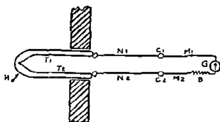
(ii) इस प्रकार के युग्मों से तापक्रम-परिवर्तन का अधिक संकेत मिलता है।

(iii) मोटे तार और बड़े तापीय युग्म प्रयोग किये जा सकते हैं।

दोष (i) साधारण तौर पर इनसे केवल ११००° से० तक का तापक्रम ही नापा जा सकता है।

(ii) समय-समय पर इनके अंशाकन का परीक्षण करना आवश्यक होता है।

तापीय युग्म के धातुतारों को गंधक गैसों और धुएँ के वातावरण से बचाने के लिए गलित स्फटिक चूर्ण या गोरसिलिन के नलों में रखा जाता है। यह नल बचाव के लिए आवश्यक मोटाई से अधिक मोटे नहीं होने चाहिए, कारण मोटाई से तापीय युग्म की सुग्राहता कम हो जाती है। भट्ठी में तापक्रम-परिवर्तन होने और धारामापी में उसका सकेत प्रकट होने में कुछ निश्चित समय का अन्तर रहता है। इसका कारण यह है कि दुर्गल रक्षक नल को पार करके, तापीय युग्म तक तापक्रम पहुँचने में समय लगता है। चित्र ५७ में विरल धातु से बने तापीय युग्म उत्तापमापी का सिद्धान्त दिखाया गया है।



चित्र ५७. तापीय युग्म उत्तापमापी

इस चित्र में H, तापीय युग्म तारों T_1T_2 का गरम जोड़ और C_1 C_2 ठण्डे सिरे हैं। M_1 M_2 ताँबे के तारों द्वारा धारामापी को यन्त्र से जोड़ा गया है। B परिपथ में जोड़ा गया एक भारी प्रतिरोध है। N_1N_2 तापीय युग्म के छोटे तारों T_1 T_2 के सम्बद्ध तार हैं।

उत्तापमापी भट्ठी की दीवार के छिद्र में से होकर भट्ठी के अन्दर घुसा दिया जाता है। यदि तापीय युग्म के तार छोटे हैं, तो यन्त्र के ठण्डे धातु-सिरे गरम सिरे के ताप-विकिरण से गरम हो सकते हैं। अतः ठण्डे सिरे को भट्ठी से दूर रखना चाहिए। इस कठिनाई को दूर करने के लिए बाहरी सिरों पर युग्म के तारों को सम्बद्ध तारों (Compensation Extension) अर्थात् दो ऐसे सस्ते मिश्र धातु के तारों से जोड़ दिया जाता है जिनका विद्युद्वाहक बल तापीय युग्म के तारों T_1 T_2 के समान होता है। इस प्रकार ताप-प्रभाव की दृष्टि से युग्म के ठण्डे सिरे

भट्ठी से इतनी दूर हो जाते हैं कि उनका तापक्रम कमरे के तापक्रम पर ही स्थिर रहता है। सम्बद्ध तार साधारण धातुओं या मिश्र धातुओं से बनाये जाते हैं और विरल धातुयुग्म से इतनी दूर रखे जाते हैं कि उन पर ६००° से० से अधिक तापक्रम कभी न पड़े।

तापक्रम बढ़ने पर तापीय युग्म के तारों का प्रतिरोध भी बढ़ता है जिससे सूचक अशाकन में अशुद्धि हो जाती है। यह कठिनाई दूर करने के लिए परिपथ में एक भारी प्रतिरोध लगाना चाहिए। यह ऐसे पदार्थों से बनाया जाता है, जिनका प्रतिरोध तापक्रम-परिवर्तन से नहीं के बराबर बदलता है। यह प्रतिरोध परिपथ के दूसरे प्रतिरोधों की अपेक्षा इतना भारी रखा जाता है कि तापीय युग्म के तारों में कोई प्रतिरोध-परिवर्तन अपेक्षाकृत नगण्य होता है और सूचक के अशाकन पर प्रभाव नहीं डालता।

ठण्डे सिरे का सुधार—सूचक अशाकन के समय तापीय युग्म के ठण्डे सिरे को ०° से० के स्थिर तापक्रम पर रखा जाता है। परन्तु व्यवहार में ठण्डे सिरे का तापक्रम कमरे के तापक्रम के बराबर होगा। इस परिवर्तन के कारण अशाकन को सुधारने के लिए सूचक को कमरे के तापक्रम पर लगाने के पश्चात् तापीय युग्म से इसे जोड़ा जाता है, कारण तापीय युग्म में उत्पादित धारा ठण्डे और गरम सिरों के तापक्रम-अन्तर के अनुपात में होती है।

तापीय युग्म की विद्युत्धारा, विक्षेप धारामापी या उच्च प्रतिरोध सहित मिली वोल्टमापी द्वारा नापी जाती है।

विकिरण उत्तापमापी—यह यन्त्र स्टैफेन और बोल्ट्समैन (Stafen and Boltsman) के पूर्ण विकिरण-सम्बन्धी नियमों पर आधारित होता है। इस नियम के अनुसार किसी गरम वस्तु से सम्पूर्ण विकीर्ण ताप गरम वस्तु और आसपास के ठण्डे स्थान के निरपेक्ष तापक्रमों की चतुर्थ घातों के अन्तर के अनुपात में होता है।

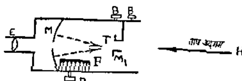
$$E=K\ (T_1^4-T_2^4)$$

सभी गरम वस्तुओं से ताप विकिरण होता है। विकीर्ण ताप-किरणों के परावर्तन के सभी नियम प्रकाश-परावर्तन के नियमों के समान होते हैं।

५००° से० से ऊपर गरम वस्तु से विकीर्ण ऊर्जा (Energy) का कुछ अन तो प्रकाश के रूप में देखा जा सकता है तथा कुछ अश जो ताप के रूप में विकीर्ण

होता है नहीं देखा जा सकता। विकिरण उत्तापमापी में गरम वस्तु से विकीर्ण तमाम ऊर्जा काजल पुते हुए तापीय युग्म पर केन्द्रित की जाती है। यह तापीय युग्म सारी ऊर्जा अवशोषित कर लेने के कारण गरम होकर विद्युद्वाहक बल उत्पन्न करता है, जिससे गरम वस्तु का तापक्रम सूचक में पढ लिया जाता है।

फेरी (Ferry) विकिरण उत्तापमापी में ताप किरणें एक नतोदर दर्पण पर डालकर एक छोटे-से तापीय युग्म पर केन्द्रित की जाती हैं। तापीय युग्म का एक जोड़ गरम होने के कारण उत्पन्न विद्युद्वाहक बल एक अभिलेख धारामापी द्वारा नापा जाता है, जिसके अंशाकन को पढ़कर सीधे तापक्रम का पता चल जाता है। चित्र ५८ में फेरी विकिरण उत्तापमापी की कार्य-विधि दिखायी गयी है।



चित्र ५८. फेरी विकिरण उत्तापमापी

इस यन्त्र में भट्ठी से ताप-किरणें H, नतोदर दर्पण M पर डालकर तापीय युग्म T पर केन्द्रित की जाती हैं। उपनेत्र (Eyepiece) E में से देखते हुए परीक्षक छोटे से दर्पण M, में भट्ठी का बिम्ब देखता है। यन्त्र में लगी हुई दूरबीन की सहायता से परीक्षक उपनेत्र E को आवश्यक ठीक स्थान पर केन्द्रित कर सकता है। दर्पण M के छिद्र के पीछे रखा हुआ सुग्राही तापीय युग्म इस छिद्र से जानेवाली ताप-किरणों के द्वारा गरम हो जाता है। दर्पण M मोर्चा न लगनेवाले इस्पात से बनाया जाता है तथा इस इस्पात पर बिना खरोंच पडे ही पालिश भी की जा सकती है। यह इस्पात टूटने और खराब होने के दोषों से भी मुक्त रहता है।

फोकस करना—एक साधारण विधि द्वारा देखने और फोकस करने की क्रियाएँ सरलता से हो जाती हैं। दर्पण M, में छोटे-छोटे अर्द्ध वृत्ताकार फन्नों की आकृति के दो दर्पण इस प्रकार जुड़े रहते हैं, कि दर्पण पर पड़नेवाला गरम वस्तु का प्रतिबिम्ब एक काले केन्द्र सहित दो अर्द्धवृत्ताकार भागों में विभक्त हो जाता है। पेंचदार मुठिया F को घुमाकर इस तरह फोकस किया जाता है कि दोनों प्रतिबिम्ब एक दूसरे के ऊपर रहें।

गरम वस्तु के दूरबीन में देखे गये भाग तथा दूरबीन की गरम वस्तु से दूरी का तापक्रम नापने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु दूरबीन और वस्तु के बीच प्रत्येक दो फुट की दूरी के लिए गरम वस्तु कम से कम १ इंच व्यास की होनी चाहिए, जिससे वस्तु का प्रतिबिम्ब तापीय युग्म के सुग्राही भाग को पूरी तरह ढँक ले।

मृद्-उद्योग-भट्ठियों का तापक्रम नापने के लिए ४–५ फुट लम्बा और ६ इंच व्यासवाला एक दुर्गल नल भट्ठी की दीवार के छेद में होकर भट्ठी में घुसा दिया जाता है। इस नल का एक सिरा बन्द तथा दूसरा खुला रहता है। नल का भट्ठी के अन्दर रहनेवाला बन्द सिरा भट्ठी का तापक्रम लेता है और खुले सिरे पर उत्तापमापी फोकस किया जाता है।

इस उत्तापमापी में मुख्य दोष ये हैं—

(क) भट्ठी के तापक्रम का परिवर्तन-यन्त्र में कुछ समय बाद पता चलता है, कारण नल के गरम होने में कुछ समय लगता है।

(ख) परावर्तक दर्पण तापीय युग्म पर तापकिरणों को केन्द्रित करने में असफल हो सकता है।

ये उत्तापमापी सभी प्रकार की औद्योगिक भट्ठियों के ५०० से १७००° सें० तक के तापक्रम नापने के लिए उपयोगी होते हैं।

प्रकाश उत्तापमापी—ये यन्त्र साधारण कार्यों के लिए काफी सुविधाजनक होते हैं और इनमें नापनेवाले तापक्रम का परास ७००° से प्रारम्भ होकर उच्चतम तापक्रम तक होता है। शीघ्रता से तापक्रम पढ़े जाने तथा छोटी वस्तुओं को देखने में सरलता के कारण इस प्रकार के उत्तापमापी क्षणिक तापक्रम नापने के लिए बहुत ही उपयोगी होते हैं।

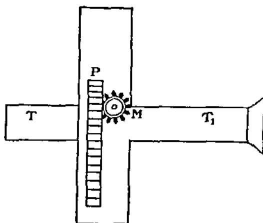
इस विधि में केवल दिखाई देनेवाले विकिरण का उपयोग किया जाता है। किसी गरम वस्तु का सम्पूर्ण विकिरण उस वस्तु के तापक्रम पर ही नहीं वरन् उसकी उत्सर्जक (Emissive) शक्ति पर भी निर्भर करता है। जिस पदार्थ की उत्सर्जक और अवशोषक शक्तियाँ अधिकतम हों उसे काली वस्तु कहते हैं। काली वस्तु की उत्सर्जक शक्ति इकाई मानी जाती है। अत दूसरे सभी पदार्थों की उत्सर्जक शक्तियाँ एक से कम होती हैं। उद्योग में काली वस्तु अवस्था का अनुभव करने के लिए बन्द भट्ठी या मफल में वस्तु को गरम करके एक छोटे से छिद्र से उसे

देखना चाहिए। मफल भट्ठियाँ और कुछ मृदुकरण भट्ठियाँ आदर्श काली वस्तु से पर्याप्त समानता रखती हैं। जब काली वस्तु की अवस्थाओं में कोई वस्तु बन्द भट्ठी के अन्दर गरम की जाती है, तो वस्तु की विकिरण तीव्रता काली वस्तु के बराबर होती है। प्रकाश उत्तापमापी को तब प्रयोग करना चाहिए जब भट्ठी के भाग और वस्तुओं के तापक्रम समान होने के कारण भट्ठी की वस्तुएँ भट्ठी दीवारों से अलग न पहचानी जा सकें। यदि गरम होनेवाली वस्तु आसपास के स्थानों से भिन्न दीखती है तो या तो वस्तु आसपास के स्थानों से अधिक गरम है, जैसा कि भट्ठी ठण्डी करते समय होता है, या ठण्डी है, जैसा कि भट्ठी गरम करते समय होता है। प्रथम अवस्था में अर्थात् वस्तु अधिक गरम होने पर नापा हुआ तापक्रम वस्तु के वास्तविक तापक्रम से काफी कम होगा, कारण प्रकाश उत्तापमापी भट्ठी की दीवारों के प्रकाश पर ही फोकस किया जाता है। दूसरी अवस्था में नापा हुआ तापक्रम वास्तविक तापक्रम से काफी अधिक होगा। जब कोई दहकती हुई वस्तु खुले में देखी जाती है, तो नापा हुआ तापक्रम वास्तविक तापक्रम से काफी कम होता है। अत नापे हुए तापक्रम को ठीक कर लेना चाहिए। यह त्रुटि उज्ज्वल तरल धातु के लिए काफी होती है। परन्तु जब तरल धातु के ऊपरी तल पर आक्साइड की परत जम जाती है, तो यह त्रुटि बहुत कम हो जाती है। तापक्रम नापते समय इस त्रुटि की मात्रा का अनुमान नीचे दी हुई विभिन्न पदार्थों की उत्सर्जन तुलना से स्पष्ट हो जायगा —

ग्रेफाइट चूर्ण .	० ९५
कार्बन	० ८५
लौह आक्साइड	० ९२
निकिल आक्साइड .	० ८५
तरल उज्ज्वल लौह धातु	० ३७
,, ,, निकिल धातु	० ३६
पोरसिलेन ..	० ५०

काली वस्तु की अवस्थाओं में अर्थात् धीरे-धीरे गरम होती हुई भट्ठी में, तरल उज्ज्वल धातु के तापक्रम का प्रकाश उत्तापमापी से ठीक पता चलेगा, कारण बन्द स्थान में धातु अपने तापक्रम के अनुपात से ही ताप-उत्सर्जन करेगी, जैसा कि खुले स्थान में नहीं कर सकती।

इन यन्त्रों की यथार्थता प्रमाणित बत्ती के प्रकाश की समानता पर निर्भर करती है। इसके प्रकाश की समानता समय-समय पर एमाइल ऐसीटेट लैम्प द्वारा जाँच लेनी चाहिए। एमाइल ऐसीटेट लैम्प यन्त्र के साथ ही मिलता है।



चित्र ६० वंजप्रकाश उत्तापमापी

वंज प्रकाश उत्तापमापी—इस यन्त्र में एक पीतल का नल होता है जिसमें एक छोटी दूरबीन TT_1 लगी रहती है। इस दूरबीन का अभिदृश्य (Objective) लैंस गरम वस्तु के प्रतिबिम्ब को नल में अन्दर रखे हुए एक चल प्रिज्म P पर फोकस करता है।

इस उत्तापमापी की मुख्य विशेषता काँच का यह चल प्रिज्म है, जो दण्डचक्री (Rack and pinion) M की सहायता से ऊपर नीचे हटाया जा सकता है। इस प्रिज्म का पूरा भाग लाल रंगों की विभिन्न आभाओं में अंकित रहता है। प्रयोग के समय प्रिज्म को इस प्रकार रखा जाता है कि हलका रंग सामने दीखता रहे। उसके बाद दण्डचक्री को घुमाकर प्रिज्म के रंग की गहराई धीरे-धीरे यहाँ तक बढ़ायी जाती है कि वस्तु दीखना बन्द हो जाता है। इस अवस्था में स्केल पर गरम वस्तु का तापक्रम पढ़ा जाता है।

इस उत्तापमापी के बिगड़ने की सम्भावना कम रहती है और व्यक्तिगत कुशलहीनताओं के कारण भी त्रुटियाँ कम होती हैं। यह सस्ता है और एक साधारण आदमी भी इस पर कार्य कर सकता है। परन्तु इसमें यथार्थता अधिक नहीं रहती।

त्रयोदश अध्याय

मृद्-उद्योग में गणनाएँ

१. नमी की मात्रा तथा उसका प्रभाव—मृद्-उद्योग के सभी उपयोगी पदार्थों में पानी की कुछ न कुछ मात्रा रहती है। यह पानी दो रूपों में पाया जाता है। ये रूप अवशोषित जल तथा केलास जल हैं। केलास जल खनिज अणु का एक अविच्छिन्न भाग होता है, जैसे केओलिन ($Al_2O_3 \cdot 2SiO_2 \cdot 2H_2O$) में अथवा बोरेक्स ($Na_2O \cdot 2B_2O_3 \cdot 10H_2O$) में। अधिकांश पदार्थों में केलास जल की निश्चित मात्रा ही रहती है। परन्तु कुछ बोरेक्स-जैसे पदार्थों में यह थोड़ा परिवर्तनशील भी होता है।

कच्चे पदार्थों में जो पानी अवशोषित जल के रूप में रहता है, उसे नमी कहते हैं तथा इसकी मात्रा ऋतु एवं पदार्थ रखने के स्थान की अवस्थाओं पर निर्भर करती है। नमी की इस अनिश्चित मात्रा के कारण कच्चे पदार्थ खरीदते समय कुछ प्रामाणिक प्रकारों के आधार पर ही खरीदना चाहिए, अन्यथा आर्थिक हानि हो सकती है। आर्थिक हानि के साथ ही पदार्थों के मिश्रण-पिण्ड में पदार्थों के अनुपात में उस समय तक भूल हो सकती है, जब तक कि प्रत्येक बार पदार्थों में नमी की मात्रा निर्धारित करके तदनुसार अवयव सूत्र को ही न सुधारा जाय।

किसी पदार्थ में उपस्थित नमी की मात्रा ज्ञात करने के लिए उसके नमूने को तौलने के पश्चात् लगभग ११०° सें० पर तब तक सुखाया जाय, जब तक कि भार स्थिर न हो जाय। नमूने के प्रारम्भिक तथा सुखाने के पश्चात् स्थिर भारों का अन्तर ही नमूने में उपस्थित नमी की मात्रा होगी। साधारण रीति से पदार्थ के नमूने के प्रारम्भिक भार के आधार पर उसकी नमी का प्रतिशत निकाल लिया जाता है।

नमी के आधार पर हानि के उदाहरण-स्वरूप यदि कोई १५ प्रतिशत नमी-वाली चीनी मिट्टी को ५०) प्रतिटन के भाव से खरीदता है, परन्तु यदि इस चीनी

मिट्टी में नमी १५% न होकर २०% हो तो ३) प्रतिदिन की हानि होगी। बड़े-बड़े कारखानों में जहाँ प्रतिदिन पदार्थों की काफी मात्राओं की आवश्यकता पड़ती है, इस हानि की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

२. आकुंचन—जब मिट्टी की वस्तुएँ सुखायी जाती हैं, तो इनके आकारों में आकुंचन आ जाता है। इस आकुंचन का कारण उनके अवशोषित जल का वाष्पीकरण होता है। यह आकुंचन मुख्य रूप से पानी की उस मात्रा पर, जो वस्तु निर्माण के समय प्रयोग की गयी थी, तथा पदार्थों के कण-आकार पर निर्भर करता है। उदाहरण-स्वरूप बड़े कणोवाली रेतीली मिट्टी से बनी वस्तुएँ कम अर्थात् एक प्रतिशत या इससे भी कुछ कम आकुंचित होंगी, जब कि महीन कणवाली लचीली मिट्टी से बनी वस्तुएँ सुखाने पर लगभग १६% आकुंचित होंगी। मिट्टी की वस्तुओं का वह आकुंचन, जो उन्हें सुखाने के कारण होता है, सुखाव-आकुंचन कहलाता है। सुखाव-आकुंचन सुखाने के तापक्रम पर निर्भर करता है, अतः न्यूनाधिक भी हो सकता है। प्रामाणिक परिणाम के लिए व्यवहार में परीक्षण टुकड़े को ११०° सें० पर गरम करके शोषित्र (Desiccator) में ठण्डा किया जाता है।

जब मिट्टी की वस्तुएँ पकायी जाती हैं, तो उनमें कुछ और आकुंचन होता है। इस पकाने के समय के आकुंचन को पकाव-आकुंचन कहते हैं। पकाव-आकुंचन, पकाव-तापक्रम के साथ बढ़ता जाता है। इस आकुंचन का मुख्य कारण मिट्टी तथा खनिजों के कैलास जल का निकलना, कच्चे पदार्थों में उपस्थित कार्बनिक अपद्रव्यों का जलना तथा अधिक गलनशील पदार्थों का प्रारम्भिक गलन होता है। तुलनात्मक परिणामों के लिए वस्तु को एक विशेष तापक्रम पर निश्चित समय तक पकाकर आकुंचन की मात्रा ज्ञात की जाती है। विभिन्न मिट्टियों के पकाने के लिए, विभिन्न विशेष अवस्थाओं की आवश्यकता होती है। एक मिट्टी कम तापक्रम पर ही अच्छी तरह पक सकती है, जब कि दूसरी को अच्छी तरह पकने के लिए उच्च तापक्रम की आवश्यकता हो सकती है।

लम्ब-आकुंचन (Linear contraction) ज्ञात करने के लिए परीक्षण टुकड़े पर निश्चित दूरी पर दो रेखाएँ खींच दी जाती हैं। इस टुकड़े को सुखाया जाता है और बाद में फिर उन दोनों रेखाओं के बीच की दूरी नाप ली जाती है। प्रारम्भिक तथा आकुंचित दूरी का अन्तर ही सुखाव-आकुंचन होता है। तत्पश्चात्

परीक्षण टुकड़े को पकाया जाता है और इसी प्रकार पकाव-आकुचन ज्ञात कर लिया जाता है। गणना निम्नलिखित समीकरण द्वारा की जाती है।

$$\text{प्रतिशत लम्ब आकुचन} = \frac{\text{प्रारम्भिक लम्बाई—आकुचित लम्बाई}}{\text{प्रारम्भिक लम्बाई}} \times १००$$

निश्चित आयतनवाले पात्रों के निर्माण में मिश्रणपिण्ड का घन-आकुंचन (Cubical contraction) ज्ञात होना आवश्यक है। ऐसी अवस्थाओं में प्रारम्भिक आयतन तथा आकुंचन के पश्चात् आयतन निम्नलिखित ढंग से निकाले जाते हैं।

माना कि परीक्षण टुकड़े द्वारा मिट्टी का तेल अवशोषित कराकर हवा में उसका भार 'क' ग्राम है। अब तेल अवशोषित टुकड़े को मिट्टी के तेल में लटकाकर भार लो। मान लो यह भार '$क_1$' ग्राम है। इसमें यह ध्यान रहे कि पूरा परीक्षण-टुकड़ा तेल में डूबा रहे, परन्तु तेल के पात्र की तली या दीवारें न छुए। अब यदि मिट्टी के तेल का आपेक्षिक घनत्व 'घ' हो, तो परीक्षण-टुकड़े का

$$\text{वास्तविक आयतन} = \frac{क - क_1}{घ} \text{ घन सेण्टीमीटर होगा।}$$

मिट्टी के तेल का प्रयोग इस कारण किया जाता है कि बिना पका हुआ परीक्षण-टुकड़ा पानी में गल जायगा। अन्य तेल अधिक गाढ़े होने के कारण सरलता से अवशोषित नहीं होंगे।

व्यवहार में सदैव इसी विधि को अपनाना आवश्यक नहीं है, कारण गणना से पता चलता है कि घन-आकुंचन, लम्ब-आकुंचन से लगभग तिगुना होता है।

३. रन्ध्रता—जब मिट्टी की वस्तुएँ पकायी जाती हैं, तो तापक्रम बढ़ने पर कणों के बीच के रन्ध्र-स्थान धीरे-धीरे बन्द होते जाते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि ये रन्ध्र-स्थान पूर्णतया बन्द हो जायँ। बन्द न होनेवाले इन खाली स्थानों के कारण ही पात्र में रन्ध्रता होती है और इसका परिमाण मिश्रण-पिण्ड के प्रकार तथा पकाव-तापक्रम पर निर्भर करता है।

मिट्टी के पात्रों की रन्ध्रता ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित विधि का प्रयोग किया जाता है, जो आर्कमेडीज के सिद्धान्त पर आधारित है।

परीक्षण-टुकड़े का हवा में भार=क

परीक्षण-टुकड़े को कुछ समय तक पानी के साथ उबालकर तथा बाद में कपड़े से अच्छी प्रकार पोंछकर उसका हवा में भार=$क_1$

जल अवशोषित टुकडे को पानी में पूरा लटका कर तौलने पर भार=$क_2$

अब ($क_1$–क) उस पानी का भार है जो परीक्षण टुकड़े के रन्ध्रों में भर जाता है और

($क_1$–$क_2$) = सम्पूर्ण परीक्षण-टुकडे द्वारा हटाये गये पानी का भार।

चूंकि पानी का घनत्व इकाई होता है, इसलिए $क_1$–क और $क_1$–$क_2$ क्रमश: रन्ध्र स्थानों तथा सम्पूर्ण परीक्षण-टुकड़े का आयतन प्रकट करते हैं।

अत परीक्षण-टुकड़े की रन्ध्रता निम्न सूत्र द्वारा निकाली जाती है।

$$\text{रन्ध्रता} = \frac{क_1 - क}{क_1 - क_2}$$

मिट्टी के कच्चे पात्रों के लिए पानी के स्थान पर मिट्टी के तेल, पैराफिन आदि द्रवों का उपयोग किया जाता है, कारण कच्चे पात्र पानी में गल जाते हैं। परन्तु इसमे उपर्युक्त सूत्र मे कोई अन्तर नहीं पड़ता।

४. **आपेक्षिक घनत्व**—किसी पदार्थ का आपेक्षिक घनत्व उस पदार्थ के तथा बराबर आयतनवाले प्रमाणभूत पदार्थ के भारों का अनुपात होता है। चूंकि पानी का घनत्व इकाई है, इसलिए किसी भी पदार्थ का आपेक्षिक घनत्व निकालने के लिए पानी को प्रमाणभूत पदार्थ माना गया है।

मृत्तिका-उद्योग मे सोडियम सिलीकेट जैसे पदार्थों का व्यापारिक महत्त्व उनके आपेक्षिक घनत्व के आधार पर होता है। मिट्टी-घोला सम्बन्धी कुछ गणनाओं में तथा पानी के साथ पीसे गये खनिज पदार्थों के घोले में ठोस पदार्थ की मात्रा निर्धारित करने के लिए भी आपेक्षिक घनत्व की आवश्यकता होती है। जब चकमक पत्थर को निस्तापित किया जाता है, तो उसमें प्रसार होता है। परिणाम-स्वरूप आपेक्षिक घनत्व कम हो जाता है। इस कारण आपेक्षिक घनत्व-निर्धारण द्वारा चकमकी की निस्तापन-क्रिया पर नियन्त्रण किया जा सकता है।

द्रव पदार्थों का आपेक्षिक घनत्व प्राय द्रव घनत्वमापी (Hydrometer) द्वारा सीधा ज्ञात कर लिया जाता है। द्रव घनत्वमापी कॉंच की बनी एक अशांकित नली होती है। इसके निचले भाग में एक फूला हुआ बल्ब-जैसा होता है, जिसमें पारा

या सीसे के टुकड़े भरकर भारी कर दिया जाता है, जिससे वह उपकरण द्रव में ऊर्ध्वाधर अवस्था में तैरता रहे। इसे किसी द्रव में डालने पर द्रव के आपेक्षिक घनत्व के अनुसार इसका कम या अधिक भाग डूबता है तथा वहाँ पर अंकित अंक द्रव के आपेक्षिक घनत्व को प्रकट करते हैं।

रन्ध्र ठोसों का आपेक्षिक घनत्व निकालते समय प्रायः दो भिन्न आपेक्षिक घनत्वों की गणना की जाती है। प्रथम वह है, जिसमें केवल ठोस वस्तु का ही ध्यान में रखा जाता है। इस प्रकार के आपेक्षिक घनत्व को वास्तविक आपेक्षिक घनत्व कहते हैं। दूसरे में रन्ध्र स्थानों-सहित सम्पूर्ण ठोस का आपेक्षिक घनत्व निकाला जाता है। इसे आभासित आपेक्षिक घनत्व (Apparent Specific-gravity) कहते हैं।

पूर्व वर्णित दोनों प्रकार के आपेक्षिक घनत्व निकालने की भी वही विधियाँ हैं जो रन्ध्रता निकालने में प्रयुक्त हुई थीं।

यदि क = शुष्क परीक्षण-टुकड़े का हवा में भार—

क_1 = जल-अवशोषित परीक्षण-टुकड़े का हवा में भार—

क_2 = जल-अवशोषित परीक्षण-टुकड़े का पानी में भार—

तो $\text{क}-\text{क}_2$ = केवल ठोस द्वारा हटाये हुए पानी का भार अर्थात् ठोस के बराबर आयतनवाले पानी का भार।

और $\text{क}_1-\text{क}_2$ = ठोस व रन्ध्र स्थानों दोनों के आयतन के बराबर आयतनवाले पानी का भार।

$$\text{इसलिए वास्तविक आ० घ०} = \frac{\text{क}}{\text{क}-\text{क}_2}$$

$$\text{और आभासित आ० घ०} = \frac{\text{क}}{\text{क}_1-\text{क}_2}$$

५. शुष्क तथा घोल-मिश्रण—मृत्पात्र बनाने के लिए विभिन्न खनिजों तथा मिट्टियों को मिलाकर मिश्रण-पिण्ड बनाया जाता है। इन्हें मिलाने की दो विधियाँ प्रचलित हैं। प्रथम है शुष्क विधि तथा द्वितीय है घोल विधि या गीली विधि। शुष्क विधि में मिश्रण-पिण्ड के अवयव उनकी शुष्क अवस्थाओं में मिला दिये जाते हैं, जिनमें

वे कारखाने में आते हैं। शुष्क अवयवसूत्र भार के आधार पर दिये रहते हैं। इन्हीं सूत्रो के अनुसार पदार्थ तौलकर पानी के साथ मिला लिये जाते हैं। इस विधि में कच्चे पदार्थो में उपस्थित नमी की मात्रा पर उचित ध्यान देना आवश्यक होता है, *जिससे मिलाये जानेवाले अवयवो का वास्तविक भार ज्ञात हो सके।*

द्वितीय विधि मे विभिन्न खनिजो को पानी के साथ पीसकर उनके अलग-अलग विशेष घनत्व के घोला बनाकर भिन्न-भिन्न कुण्डो में रख दिये जाते हैं। मिश्रण-पिण्ड बनाने के लिए इन्हीं घोलो के घोला-अवयव-सूत्र के अनुसार आयतन लेकर मिश्रण-कुण्ड में मिला दिये जाते हैं। इस विधि के घोला-अवयव-सूत्र मिश्रण-कुण्ड की इचो में गहराइयो के रूप मे प्रकट किये जाते हैं। इस विधि का सबसे बडा लाभ यह है कि इसमें कच्चे खनिज पदार्थो की नमी का जानना आवश्यक नही होता।

किसी घोले में शुष्क ठोस पदार्थ की मात्रा निकालने के लिए घोले का गाढापन अर्थात् घोल का प्रति लीटर भार तथा शुष्क ठोस का आपेक्षिक घनत्व ज्ञात होना आवश्यक है। उदाहरण-स्वरूप—

यदि क = १ लीटर घोले का भार (ग्रामो में)

ख = १ लीटर घोले में उपस्थित शुष्क ठोस की मात्रा (ग्रामो में)

ग = ठोस का आपेक्षिक घनत्व।

चूंकि शुष्क पदार्थ का आपेक्षिक घनत्व ग है, अत. एक लीटर ठोस का भार = १,००० ग ग्राम

अत ख ग्राम ठोस का आयतन $= \frac{\text{ख}}{\text{१००० ग}}$ लीटर

इसी प्रकार एक लीटर घोल मे उपस्थित पानी का आयतन $= \frac{\text{क} - \text{ख}}{\text{१०००}}$ लीटर परन्तु घोल का सम्पूर्ण आयतन केवल १ लिटर है।

$$\text{अत } \frac{\text{ख}}{\text{१००० ग}} + \frac{\text{क} - \text{ख}}{\text{१०००}} = \text{१}$$

$$\text{या} \quad \text{ख} + \text{क ग} - \text{ख ग} = \text{१००० ग}$$

$$\text{या} \quad \text{ख} \quad (\text{ग्राम}) \quad = (\text{क} - \text{१०००}) \frac{\text{ग}}{\text{ग} - \text{१}} \cdots\cdots \ldots (\text{१})$$

उदाहरण—किसी मृत्पात्र का घोला-अवयव-सूत्र इस प्रकार है—

२४ ५ औंस प्रति पाइण्टवाला	बॉल-मिट्टी घोला	......१४ इंच
२५·५ ,, ,, ,, ,,	चीनी मिट्टी घोला	.... ९ ,,
३१·७ ,, ,, ,, ,,	चकमकी घोला	.... ६ ५ ,,
३२ २ ,, ,, ,, ,,	कार्निश पत्थर घोला	.... ३ ,,

इससे इस मिश्रण-पिण्ड का शुष्क-अवयव सूत्र निकालो।

उपर्युक्त घोला-अवयव-सूत्र की आनुपातिक ठोस मात्राएँ—

बॉल-मिट्टी = १४ (२४ ५–२०) या ६३ भाग
चीनी मिट्टी = ९ (२५ ५–२०) या ४९ ५ ,,
चकमकी = ६ ५ (३१ ७–२०) या ७६ ० ,,
कार्निश पत्थर = ३ (३२ २–२०) या ३६ ६ ,,

उपर्युक्त को प्रतिशत में परिवर्तित करने पर यह सूत्र प्राप्त होता है—

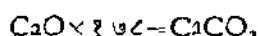
बॉल-मिट्टी	.	२८·०० प्रतिशत
चीनी मिट्टी	..	२१·९८ ,,
चकमक	..	३३ ७६ ,,
कार्निश पत्थर		१६ २६ ,,
	योग	१०० ००

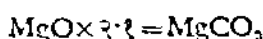
६. मिश्रण-पिण्ड की गणना—मिट्टियों तथा खनिज पदार्थों के रासायनिक विश्लेषण प्रकट करने के लिए दो विधियाँ प्रचलित हैं। प्रथम को चरम विश्लेषण (Ultimate Analysis) विधि तथा द्वितीय को युक्तिगत विश्लेषण विधि (Rational Analysis) कहते हैं। प्रथम विधि में विश्लेषण-परिणाम मिश्रण में उपस्थित अकार्बनिक पदार्थों के आक्साइडों के रूप में प्रकट किये जाते हैं। रासायनिक विश्लेषण को इस भाँति प्रकट करने से परिणाम, अच्छा निकलता है। परन्तु किसी विश्लेषण को पूरा करने में समय बहुत लगता है।

द्वितीय विधि में विश्लेषण परिणाम मिट्टियों तथा मिश्रणों में उपस्थित खनिजों, मुख्यतः मृत्सारों, फेल्सपार तथा स्फटिक के रूप में व्यक्त किया जाता है। इस विधि में अनेक त्रुटियाँ होने के कारण इस परिणाम पर पूर्ण विश्वास नहीं किया जा सकता। परन्तु अधिकांश मृत्पात्र-कारीगर मिश्रण-पिण्ड के खनिज अवयवों के ज्ञान को

प्राथमिकता देते हैं, कारण उन्हें प्रत्येक खनिज के गुणों व प्रभावों का ज्ञान होता है। चूँकि युक्तिगत विश्लेषण में कुछ सुधार करके अधिक सन्तोषजनक परिणाम पाने की कोई विशेष आशा नहीं है, अतः इस विधि का उपयोग आजकल अधिक नहीं किया जाता। फिर भी जैसा कि पूर्व ही कहा जा चुका है, मिश्रण-पिण्ड में विभिन्न खनिजों की मात्रा का ज्ञान होना विशेष लाभदायक होने के कारण चरम विश्लेषण से ही विभिन्न खनिजों की मात्रा की गणना करने का प्रस्ताव किया गया है। इस गणना विधि से प्राप्त परिणाम को सन्निकट विश्लेषण (Proximate Analysis) कहते हैं। यद्यपि यह गणना भी बहुत सी काल्पनिक संख्याओं के आधार पर की जाती है, परन्तु फिर भी यह विधि युक्तिगत विश्लेषण विधि से अधिक सन्तोषजनक मानी जाती है।

इस विधि द्वारा खनिजों की गणना में यह कल्पना कर ली जाती है कि मृत्सार, फेल्सपार और स्फटिक क्रमशः केओलीनाइट, ऑर्थोक्लेज और शुद्ध सिलीका के आदर्श संगठन हैं। परन्तु व्यावहारिक विश्लेषणों द्वारा देखा गया है कि बहुत थोड़े खनिज इतने शुद्ध होते हैं। सभी फेल्सपारों में पोटाश के अतिरिक्त सोडा या चूना थोड़ी बहुत मात्रा में अवश्य उपस्थित रहता है। गणना के समय पोटाश, सोडा, चूना, मैगनीशिया आदि भास्मिक अवयवों का परिणाम पोटाश के रूप में प्रकट किया जाता है। फेल्सपार की गणना सम्पूर्ण भास्मिक अवयवों तथा ५.९ के गुणनफल पर आधारित होती है। लोहे का आक्साइड जब थोड़ी मात्रा में उपस्थित होता है, तो उसकी गणना सम्पूर्ण भास्मिक आक्साइडों के साथ की जाती है, अन्यथा उसे अलग से प्रकट किया जाता है। पूर्वलिखित कथन द्वारा स्पष्ट है कि यदि पोटाश के अतिरिक्त भास्मिक आक्साइडों की मात्रा अधिक है, तो यह गणना विधि सन्तोषजनक नहीं होगी। ऐसी दशा में इसे सुविधानुसार बदला जा सकता है। उदाहरण-स्वरूप यदि सोडा की मात्रा पोटाश की मात्रा से अत्यधिक है, तो आदर्श फेल्सपार की गणना ऑर्थोक्लेज ($K_2O\ Al_2O_3\ 6SiO_2$) के आधार पर न करके अल्बाईट ($Na_2O\ Al_2O_3\ 6SiO_2$) के आधार पर की जानी चाहिए। वह गुणक जो सम्पूर्ण भास्मिक आक्साइडों को अल्बाइट में परिवर्तित करता है, ८.४५ है। यदि चूना तथा मैगनीशिया की मात्राएँ सोडा तथा पोटाश की अपेक्षा अत्यधिक हैं, तो चूना तथा मैगनीशिया को कार्बोनेटों के रूप में अलग-अलग सूचित करना चाहिए।


$CaO \times १.७८ = CaCO_3$


$MgO \times २.१ = MgCO_3$

फेल्सपार की गणना के पश्चात् बची हुई एल्यूमिना के आधार पर आदर्श मृत्सार की गणना की जाती है।

Al_2O_3 × २·५२ = मृत्सार

अब फेल्सपार तथा मृत्सार में उपस्थित सिलीका की मात्राओं को सम्पूर्ण सिलीका की मात्रा से घटाने पर स्फटिक या मुक्त सिलीका निकाल ली जाती है।

लेटराइट जैसी कुछ मिट्टियों में एल्यूमिना का प्रतिशत कुछ अधिक होता है। ऐसी दशा में मृत्सार की गणना फेल्सपार की गणना के पश्चात् बची हुई सिलीका के आधार पर की जाती है।

SiO_2 × २·१५ = मृत्सार

शेष एल्यूमिना को मुक्त एल्यूमिना कहते हैं।

सन्निकट विश्लेषण के अनुसार मिट्टियों तथा बिना पकाये हुए मृत्पात्र-पिण्डों मे अवयवों का योग लगभग सौ हो जाता है। अतः प्रत्येक अवयव की मात्रा उसका प्रतिशत समझी जा सकती है। परन्तु पकाये हुए पिण्डों में ऐसा सम्भव नहीं है, कारण पकाने पर अवयवों का केलास जल निकल जाता है, जो कि मृत्सार की गणना में सम्मिलित रहता है। इस प्रकार सम्पूर्ण अवयवों का योग पकाने पर सदैव ही सौ से अधिक हो जाता है।

चरम विश्लेषण को सन्निकट विश्लेषण में परिवर्तित करने का उदाहरण नीचे दिया जाता है।

उदाहरण—किसी मिश्रण-पिण्ड का चरम विश्लेषण निम्नलिखित है। इसका सन्निकट विश्लेषण में परिवर्तन करो।

SiO_2	....	६३·००
Al_2O_3	....	२२·००
Fe_2O_3	....	१·००
K_2O	....	२·१५
Na_2O	....	१·०२
MgO	....	०·२४
CaO	....	०·८१
Loss	....	९·८२
	योग	१००·०४

गणना—यहाँ सम्पूर्ण भास्मिक आक्साइडों का योग ४·२२ है। चूँकि K_2O की मात्रा शेष सभी भास्मिक आक्साइडों के योग से अधिक है, अतः फेल्सपार की गणना औथोंक्लेज़ के आधार पर करनी चाहिए।

अतः सम्पूर्ण आदर्श फेल्सपार = ४·२२ × ५·९ = २४·९ भाग

अब चूँकि ५५६ भाग औथोंक्लेज़ में Al_2O_3 की मात्रा १०२ भाग तथा SiO_2 की मात्रा ३६० भाग रहती है, इस कारण इस फेल्सपार के २४·९ भाग में ४·५६ भाग Al_2O_3 तथा १६·११ भाग SiO_2 मिलेगा।

इस प्रकार फेल्सपार निकाल देने के पश्चात् Al_2O_3 की मात्रा = २२·० − ४·५६ = १७·४४ भाग

अतः मृत्सार = १७·४४ × २·५२ या ४४·१२ भाग

अब चूँकि मिट्टी के २५८ भाग में SiO_2 की मात्रा १२० भाग होती है। इसलिए स्फटिक या मुक्त सिलीका की

मात्रा = ६३ − (१६·११ + २०·५२)
= २६·३७ भाग

अतः मिट्टी के पिण्ड का संक्षिप्त विश्लेषण निम्न प्रकार से प्रकट किया जायगा—

मृत्सार	..	४४·१२
आदर्श औथोंक्लेज़	.	२४·९०
स्फटिक	..	२६·३७
फेरिक आक्साइड	..	१·००

७. **प्रलेप-संगठन-गणना**—मृत्तिका-उद्योग में प्रलेप संगठन को व्यक्त करने की तीन विधियाँ हैं। (क) चरम विश्लेषण विधि अर्थात् शुष्क पदार्थों के रासायनिक विश्लेषण द्वारा प्राप्त सक्रिय आक्साइडों के प्रतिशत व्यक्त करने की सामान्य विधि। (ख) व्यावहारिक सूत्र विधि, जिसमें प्रलेप संगठन में प्रयुक्त होनेवाले पदार्थों की मात्रा व्यक्त की जाती है। (ग) आणविक सूत्र विधि अर्थात् प्रलेप संगठन में उपस्थित सक्रिय आक्साइडों के अणुओं की आनुपातिक मात्राओं को व्यक्त करने की सर्व प्रचलित विधि। अधिकांश मृद्-उद्योगियों द्वारा यही विधि उपयोग में लायी जाती है, कारण

इससे अनुभवी कारीगरो को व्यावहारिक महत्त्व की बहुत-सी सूचनाएं सीधी प्राप्त हो जाती है।

चरम विश्लेषण का आणविक सूत्र में परिवर्तन

उदाहरण—निम्नलिखित प्रलेप के चरम विश्लेषण को आणविक सूत्र में व्यक्त कीजिए।

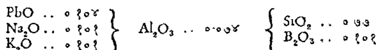
SiO_2	४६·२३
B_2O_3	७·०९
Al_2O_3	७ ६३
PbO	२३·२७
Na_2O	६ २८
K_2O	९·५२

प्रत्येक आक्साइड की मात्रा को क्रमश उसके अणुभार से भाग देने पर उन आक्साइडो का आणविक अनुपात प्राप्त होता है, जैसा कि निम्न सारणी में दिया गया है—

रासायनिक अवयव	प्रतिशत सगठन	अणुभार	आणविक अनुपात
SiO_2	४६ २३	६०	० ७७
B_2O_3	७ ०९	७०	० १०१
Al_2O_3	७ ६३	१०२	० ०७४
PbO.	२३ २७	२२३	० १०४
Na_2O	६ २८	६२	० १०१
K_2O	९ ५२	९४	०·१०१

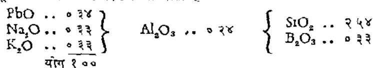
प्रलेप के आणविक सूत्र को व्यक्त करने में सिलीका और बोरिक आक्साइड साथ-साथ रखे जाते है और अम्लीय आक्साइड के नाम से प्रकट किये जाते है, कारण वे भास्मिक अवयवो से सयोग करके रासायनिक यौगिक बनाते है। एल्यूमिना उदासीन या द्विधर्मी (जो अम्लीय एव भास्मिक दोनो रूपो में प्रयोग किया जा सके) आक्साइड माना जाता है और उसे अलग करके बीच में रखा जाता है। शेष आक्साइडो को एक अलग वर्ग में भस्मो के नाम से व्यक्त करते है।

उपर्युक्त नियमों के आधार पर चतुर्थ स्तम्भ का परिणाम निम्नलिखित रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है—



PbO .. ० १०४ ; Na_2O .. ० १०१ ; K_2O .. ० १०१ } Al_2O_3 .. ०·०७४ { SiO_2 .. ० ७७ ; B_2O_3 .. ० १०१

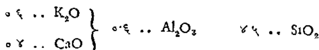
सामान्य सुविधा के लिए प्राय भास्मिक आक्साइडों के अणु-अनुपातों का योग इकाई के रूप में व्यक्त किया जाता है। अन्य अवयवों को आवश्यकतानुसार सुधार दिया जाता है, जिससे अनुपात में अन्तर न आये। इस प्रकार उपर्युक्त समस्त संख्याओं को ३ ३ से गुणा करने पर समस्त भास्मिक आक्साइडों का योग एक हो जाता है। अत अनुपात में कोई अन्तर लाये बिना ही दिये हुए प्रलेप के आणविक सूत्र को निम्न रूप में प्रकट किया जाता है।



PbO .. ० ३४ ; Na_2O .. ० ३३ ; K_2O .. ० ३३ ; योग १ ०० } Al_2O_3 .. ० २४ { SiO_2 .. २ ५४ ; B_2O_3 .. ० ३३

आणविक सूत्र का व्यावहारिक सूत्र में परिवर्तन

उदाहरण—निम्नलिखित आणविक सूत्र को व्यावहारिक सूत्र में परिवर्तित कीजिए—



० ६ .. K_2O ; ० ४ .. CaO } ०·६ .. Al_2O_3 ४ ५ .. SiO_2

इस प्रलेप-मिश्रण के बनाने में फेल्सपार, संगमरमर और चकमक पत्थर अर्थात् चकमरी का उपयोग करने में सुविधा होगी। K_2O के ० ६ अणु के लिए आदर्श रचनावाले ऑर्थोक्लेज फेल्सपार के ० ६ अणु की आवश्यकता होगी। ०·६ अणु फेल्सपार डालने से Al_2O_3 के ० ६ अणु तथा SiO_2 के ३ ६ अणु भी रहेंगे। चूँकि ऑर्थोक्लेज का अणुभार ५५६ होता है, अत इसका ० ६ अणु ३३३ ६ भाग के बराबर होगा। इसी प्रकार CaO के ०·४ अणु संगमरमर के ० ४ अणु या ४० भाग से प्राप्त होंगे। यह निम्नलिखित सारणी में दिखाया गया है। इन दोनों खनिजों के मिश्रण के पश्चात् भी SiO_2 का ० ९ अणु बच रहता है, जो चकमकी के ० ९ अणु या ५४ भाग से प्राप्त होता है। चतुर्थ स्तम्भ के परिणाम की सहायता से अन्तिम स्तम्भ में व्यावहारिक सूत्र की प्रतिशत गणना की गयी है।

पदार्थ	अणु-भार	अणु-भाग	व्यावहारिक सूत्र	K_2O	CaO	Tl_2O_3	SiO_2	प्रतिशत व्याहारिक सूत्र
फेल्सपार	५५६	० ६	३३३ ६	० ६	—	० ६	३·६	७८·०१
सगमरमर	१००	० ४	४० ०	—	०·४	—	—	९·३५
चकमकी	६०	० ९	५४ ०	—	—	—	०·९	१२·६३
योग	—	—	४२७ ६	०·६	०·४	०·६	४·५	९९·९९

व्यावहारिक सूत्र से अणुसूत्र निकालने की गणना-विधि पूर्वलिखित विधि के बिलकुल विपरीत है जो निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट हो जायगी।

उदाहरण—निम्नलिखित प्रलेप के दिये हुए व्यावहारिक सूत्र को अणुसूत्र में परिवर्तित कीजिए।

फेल्सपार	..	४२
सगमरमर		१८
चकमकी		२५
चीनी मिट्टी		१२

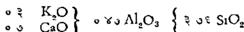
खनिजों के प्रत्येक अवयव को क्रमश उनके अणुभारों से भाग देने पर उनके आणविक अनुपात प्राप्त होते हैं।

फेल्सपार	=	४२	—	५५६	=	०·०७५ अणु
सगमरमर	=	१८	—	१००	=	०·१८० ,,
चकमकी	=	२५	—	६०	=	०·४१६ ,,
चीनी मिट्टी	=	१२	÷	२५८	=	० ०४६ ,,

प्रत्येक खनिज अवयव में उपस्थित आक्साइडों की मात्राओं को विभिन्न आक्साइडों के स्तम्भ में ही रखने पर निम्नलिखित सारणी बनती है—

खनिज	अणु-भाग	K_2O	CaO	Al_2O_3	SiO_2
फेल्सपार	०·०७५	० ०७५	—	० ०७५	०·४५०
संगमरमर	० १८०	—	० १८०	—	—
चकमकी	० ४१६	—	—	—	० ४१६
चीनी मिट्टी	० ०४६	—	—	० ०४६	०·०९२
योग	—	०·०७५	०·१८०	० १२१	०·९५८

सर्वाधिक प्रचलित नियम के अनुसार भास्मिक तथा अम्लीय आक्साइडों को अलग-अलग रखकर तथा भास्मिक आक्साइडों के योग को इकाई बनाकर निम्नलिखित अणुसूत्र प्राप्त होता है—



$$\left.\begin{matrix} ०.३ & K_2O \\ ०.७ & CaO \end{matrix}\right\} \; ०.४७\, Al_2O_3 \; \left\{ ३.७६\, SiO_2 \right.$$

काँचित-प्रलेप

यदि बोरैक्स, सोडियम कार्बोनेट, पोटाश जैसे घुलनशील पदार्थ प्रलेप-मिश्रण में प्रयुक्त किये जाते हैं, तो उपयोग से पूर्व उन्हें गलाकर काँचित कर लेना चाहिए, जिससे वे अघुलनशील काच के रूप में परिवर्तित हो जायें। काँचित मिश्रण का सगठन ऐसा होना चाहिए, जो कम तापक्रम पर गल सके तथा गलित काँचित अधिक श्यान भी न हो। यदि काँचित मिश्रण अधिक दुर्गल है, तो उच्च तापक्रम पर गलेगा, जिसमें मिश्रण के क्षार, सीसा आक्साइड तथा बोरिक अम्ल जैसे वाष्पशील पदार्थों के निकल जाने की सम्भावना बढ़ती जाती है।

काँचित का गलन-तापक्रम सुगम सीमाओं के बीच रखने के लिए सम्पूर्ण अम्लीय अणुओं तथा समस्त भास्मिक अणुओं का अनुपात न्यूनतम १ : १ और अधिकतम ३ : १ रहना चाहिए। यदि काँचित मिश्रण में बोरिक आक्साइड भी उपस्थित हो, तो अम्लीय अवयवों में सिलीका अवश्य रहना चाहिए। SiO_2 तथा B_2O_3 का अनुपात न्यूनतम २ : १ रहना चाहिए।

एल्यूमिना की उपस्थिति में काँचित इतना श्यान हो जाता है कि उँडेलना बहुत कठिन हो जाता है। इसी कारण काँचित मिश्रण में एल्यूमिना की मात्रा ०.२ अणु से अधिक नहीं होनी चाहिए।

काँचित प्रलेप की गणना निम्नलिखित उदाहरण द्वारा स्पष्ट की गयी है।

उदाहरण—प्रत्येक खनिज के आदर्श सगठन के आधार पर निम्नलिखित व्यावहारिक सूत्र को अणुसूत्र में परिवर्तित कीजिए—

काँचित-मिश्रण		प्रलेप-मिश्रण	
बोरैक्स	६०	काचित	१००
सोडियम कार्बोनेट	१०	श्वेत सीसा	६०

चीनी मिट्टी	.. २५	चकमकी	..	४०
संगमरमर	.. २०			
चकमकी	.. ३५			

सर्वप्रथम प्रद्रावण क्रिया के कारण काँचित-मिश्रण की भारहानि पर विचार करना चाहिए।

कच्चे पदार्थों को काचित करने में जो भारहानि होती है उसके परिवर्तन-गुणक निम्नलिखित सारणी में दिये गये हैं।

कच्चे पदार्थ	गुणक	काँचित से प्राप्त आक्साइड
पोटाश फिटकरी	०·२०६	$K_2O.Al_2O_3$.
एल्युमिनियम हाइड्रेट	० ६५४	Al_2O_3.
बेरियम कार्बोनेट	० ७७७	BaO.
बेरियम सल्फेट	० ६५७	BaO.
अस्थि-राख	१·०००	$3CaO. P_2O_5$.
बोरक्स केलास	०·५२९	$Na_2O. 2B_2O_3$.
बोरिक अम्ल	० ५६३	B_2O_3.
कैलशियम कार्बोनेट	० ५६०	CaO.
कैलशियम सल्फेट	०·३२५	CaO.
चीनी मिट्टी	० ८६०	Al_2O_3. 2 SiO_2.
डोलोमाइट	०·५२२	CaO. MgO.
फेल्सपार	० ९९०	$K_2O.Al_2O_3$. $6SiO_2$.
मैगनीशियम कार्बोनेट	० ४७९	MgO.
पोटास कार्बोनेट	० ६८१	K_2O.
पोटाश नाइट्रेट	० ४६५	K_2O.
लाल सीसा	०·९७७	3Pb O.
तापित सोडियम कार्बोनेट	० ५८५	Na_2O.
सोडियम कार्बोनेट (केलास)	०·२१७	Na_2O.
सोडियम नाइट्रट	०·३६४	Na_2O.
सोडियम सल्फेट	०·४३७	Na_2O.
श्वेत सीसा	० ८६३	3PbO.

उपर्युक्त सारणी के अनुसार —

६० भाग वोरॅक्स	=	६० ८० ५२९ या ३१ ७४भाग स्थायी आक्साइड
१० ,, सोडियम कार्वोनेट	=	१०×० ५८५ या ५·८५ ,, ,, ,,
२५ ,, चीनी मिट्टी	=	२५×० ८६ या २१ ५ ,, ,, ,,
२० ,, सगमरमर	=	२०×० ५६ या ११ २ ,, ,, ,,
३५ ,, चकमकी	=	३५×१० या ३५ ० ,, ,, ,,

अर्थात् काँचीयकरण क्रिया के पश्चात् १५० भाग कच्चे काचित मिश्रण से १०५ २९ भाग स्थायी आक्साइड मिलेंगे।

परन्तु हम देखते हैं कि प्रलेप-मिश्रण में केवल १०० भाग काचित की आवश्यकता पड़ती है। यह १०० भाग काँचित, १४२ भाग कच्चे काँचित मिश्रण से प्राप्त होता होगा तथा इस मिश्रण में निम्नलिखित कच्चे पदार्थों की मात्राएँ होंगी।

$$\text{वोरॅक्स} = \frac{६०\times१४२}{१५०} \text{ या ५६ ८ भाग}$$

$$\text{सोडियम कार्वोनेट} = \frac{१०\times१४२}{१५०} \text{ या ९ ४६ भाग}$$

$$\text{चीनी मिट्टी} = \frac{२५\times१४२}{१५०} \text{ या २३ ६६ भाग}$$

$$\text{सगमरमर} = \frac{२०\times१४२}{१५०} \text{ या १८ ९३ भाग}$$

$$\text{चकमकी} = \frac{३५\times१४२}{१५०} \text{ या ३३ १३ भाग}$$

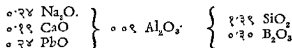
इस प्रकार सम्पूर्ण प्रलेप-मिश्रण में प्रयुक्त भिन्न-भिन्न खनिजो की मात्राएँ निम्नलिखित हैं—

पदार्थ	काँचित मिश्रण मे	प्रलेप-मिश्रण मे	योग
वोरॅक्स	५६ ८०	×	५६ ८०
सोडियम कार्वोनेट	९ ४६	×	९ ४६
चीनी मिट्टी	२३·६६	×	२३·६६
सगमरमर	१८ ९३	×	१८ ९३
चकमकी	३३·१३	४०·००	७३·१३
श्वेत सीसा	×	६०·००	६०·००

सारणी के रूप में अब हम अणुसूत्र की गणना इस प्रकार कर सकते हैं—

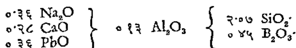
पदार्थ	अणु-भार	अणु-भाग	Na_2O	CaO	PbO	Al_2O_3	SiO_2	B_2O_3
बोरैक्स	३८२	०·१५	०·१५	—	—	—	—	०·३
सोडियम कार्बोनेट	१०६	०·०९	०·०९	—	—	—	—	—
चीनी मिट्टी	२५८	०·०९	—	—	—	०·०९	०·१८	—
संगमरमर	१००	०·१९	—	०·१९	—	—	—	—
चकमकी	६०	१·२१	—	—	—	—	१·२१	—
श्वेत सीसा	७७५	०·०८	—	—	०·२४	—	—	—
योग	—	—	०·२४	०·१९	०·२४	०·०९	१·३९	०·३

उपर्युक्त आक्साइडो को क्षारीय तथा अम्लीय वर्गों में विभक्त करके निम्न प्रकार क्रमबद्ध किया जाता है—



$$\left.\begin{array}{l} ०·२४\ Na_2O. \\ ०·१९\ CaO \\ ०·२४\ PbO \end{array}\right\}\ ०·०९\ Al_2O_3\ \left\{\begin{array}{l} १·३९\ SiO_2 \\ ०·३०\ B_2O_3 \end{array}\right.$$

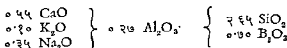
अब भास्मिक आक्साइडो के योग को इकाई बनाकर यह सूत्र निम्नलिखित सूत्र में परिवर्तित हो जाता है—



$$\left.\begin{array}{l} ०·३६\ Na_2O \\ ०·२८\ CaO \\ ०·३६\ PbO \end{array}\right\}\ ०·१३\ Al_2O_3\ \left\{\begin{array}{l} २·०७\ SiO_2 \\ ०·४५\ B_2O_3 \end{array}\right.$$

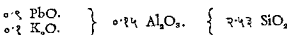
उदाहरण—निम्नलिखित काँचित-मिश्रण तथा प्रलेप-मिश्रण के अणु-सूत्रों को प्रलेप के व्यावहारिक सूत्र में परिवर्तित करो—

बोरैक्स-काँचित-मिश्रण



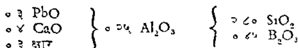
$$\left.\begin{array}{l} ०·५५\ CaO \\ ०·१०\ K_2O \\ ०·३५\ Na_2O \end{array}\right\}\ ०·२७\ Al_2O_3\ \left\{\begin{array}{l} २·६५\ SiO_2 \\ ०·७०\ B_2O_3 \end{array}\right.$$

सीसा-काँचित-मिश्रण



$$\left.\begin{array}{l} ०·९\ PbO. \\ ०·१\ K_2O. \end{array}\right\}\ ०·१५\ Al_2O_3.\ \left\{\ २·५३\ SiO_2\right.$$

प्रलेप-मिश्रण



$$\left.\begin{array}{l} \text{० ३ PbO} \\ \text{० ४ CaO} \\ \text{० ३ क्षार} \end{array}\right\} \text{० २५ } Al_2O_3 \quad \left\{\begin{array}{l} \text{२ ८० } SiO_2 \\ \text{० ८५ } B_2O_3 \end{array}\right.$$

बोरैक्स काचित बनाने के लिए हमें बोरैक्स फेल्सपार चकमकी और चीनी मिट्टी को ऐसे अनुपातों में मिलाना चाहिए जिससे सब पदार्थों द्वारा, उपर्युक्त सूत्र के अनुसार, आक्साइडों की मात्रा लायी जा सके। बोरैक्स काचित मिश्रण में ० ३५ अणु बोरैक्स डालने से ० ३५ अणु Na_2O तथा ० ७ अणु B_2O_3 के मिलेंगे। इसी प्रकार फेल्सपार का ० १ अणु डालने से ० १ अणु K_2O ० १ अणु Al_2O_3 तथा ० ६ अणु SiO_2 मिलेंगे। Al_2O_3 तथा SiO_2 के शेष भाग, चीनी मिट्टी तथा चकमकी से प्राप्त किये जायँगे। संगमरमर से CaO लिया जायगा। यह सब निम्न सारणी में दिखाया गया है—

पदार्थ	अणु-भार	पदार्थ-भार	CaO	K_2O	Na_2O	Al_2O_3	SiO_2	B_2O_3	काचित भार
बोरैक्स	३८२	१३३ ७०	—	—	० ३५	—	—	० ७	७० ७२
फेल्सपार	५५६	५५ ६०	—	० १	—	० १	० ६	—	५५ ६०
संगमरमर	१००	५५ ००	० ५५	—	—	—	—	—	३० ८०
चकमकी	६०	१०२ ६०	—	—	—	—	१ ७१	—	१०२ ६०
चीनी मिट्टी	२५८	४३ ८६	—	—	—	० १७	० ३४	—	३७ ३१
योग	—	३९० ७६	० ५५	० १	० ३५	० २७	२ ६५	० ७	२९७ ४३

उपर्युक्त सारणी के अन्तिम स्तम्भ में मिश्रण का कांचित भार दिखाया गया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि ३९० ७६ भाग कच्चा मिश्रण कांचीयकरण के पश्चात् का २९७ ४३ भाग रह जाता है।

सीसा काचित को भी इसी प्रकार लाल सीसा, चकमकी तथा चीनी मिट्टी द्वारा बनाया जाता है और इसकी गणना भी उपर्युक्त गणना की भाँति ही की जाती है। परिणाम निम्नलिखित सारणी में दिखाया गया है—

पदार्थ	अणु-भार	पदार्थ-भार	PbO	K_2O.	Al_2O_3	SiO_2	काँचित भार
लालसीसा	६८५	२०५·२	०·९	—	—	—	२००·४०
फेल्सपार	५५६	५५ ६	—	०·१	०·१	०·६०	५५·६०
चकमकी	६०	१०९ ८	—	—	—	१·८३	१०९·८०
चीनी मिट्टी	२५८	१२·९	—	—	०·०५	०·१०	११·०९
योग	—	३८३.५	०.९	०.१	०.१५	२.५३	३७६ ८९

प्रलेप मिश्रण की गणना

प्रलेप मिश्रण में B_2O_3 के ०·४५ अणु पाने के लिए $\frac{\text{२९७ ४३}\times\text{०·४५}}{\text{०·७}}$ या १९१ २ भाग बोरैक्स काँचित की आवश्यकता पड़ेगी।

बोरैक्स काँचित के १९१ २ भाग से अन्य आक्साइडो के निम्नलिखित भाग प्राप्त होंगे—

$$SiO_2 = \frac{\text{१९१ २}\times\text{२ ६५}}{\text{२९७ ४३}} \text{ या १·७०३ भाग}$$

$$Al_2O_3 = \frac{\text{१९१ २}\times\text{०·२७}}{\text{२९७·४३}} \text{ या ०·१७३ भाग}$$

$$CaO = \frac{\text{१९१ २}\times\text{० ५५}}{\text{२९७ ४३}} \text{ या ० ३५३ भाग}$$

$$K_2O = \frac{\text{१९१ २}\times\text{०·१}}{\text{२९७·४३}} \text{ या ०·०६४ भाग}$$

$$Na_2O = \frac{\text{१९१ २}\times\text{० ३५}}{\text{२९७·४३}} \text{ या ०·२२५ भाग}$$

चूँकि बोरैक्स काँचित से प्राप्त सम्पूर्ण क्षारो की मात्रा केवल ०·२८९ भाग है, परन्तु *आवश्यकता ०·३ भाग की है। अत शेष ०·०११ भाग की पूर्ति सीसा-*काँचित से की जायगी।

क्षार के ०.०११ भाग को K_2O के रूप में लाने के लिए—

$\frac{३३६.८९ \times ०.०११}{.१}$ या ४१.४५ भाग सीसा कांचिन की आवश्यकता होगी।

सीसा-कांचिन की यह मात्रा अपने साथ निम्नलिखित अन्य आक्साइडों की इन मात्राओं को भी लायेगी।

$PbO = \frac{४१.४५ \times ०.९}{३३६.८९}$ या ०.०९९ भाग

$Al_2O_3 = \frac{४१.४५ \times ०.१५}{३३६.८९}$ या ०.०१६ भाग

$SiO_2 = \frac{४१.४५ \times २.५३}{३३६.८९}$ या ०.२७८ भाग

इस प्रकार दोनों कांचिनों से निम्नलिखित स्थायी आक्साइडों की मात्राएँ प्रलेप-मिश्रण में आ जायेंगी।

कांचिन	PbO	CaO	K_2O	Na_2O	Al_2O_3	SiO_2	B_2O_3
बोरेक्स कांचिन	—	०.३५३	०.०६४	०.२२५	०.१३३	१.७०३	०.४५
सीसा-कांचिन	०.०९९	—	०.०११	—	०.०१६	०.२७८	—
योग	०.०९९	०.३५३	०.०७५	०.२२५	०.१४९	१.९८१	०.४५

चूँकि आक्साइडों के शेष भाग कच्चे रूप में ही मिलाये जाते हैं, इसलिए निम्नलिखित आक्साइडों को कांचिन के साथ मिलाना पड़ता है—

०.२०१ भाग PbO या $\frac{७७५ \times .२०१}{३}$ अर्थात् ५१.९ भाग श्वेत सीसा।

०.०४७ CaO या १००×०.०४७ अर्थात् ४.७ भाग संगमरमर।

०.०६१ Al_2O_3 या २५८×०.०६१ अर्थात् १५.७ भाग चीनी मिट्टी।

०.८१९ SiO_2 या ६०×०.८१९ अर्थात् ४९.१४ भाग चकमकी।

अब प्रलेप-मिश्रण तथा दोनों कांचिन मिश्रणों के व्यावहारिक सूत्र इस प्रकार होंगे—

बोरैक्स-कांचित मिश्रण		सीसा-काँचित मिश्रण	
बोरैक्स केलास	१३३.७०	लाल सीसा	२०५.२
संगमरमर	५५.००	चकमकी	१०९.८
फेल्सपार	५५.६०	फेल्सपार	५५.६
चकमकी	१०२.६०	चीनी मिट्टी	१२.९
चीनी मिट्टी	४३.८६		

प्रलेप-मिश्रण

बोरेक्स-काँचित	..	१९१.२०
सीसा-काँचित	..	४१.४५
श्वेत सीसा	..	५१.९०
चकमकी	..	४९.१४
चीनी मिट्टी	..	१५.७०
संगमरमर	..	४.७०

अल्प घुलनशील प्रलेप

मानव-शरीर पर सीसा के विषैले प्रभाव का ज्ञान पहले बहुत ही कम था। सन् १९०४ ई० के पूर्व प्रलेप तथा काँच-कलइयों में सीसा-यौगिकों के उपयोग पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। सन् १९०४ ई० में प्रलेपित तथा काँच-कलईवाले पात्रों में उपस्थित सीसा-यौगिकों की विषक्रिया रोकने के वास्ते, नियम बनाने के लिए एक समिति संगठित की गयी। समिति द्वारा प्रस्तावित नियम के अनुसार ०.२५ प्रतिशत हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में प्रलेप या काँचित को गरम करने पर, प्रलेप या काँचित के जो सीसा-लवण घुल जायँ, उन्हें PbO की भाँति प्रकट करने पर वे पूरे प्रलेप या काँचित के ५ प्रतिशत से अधिक नहीं होने चाहिए। इस परीक्षण के लिए घोल में हाइड्रोजन सल्फाइड गैस बहाकर PbS अवक्षेपित करा लिया जाता है। बाद में PbO की भाँति इसकी गणना कर ली जाती है। परन्तु जर्मनी तथा अन्य यूरोपीय देशों में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के स्थान पर २ प्रतिशत साइट्रिक अम्ल या ऐसेटिक अम्ल के घोल का प्रयोग किया जाता है।

में अधिक समय लग जाता है। जब काँचित मिश्रण में सीसा के साथ अधिक बोरैक्स रहता है, तो उस काँचित मिश्रण को साधारणतया दो भागों में काँचित किया जाता है। प्रथम काचित मे सम्पूर्ण सीसा और उसके साथ इतना सिलीका तथा एल्यूमिना रहता है कि काँचीयकरण क्रिया द्वारा पूरा सीसा बाई-सिलीकेट ($PbO \cdot 2SiO_2$.) में परिवर्तित हो जाय, कारण सीसा के बाई-सिलीकेट अम्ल रस में बहुत ही कम घुलनशील होते हैं। इस काँचित को सीसा काँचित कहा जाता है। द्वितीय काँचित में सम्पूर्ण बोरैक्स के साथ मिश्रण के दूसरे खनिज मिलाकर काँचित किया जाता है और इसे बोरेक्स काचित कहते हैं।

८. इल्यूट्रिएशन (Elutriation)—शुष्क चूर्ण पर पानी के प्रभाव-द्वारा समान व्यासवाले कणों को पृथक् करने को अग्रेजी में इल्यूट्रिएशन कहते हैं। हिन्दी में इसके लिए अभी तक कोई शब्द नहीं बन पाया है। शुष्क खनिज पदार्थों के कणो का सूक्ष्म आकार बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है, कारण मृद्-उद्योग में कण-आकार की सूक्ष्मता पर भी निर्मित वस्तुओ के गुण-दोष निर्भर करते हैं। व्यवहार में देखा गया है कि चकमकी, स्फटिक तथा फेल्सपार आदि खनिजो के कण-आकार के प्रभाव, खनिजो की शुद्धता के प्रभाव से अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं।

चूर्ण पदार्थों के कण-आकार के आधार पर वर्गीकरण के लिए चलनी का प्रयोग सर्वसाधारण विधि है। बहुत ही सूक्ष्म कणीय पदार्थों को छोड़कर अन्य पदार्थों के कण-आकार ज्ञात करने के लिए यह सन्तोषजनक विधि है। विभिन्न देशों में प्रामाणिक चलनियाँ विभिन्न प्रकार की होती हैं। प्रत्येक चलनी पर एक-एक नम्बर लिखा रहता है और इन्ही नम्बरो से चलनी के छिद्रों की सूक्ष्मता जानी जाती है। परन्तु विभिन्न देशों के चलनी नम्बरो में भिन्नता होती है। ब्रिटेन की प्रामाणिक चलनियाँ इस प्रकार बनायी जाती हैं कि उनके तारों का व्यास छिद्र की चौड़ाई के बराबर होता है और चलनी का नम्बर एक इंच में छिद्रों की संख्या प्रकट करता है। इस प्रकार १०० नम्बर की चलनी में प्रति इंच १०० छिद्र होंगे तथा १०० तार लगे होंगे। अत. छिद्र की चौड़ाई ०·००५ इंच या ०·१२७ मिलीमीटर होगी। अमेरिका की प्रामाणिक चलनी ब्रिटेन की चलनी से कुछ भिन्न होती है। इसमें भी ब्रिटेन की चलनी की भाँति चलनी का नम्बर उसके प्रति इंच छिद्रों की संख्या बताता है। परन्तु ब्रिटेनवाली चलनी के विपरीत छिद्र का व्यास एक दूसरे ही नियम के अनुसार रखा

जाना है जो कुछ गणित-सम्बन्धी तथ्यों पर आधारित है। दो लगातार नम्बर की चलनियों के छिद्रों की चौड़ाइयों का अनुपात सदैव १ : १.१८९२ होता है। १८ नम्बरी चलनी के छिद्र की चौड़ाई १.० मिलीमीटर होती है तथा इसी चलनी का आधार मानकर छोटे छिद्रों की चलनियाँ बनायी गयी हैं। इस प्रकार १०० नम्बर की चलनी में प्रत्येक छिद्र की चौड़ाई ०.००५९ इंच या ०.१४९ मिलीमीटर होती है। यूरोपीय देशों की चलनियों के नम्बर प्रत्येक वर्ग सेण्टीमीटर में उपस्थित छिद्रों की संख्या प्रकट करते हैं। इस प्रकार चलनी नम्बर १०० के प्रत्येक वर्ग सेण्टीमीटर में १०० छिद्र होंगे।

ब्रिटेन की सबसे सूक्ष्म चलनी का नम्बर ३२५ और उसके छिद्र की चौड़ाई ०.००१७ इंच या ०.०४४ मिलीमीटर होती है। कभी-कभी जब खनिज चूर्णों के कण इससे अधिक सूक्ष्म होते हैं तो उनकी आकार-नाप चलनी द्वारा नहीं निकाली जा सकती। ऐसी अवस्था में इल्यूट्रिएशन विधि से सूक्ष्म कणों का वर्गीकरण, आकार के आधार पर किया जाता है।

इस विधि में चूर्णों के सूक्ष्म कणों पर पानी-प्रभाव की सहायता से चूर्ण-कणों को उनके आकार के अनुसार भिन्न-भिन्न अंशों में वर्गीकृत किया जाता है, जिसका सिद्धान्त निम्न प्रकार है—

किसी खनिज चूर्ण को स्थिर पानी में डालने पर चूर्ण का प्रत्येक कण एक निश्चित गति से पानी में डूबने लगता है। यह गति कण के आकार, आपेक्षिक घनत्व, आकृति तथा कण तल के प्रकार पर निर्भर करती है। जब खनिज पदार्थ काफी महीन पीस लिये जाते हैं, तो उनके कण न्यूनाधिक गोलाकार हो जाते हैं तथा उनके तल भी समान प्रकार के होते हैं। अतः सूक्ष्म कणों के नीचे बैठने की गति उनके आपेक्षिक घनत्व तथा आकार पर ही निर्भर करती है।

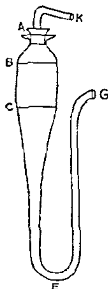
अब यदि पानी को ऊपर की ओर बहाया जाय और पानी की ऊर्ध्वगति धीरे-धीरे बढ़ायी जाय, तो पता चलता है कि जब पानी की ऊर्ध्वगति कणों की अधोगति के बराबर होती है, तो कण स्थिर हो जाते हैं। परन्तु पानी की ऊर्ध्वगति कणों की अधोगति से अधिक होने पर कण जलप्रवाह के साथ ऊपर जाने लगते हैं। अतः यदि हम पानी की ऊर्ध्वगति निर्धारित कर सकें तो निम्नलिखित समीकरण द्वारा कण-आकार की गणना कर सकते हैं।

$$\text{जल प्रवाह की गति} = १०४७\ (घ-१)^{१·५१} \times व^{१·५७}$$

यहाँ घ = कण का आपेक्षिक घनत्व
व = कण का औसत व्यास

इस प्रकार पानी के विभिन्न वेगों का प्रयोग करके चूर्ण को समान आकारवाले कणों के कई अंशों में वर्गीकृत कर सकते हैं, जिनके औसत व्यास हम पूर्वलिखित समीकरण से ज्ञात कर सकते हैं।

इसी सिद्धान्त के आधार पर श्वेन (E. Schoene) ने महीन पिसे हुए चूर्ण-पदार्थों के कणों को समान आकारवाले विभिन्न अंशों में वर्गीकृत करने के लिए एक वर्गीकरण उपकरण का आविष्कार किया। चित्र ६१ में इस उपकरण को दिखाया गया है। इस उपकरण में एक मुड़ी हुई नली AEG रहती है, जिसके एक सिरे A पर रबड़ की एक डाट लगी रहती है। रबड़ की डाट में होकर एक दूसरी छोटी नली K इस नली में जाती है। इस नली K द्वारा पानी तथा चूर्ण के सूक्ष्म कण नली AEG से बाहर निकल जाते हैं। A के नीचे नली का सबसे चौड़ा भाग BC होता है। यह ठीक बेलनाकार होता है। BC के ऊपर व नीचे नली कम चौड़ी हो जाती है। नली के दूसरे सिरे G पर पानी घुसता है और K द्वारा बाहर निकल जाता है। पानी का वेग निम्न प्रकार से ज्ञात किया जाता है।



चित्र. ६१. श्वेन वर्गीकरण उपकरण

उपकरण के बेलनाकार भाग के नीचे तक पानी भर दिया जाता है। उसके बाद बेलनाकार भाग में पानी का एक ज्ञात आयतन (अ) डाला जाता है। पानी के इन बढ़े हुए तल पर चिह्न लगा दिया जाता है और पानी-तल की ऊँचाई-वृद्धि (उ) नाप ली जाती है। पानी के इस आयतन 'अ' और तल की ऊँचाई वृद्धि 'उ' से बेलनाकार भाग का अनुप्रस्थ काट निम्न प्रकार से निकाल लेते हैं—

$$\text{अनुप्रस्थ काट} = \frac{अ}{उ}$$

$$\text{कण का औसत आयतन} = \frac{\pi \text{व}^3}{६}$$

$$\text{कण का औसत भार} = \frac{\pi \text{व}^3 \text{घ}}{६}$$

यदि सम्पूर्ण अंश का भार (भ) तथा उसमे कणो की सख्या (स) हो तो:

$$\text{स} = \frac{\text{भ}}{\frac{\pi \text{व}^3 \text{घ}}{६}} = \frac{६ \text{भ}}{\pi \text{व}^3 \text{घ}},$$

अब चूंकि एक कण का तल क्षेत्रफल (π व^2) होता है, अत इस अंश में उपस्थित 'स' कणो के तल-क्षेत्रफल का योगफल निम्नलिखित होगा—

$$\text{अंश का सम्पूर्ण तल-क्षेत्रफल} = \frac{६ \text{भ} \times \pi \text{व}^2}{\pi \text{व}^3 \text{घ}} = \frac{६ \text{भ}}{\text{व घ}}$$

यदि हमारे पास कई अंश हो जिनके भार क्रमश $\text{भ}_1, \text{भ}_2, \text{भ}_3$ .... हो तथा जिनके कणो के औसत व्यास क्रमश $\text{व}_1, \text{व}_2, \text{व}_3$ ..... हो तो सम्पूर्ण तल-क्षेत्रफल निम्नलिखित समीकरण द्वारा प्रकट किया जायगा—

$$\text{सम्पूर्ण तल-क्षेत्रफल} = \frac{६}{\text{घ}} \left\{ \frac{\text{भ}_1}{\text{व}_1} + \frac{\text{भ}_2}{\text{व}_2} + \frac{\text{भ}_3}{\text{व}_3} + \cdot \quad \cdot \quad \cdots \right\}$$

यदि इस समीकरण में प्रयुक्त हुए $\text{भ}_1 + \text{भ}_2 + \text{भ}_3 + \cdot = १$ ग्राम हो तो समीकरण द्वारा प्राप्त सम्पूर्ण तल-क्षेत्रफल प्रामाणिक तल-अङ्क के बराबर होगा। परिणाम वर्ग सेण्टीमीटर में व्यक्त किया जाता है।

मृत्तिका-उद्योग मे उपयोगी खनिज पदार्थों के प्रामाणिक तल-अङ्क ज्ञात करने के लिए मेलर ने निम्नलिखित विधि अपनाने का प्रस्ताव रखा, जो प्रामाणिक परिणामों के लिए इंग्लैण्ट में अपनायी जाती है।

सम्पूर्ण चूर्ण को १२० नम्बर की चलनी से छान लिया जाता है। तत्पश्चात् छने हुए अंश में से एक ग्राम चूर्ण लेकर उसे निम्न प्रकार के तीन अंशो में वर्गीकृत किया जाता है—

(i) मोटा अंश (Grit)—एक ग्राम चूर्ण को २०० नम्बर की चलनी से छानने पर ऊपर बचे हुए मोटे अंश को अंग्रेजी में ग्रिट कहते हैं। इस अंश के कणो का व्यास ०·०६३ और ०·१०७ मिलीमीटर के बीच रहता है।

कोई कण नीचे बैठने समय दूसरे कण के बैठने में बाधा न डाले। आलम्बन को बीकर में लेकर कुछ समय तक ऐसा ही छोड़ दिया जाता है। अपेक्षाकृत बड़े कण जमकर नीचे बैठ जाते हैं। सूक्ष्म कण आलम्बन अवस्था में ही रहते हैं। अब आलम्बन को बीकर की एक निश्चित ऊँचाई पर से निथार लिया जाता है। बीकर में बची तलछट को पुन इतने पर्याप्त पानी के साथ मिलाया जाता है कि आलम्बन का आयतन पूर्ववत् एक निश्चित आयतन के बराबर हो जाय। इस आलम्बन को उतने ही काल तक ऐसे ही शान्त छोड़ दिया जाता है, तत्पश्चात् उसी ऊँचाई पर से आलम्बन फिर निथार लिया जाता है। यह क्रिया तब तक दुहरायी जाती है, जब तक कि निथरनेवाला ऊपर का पानी स्वच्छ न मिले। प्रत्येक निथारे हुए आलम्बन से प्राप्त कणो को तौला जाता है और सूक्ष्मदर्शी की सहायता से उनका औसत व्यास निकाला जाता है। चूर्ण का प्रामाणिक तल-अंक पूर्वलिखित समीकरण द्वारा निकाला जाता है।

१०. सुखाव ताप-गणना—मृत्पात्र कारखानो में भट्ठी की दहन-जनित गैसें तथा वाष्पित्र रहने पर वाष्पित्र से बाहर जानेवाले जलवाष्प के द्वारा ताप की बहुत अधिक मात्रा व्यर्थ चली जाती है। इस विषय में यह उल्लेखनीय है कि वाष्पित्र से बाहर जानेवाले जलवाष्प के प्रत्येक पौंड से हमें ९७० ताप-इकाइयाँ प्राप्त हो सकती हैं और १०० अश्वशक्ति उत्पन्न करनेवाले तथा १० घण्टा प्रतिदिन काम करनेवाले वाष्पित्रो से बाहर जानेवाले व्यर्थ जलवाष्प द्वारा हम ३,३४६,५०० ताप-इकाइयो की प्राप्ति की आशा कर सकते हैं। इस ताप का प्रयोग पात्र सुखाने तथा अन्य कार्यों में किया जा सकता है।

यदि इन दहन-जनित गैसो का सुखाव-प्रकोष्ठो में सीधा प्रयोग किया जाय तो सुखाव-प्रकोष्ठ के लौहभागो पर शीघ्र ही मोर्चा लग जाता है तथा सूखनेवाले पात्रो पर भी प्राय छादनी आ जाती है। अत भट्ठी गैसो को नलो द्वारा उस हवा को गरम करने के काम में लाया जाता है, जो सुखाव-प्रकोष्ठ में पात्रो को सुखाती है। इस प्रकार हम गैसो के व्यर्थ ताप का उपयोग भी कर सकते हैं और गैसो के सीधा उपयोग करने के हानिकर प्रभावो से भी छुटकारा पा जाते हैं।

एक मध्यम आकार के श्वेत मृत्पात्र कारखाने में प्रतिदिन ४ से ५ टन मिश्रण-पिण्ड प्रयोग किया जाता है। इतने मिश्रण-पिण्ड से निम्नलिखित प्रकार की वस्तुओं में से किसी एक प्रकार की जितनी वस्तुएँ बनेंगी, उनकी सन्निकट संख्या दी जाती है।

सुखाने में तापव्यय

(१) मृत्पात्रों को गरम करने के लिए आवश्यक ताप = १०,०००×०·२×(१२०–७०) = १०,००० ब्रि० ऊ० मा०

(२) पानी के वाष्पीकरण के लिए
आवश्यक ताप = (२०००×५०) + (२१२३×२०००)
= ४३,४६,००० ब्रि० ऊ० मा०

(३) गाडियों के लौह भागों को गरम
करने के लिए आवश्यक ताप = १०,०००×·१२×५०
= ६०,००० ब्रि० ऊ० मा०

(४) गाडियों के ईंट-भागों को गरम
करने के लिए आवश्यक ताप = ५०००×०·२×५०
= ५०,००० ब्रि० ऊ० मा०

योग ४५,५६,००० ब्रि० ऊ० मा०

व्यर्थ गैसों से प्राप्य ताप

५ टन मृद्-वस्तुएँ पकाने में पकाव भट्ठियों की गैसों से प्राप्त उस ताप की गणना, जो मृत्पात्र सुखाने के काम आ सकता है, निम्नलिखित बातों के आधार पर की जा सकती है।

पकाव तापक्रम के अनुसार एक टन मृत्पात्रों को पकाने में १·५ से २·५ टन कोयले की आवश्यकता पड़ती है। एक टन मृत्पात्र पकाने में कोयले का औसत व्यय २ टन मान लेने पर ५ टन मृद्वस्तुओं को पकाने में १० टन कोयले की आवश्यकता होगी। भारतीय कोयले का औसत ऊष्मीय मान १२६०० ब्रि० ऊ० मा० या ७०० कैलारी मान लेने पर हमें ईंधन से २२४०×१०×१२६०० ब्रि० ऊ० मा० ताप प्राप्त होगा। ताप की इस मात्रा का केवल २७ प्रतिशत मृद्-उद्योग भट्ठी की गैसों के साथ भट्ठी के बाहर चला जाता है। अत सुखाने के लिए प्राप्य ताप की मात्रा--

$$= \frac{२२४०\times१०\times१२६००\times२७}{१००} \text{ या } ७६२०४८०० \text{ ब्रि०ऊ०मा०}$$

इस प्रकार हम देखते हैं कि पानी के सुखाने के लिए आवश्यक ताप का लगभग १७ गुना ताप भट्ठी गैसों के व्यर्थ ताप से प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु इस प्राप्य

ताप का अधिकांश भाग चिमनी द्वारा बाहर जाना चाहिए, जिसमें भट्ठी के अन्दर गैसों के निरन्तर बहाव के लिए आवश्यक खिंचाव उत्पन्न हो सके।

चिमनी के लिए आवश्यक ताप

जो ताप चिमनी द्वारा बहना चाहिए, उसकी गणना निम्न प्रकार से की जा सकती है—

प्रत्येक टन कोयले के पूर्ण दहन के लिए लगभग ९.२ टन हवा की आवश्यकता होती है। परन्तु वास्तविक व्यवहार में २५ से ३० प्रतिशत और अधिक हवा भेजी जानी चाहिए। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक टन कोयला जलने पर लगभग १२.५ टन गैसें उत्पन्न करेगा। परिणाम-स्वरूप १० टन कोयला १२५ टन दहन-जनित गैसें उत्पन्न करेगा। चिमनी की गैसों का औसत तापक्रम और औसत आपेक्षिक ताप क्रमश: ३००° F और ०.२५ मान लेने पर चिमनी से बाहर जानेवाले ताप की मात्रा निम्न-लिखित होगी—

चिमनी से बाहर गया ताप = १२५×२२४०×०.२५×३०० ब्रि० ऊ० मा०
= २,१०,००,००० ब्रि० ऊ० मा०

इस गणना से हमें पता चलता है कि मृत्पात्र भट्ठी से बाहर जानेवाले ताप का लगभग एक चौथाई भाग भट्ठी के अन्दर चिमनी द्वारा आवश्यक खिंचाव उत्पन्न करने में काम आता है। परन्तु यदि भट्ठी में तेल-ईंधन का प्रयोग किया जाता है और परिणाम-स्वरूप खिंचाव दबाव से उत्पन्न किया जाता है, तो ताप की इस मात्रा की भी आवश्यकता नहीं होती। अत: यदि मृद्-उद्योग-भट्ठियों की दहन-जनित गैसों के व्यर्थ ताप का ठीक प्रकार से उपयोग किया जाय, तो यह ताप, पात्रों के सुखाने के लिए आवश्यक ताप से कहीं अधिक होता है। सभी भारतीय मृद्-उद्योग कारखानों के प्रबन्धकों को इस ओर ध्यान देना चाहिए।

वास्तव में इस ताप की कुछ मात्रा सुखाव प्रकोष्ठ, गैस नालियों तथा चिमनी की दीवारों द्वारा अवशोषित हो जाती है और इनसे विकिरण द्वारा व्यर्थ चली जाती है। परन्तु यदि ये दीवारें उचित ताप-पृथक्करण ईंटों से बनायी जायें, तो इस विकिरण ताप-हानि को काफी कम किया जा सकता है। चूँकि सुखाव प्रकोष्ठ की दीवारें १५०° F से अधिक तथा चिमनी की दीवारें ३००° F से अधिक गरम नहीं होतीं, अत: विशेष सरन्ध्र साधारण मिट्टी की ईंटों से ही ताप-पृथक्करण का काम चल जायगा। ये ईंटें अग्नि-ईंटों की अपेक्षा सस्ती भी पड़ती हैं।

चतुर्दश अध्याय

उद्योग-परिकल्पना

उद्योगशाला की परिकल्पनाएँ उस व्यक्ति से करायी जानी चाहिए जिसे निर्माण-सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान तथा अनुभव हो और स्थानीय दशा—जैसे पदार्थों की उपलब्धि, श्रमिकों का ठीक प्रकार से मिलना, यातायात के साधन और बाजार की सुविधा—के विषय में आवश्यक ज्ञान हो। विशेषतः भारत में पूँजीपतियों की यह प्रवृत्ति है कि यदि वे देखते हैं कि एक उद्योग किसी विशेष क्षेत्र में उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन कर रहा है तो वे उसी क्षेत्र में, बाजार के विषय में बिना सूक्ष्म निरीक्षण किये ही और अधिक उद्योगशालाएँ स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं और निर्माणाधिक्य के कारण इसका अवश्यम्भावी परिणाम अनुचित प्रतियोगिता होता है। किन्हीं दशाओं में यह पाया गया है कि उद्योगशालाएँ (कारखाने), श्रमिक-सुविधा तथा सामग्री की उपलब्धि के विषय में विचार किये बिना ही स्थापित की गयी हैं। इन उद्योगशालाओं (कारखानों) को शीघ्र ही अथवा कुछ समय पश्चात् या तो सामग्री-सम्बन्धी या मँहगे बाहरी श्रमिकों की प्राप्ति के विषय में अवश्य ही कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। एक नवनिर्मित उद्योगशाला (कारखाने) के लिए ये दोनों बातें अपेक्षित हैं।

अमेरिका और इंग्लैण्ड-जैसे देशों में, जहाँ श्रमिक बहुत मँहगे मिलते हैं, आधुनिक श्रमिक-व्यय कम करने के उपाय स्वतन्त्रता से उपयोग में लाये जाते हैं। परन्तु भारत में श्रमिक अपेक्षाकृत सस्ते होने के कारण उत्पादन की आर्थिक दशा को ध्यान में रखते हुए ये अधिक व्ययवाले उपाय टाले जा सकते हैं। जिस समय मिट्टी के पात्रों की नयी उद्योगशाला की परिकल्पना की जाती है तो वह मशीनों का चुनाव, स्थानीय श्रमिकों की दशा और उनकी योग्यता तथा उत्पादन की संख्या पर आधारित होना चाहिए, अन्यथा कुछ मशीनें अच्छे चालकों के अभाव में पूर्ण या आंशिक रूप से बेकार रहेंगी।

आवश्यकता के समय के लिए मशीनों की क्षमता (Capacity) अधिक

होनी चाहिए, चाहे वह अधिक समय देकर की जाय या मशीन बढ़ाकर, परन्तु उनका वास्तविक उत्पादन सुखानेवाले भाग और भट्ठी की क्षमता के अनुसार हो। मिट्टी के कारखाने में भट्ठीवाला भाग सबसे कीमती है, इसलिए कम व्यय और ठीक काम करने के लिए कारखाने में जितनी भट्ठियों की उचित आवश्यकता हो उससे अधिक नहीं बनानी चाहिए तथा दूसरी मशीनों का सतुलन भट्ठी की क्षमता के साथ होना चाहिए। कीमती भट्ठी को बन्द रखने की अपेक्षा एक मशीन को पूर्णतया या आंशिक रूप से कुछ समय के लिए बन्द रखना अच्छा है।

विभिन्न प्रकार की भट्ठियों में, जैसे ऊर्ध्वगति (Up-draught), निम्नगति (Down-draught), अविराम सुरग भट्ठी (Cartunnel) में विभिन्न प्रकार की स्थितियाँ उपस्थित होती हैं। एक सुरग भट्ठी (Cartunnel) में लगातार रात व दिन तथा छुट्टियों के समय भी, जब उद्योगशाला उत्पादन न कर रही हो तब भी, बर्तन ईंटें इत्यादि पकाने की सामग्री पहुँचती रहनी चाहिए। ऐसी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विशेष गोदामों का प्रबन्ध होना चाहिए और जो उद्योगशाला इस प्रकार की भट्ठियों का प्रयोग करती है उसे अपनी मशीनें और गोदामों की जगह इस प्रकार बनानी चाहिए जिससे भट्ठियों की आवश्यकताएँ पूरी हो सकें।

यह बुद्धिमत्ता की बात नहीं है कि एक ही निर्माणशाला में अनेक प्रकार के मिट्टी के बर्तन बनाये जायँ, जिनके निर्माण में केवल सुखाने में ही नहीं, किन्तु प्रारम्भिक दशाओं में भी विभिन्न प्रकार के उपाय काम में लाये जाते हैं। इस प्रकार की मिली-जुली योजना से न तो वस्तुओं की सख्या में ही वृद्धि होती है और न उनके गुणों में ही। अतएव यह अच्छा है कि उन वस्तुओं के उत्पादन के विषय में बाजार की स्थिति के अनुसार वैसी ही वस्तुओं के निर्माण के सम्बन्ध में विचार कर लिया जाय।

निम्न पृष्ठों में विभिन्न प्रकार के बर्तनों के निर्माण के सम्बन्ध में परिकल्पनाएँ करने के लिए कुछ निर्देश किये गये हैं। परन्तु ये निर्देश अन्तिम नहीं कहे जा सकते। मिट्टी के काम के लिए परिकल्पना में अनेक प्रकार की समस्याएँ, जैसे कि गृह, मशीन, विद्युत् और रासायनिक सम्बन्धी विशिष्ट ज्ञान निहित हैं। इसके अतिरिक्त खनिज तथा ईंधन के विषय में विशिष्ट ज्ञान भी रहना चाहिए।

१—अग्नि-ईंट के उद्योग की परिकल्पना

इसकी क्षमता दस हजार ईंटें प्रतिदिन होगी।

यदि चार टन सूखा सामान एक हज़ार ईंटो के लिए हो तो हमें चालीस टन सूखे सामान की प्रतिदिन आवश्यकता होगी।

अग्निमिट्टी के बडे ढेलो को छोटे-छोटे टुकडो में तोड दिया जाता है और उसमें से सब लौह ग्रन्थियो को छाँट दिया जाता है। इसके लिए बडी मशीनो से काम लेने की अपेक्षा मानवीय श्रम ही ठीक समझा जाता है।

तुडाई व छँटाई के उपरान्त अग्नि-मिट्टी (Fire clay) को भली भाँति सुखा लेना चाहिए, क्योंकि गीली मिट्टी बहुत बारीक नहीं पीसी जा सकती। दूसरा कदम मिट्टी को पैन मिल (Pan mill) में, विशेष कर ऊपर से घूमनेवाले तसले के साथ, बारीक पीसना है। घूमनेवाले तसलो की मिलें स्थिर तसलो की मिलो की अपेक्षा अच्छा परिणाम देती हैं। तसले में छेदोवाली चलनी होनी चाहिए जिसके छेद २ मिलीमीटर या १।१० इच के आकार के हो। इसी प्रकार की मिल में छर्री (Grog) को पीसने के लिए घूमनेवाले तसलों के साथ चलनी होनी चाहिए जिसके छेद ३ मिली-मीटर या १।८ इच के आकार के हो। छर्री (Grog) के आकार नियन्त्रित रखने के लिए पिसी हुई छर्री को काम में लाने से पूर्व छानकर श्रेणीबद्ध कर लेना आवश्यक है।

पिसी हुई मिट्टी और छर्री को उनके ठीक अनुपात में मिलाकर पानी सोखने के गड्ढो मे छोड दिया जाता है जहाँ पर कि उसमे उचित मात्रा में पानी डाला जाता है। शोषण-कार्य २४ घटे तक चलता है। इस काम के लिए दो गड्ढे होने चाहिए जिससे कि जब एक गड्ढे में मिट्टी पानी सोखने के लिए पडी है, तो दूसरे की मिट्टी काम आ सके। हरएक टन मिट्टी के ढेर के लिए प्राय दो घन गज गड्ढे के स्थान की आवश्यकता है, इसलिए उस उद्योगशाला के लिए जिसमे प्रतिदिन ४० टन मिट्टी के ढेर की खपत की क्षमता हो, दो गड्ढे होने चाहिए, जिनमें हर गड्ढा अस्सी घन गज की क्षमतावाला हो।

अच्छी तरह से पानी सोखी हुई मिट्टी और छर्री (Grog) के इस मिश्रण को क्षैतिज (Horizontal) मिश्रण-यन्त्र (Mixer) में भेजा जाता है जिसमे पानी, मिट्टी और छर्री भली भाँति मिश्रित हो जायँ। इस मिश्रण-यन्त्र में एक लम्बी नाँद (Trough) के भीतर दो समानान्तर मोटी धुरियो के साथ मजबूत पखे (Blades) लगे रहते हैं जो धुरी के घूमने समय मिट्टी के ढेर को काटते और मिलाते हैं। विभिन्न पदार्थों का समान रूप में मिश्रित होना अति आवश्यक है, जिससे ईंटो में बनाते, सुखाते और पकाते समय किसी प्रकार का दोष न रह जाय। मिश्रण-

यन्त्र को इस प्रकार रखा जाय कि मिश्रित की हुई मिट्टी स्वत ही उसमें से पग मिल (Pug Mill) मे गिर पड़े, जिससे कि मिश्रण ढोने के लिए मानवीय श्रम की आवश्यकता न हो।

पग मिल (Pug mill) का काम उस मिट्टी को दबाकर एक पिण्ड मे करके ईटे बनाने के लिए तैयार कर देना है।

भारत मे हाथ से दबाकर ईटे बनायी जाती है। एक अनुभवी ईट बनानेवाला एक बच्चे की सहायता से प्रतिदिन ८०० से १००० तक ईटे बना सकता है। ये ईटे जब आधी सूख जाती है तो इनको ठीक आकार देने के लिए लोहे के साँचे मे दुबारा दबाया जाता है। आधुनिक काल मे हाथ से दबाकर ईट बनाने की प्रथा को बदलकर पग मिल (Pug mill) से बाहर आनेवाले मिट्टी के पिण्ड को तार से काटकर उन्हे बना लिया जाता है। एक आदमी १०० से १२० तक ईटे एक हाथ-गाड़ी से ले जा सकता है।

मशीनें

अग्नि-मिट्टी को पीसने के लिए—

१ एक पैन रोलर (Pan Roller) मशीन, घूमनेवाले तसले तथा चलनी युक्त। चलनी के छेद २ मि मी या १।१० इच के आकार के होने चाहिए। क्षमता ३-४ टन प्रति घटा। शक्ति ९-१० अश्वशक्ति (हार्स पावर) हो।

२. छर्री को पीसने के लिए इसी प्रकार की एक दूसरी मशीन जिसकी चलनी के छेद ३ मि मी या १।८ इच के आकार के हो। क्षमता—३-४ टन प्र. घ ; शक्ति ९-१० हा० पा०।

३ धुरी तथा घिरनियों से युक्त एक २० हा० पा० की धीरे चलनेवाली मोटर, जो कि उपर्युक्त दो मशीनो को चलाने के उपयुक्त हो।

४-५. पानी, मिट्टी और छर्री के मिश्रण के लिए धुरीयुक्त दो समतल नाँदें। प्रत्येक की क्षमता २-३ टन प्र घ, शक्ति प्रत्येक की ४-५ हा० पा०।

६-७ तार काटनेवाली मेज के साथ जुड़ी हुई दो समतल पग मिल (Pug mill), प्रत्येक की क्षमता—प्रत्येक के लिए ३ टन प्र घ ; प्रत्येक के लिए आवश्यक शक्ति १० हा० पा०।

८. धुरी और घिरनियो आदि से युक्त उपर्युक्त चार मशीनो को चलाने के लिए एक ३० हा० पा० की धीरे चलनेवाली मोटर।

९. साँचो, औजारो आदि के सहित ईंटो को दुबारा दबाने के लिए हाथ से दबाने-वाले १४ प्रेस।

उपर्युक्त मशीनो के अतिरिक्त कुछ सहायक सामग्री भी आवश्यक है; जैसे—लकडी के तख्ते, सुखाने के ताक, लकडी के साँचे, काटने के औजार और हाथ के ठेले आदि।

भट्ठियाँ—एक घन गज में ३८४ ईंटें आती हैं। इसलिए प्रति दिन १०००० ईंटो के उत्पादन के लिए २६ घन गज स्थान की आवश्यकता होगी। यदि महीने में २५ दिन काम हो तो ६५० घन गज स्थान की आवश्यकता होगी। भट्ठी में ईंटो को खडा करके दूसरी ईंटो से ५।८ इंच पृथक् करके रखा जाता है। इसलिए प्रत्येक तीन ईंटो के बीच दो खाली स्थान होते हैं जिनकी कुल दूरी ५।४ इच होती है। यह स्थान भट्ठी की गरम गैसो के बहने के लिए खाली छोडा जाता है। यह खाली स्थान जितने स्थान में ईंटें आती हैं उसका १४ प्रतिशत होता है। ६ प्रतिशत स्थान छत (*Crown*) के नीचे और चूल्हे (Bags) के समीप छोडा जाता है। अत ईंटो को ठीक प्रकार से रखने और पकाने के लिए २०% स्थान अधिक लगता है। यह सब मिलाकर भट्ठे के स्थान का ७८० घन गज के लगभग होता है।

अग्नि ईंटो को पकाने में एक भट्ठी से महीने में दो बार काम लिया जा सकता है। अत एक भट्ठी के लिए ३९० घन गज स्थान की आवश्यकता है। यदि भट्ठे चार गज ऊँचे बनाये जायँ तो भूमि की सतह का क्षेत्रफल ९७·५ वर्ग गज होता है जो २३·४ फुट व्यास के दो भट्ठो में या १९·२ फुट व्यास के तीन भट्ठो में विभाजित किया जा सकता है। एक आदमी भट्ठे मे प्रति दिन ८००० से लेकर १०००० ईंटे तक लगा सकता है।

२—कड़े मिट्टी-पात्र उद्योगशाला की परिकल्पना

इसकी क्षमता प्रति दिन पाँच टन मिश्रण की होगी।

इस निर्माणशाला में निम्नलिखित वस्तुएँ बनेंगी—

घरेलू कार्य के लिए जार (Jar) और कारबाय (Carboys) एव रासायनिक कामो में अम्ल रखने के बर्तन तथा नमक-प्रलेप से निर्मित विभिन्न वस्तुएँ। ढलाई घोला निर्माण शाला में निम्नलिखित विभाग होंगे—

क. ढलाई घोला विभाग (Slip House)

ख गठनविभाग (Making line)

ग प्लास्टर विभाग (Plaster House)

घ. भट्ठी विभाग

ङ. भण्डार विभाग (Store House)

क—ढलाई घोला विभाग—इस विभाग मे फेल्सपार तथा स्फटिक को बारीक पीसा जायगा और फिर पिसी हुई अग्नि-मिट्टी (Fire clay) के साथ पूर्णतया मिश्रित कर दिया जायगा। ढलाई घोला बनाने के लिए मिश्रण यन्त्र मे विद्युद्विश्लेष्य (Electrolyte) भी मिला सकते है।

इस विभाग के लिए मशीने तथा उपकरण—

१—फेल्सपार (Felspar) तथा स्फटिक (Quartz) को $\frac{1}{2}''$ के छोटे-छोटे टुकडो मे तोडने के लिए एक जबड़ा-चूर्णक यन्त्र (Jaw crusher), क्षमता—१–२ टन प्रति घटा। आवश्यक शक्ति १० हा० पा०।

२–४. तीन बडी बाल मिल (Ball Mill)—प्रत्येक एक टन सामान पीसने की क्षमतावाली। शक्ति प्रत्येक को ५–६ हा० पा०।

५. एक शक्तिशाली मिश्रण-यन्त्र (Screw Blunger), आकार ६"×५"। शक्ति ४ हार्स पावर।

६. एक १८ इच व्यास की कम्पमान चलनी, आधी हार्स पावर मोटर से युक्त।

७. ढलाई घोला रखने के लिए एक कुण्ड (Storage Tank) जिसमे लकडी का एक मिश्रक लगा हो। शक्ति ३–४ हा० पा०।

८. अग्नि-मिट्टी (Fire Clay) तथा छर्री (Grog) को पीसने के लिए घूमने-वाले आधार के साथ एक पैन रोलर मिल, जिसमे १।१० इच या २ मि. मी. के आकार के छेदवाली चलनी हो। आवश्यक शक्ति २–३ हार्सपावर।

९. उपर्युक्त मशीनो को चलाने के लिए एक धीरे चलनेवाली ३० हा० पा० की मोटर।

नोट—पहली जबड़ा-चूर्णक (Jaw Crusher) मशीन के बिना भी काम चल सकता है। अन्तिम पैन रोलर मिल (Pan Roller mill) का दोनों कार्यों में उपयोग किया जा सकता है।

यदि लचीले पिण्ड से गठन आवश्यक हो तो एक जलनिष्कासन यन्त्र तथा एक पग-मिल (Pug mill) की भी आवश्यकता होगी।

ख गठन विभाग—जार और कारब्वाय (Carboys) विशेष कर ढलाई द्वारा बनेंगे। छोटी-छोटी वस्तुएँ या तो कुम्हार के चाक द्वारा या जॉली विधि द्वारा बनेंगी।

प्रत्येक बर्तन के लिए यदि पाँच या छ. पौंड औसतन गीला सामान लें तो लगभग दो हजार वस्तुएँ प्रतिदिन पाँच टन सामान से बनेंगी। बड़ी मिट्टी की मोटी वस्तुओं के ढालने में यह आशा की जा सकती है कि प्रतिदिन एक साँचे से २-३ बार ढलाई हो सकेगी। इस प्रकार साँचे के विभाग में केवल ढलाई के लिए एक हजार प्लास्टर के साँचे आवश्यक होंगे। इसके अतिरिक्त ढालने की मेज, सुखाने के ताक, लकड़ी के तख्ते और छँटाई के लिए औजार आदि भी होने चाहिए। वस्तुओं की ढलाई के पश्चात् या तो खुले ताक में सुखाना होगा या फिर तापित घर सुखाने के लिए चाहिए। तब उनकी छँटाई एवं परिष्करण अलग-अलग कारीगरों द्वारा किया जाना चाहिए। इसके बाद वे पकने के लिए भेज दिये जाते हैं।

ग. प्लास्टर विभाग—इस विभाग में जिप्सम (Gypsum) को तोड़कर प्लास्टर बनाने के लिए उसकी पिसाई और छनाई की जाती है। यह चूर्ण लोहे की कड़ाही में ताप पर पकाकर प्लास्टर बना लिया जाता है और उसी प्लास्टर से आवश्यक साँचे बना लिये जाते हैं।

मशीनें तथा दूसरी सहायक सामग्रियाँ—

१—जिप्सम (Gypsum) को तोड़ने और पीसने के लिए एक पैन मिल, ३ हा० पा०।

२—जिप्सम को छानने के लिए एक बेलनाकार लकड़ी की चलनी, शक्ति २ हा. पा.।

३—उपर्युक्त मशीनों के लिए एक पाँच हार्सपावर की मोटर।

४—प्लास्टर को पकाने के लिए एक कड़ाही।

५—तीन घूमनेवाले चाक (Rotating discs) जो प्लास्टर के साँचे बनाने के लिए मेज पर लगे हों।

प्लास्टर से साँचे बनाने के लिए इनके अतिरिक्त दूसरे औजार और सामग्रियाँ भी होनी चाहिए।

(घ) भट्ठी विभाग—जार तथा कारब्वाय आदि पर नमक-प्रलेप लगाया जाता है। इसके लिए सैगर (Sagger) की कोई आवश्यकता नहीं होती। भट्ठी में पकाया जानेवाला बर्तन अग्निमिट्टी और ईंटों से निर्मित विशेष प्रकार की टेक (Setters) पर रखा जाता है। इस कारण पहले ही यह कहना कठिन है कि भट्ठी में कितने स्थान की आवश्यकता होगी। परन्तु अनुभव से यह कहा जा सकता है कि १४ फुट व्यास की ४ भट्ठियाँ पर्याप्त हैं।

३—पोर्सिलेन उद्योगशाला की परिकल्पना

यह प्रतिदिन ४ टन माल का उत्पादन करेगी।

साधनों की योजना प्रतिदिन के निम्नलिखित उत्पादन पर निर्भर करती है—

१ या तो ३०० फन्नी (Cleats), कट आउट आदि के साथ लगभग ३५०० विद्युत्रोधक (Insulator), या—

२ ८०० चाय के बर्तन (Teapots), और चीनी के बर्तन (Sugar pots) के साथ लगभग ५००० कप और तश्तरियाँ, या—

३ आधे-आधे दोनों।

इसके लिए निम्नलिखित विभाग होंगे, जिनका विस्तारपूर्वक वर्णन आगे दिया गया है—

(क) ढलाई घोल विभाग, (ख) गठन विभाग, (ग) सैगर विभाग, (घ) प्लास्टर विभाग, (ङ) भट्ठी विभाग, (च) भण्डार विभाग तथा कार्यालय।

इसके अतिरिक्त साँचे बनाने का स्थान, छाँटने का स्थान तथा परिष्कृत सामान को एकत्र रखने का स्थान होना चाहिए।

विभागों का प्रबन्ध इस प्रकार होना चाहिए कि वे कच्चा माल रखने के स्थान से लेकर ढलाई घोल विभाग तक लगातार बने हों और तब गठन विभाग तक और वहाँ से भट्ठी तक। प्लास्टर विभाग ढलाई घोल विभाग से दूर रहना चाहिए। सैगर विभाग भट्ठी के पास रह सकता है। ढलाई घोल विभाग तथा भट्ठी के अतिरिक्त दूसरे विभाग एक शिफ्ट में कार्य करेंगे। ढलाई घोल विभाग में पिसाई करनेवाली बालमिल २२ घंटे कार्य करेंगी। २ घंटे के लिए बिजली की मोटरें बन्द रहेंगी।

ढलाई धोला विभाग का कुटाई करनेवाला भाग एक पाली में कार्य करेगा और शेष दो पाली में। जब भट्ठी जल रही हो तो भट्ठी विभाग २४ घंटे कार्य करेगा।

(क) ढलाई धोला विभाग—इस विभाग को खाती (Bins) से पत्थर के टुकड़े भेजे जायेंगे और यह उनका बारीक चूर्ण बनाकर मिश्रण-पिण्ड, चिक्कन-प्रलेप (Glaze) तथा रंग तैयार करेगा। लगभग चार टन उत्पादन प्रतिदिन होगा जिसके लिए निम्नलिखित यंत्र आवश्यक होंगे—

१—एक जबड़ा चूर्णक (Jaw Crusher) जिसका जा (Jaw) या जबड़ा ६"× १२" होगा। क्षमता—३।४ इंच आकार का १ टन सामान प्रति घंटा। शक्ति—९-१० हा० पा०।

२—पैन मिल जिसका बेलन और आधार ग्रेनाइट (Granite) का बना हो और जिसके बेलन का आकार २४"×९" और आधार का आकार ४ फुट× १२ इंच होगा।

पिसाई क्षमता—२० मेश आकार का १।३ टन सामान प्रति घण्टा। शक्ति—५ हा० पा०।

ये दोनों मशीनें एक ही कमरे (Shed) में १८ हा० पा० की मोटर के साथ लगायी जानी चाहिए और कमरे का आकार १०'×२०' होना चाहिए।

३—अन्दर साइलेक्स (Silex) पत्थरों के अस्तरवाली पाँच बालमिल जिनका आकार ४।। × ४ फुट होना चाहिए।

क्षमता—आधा टन पत्थर का चूर्ण। शक्ति प्रत्येक की ६ हा० पा०।

इन सिलेण्डरों में से चार तो मिश्रण-पिण्ड को बनायेंगे और एक चिक्कन-प्रलेप को पीसेगा। मिश्रण-पिण्ड के लिए ५० प्रतिशत पत्थर चूर्ण के आधार पर, ये चार सिलेण्डर चार टन सामान प्रतिदिन तैयार करेंगे। पाँचवाँ १।२ टन चिक्कन-प्रलेप लगभग ६० घंटे में तैयार करेगा, क्योंकि ग्लेज (Glaze) के लिए अधिक पिसाई की आवश्यकता है।

४. आवश्यकतानुसार रंग व पिसाई करने के लिए घूमनेवाले फ्रेम के साथ भांडयंत्र (Pot Mill) की आवश्यकता होगी। प्रत्येक भांड की क्षमता लगभग ४ सेर होगी और शक्ति २ हा० पा० होगी। एक फ्रेम में कई भांड होते हैं।

५. एक मिश्रण-यंत्र, आधार का आकार ७ फुट, व्यास ५ फुट, ऊँचाई और पत्ते का व्यास २०'', जो एक टन मिश्रण-पिण्ड को एक बार मिलायेगा। शक्ति ५ हा० पा०।

६. एक १८'' के व्यास की कम्पनशील चलनी जो मिश्रण-यंत्र से उस मिश्रित सामान को छानने के लिए होगी। शक्ति ½२ हा० पा०।

७. एक बिजली का चुम्बक, मिश्रण में लोह को दूर करने के लिए, जो ११०-२२० वोल्ट डी सी में कार्य कर सके।

८. मिट्टी के घोल को रखने के लिए मिश्रक के साथ एक कुण्ड की आवश्यकता होगी, जिसका आकार १०'×६'×६' होगा। शक्ति ५ हा० पा०।

९. घाला में जल-निष्कासन के लिए एक दबाव पंप, जिसकी क्षमता ३५० गैलन प्रति घंटा और शक्ति ४ हा० पा० हो।

१०. ४० थालियों से युक्त (Chamber) एक जल-निष्कासक प्रेस, जिसमें हर थाली का व्यास ३२'' होना चाहिए।

क्षमता ३.४ टन प्रेस किया हुआ सामान १½ घंटे में।

११. या एक वायु-निष्कासक ममेन पग-यंत्र, जिसकी क्षमता एक टन प्रति घंटा और शक्ति ५ हा० पा० हो।

या एक निष्कासित प्रेस रहित एक पग-यंत्र, जिसकी शक्ति ५ हा० पा० हो।

१२. एक लम्बी धुरी तथा पट्टा सहित २० हा० पा० की मोटर जो उपर्युक्त मशीनों को चलाने के लिए लगेगी।

(ख) गठन विभाग—इन्सुलेटर, कप, प्लेटें और दूसरी गोल आकृति की वस्तुएँ जिग्गर और जाली द्वारा बनायी जायेंगी। फ्यूज, कट-आउट, सीलिंग रोज (Ceiling Rose) इत्यादि को हाथ के प्रेस द्वारा और चाय के बर्तन, दूध के बर्तन और दूसरी विशेष आकृति की वस्तुओं को ढलाई द्वारा बनाया जायगा।

गठन विभाग के लिए निम्नलिखित वस्तुओं की आवश्यकता होगी—

(१) १२ जिग्गर और जाली, शक्ति १।२ हा० पा० प्रत्येक की।

(२) १० कुम्हार के चाक, शक्ति १।२ हा० पा० प्रत्येक की।

(३) ८ हस्त-चालित पेच काटने के यंत्र।

(४) एक सूखे टुकड़ों को चूर्ण करनेवाली मशीन, शक्ति २ हा० पा०।

(५) सूखे चूर्ण को पानी और तेल से मिलाने के लिए एक मिश्रण यन्त्र। इस चूर्ण मिश्रण से फन्नी, कट-आउट आदि वस्तुएँ तैयार होगी।

(६) एक १५ हा० पा० की मोटर उपर्युक्त मशीन को चलाने के लिए।

(७) अलग-अलग डाइज (Dies) के साथ फन्नी और कट आउट आदि को दबाने के लिए एक हस्तचालित दबाव यन्त्र।

(८) साँचे, औजार और काम करने के लिए मेज आदि।

(ग) सँगर विभाग—तश्तरियाँ तथा अन्य समान कार्यों के लिए सँगर (Gigger and Jolley) द्वारा बनाये जायँगे और अन्य कार्यों के लिए सँगर को हाथ से बनाया जायगा। निम्नलिखित मशीनें इस विभाग में आवश्यक होंगी—

(१) अग्निमिट्टी और छर्री को तोड़ने के लिए एक जोड़ा रोलर यंत्र। क्षमता–½ टन प्रति घंटा, आवश्यक शक्ति ५ हा० पा०।

(२) अग्निमिट्टी को पानी और छर्री के साथ मिश्रित करने के लिए एक नाँद, क्षमता —½ टन प्र० घंटा, शक्ति २ हा० पा०।

(३) सँगर पिण्ड को गूंधने के लिए एक पग मिल (Pug Mill)।

क्षमता—१ टन प्र० घंटा। शक्ति—५ हा० पा०।

(४) एक शक्तिशाली जिगर जाली, शक्ति ½ हा० पा०।

(५) दूसरी सहायक मशीनों के साथ १० हा० पा० की एक मोटर।

(घ) प्लास्टर विभाग—इस विभाग में जिप्सम को पैन मिल द्वारा पीसा जायगा, जो कि बाद मे ९० नम्बर की चलनी द्वारा छाना जायगा और लोहे की कड़ाही मे मंद आँच पर पकाकर प्लास्टर बनाया जायगा। इस प्लास्टर से सब प्रकार के साँचे बनाये जायँगे।

निम्नलिखित मशीनें और साधन आवश्यक हैं—

१. एक पैन मिल जिसमें या तो लोहे के या पत्थर के बेलन हो। आकार २४"×९" और आधार ४"×१२", क्षमता–५ मन पीसा हुआ जिप्सम प्रति घंटा, शक्ति ५ हा० पा०।

२ एक छोटी भट्ठी जो कि पिसे हुए जिप्सम को पकाने के लिए काम आयेगी।

३ ५ हा० पा० की बिजली की एक मोटर।

४ एक लोहे की कडाही या तसला जो कि जिप्सम के चूर्ण को पकाने के काम में आयेगा।

५ चलनी तथा दूसरी सहायक सामग्रियाँ।

(इ) **भट्ठी विभाग**—एक उद्योगशाला में भिन्न-भिन्न प्रकार के वर्तन पकाने के लिए कितने स्थान की आवश्यकता होगी, इसका ठीक अनुमान लगाना सम्भव नहीं है। परन्तु एक प्रकार के बर्तनो के आधार पर गणना करने से प्राय स्थान का ठीक अनुमान किया जा सकता है। अत इन्सुलेटर के उत्पादन के आधार पर हम गणना करेंगे।

एक उद्योगशाला नित्य ३५०० इन्सुलेटरो का निर्माण करती है, और उतनी ही छोटी वस्तुओ का, जो कि सामान्यत बडे इन्सुलेटर के बीच के रिक्त स्थान में रखी जाती है। यदि महीने मे पचीस दिन काम हो तो प्रत्येक मास ३५००×२५ इन्सुलेटरो का निर्माण होगा।

सामान्यत नौ इन्सुलेटर एक सैगर में रखे जाते हैं–(१३"×१३"×८") बाह्याकार। अत प्रत्येक मास ९७२३ सैगर के स्थान की आवश्यकता होगी।

एक जोडा निम्नगति (Down draught) भट्ठी से एक सप्ताह मे केवल तीन बार पोरसिलेन पकाया आ सकता है। भट्ठी की मरम्मत के लिए कुछ समय छोडकर प्रत्येक मास में १० बार भट्ठी में पोरसिलेन द्रव्य पकाया जा सकता है। अत. प्रत्येक बार पकाने के लिए ९७२३ सैगर का स्थान होना चाहिए।

मान लीजिए कि एक सैगर का घनफल ·८ घनफुट है तो हमें सैगर के स्थान के लिए प्रत्येक भट्ठी में ·८×९७२३ या ७७७८·४ घनफुट स्थान की आवश्यकता होगी। १५ प्रतिशत स्थान गरम गैस के बहाव के लिए छोडने पर हर एक भट्ठी में हमें कुल ८९४५·२ घनफुट स्थान की आवश्यकता होगी।

पोरसिलेन के बर्तनो को पकाने के लिए उच्चताप भट्ठी को १० फुट से अधिक ऊँचा नही होना चाहिए, क्योकि भट्ठी की ऊँचाई अधिक होने से नीचे का सैगर दबकर नष्ट हो जाता है। अत भट्ठी की ऊँचाई १० फुट रखने से उसकी सतह का क्षेत्रफल ८९४·५२ वर्गफुट होगा।

इसलिए दो जोडा भट्ठियाँ, जिनमें प्रत्येक भट्ठी के फर्श का क्षेत्रफल २२३·७ वर्गफुट और ऊँचाई १० फुट हो, पर्याप्त होगी। परन्तु जब विभिन्न प्रकार के बर्तनो के लिए

धीमी आँच की आवश्यकता होगी तो इसके लिए इसी प्रकार की दूसरी भट्ठी भी आवश्यक है। उपर्युक्त तीन भट्ठियों के अतिरिक्त स्फटिक को तापित करने के लिए एक मफल (Muffle) भट्ठी और एक खुली छत की भट्ठी की भी आवश्यकता होगी। प्राय: हर विभाग में आवश्यक कारीगरों की गणना नीचे दी गयी है।

(क) **ढलाई घोल विभाग**—तुड़ाई वाला भाग जिसमें जा (Jaw) चूर्णक हो और एक पैन मिल हो तथा प्रतिदिन एक पाली में काम हो तो दो आदमियों की आवश्यकता होगी।

(ख) **गठन विभाग**—प्रतिदिन आठ घंटे कार्य करते हुए दो सहायकों के साथ एक कारीगर औसतन ५०० इन्सुलेटर बना सकता है। इसलिए ३५०० इन्सुलेटर बनाने के लिए १४ सहायक तथा ७ कारीगर चाहिए। इनके अतिरिक्त दो आदमी फन्नी (Cleats) आदि बनाने के लिए चाहिए। जब इन्सुलेटर बन और सूख जायँगे तब वे परिष्करण के लिए भेज दिये जायँगे, जिसके लिए चाक पर काम करनेवाले पाँच सहायकों के साथ दस कारीगर पर्याप्त होंगे।

एक कारीगर एक सहायक के साथ प्रतिदिन आठ घंटा कार्य करते हुए १००० कप तथा ८०० तश्तरियाँ बना सकता है। अत: १६ कारीगर १६ सहायकों के साथ आवश्यक हैं। इसके अतिरिक्त ३ आदमी कप के हत्थों को दबाने तथा जोड़ने के लिए चाहिए। आठ घंटों में चाय के बर्तन आदि की साँचे में चार ढलाइयाँ हो सकती हैं। इनके लिए चार आदमी आवश्यक हैं। जब सब सामान ठीक से सूख जायें और उनका परिष्करण हो जाय तब वे प्रलेपित (Glaze) किये जायँगे। अधिकतर इस हलके कार्य के लिए स्त्रियों को लगाया जाता है। आठ घंटों में वे लगभग १००० टुकड़ों को प्रलेपित कर देती हैं। इसलिए यदि केवल इन्सुलेटर ही बनाये जायँ तो पाँच कारीगर होने चाहिए और यदि कप और तश्तरियाँ बनायी जायँ तो १५ कारीगर चाहिए।

नोट—गठन तथा परिष्करण आदि सामान्यत: ठेके के आधार पर होते हैं।

(ग) **सैगर विभाग**—इस विभाग में प्रतिदिन के सैगर निर्माण के लिए आठ से दस तक आदमियों की आवश्यकता होगी, क्योंकि विभिन्न आकार के बहुसंख्यक सैगरों की आवश्यकता होती है। अन्यथा भट्ठी की आग के काम में देर होगी जिसका परिणाम हानिकर है।

(घ) **प्लास्टर विभाग**—लगभग दो मन प्लास्टर प्रतिदिन चाहिए, जिससे

केवल एक कारीगर पीसने, छानने तथा उसे जलाने का काम सफलतापूर्वक कर सके। तीन या चार चतुर कारीगर साँचे आदि बनाने के लिए चाहिए।

(ङ) **भट्ठी विभाग**—तीन सहायकों के साथ एक फायरमैन हर पाली में आग की देखभाल के लिए होगा। उतारने तथा चढ़ाने के लिए तीन आदमी और अधिक चाहिए।

नोट—इसके अतिरिक्त एक सामान्य विभाग होना चाहिए, जिसका काम कच्चा माल लाना तथा अनुपयुक्त माल और राख आदि को हटाना होगा।

कच्चा माल

१	चीनी मिट्टी	५५ टन	प्रतिमास
२	फेल्सपार	३० ,,	,,
३.	स्फटिक	३० ,,	,,
४	मर्मर	१ ,,	,,
५	अग्निमिट्टी	२५ ,,	,,
६	जिप्सम	३ ,,	,,
७	कोयला	४५ ,,	,,

प्रलेपन के लिए रसायन (Chemicals) तथा रंजक, उत्पादन की हुई रंगीन और सजी हुई वस्तुओं पर निर्भर करते हैं।

नोट (Remark)—यह परिकल्पना ५०००० लाइन इन्सुलेटर प्रतिमास उत्पादन के लिए की गयी है। इसके साथ कई हजार छोटे-छोटे विद्युत् के सामान, जैसे स्विच, कट आउट्स (Cut outs), सीलिंग रोज (Ceiling Roses) और क्लिट्स आदि हैं तथा लगभग इतने ही खोखले बर्तन, जैसे प्याला, तश्तरी, चाय के बर्तन तथा अस्पताल के लिए आवश्यक सामान आदि सम्मिलित हैं। यह सब सामान मशीन से तथा साँचों से ढालकर, दोनों प्रकार से बनाया जाता है।

भविष्य में बढ़ाने के लिए चार या पाँच एकड़ भूमि रेलवे स्टेशन के समीप पर्याप्त और ठीक होगी। स्थान का चुनाव बड़े नगर के पास होना चाहिए जिससे उत्पादन सामग्री के लिए बाजार की सुविधा और उद्योगशाला को चलाने के लिए विद्युत् प्राप्त हो सके।

मशीनों का चुनाव

नये उद्योग के लिए यन्त्र और मशीनों का चुनाव करने में व्यापारिक ज्ञान और अनेक प्रकार की मशीनो के विषय में जानकारी आवश्यक है, जिससे किसी यन्त्र के स्वीकार या अस्वीकार करते समय, जो ढाँचे में अनुपयुक्त और अधिक मूल्यवाला है, विवेक का उपयोग हो सके। अत्यन्त मूल्यवान् मशीन चाहे ढाँचे मे ठीक ही हो किसी विशेष कार्य के लिए ठीक नही भी हो सकती, जब कि सस्ती मशीन भी कुछ विशेष कार्य के लिए अधिक खर्चवाली हो सकती है। नयी मशीनों का चुनाव करने में पहला कदम—किस प्रकार का मजदूर मिलेगा और स्थानीय बाजार की दशा क्या है; इन बातो का ध्यान रखते हुए तथा औद्योगिक वस्तुओं का कितनी संख्या में निर्माण किया जायगा—इस दिशा में ही रखना पडता है।

जब स्वत चालित टाली यन्त्र (Tile press) यूरोपीय देशो में पहली बार बाजार में आये तो मजदूर न मिलने के कारण उनका चलना कठिन हो गया था। आधुनिक स्वत प्याले बनाने की मशीन के चलाने में यदि स्थानीय मजदूरो की दशा का पहले ही अध्ययन न किया जाय तो इसी प्रकार की कठिनाई भारत में भी उपस्थित हो सकती है। किसी प्रकार के स्वत. चालित यन्त्र या मशीन को मँगाने के लिए आर्डर देने से पहले मजदूर-समस्या का अध्ययन आवश्यक है।

उद्योग में किसी विशेष भाग के लिए क्रय की गयी मशीनें दूसरे विभागो की मशीनों के मेल के योग्य होनी चाहिए। उदाहरणार्थ—यदि मिट्टी की वस्तुओं का निर्माण करनेवाले विभाग में पीसनेवाले विभाग से जितनी मिट्टी प्राप्त होती है उससे अधिक की खपत है तो निर्माण विभाग मे कुछ मशीनो को खाली रहना पड़ेगा या पीसनेवाले भाग को अधिक काम करना होगा। इन दोनों ही अवस्थाओं में व्यापारिक हानि है, यह ध्यान भट्ठी की क्षमता और कच्चे बर्तनों के निर्माण के बीच बहुत सावधानी से रखना आवश्यक है।

मशीनों के चलाने के लिए शक्ति-सचालन विधि की समस्या पर विशेष ध्यान देना चाहिए, क्योकि इसी विषय पर मशीनो का ठीक प्रकार से चलना, उन्हे ठीक रखने का व्यय एवं शक्ति का व्यय निर्भर करता है। प्राचीन पद्धति में सचालन-शक्ति उद्योगशालाओं और मशीनो में धुरी और पट्टो (Shafting belts) के द्वारा केन्द्र से भेजी जाती थी। इसमें घर्षण द्वारा शक्ति को बहुत क्षति होती थी। अच्छा

उपाय एक मोटर या तेल के इंजन से हर विभाग में मशीनों को सामूहिक रूप में चलाने का है। इस पद्धति में लम्बे धुरी पट्टों के कारण जो घर्षण द्वारा शक्ति की क्षति होती थी वह कम हो जाती है। लेकिन सबसे उत्तम उपाय एक-एक मशीन अलग विद्युत् मोटर से चलाने का है जो बिना धुरी पट्टे के कहीं पर भी स्थापित की जा सकती है। यद्यपि इस प्रणाली में केवल एक मोटर के चलाने में अधिक व्यय होता है, लेकिन जब आवश्यकता हो तो एक उद्योगशाला में एक मोटर चलाना बड़ी मितव्ययिता की बात है।

जब धुरी पट्टे आवश्यक हों तो वे सरलता से चलनेवाली बाल बियरिंग (Ball bearing) के ऊपर कुछ अन्तर से रहने चाहिए और हर दो बियरिंग (Bearing) का अन्तर धुरी (Shafting) के व्यास के तीस गुने से अधिक नहीं होना चाहिए। घिरनियाँ (Pulleys) कीलों के द्वारा धुरी से जुड़ी होनी चाहिए।

पट्टे की अनावश्यक फिसलन रोकने के लिए बड़ी घिरनियाँ(Pulleys) छोटी घिरनियों से व्यास में छ गुने से अधिक नहीं होनी चाहिए, अन्यथा पट्टा छोटी घिरनियों को ठीक से नहीं पकड़ सकेगा।

घिरनियों के लिए पट्टे की निर्माण-वस्तु के चुनाव का ध्यान रखना आवश्यक है। इस देश में चमड़े या ऊँट के बालों का पट्टा प्रचलित है। चमड़े के पट्टों के लिए सतत ध्यान, उनकी सफाई तथा तेल की आवश्यकता होती है। इँग्लैण्ड में मिट्टी की उद्योगशाला में अधिकतर रस्सी के पट्टे काम में आते हैं। जब कि दो घिरनियों के बीच का अन्तर बहुत अधिक या बहुत कम हो तो रस्सी के पट्टे बहुत उपयुक्त होते हैं। अधिक लचीलापन, मजबूती और कम फैलना उन्हें विशेषतया कोनों में चलाने के योग्य बनाता है। और यदि वे सूखे हों रखे जायँ तो उनकी और अधिक ध्यान देने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

श्रम-नियन्त्रण

औद्योगिक सफलता का आधार उत्पादन है और अच्छे उत्पादन से ही एक उद्योगशाला की प्रसिद्धि होती है। स्थायी तथा बहुत समय तक रहनेवाले व्यापार के लिए एक ही प्रकार का ऊँची श्रेणी का उत्पादन व्यापारिक संसार में नाम पैदा करता है और यह नाम ही व्यापार के स्थायी बनाने का प्रमुख कारण है। उद्योग में अधिक लाभ ही अन्तिम या सबसे अधिक विचारणीय विषय नहीं है। स्थायी व्यापार

स्वेच्छा से काम करनेवाले बुद्धिमान् और संतोषी मजदूरों के द्वारा बनता है जो कि बहुत महत्वशाली होते हैं, और अन्त में ऐसे ही उद्योग राष्ट्र के लिए अधिक लाभदायक सिद्ध होते हैं।

उद्योगशाला के तीन आवश्यक अंग हैं—पूँजी, व्यवस्था और श्रमिक। पूँजी व्यापार में यन्त्र आदि और कच्चा माल खरीदने के लिए तथा कार्य का व्यय वहन करने के लिए आवश्यक है। व्यवस्था का सम्बन्ध पूँजी द्वारा यन्त्र खरीदने और उन्हें लगाने के व्यय से तथा उत्पादन के लिए श्रमिकों और व्यापार के संगठन से है।

श्रमिक कच्चे माल से मशीनों के द्वारा परिष्कृत नयी वस्तुओं का निर्माण करता है। व्यापार के सफल और शान्तिपूर्वक चलने के लिए इन तीनों भागों में सहयोग और समझौते की भावना होनी चाहिए।

श्रमिकों और व्यवस्थापकों के समझौते में सबसे बड़ी कठिनाई सामाजिक स्तर (Status) के प्रश्न पर है। आधुनिक औद्योगिक विकास में चालकों को मशीनों के समान ही समझा जाता है। औसत कारीगर का व्यवस्था में कोई भी हाथ या महत्त्व नहीं है, इसलिए व्यापार की सफलता में इसके अतिरिक्त कि व्यापार बिलकुल बन्द नहीं होना चाहिए, उसकी कोई हित-भावना नहीं है।

इसी प्रकार की कठिनाई उपार्जित धन के विभाजन में उत्पन्न होती है। श्रमिक यह अनुभव करता है कि उसके श्रम को एक सामग्री (Commodity) समझा जाता है जिसके बाजार भाव का स्तर, इस बात का विचार किये बिना ही कि रहन-सहन का स्तर कैसा हो, या जीवन-निर्वाह ठीक से हो सके, निम्न कर देना मालिकों के हाथ में है।

ऐसा इस देश में प्राय होता है। श्रमिक का यह सोचना उचित ही है कि उसे उसके श्रम का जो फल मिलता है वह उसके अधिकार या सहयोग के साथ काम करने से उपार्जित धन का निष्पक्ष विभाजन नहीं है, वरन् एक अशदान है जो मालिक स्वेच्छा से निर्धारित कर देते हैं, और जो उसके जीवन-निर्वाह का एकमात्र साधन है। उसे यह भी ख्याल रहता है कि मालिक इच्छा होते ही उसे काम से हटा सकता है।

मस्तिष्क की इस भावना का परिणाम मजदूरों में इस प्रवृत्ति का उत्पन्न होना है कि वे काम में बिना हित-भावना या प्रसन्नता का अनुभव किये नित्य प्रति मशीन की

तरह लगे रहते हैं। दूसरे, श्रमिक यह विश्वास करते हैं कि यदि हर आदमी अपनी पूरी शक्ति के साथ उत्पादन करे तो मालिक जो निम्नतम काम का स्तर निर्धारित करेगा वह सबसे बुद्धिमान् और शीघ्र काम करनेवाले कारीगर के काम के ऊपर आधारित होगा, जिसके परिणाम-स्वरूप या तो औसत कारीगर को अधिक काम करना पड़ेगा या उसकी जीविका खतरे में पड़ जायगी। इस दृष्टि से सबसे योग्य कारीगर भी अपनी शक्ति का पूरा उपयोग करने से हिचकता है क्योंकि उसके लिए ऐसा करना एक बलिदान होगा और उसमें अधिक सम्यावालों की हानि होगी। पूरी शक्ति के ऊपर नियन्त्रण की यह प्रवृत्ति उत्पादन के पूर्ण विकास में बाधक है।

मौलिक असुविधा आज के श्रमिकों की यह है कि उद्योग की निर्धारित दशाओं ने मालिकों के हाथ में उत्पादन और निर्माण के सम्बन्ध में ही नहीं, वरन् श्रमिकों के ऊपर भी पूर्ण अधिकार दे दिये हैं। वे अनुभव करते हैं कि कुछ थोड़े हाथों में ही पूँजी के एकत्र हो जाने से श्रमिक और पूँजीपति से निष्पक्ष समझौता होना असम्भव हो गया है। कुछ मालिकों की यह प्रवृत्ति होती है कि वे अपने श्रमिकों को औद्योगिक चक्र का एक भाग समझते हैं, मानो उनका कोई भी मानवीय अधिकार नहीं है। इस प्रवृत्ति को श्रमिक बहुत बुरा मानते हैं, और इससे भी घृणित प्रवृत्ति यह है कि श्रमिकों के लिए नियम बनाये जाते तथा उन्हें काम के लिए प्रेरणा दी जाती है, परन्तु उनसे कभी पूछा नहीं जाता कि उनकी जीविका सम्बन्धी कठिनाइयाँ क्या हैं।

व्यवस्था का यह विशेष आन्तरिक नियम होना चाहिए कि मालिक और श्रमिकों में पूर्ण सहयोग हो तथा उनके साथ बराबर का व्यवहार किया जाय। एक राष्ट्र के शासन की तरह एक उद्योगशाला कभी भी केवल नियमों द्वारा शासित होकर सफल नहीं हो सकती। नियमों को मित्रता, सभ्यता और आपसी भावना के द्वारा मधुर बनाना चाहिए। शासन आत्मविश्वास के बिना, सभ्यता विनीत भाव के बिना, और सौजन्य परिचय के बिना मनुष्यों को अपनापन अनुभव नहीं करने देता। श्रमिकों का मन जीतने के कार्य में जब तक ये गुण न हों तब तक कुछ विशेष सफलता नहीं होती और जब तक श्रमिकों का हृदय जीता नहीं जाता, व्यापार में उन्नति असम्भव है। यही इसकी कुंजी है।

श्रमिकों और व्यवस्थापकों के बीच सीधा सम्बन्ध कारीगर-प्रधान द्वारा होता है। कारीगर-प्रधान (Foreman) की नियुक्ति श्रमिकों के एक समुदाय पर की

जाती है। उसका कार्य उन तक आवश्यक निर्देशन पहुँचाना तथा उनका पालन कराना है। कुछ ऐसे कारीगर-प्रधान होते हैं जिनमें स्वाभाविक प्रशासन की योग्यता होती है और वे श्रमिकों की कठिनाइयों का ध्यान रखते हुए अपने कर्तव्य का पालन करते हैं। परन्तु कभी-कभी इस कार्य के लिए गलत आदमी का चुनाव हो जाता है और फिर भी उसकी अयोग्यता व्यवस्था के सामने प्रकट नहीं होती। मिट्टी के काम के लिए व्यक्तिगत मजदूर का काम परीक्षण करनेवाले कारीगर-प्रधान को काफ़ी धैर्यवान् होना चाहिए, क्योंकि बहुत से दोष मिट्टी के बर्तन बनाते समय लुप्त हो जाते हैं, परन्तु पकने के पश्चात्, जब उन दोषों के उपचार का कोई साधन नहीं रह जाता, प्रकट हो जाते हैं। वह व्यक्ति जो इस उत्तरदायित्व का अनुभव नहीं करता और अपने नीचे काम करनेवाले मजदूरों की ऊपरी देखभाल से ही सन्तुष्ट हो जाता है, भले ही वह ईमानदार और मेहनती हो, पर मिट्टी की उद्योगशाला के लिए बहुत काम का नहीं है।

कारीगर-प्रधान के उत्तरदायित्व अगणित हैं। वह श्रमिकों के ठीक चुनाव के लिए, ठीक समय पर उनकी उपस्थिति तथा कम व्यय के साथ बर्तनों के उत्पादन के लिए उत्तरदायी है। वह परिशिक्षण में रहनेवाले अभ्यर्थियों की देखभाल करता है तथा प्रत्येक को काम देता है जिससे कोई श्रमिक या मशीन खाली न रहे। वह अनुपस्थितों के स्थान में आदमी भेजता तथा यन्त्रों को ठीक दशा में रखता है।

इतना अधिक उत्तरदायित्व और कार्य कारीगर-प्रधान के मस्तिष्क पर अधिक बोझ डालते हैं जिसके कारण उसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है और श्रमिकों में बुरी भावना और असन्तोष फैल जाता है। जिस प्रकार एक कप्तान अपने दल को प्रेरित करता है, उसी प्रकार कारीगर-प्रधान को अपने श्रमिकों को प्रेरित करना चाहिए, जिससे उनकी अधिक से अधिक वफादारी और सहयोग प्राप्त हो सके।

सबसे अधिक ध्यान इस बात पर देना चाहिए कि मैनेजर लगातार कारीगर-प्रधान से मिलकर आन्तरिक विभाग के काम पर सलाह-मशविरा करे। इस अभ्यास से अधिक लाभ हो सकता है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि कारीगर-प्रधान व्यवस्था की ओर से श्रमिक से व्यवहार करने में प्रतिनिधित्व करता है और यदि कारीगर-प्रधान असन्तुष्ट हो जाय तो इस अव्यवस्था का प्रभाव जाने या अनजाने श्रमिकों के ऊपर भी पड़ेगा जो बड़ा हानिकारक सिद्ध होगा।

श्रमिकों का चुनाव और उनमें काम का बँटवारा व्यवस्था के विशेष भाग हैं।

यह प्रणाली दूसरी प्रणाली की अपेक्षा इसलिए अच्छी है कि इसमें श्रमिक सावधानी से ठीक काम करते हैं तथा काम करने में शीघ्रता नहीं करते। इसमें कारीगर-प्रधान द्वारा समीप से देखभाल की भी आवश्यकता नहीं है।

काम में कर्मचारियों की रुचि पैदा करने तथा उत्पादन बढ़ाने के लिए ही "काम के आधार पर" (Piece work) की प्रणाली प्रारम्भ की गयी है। इस प्रणाली में पारिश्रमिक काम के ऊपर निर्भर करता है न कि समय पर, जैसा कि पहले कहा गया है। इसमें शीघ्र काम करनेवाले धीरे काम करनेवालों से अधिक कमा लेते हैं।

श्रमिकों का एक संगठन इस प्रणाली का विशेष विरोध करता है और उसका यह विरोध अनुचित भी नहीं है। प्राय यह पाया गया है कि मालिकों ने पीस-वर्क (Piece work) का मूल्य इतना कम कर दिया है कि साधारण उद्योगों के द्वारा श्रमिक अधिक कमा लेते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि माल असमय में तथा कम आता है, मशीन रुक या टूट जाती है, जिसका उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ता है जिसके कारण श्रमिकों को कम पैसा मिलता है।

दूसरे इस प्रणाली में विशेष देखभाल की आवश्यकता पड़ती है, अथवा केवल उत्पादन की मात्रा बढ़ाने के लिए कारीगरों से दोषयुक्त काम की सम्भावना रहती है। यह प्रवृत्ति विशेषत मिट्टी के काम में अधिक हानिकारक है जिससे बर्तन में अनेक दोष पकने के पहले नहीं, पकने के बाद ही स्पष्ट होते हैं, और तब उनका उपचार असम्भव हो जाता है। यदि यह प्रणाली मिट्टी के काम में प्रयुक्त करनी हो तो यह अनुपयुक्त न होगा कि पारिश्रमिक कच्चे बर्तनों के आधार पर निर्धारित करने के बजाय पक्के बर्तनों के आधार पर निर्धारित करें, परन्तु हर दशा में गणना पूर्णतया सूखने पर करनी चाहिए।

पारिश्रमिक देने की कोई भी प्रणाली अपनायी जाय व्यवस्था-अधिकारियों को यह देखना उचित है कि श्रमिकों के मन और शरीर पर जब तक वे उद्योगशाला में रहें बुरा प्रभाव न पड़े। अनिच्छित लम्बे कार्य में घंटों तक हलका काम उतनी ही भारी प्रकार की अयोग्यता तथा थकान उत्पन्न करता है जितनी कि थोड़े घंटों में भारी काम। यह अयोग्यता विशेष कर उस समय अधिक स्पष्ट हो जाती है जब हलका काम मस्तिष्क-सम्बन्धी हो, जैसे कि एक छोटी मशीन को चलाना और देखभाल करना जो कि लगातार एक ही-जैसा काम करती है और सारे दिन शारीरिक भारी कार्य करना, जैसे पूरे दिन भारी बोझ उठाना।

जिस व्यक्ति के ऊपर अधिक भार पड़ता है वह स्वभावत: ही चिड़चिड़ा और अनावश्यक रूप से भावुक हो जाता है। वह अपनी कल्पना शक्ति से चिपक जाता है और अपने दुखों को बढ़ा लेता है तथा उसका दूसरों के साथ जो सम्बन्ध है उसके स्वरूप को खो देता है। उद्योगशाला के अनुशासन में ऐसे मनुष्यों पर नियन्त्रण करना कठिन है।

श्रमिकों में थकान कम करने के लिए काम के घंटे तथा आराम का समय भिन्न-भिन्न उद्योगों में काम के प्रकार के अनुसार निर्धारित होना चाहिए। मजदूरों में काम करने की उदासीनता को उनके काम में रुचि पैदा करके या उनके काम में सामयिक बदली करके कम किया जा सकता है। इसके लिए अपने असली काम के अतिरिक्त हर मजदूर को दूसरे कार्य में भी निपुण होना चाहिए।

पञ्चदश अध्याय

कारखाने की व्यवस्था तथा प्रबन्ध

किसी कारखाने की सफलता प्रारम्भिक व्यवस्था पर अधिक निर्भर करती है। कोई कारखाना प्रारम्भ करने से पूर्व जिन बातों पर विचार करना होता है, वे इस प्रकार है—(क) पूंजी (ख) उचित स्थान (ग) श्रमिकों की सरल सुलभता (घ) कच्चे मालों की प्राप्ति तथा (ङ) निर्मित माल के विक्रय की सुविधाएँ।

पूंजी—किसी कारखाने की पूँजी तीन भागों में बाँटी जा सकती है—(१) व्ययित पूँजी, (२) गतिशील पूँजी एवं (३) स्थायी पूँजी। प्रथम प्रकार की पूंजी कारखाने के लिए जमीन खरीदने, इमारत बनवाने, यन्त्रों को खरीदने तथा लगवाने, औजार, कुर्सी मेज आदि आवश्यक सामान खरीदने के लिए व्यय की जाती है। इसी कारण इसे व्ययित पूँजी कहते हैं। यह पूँजी एक बार व्यय करने के पश्चात् इस पर कोई लाभ नहीं होता, वरन् प्रति वर्ष इसका मूल्य भी कम होता जाता है। इमारत, यन्त्रों, औजारों आदि का एक निश्चित कार्यकाल या जीवनकाल होता है, जिसके पश्चात् वे व्यर्थ हो जाते हैं। इस प्रकार इन विषयों पर व्यय की गयी पूँजी कुछ समय पश्चात् नष्ट हो जाती है। अतः इस पूँजी को खर्च करते समय काफी सोचने-विचारने की आवश्यकता होती है। कारखाना प्रारम्भ करते समय स्थान का परिमाण, इमारत के स्थान तथा उसके प्रकार पर बड़ी सावधानी के साथ विचार करना चाहिए। यन्त्रों के उचित प्रकार और उनकी उचित मात्रा का चुनाव इस क्षेत्र के उन विशेषज्ञों पर छोड़ देना चाहिए, जो इस दिशा में काफी समय तक अनुभव प्राप्त कर चुके हों। गत वर्षों में कई बार ऐसा देखा गया है कि कई कारखाने केवल इसी कारण असफल हो गये कि उनके यन्त्रों आदि का चुनाव उचित नहीं था। आजकल तो यन्त्रों तथा औजारों का चुनाव और भी सावधानी से करना चाहिए, कारण निर्मित वस्तुओं में स्पर्धा अधिक तीव्र हो गयी है। उचित संचालकों के अभाव में भारतवर्ष के सबसे

या साप्ताहिक दिया जानेवाला मजदूरों का वेतन सदैव तैयार रहे। यदि उचित समय पर मजदूरों तथा कर्मचारियों का वेतन नहीं दिया जाता तो वे असन्तुष्ट रहते हैं, जिससे कारखाने का उत्पादन कम हो जाता है।

तृतीय प्रकार की पूँजी किसी बैंक में ऐसे नियमों के आधार पर जमा कर दी जाती है कि आवश्यकता पड़ने पर उसका उपयोग किया जा सके। इस रुपये पर ब्याज बहुत कम मिलता है। यह देखा गया है कि कभी-कभी कारखाने या व्यापार में काफी अज्ञात मुसीबतें, जिनकी पूर्व-कल्पना नहीं की जा सकती, आ जाती हैं। ऐसी अवस्था में यदि उचित मात्रा में स्थायी पूँजी न हो, तो इसके कारण कारखाना बन्द कर देना पड़ता है। इन सभी घातक मुसीबतों की, जिनसे कारखाना बन्द हो जाता है, पूर्व-कल्पना करना कठिन ही नहीं, अपितु असम्भव है। इस प्रकार का एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है। बिहार प्रदेश के एक बड़े शहर में गंगा के किनारे पुराने नील के कारखानों के स्थान पर एक चमड़ा कमाने का कारखाना खोला गया था। कुछ वर्षों तक कारखाना अच्छी प्रकार चलता रहा। एक बार वर्षा ऋतु में गंगा में ऐसी बाढ़ आयी, जैसी वहाँ के निवासियों ने कभी नहीं देखी थी। बाढ़ के कारण तीन दिन तक कारखाना तथा इसकी सारी भूमि पानी में डूबी रही। बाढ़ से जमी मिट्टी निकलवाने में, कारखाने की दीवारें तथा फर्श सुखाने में और यन्त्रों को साफ करने में लगभग १५ दिन लग गये। तब कहीं जाकर कारखाना कार्य करने योग्य हुआ। उधर भण्डार की तथा कारखाने में लगी हुई कच्ची एवं पकायी हुई सब खालें नष्ट हो गयीं। कारखाने के पास गतिशील या स्थायी पूँजी अधिक न थी, अतः कुछ समय पश्चात् कारखाना बन्द कर देना पड़ा। स्थायी पूँजी का परिमाण निर्मित वस्तुओं के प्रकार पर निर्भर करता है। परन्तु मृत्पात्र कारखाने में कम-से-कम तीन मास के लिए आवश्यक गतिशील पूँजी के बराबर धन स्थायी पूँजी में होना चाहिए। चूँकि स्थायी पूँजी से कारखाने की पुरानी इमारतों, यन्त्रों, औजारों को बदलने में तथा कारखाने के विस्तार में भी सहायता मिलती है, अत. प्रतिवर्ष के लाभ के कुछ अंश द्वारा स्थायी पूँजी बढ़ाते रहना चाहिए। इमारतें, यन्त्र, औजार आदि पुराने होने पर उनकी कार्योपयोगिता कम होती जाती है। अतः उनकी मरम्मत करना एवं उन्हें बदलना भी आवश्यक होता है। इस कारण वार्षिक लाभ में से कुछ धन इमारतों, यन्त्रों, औज़ारों आदि के वार्षिक ह्रास के लिए रखा जाता है। इसे मूल्य-ह्रास-पूँजी कहते हैं। इस पूँजी के होने पर आवश्यकता के समय प्रबन्धकों को कोई

पूर्व ही छोड़ दिया जाता है जिससे वे शीघ्र घर जाकर अपने पति तथा बच्चों को भोजन बना सकें। किसी एक स्थान पर कारखाने के लिए आवश्यक सभी सुविधाएँ मिलना सदैव सम्भव नहीं होता। परन्तु यदि किसी स्थान के रेलमार्ग से जुड़े होने के कारण कच्चे माल मँगाने में और निर्मित माल विक्रय स्थानों को ले जाने में अत्यधिक व्यय न पड़ता हो और वहाँ सस्ती ज़मीन तथा सस्ते मज़दूरों की सुविधा प्राप्त हो, तो उस स्थान पर कारखाना, विशेष कर हल्के मृत्पात्रों का कारखाना खोला जा सकता है। भारी वस्तुओं का निर्माण करनेवाले कारखाने का स्थान चुनते समय, कच्चे माल लाने और निर्मित माल को विक्री-केन्द्रों तक पहुँचाने के व्यय पर भी ध्यान देना चाहिए। जब अलीगढ़ रेल मार्ग पर एक छोटे से स्थान बहजोई में 'यू० पी० ग्लास वर्क्स' नामक काँच का कारखाना खोला गया था, तो वह स्थान चुनने का कारण केवल सस्ते मज़दूर और सस्ती ज़मीन तथा निर्मित काँच वस्तुओं के पैकिंग के लिए पुआल की प्राप्यता के अतिरिक्त कुछ न था। चूँकि काँच की वस्तुएँ आसानी से टूट जाती हैं, अतः भेजते समय पैकिंग के लिए काफी पुआल की आवश्यकता पड़ती है। चूँकि यह स्थान रेल मार्ग पर था, अतः प्रबन्धकों को दूर के स्थानों से चूना, रेत, सोडा एवं कोयला आदि मँगाने में तथा निर्मित वस्तुएँ विक्रय-केन्द्रों तक पहुँचाने में परेशानी नहीं पड़ी। यह कारखाना इधर कुछ वर्षों में काफी विस्तृत हो गया है।

नया मृत्पात्र कारखाना प्रारम्भ करनेवाले व्यवस्थापक को कारखाने के लिए स्थान चुनने में निम्नलिखित बातों पर विचार करना चाहिए--

(क) ज़मीन की भौगोलिक अवस्थाएँ।

(ख) फालतू पानी निकालने की सुविधा तथा नदी का मुहाना जिसमें कारखाने का गन्दा पानी बहाया जा सके।

(ग) मृत्पात्र कारखाने के लिए उचित, पर्याप्त पानी की प्राप्यता।

(घ) रेलमार्ग तथा सड़क मार्ग की समीपता।

(ङ) विद्युत् शक्ति की प्राप्यता।

(च) स्थान पर कोई स्थानीय या आधिकारिक प्रतिबन्ध।

कारखाने की ज़मीन भारी यन्त्रों तथा इमारतों के निर्माण के लिए उचित ठोस होनी चाहिए, अन्यथा सुदृढ़ नींव के लिए व्यय बढ़ जाता है। यदि ज़मीन के नीचे तथा आसपास खानें हों, तो ज़मीन धँस जाने की सम्भावना पर भी विचार

कर लेना चाहिए। खानों से खनिज निकाल लेने के कारण जमीन खोखली हो जाती है। बिहार के झरिया नामक स्थान में एक मोज़े-बनियान का बड़ा कारखाना कुछ ही वर्ष पूर्व जमीन धँस जाने से नष्ट हो गया था, कारण इस कारखाने के नीचे कोयले की पुरानी खान थी, जिससे कोयला निकाल लिया गया था। कारखाने का मालिक स्वयं भी अपनी सम्पत्ति-सहित उसी दुर्घटना में मर गया।

व्यवस्थापक प्रायः यह प्रश्न किया करते हैं कि कारखाना निर्मित वस्तुओं के विक्रय-केन्द्रों के पास खोला जाय या कच्चे मालों के प्राप्ति-स्थानों के पास। इस गम्भीर प्रश्न का उत्तर निम्नलिखित बातों पर विचार करके निश्चित किया जाना चाहिए।

एक टन श्वेत मृत्पात्र पकाने के लिए लगभग डेढ़ टन कोयले की आवश्यकता पड़ती है। पकाने से पात्रों का भार लगभग ८ प्रतिशत कम हो जाता है। वस्तुएं बनाते समय कच्चे पदार्थों की हानि २ प्रतिशत तथा पकाते समय पात्र टूटने से हानि १० प्रतिशत के लगभग होनी चाहिए, इस प्रकार सम्पूर्ण हानि २० प्रतिशत हो जाती है। इस गणना के अनुसार हमें एक टन कच्चे मिश्रणपिण्ड तथा १.५ टन कोयले से केवल ०·८० टन निर्मित वस्तुएँ मिलेंगी। मृद्-वस्तुओं को बाहर भेजते समय लगभग २५ प्रतिशत भार पैकिंग तथा पेटी के कारण बढ़ जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक टन निर्मित वस्तुओं को कारखाने से भेजने के लिए कोयले सहित २.५ टन कच्चा सामान कारखाने में मँगाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त सैगर बनाने के लिए अग्निमिट्टी, और साँचे बनाने के लिए जिप्सम मँगाना पड़ेगा। यदि कारखाने के पास विद्युत् शक्ति प्राप्य नहीं है, तो यन्त्र चलाने के लिए कोयला या तेल ईंधन भी मँगाना पड़ेगा, जिससे शक्ति उत्पन्न करके यन्त्र चलाये जा सकें। कच्चे पदार्थों तथा कोयले की अपेक्षा निर्मित वस्तुओं का रेलभाड़ा अधिक होता है। कच्चा माल और कोयला आदि पूरे डब्बे भरके मँगाये जा सकते हैं जिनमें भाड़े की दर भी कम हो जाती है। इन सारी बातों पर कारखाने के मासिक उत्पादन के आधार पर बड़ी सावधानी से विचार करना चाहिए। यह देखा गया है कि कलकत्ता, बम्बई, देहली-जैसे बड़े शहरों की बाहरी सीमा पर स्थित कारखाने निर्मित वस्तुओं को बड़ी सरलता से बिना पैकिंग व्यय के ही विक्रय केन्द्रों तक पहुँचा देते हैं। बाजार पास होने से उन्हें ले जाने का भाड़ा भी कम लगता है। परन्तु जो कारखाने कोयला, मिट्टियाँ

जैसे मुख्य कच्चे मालों के प्राप्ति-स्थानो के पास स्थित होने हैं, वे इन शहरी कारखानों से लाभजनक होने हैं।

मजदूर समस्या—किसी कारखाने की सफलता उचित शिक्षा-प्राप्त मजदूरो पर निर्भर करती है। अत किसी व्यवस्थापक के लिए कारखाने के मजदूर प्राप्त करने की सुविधा सबमें अधिक महत्त्वपूर्ण समस्या होती है। किसी स्थान पर मृद्-उद्योग कारखाना प्रारम्भ करने से पूर्व व्यवस्थापक को देख लेना चाहिए कि वहाँ उचित प्रकार के मजदूर मिल सकेंगे या नही? हिन्दुओ में मृद्-वस्तुएँ बनाने का काम करनेवाले व्यक्ति एक विशेष जाति के होते हैं, जिन्हें कुम्हार कहते हैं। कभी-कभी दूसरी जातिवालों को इस काम के लिए राज़ी करना बडा कठिन होता है। पजाब के गुजरात ज़िले-जैसे कुछ स्थानो में मृद्-वस्तुओं को बनाने का काम मुख्य रूप से मुसलमान करते हैं तथा हिन्दू इस काम के करने में बड़ा संकोच करते हैं। कुछ स्थानो, जैसे उत्तर प्रदेश में चुनार, खुर्जा आदि में हिन्दू, मुसलमान दोनो इस कार्य को करते हैं। अत ऐसे स्थानो पर दोनो वर्गों से मजदूर मिल सकते हैं। मृत्पात्र कारखाने में ऐसे मजदूरों को रखना लाभकर होता है, जिनका पैतृक व्यवसाय मृद्-वस्तु निर्माण ही रहा हो, कारण इन लोगो में इस कार्य के लिए एक जन्मजात प्रेरणा होती है। अत. ऐसे मज़दूर साधारण मज़दूर की अपेक्षा मृद्-उद्योग के किसी नये कौशल को अधिक सरलता से सीख लेंगे। किसी कुशल कारीगर को उसके ज़िले के बाहर बुलाना कठिन होता है, जब तक कि उसे अच्छे वेतन का लालच न दिया जाय। इँगलैण्ड में उत्तरी स्टैफर्डशायर ज़िले के अतिरिक्त दूसरे ज़िलो के कारखानो में अच्छे वेतन के लालच बिना कुशल कारीगरों को पाना प्राय कठिन होता है।

जो कुछ भी हो,कारखाने के आस-पास के स्थानो में पर्याप्त सख्या में ऐसे मनुष्य प्राप्य होने चाहिए, जो मृत्पात्र कारखाने में काम करने के इच्छुक हो। उन्हें आगे चलकर विशेष कार्यों के लिए शिक्षित किया जा सकता है। जब कोई नया कारखाना प्रारम्भ किया जाता है तो प्राय कुछ सख्या में कुशल व्यक्तियो को दूसरे स्थानो से बुलाना आवश्यक होता है। परन्तु जब तक कारखाने के समीपस्थ स्थानो में योग्य, कुशल तथा कार्य-इच्छुक व्यक्ति नही मिलेंगे तब तक कारखाना सुचारुरूपेण तथा लाभजनक स्थिति में नही चल सकता। जब कलकत्ता में मृद्-वस्तुओं का प्रथम कारखाना खुला था, तो जापान से कुशल व्यक्ति स्थानीय कारीगरो को नये कौशल

की शिक्षा देने के लिए बुलाने की आवश्यकता पड़ी थी। दूसरे जिलो के कारीगरो की अपेक्षा स्थानीय कारीगर बिना सोचे-समझे हड़ताल में सम्मिलित नही होते। अत मजदूरो का चुनाव करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सारे मजदूर एक ही वर्ग के न हो जायें।

आवश्यक सख्या में स्थानीय दक्ष तथा उत्साही कारीगर मिलने पर कई स्थानो पर छोटे-छोटे कारखाने खोले जा सकते है, कारण छोटे कारखानो में कच्चा माल मँगाने और निर्मित माल विक्रय-केन्द्रो तक ले जाने मे अधिक व्यय नही पडता। उत्तर प्रदेश के फीरोजाबाद तथा शिकोहाबाद नामक छोटे शहरो में भारतवर्ष में सर्वाधिक काँच की चूड़ियाँ तथा अन्य वस्तुएँ बनती हैं। इन शहरो के सभी कारखाने घरेलू उद्योग-धन्धो के स्तर पर छोटे-छोटे हैं। इन सभी कारखानो मे केवल रेत को छोड शेष सभी कच्चे माल प्रदेश के बाहर से मँगाये जाते हैं और निर्मित माल का भी काफी भाग विक्रय हेतु प्रदेश के बाहर भेजा जाता है। इस प्रकार के छोटे कारखानो की सफलता विशेष कर कारीगर पर निर्भर करती है। उत्तर प्रदेश के चुनार, खुर्जा, निज़ामाबाद स्थानों में मिट्टी की वस्तुओं के छोटे-छोटे कारखाने घरेलू उद्योग-धन्धो के रूप में चलाये जाते हैं, कारण इन सभी स्थानो पर कुशल कारीगर पाये जाते हैं और कार्योपयोगी मिट्टियाँ भी आस-पास ही मिल जाती हैं।

कच्चे माल की प्राप्ति—कारखाने के लिए कच्चे माल की प्राप्ति पर व्यवस्थापक को काफी विवेक बुद्धि से सोचना पडता है। कच्चे माल केवल पर्याप्त मात्रा में ही प्राप्य न हो, वरन् सस्ते मूल्य पर भी मिलने चाहिए। इसके लिए वाहन-सुविधा, मजदूरों की सुविधा, शक्ति और निर्मित वस्तुओं को बेचने के लिए बाजार आदि की सुविधा का ध्यान रखते हुए कारखाना कच्चे माल के प्राप्तिस्थान के यथासम्भव पास ही बनाया जाय। सिलीकेट उद्योग के कारखाने के लिए कोयला मुख्य पदार्थ है, जिस पर सर्वप्रथम विचार करना चाहिए। दूसरे मुख्य पदार्थ मे, मृत्पात्र कारखाने में केओलिन, काँच कारखाने में रेत, सीमेण्ट कारखाने मे चूना पत्थर और काँच कलई कारखाने में रसद्रव्य तथा लौह चद्दरें आती हैं। यदि कार्योपयोगी मिट्टी के प्राप्तिस्थान अधिक दूर न हों तो भारत में मृत्पात्र कारखाना खोलने के लिए कोयले की खानों के पास के स्थान सर्वोचित हैं। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि अधिक राख तथा गन्धकवाले कोयले मृत्पात्र कारखानों के लिए अनुपयोगी होते हैं। राख में भट्ठी

को दुर्गल परत शीघ्र ही नष्ट हो जाती है और गन्धक से प्रलेप तथा पात्रों का रग खराब हो जाता है।

दक्षिण भारत में मृत्पात्र कारखाने मिट्टियों के प्राप्ति-स्थानों के पास हैं, कारण वहाँ कोयला बगाल, बिहार या मध्यप्रदेश जैसे सुदूर स्थानों से मँगाया जाता है। उत्तर भारत में अधिकाश बडे कारखानो की अपनी स्वय की मिट्टी की खानें हैं, कारण इस भाग में कोई ऐसी बड़ी मिट्टी की खान नही है, जिस पर कि कोई कारखाना निर्भर रह सके। इस कठिनाई को दूर करने के लिए भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में मृद्-उद्योग के कच्चे मालों के भण्डार-केन्द्र खोले जायें, जो साधारण उचित मूल्य पर निश्चित गुण के कच्चे माल कारखाने को दे सकें। इँग्लैण्ड, जर्मनी तथा अन्य यूरोपीय देशों में, मृत्पात्र-निर्माण-कर्त्ता को कच्चे माल जुटाने की अधिक चिन्ता नही करनी पडती और वह अपना सारा ध्यान व्यापार की दूसरी बातो पर केन्द्रित कर सकता है। दुर्भाग्य से भारतवर्ष में अब भी इसमे उलटी ही दशा है। यहाँ कारखाने के प्रबन्धक को स्वय वस्तु-निर्माण की अपेक्षा कच्चे सामान जुटाने की ओर अधिक चिन्ता रहती है। इँग्लैण्ड के स्टोक-आन-ट्रेण्ट में मृद्-उद्योगियो को कच्चा माल देनेवाली सस्था इतनी विकसित हो चुकी है कि अधिकांश कारखानो को चकमक तथा कानिश पत्थर आदि पीसने भी नही पडते, क्योकि उस केन्द्रीय संस्था से ये पदार्थ आवश्यकतानुसार सूक्ष्मता में पिसे पिसाये ही प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार की सस्था से कारखाने बडी सरलतापूर्वक चलते हैं और प्रत्येक कारखाने को पीसने की भारी मशीनें भी नही खरीदनी पडतीं। यदि इस प्रकार पिसे हुए तैयार कच्चे मिश्रण-पिण्ड, कच्चे प्रलेप तथा कच्चे रजक देनेवाली सस्था की स्थापना हो जाय, तो भारतवर्ष में बहुत से छोटे-छोटे कारखाने खुल सकते हैं।

विक्रय बाजार—भारतवर्ष-जैसे देश में टूटनेवाली वस्तुओं, जैसे काँच-वस्तुओं, मृद्-वस्तुओं आदि के कारखाने विक्रय-केन्द्रों से अधिक दूरी पर नही होने चाहिए, कारण यहाँ सामान ढोने के मार्ग व साधन न तो सुव्यवस्थित ही हैं और न उनका पूरा आधुनिकीकरण ही हुआ है। ऐसा करने से ग्राहको के पास तक निर्मित वस्तुओं को पहुँचाने में पैकिंग आदि व्यय अधिक नही होंगे। काँच, पोरसिलेन-वस्तुएँ तथा खोखले पात्र टूटनेवाले होते हैं और कितनी ही सावधानी से उनकी पैकिंग क्यों न की जाय, दूर जाने में उनमें से कुछ वस्तुएँ टूट ही जाती हैं। किसी बडे

कारखाने में इन टूटनेवाली वस्तुओं के पैकिंग का खर्च ऐसा खर्च है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। सामान भेजने का व्यय अधिक हो जाने के कारण निर्मित वस्तुएं अधिक दूर नहीं भेजी जातीं। अहमदाबाद और बम्बई के कारखानों के मालिकों का अफ्रीका से आयात किया हुआ कोयला बिहार बंगाल के कोयले से सस्ता पड़ता है, कारण ये स्थान दूर हैं तथा रेल का किराया समुद्री जहाज के किराये से अधिक पड़ता है। किसी भी स्थान पर स्थित कारखाना अपने निर्मित सामान को बिक्री हेतु सीमित क्षेत्र में ही भेज सकता है। उसके आगे भेजने का किराया इतना अधिक हो जाता है कि देश के ही दूसरे कारखानों की वस्तुओं तथा विदेशों से आयात की गयी वस्तुओं से मूल्य की स्पर्धा करना कठिन हो जाता है। बन्दरगाह के नगरों के पास, विदेशों से आयात की गयी वस्तुओं से अधिक स्पर्धा करनी होती है। बन्दरगाह से जितनी दूर जाते जायेंगे, यह स्पर्धा उतनी ही कम होती जाती है। इसी कारण छोटे-छोटे कारखाने बन्दरगाहों से दूर स्थित होने चाहिए तथा ऐसे स्थान पर होने चाहिए कि निर्मित वस्तुएँ स्थानीय माँग द्वारा ही खप जायँ।

कारखाने का हिसाब—किसी कारखाने को सरलतापूर्वक और लाभ सहित चलाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक विषय के और प्रत्येक विभाग के हिसाब का पूर्ण विवरण रखा जाय। यह विवरण वास्तव में वह लेख प्रमाण हैं जो कारखाने की सभी बातों का पूरा हिसाब रखते हैं। यह किसी बाहरी छानबीन के लिए नहीं रखे जाते, वरन् इनको कारखाने की अपनी ही प्रबन्ध-सुविधा हेतु रखा जाना चाहिए। कच्चे सामान, शक्ति, ईंधन व्यय, प्रत्येक प्रकार का सामान खरीदने तथा कारखाने की प्रगति-सम्बन्धी हिसाब रखना परमावश्यक है। मजदूरों की पाली के कार्य का तथा प्रत्येक मजदूर के कार्य का अलग-अलग हिसाब रखने से प्रबन्ध में सुविधा रहती है और मजदूरों में अधिक कार्य करने का उत्साह पैदा होता है। रूस में समय-समय पर सर्वोत्तम मजदूर की कार्य-प्रगति को एक ऐसे सूचनापट्ट पर लगा दिया जाता है, जिसने सब मजदूर उसे देख सकें। सूचनापट्ट पर केवल उसी कारखाने के सर्वोत्तम मजदूर की प्रगति नहीं रहती, वरन् अन्य कारखानों के सर्वोत्तम मजदूरों की प्रगति भी उस पर रहती है। इससे दूसरे मजदूरों को कार्य करने का प्रोत्साहन मिलता है और सभी मजदूर यथासम्भव अधिक कार्य करने का प्रयत्न करते हैं।

कारखाने के प्रबन्धक के सामने मुख्य समस्या यह रहती है कि वह ऐसे तरीके खोजे जिनसे वर्तमान समय में दो वस्तुएँ बनने के स्थान पर तीन वस्तुएँ बनने लगें।

इस समस्या के सुलझाने के लिए उसके पास केवल अपने कारखाने के ही नहीं, वरन् दूसरे देशी तथा विदेशी कारखानों के पुराने हिसाब होने चाहिए। नीचे विभिन्न भारतीय मृद्-उद्योग के मुख्य कारखानों के उत्पादन आँकड़े दिये जाते हैं।

कलकत्ता में एक बच्चे की सहायता से एक मनुष्य जिग्गर यन्त्र पर प्रतिदिन ८००–९०० चाय के प्याले बनाता है।

ग्वालियर में जिग्गर यन्त्र की सहायता से अकेला मनुष्य ६००–७०० प्याले प्रतिदिन बनाता है।

कोचीन में जिग्गर और जॉली यन्त्र की सहायता से दो बच्चे साथ-साथ काम करके २५०–३०० छोटे कटोरे या प्याले प्रतिदिन बनाते हैं।

सिंघभूमि (बिहार) के छोटे से मृद्वस्तु कारखाने में दो मनुष्य साथ-साथ काम करके प्रतिदिन ८० से ९० तक ८''×२'' आकार के सैगर हस्त-दबाव विधि से बनाते हैं। वही दो आदमी १५''×२'' आकार के ३५ से ४० तक सैगर प्रतिदिन बनाते हैं, यदि कार्य करने का समय ८ घंटा प्रतिदिन हो।

मैसूर के पोरसिलेन कारखाने में एक जिग्गर कारीगर लगभग ७००–८०० चाय के प्याले या तश्तरियाँ प्रतिदिन (८ घंटा काम करके) बनाता है। भोजन तश्तरियाँ बनाने के लिए तीन जिग्गर कारीगर और दो सफाई करनेवाले कारीगर मिलकर ५०० भोजन तश्तरियाँ प्रतिदिन बनाते हैं। इसी कारखाने के ढलाई विभाग में चाय के प्याले और तश्तरियों के ६० साँचों को एक कारीगर सँभाल लेता है और ४ या ५ ढलाव प्रतिदिन निकाल लेता है। इस प्रकार प्रत्येक कारीगर प्रत्येक दिन ३०० चाय प्याले बना लेता है, परन्तु तश्तरियाँ केवल २०० ही ढाल पाता है। दो कारीगर साथ-साथ काम करके १६''×६'' आकार के २५–३० सैगर तथा छोटे आकार के ४० सैगर प्रतिदिन हाथ से बना लेते हैं।

इन आँकड़ों से स्पष्ट पता चलता है कि भारतीय कारीगर हाथ से और यन्त्रों की सहायता से एक ही प्रकार की वस्तुएँ भिन्न-भिन्न संख्याओं में बनाते हैं। इस ज्ञान से प्रबन्धक को उन साधनों के ढूँढ़ निकालने में बड़ी सहायता मिलेगी, जिनसे उत्पादन बढ़कर अन्य देशों के उन्नत कारखानों के बराबर हो जायगा।

उदाहरण-स्वरूप हम मृद्-वस्तुओं को भट्ठियों में पकाने का नियमित हिसाब रखने के लाभ पर विचार करते हैं। ईंधन-व्यय न्यूनतम करने के लिए हमें प्रत्येक भट्ठी

प्रारम्भिक पकाव भट्ठी का उत्पादन

चटके हुए पात्र	..	३ ९	३ २	३ ४
टेढ़े पात्र	..	२ ५	४·९	४ ४
छोटी-छोटी परत टूटे हुए पात्र	..	१ ७	१·४	२ ५
धब्बेदार पात्र	.	१ ६	४ ३	३ ०
धूम लेपित पात्र	..	० २	०·१	—
दोषपूर्ण बनावटवाले पात्र	..	० ५	२ ७	१·३
प्रतिशत हानि		१० ४	१६·६	१४ ६

इन आँकड़ो को ध्यान से देखने पर एक ही भट्ठी में अधिक हानि के कारण का स्पष्ट पता चल जायगा।

नीचे जर्मनी के एक पोरसिलेन कारखाने के ऐसे ही आँकड़े दिये गये है।

उच्च तनाव विद्युत्-रोधक

दोषहीन	..	१०४	२७३
धब्बेदार	..	२	८
चटके हुए	..	१२	९८
टूटे हुए	..	१३	८
योग		१३१	३८७

इन आँकड़ो से दूसरी भट्ठी मे चटकने के कारण अत्यधिक हानि का पता लग जाता है, जिसको आगे के पकावो में सुधारा जा सकता है।

न्यून तनाव विद्युत्-रोधक

दोषहीन	..	२४००	३०००
धब्बेदार	..	६५	३०
चटके हुए	..	१९०	४७
टूटे हुए	..	८	१५
योग		२६६३	३०९२

इन आँकड़ो से केवल उन दोषो का ही पता नही चलता, जो भट्ठी में आ सकते हैं,

वरन् एक कारखाने में बनी विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की हानि का भी पता चल जाता है जिससे उनका मूल्य-निर्धारण करने समय बड़ी सहायता मिलती है। इस प्रकार का अनुमान निम्नलिखित आँकड़ो से लगाया जा सकता है, जो इंग्लैण्ड के मृत्पात्र कारखाने से लिये गये हैं।

प्रारम्भिक पकाव में विभिन्न प्रकार के पात्रों की औसत हानि

प्याले	७ प्रतिशत
तश्तरी	१३ ,,
हाथ धोने का छोटा पात्र	१७ ,,
प्यालियाँ	१६ ,,
चायपात्र	१० ,
५″ प्लेट	१० ,,
८″ प्लेट	१० ,,
जग	८ ,,

कारखाने के विभिन्न हिसाब रखने का अधिकतम लाभ कारखाने के आन्तरिक प्रबन्ध तथा व्यापारिक उद्देश्यों में होता है। जब कारखाने के प्रत्येक मज़दूर के उत्पादन का हिसाब, प्रत्येक विभाग के उत्पादन का हिसाब तथा पूरे कारखाने के उत्पादन का हिसाब रखा जाता है, तो विभिन्न विभागों में इस ज्ञान का आदान-प्रदान हो सकता है।

कारीगरों के व्यक्तिगत उत्पादन हिसाब से वस्तु का उत्पादन-मूल्य तथा कारीगर की मज़दूरी निर्धारित करने में सीधी सहायता मिलती है। अधिकारियों द्वारा किसी मजदूर की असाधारण कार्य-क्षमता व योग्यता की सराहना करने से कारीगरों को व्यक्तिगत ही नहीं, वरन् पूरे कारीगर-समूह को उत्साह मिलता है और कारीगरों की कार्य-क्षमता का स्तर बढ़ जाता है। लगभग ३० वर्ष पूर्व भारतीय मृद्-वस्तु कारीगर जिगर जॉली यन्त्र पर केवल ३००-४०० चाय प्याले ही बनाते थे, परन्तु अब विदेशों के कारखानों के कारीगरों की कार्य-क्षमता के ज्ञान तथा कारीगरों की उचित शिक्षा के परिणाम-स्वरूप उनकी कार्य-क्षमता इतनी बढ़ गयी है कि वे साधारणत. ९०० प्याले तथा उनमें से कुछ तो १,२०० प्याले तक बना लेते हैं। यदि कारीगरों की व्यक्तिगत कार्य-क्षमता का हिसाब सरलता से प्राप्त हो सकता हो, तो नये स्थान पर

नियुक्त किये जानेवाले कारीगर की मजदूरी या वस्तु का उत्पादन-मूल्य पूर्व ही निर्धारित किया जा सकता है।

विभागीय हिसाब से कुल मजदूरों की संख्या तथा प्रतिदिन अनुपस्थित रहनेवाले कारीगरों की संख्या का पता चलता है। इसके अतिरिक्त विभागीय कार्य-सम्बन्धी दूसरी सूचनाएँ मिलती हैं, जैसे शक्तिव्यय, निरीक्षण-व्यय, सभी यन्त्रों, औजारों, करणों आदि की जाँच तथा उनका सफाई-व्यय, विभाग का सम्पूर्ण उत्पादन एवं विभागीय उत्पादन, विभाग के अधिकतम अपेक्षित उत्पादन का कौन-सा भाग है आदि। इन आँकड़ों से प्रबन्धकों को किसी वस्तु के वास्तविक उत्पादन-मूल्य और ऊपरी व्यय (Overhead-charges) के अनुपात का पता चल जाता है। ये आँकड़े वर्तमान उत्पादन और भूतकाल के उत्पादन की तुलना करने में भी सहायक होते हैं।

यदि वास्तविक उत्पादन-मूल्य (Prime cost) और प्रबन्ध-व्यय सम्बन्धी मूल्य अर्थात् ऊपरी व्यय (Oncost) के बीच प्रत्येक मास या पखवारे के पश्चात् रेखाचित्र खींचा जाय तो किसी समय की विभाग की दक्षता इस रेखाचित्र से स्पष्ट देखी जा सकती है। इन आँकड़ों का उचित उपयोग करने के लिए यह ज्ञान होना आवश्यक है कि ये आँकड़े प्राप्त कैसे किये जाते हैं। विभागीय आँकड़े प्राप्त करने की उचित विधि के चुनाव का उत्तरदायित्व कारखाने के प्रबन्धक पर होना चाहिए।

पूरे कारखाने के उत्पादन का हिसाब विभागीय प्रगति का मापदण्ड होता है। पूरे कारखाने के उत्पादन का हिसाब प्राय बेचे जानेवाले उत्पादन से लगाया जाता है। परन्तु कभी-कभी वह विभिन्न विभागों के उत्पादन के आधार पर भी बनाया जाता है। पूरे कारखाने के हिसाब में निर्माण से सीधा सम्बन्ध रखनेवाले तथा कुछ ऐसे व्यय भी, जिनका निर्माण से सीधा सम्बन्ध नहीं है (जैसे दूकान खोलने का व्यय, कार्यालय का व्यय आदि), लगा लेने चाहिए। ये व्यय जो उत्पादन-मूल्य में नहीं आते हैं, ऊपरी व्यय कहलाते हैं। इन्हीं को इंग्लैण्ड में ऑन-कास्ट (Oncost) तथा अमेरिका में एक्सपेंस-बर्डन (Expense Burden) कहते हैं। ये ऊपरी व्यय दो भागों में विभक्त किये जा सकते हैं—(१) उत्पादन पर ऊपरी व्यय, (२) विक्रय पर ऊपरी व्यय।

उत्पादन पर ऊपरी व्यय में वास्तविक उत्पादन-व्यय के अतिरिक्त वे सभी व्यय आ जाते हैं, जो निर्मित वस्तु को कारखाने से बाहर भेजने तक होते हैं, अर्थात् वे व्यय जो वस्तु कारखाने में रहने तक होते हैं। भेजने का खर्च भी इसी में आ जाता है।

प्रबन्धकों को ईंधन-व्यय की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। मूल्य का हिसाब रखने की उचित और नियमित विधि से किसी कारखाने की स्थिति काफी सुधर जाती है, विशेष कर उस समय जब कि देशी तथा विदेशी कारखानों से स्पर्धा चल रही हो।

किसी कारखाने में उत्पादन मूल्य निर्धारित करते समय दो विभिन्न प्रकार के व्यय-विषयों पर विचार किया जाता है। प्रथम प्रकार के व्यय-विषयों में वे व्यय है जो स्थिर नहीं होते, जैसे कच्चे पदार्थो का मूल्य, मजदूरी तथा प्रबन्ध-व्यय आदि। द्वितीय प्रकार के विषयों में वे व्यय-विषय आते हैं जो स्थिर होते हैं, जैसे यन्त्रों व इमारतों का ह्रास-मूल्य, पूंजी पर दिया जानेवाला ब्याज, बीमा की किस्त आदि। इन सभी विषयों को दो निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता है—

(अ) उत्पादन-व्यय—कच्चे पदार्थ,मजदूरी, निरीक्षण, शक्ति-खपत और निर्मित माल में खराब माल निकल जाने के सम्बन्ध में जो व्यय होते हैं वे वास्तविक उत्पादन-मूल्य में आते हैं। इमारत, मेज-कुर्सी आदि कार्यालय की सामग्री, यन्त्रों, करणों तथा भट्ठियों का ह्रासव्यय तथा मरम्मत-व्यय, भण्डार-व्यय तथा माल भेजने सम्बन्धी व्यय, प्रबन्ध तथा व्यवस्था सम्बन्धी व्यय, इमारतों तथा यन्त्रों पर बीमाव्यय और पूँजी पर दिया जानेवाला ब्याज ऊपरी उत्पादन-व्यय में आते हैं।

(आ) ऊपरी विक्रय-व्यय—इस व्यय वर्ग में कार्यालय की व्यवस्था का व्यय, डाइरेक्टरों का वेतन, मुख्य कार्यालय की इमारत तथा सामग्री का ह्रासमूल्य तथा मरम्मत-व्यय, स्टेशनरी, टिकट-तार, बैंक कटौती-व्यय, कानूनी तथा हिसाब-निरीक्षण-शुल्क, विक्रय पर दी जानेवाली कटौती, कहीं आने-जाने का भत्ताव्यय तथा विज्ञापन-व्यय आदि आते हैं।

निर्माण में मजदूरी और कच्चे माल के व्यय का निर्धारण करना कठिन नहीं होता, कारण वह दिये गये वेतन और कच्चे माल के क्रय मूल्य से मालूम पड जाता है। परन्तु यन्त्रों के ह्रासव्यय का पुराने हिसाब से ही पता चल सकता है। इस क्षेत्र में अमेरिका के 'ब्यूरो ऑफ स्टैण्डर्ड्स' द्वारा प्रकाशित मृद्-उद्योग यन्त्रों और करणों के जीवन तथा ह्रास-सम्बन्धी आँकडे काफी सहायक सिद्ध होंगे।

यदि कारखाना प्रतिदिन चलता है तो कारखाने की इमारतों आदि का औसत जीवन-काल २५ वर्ष लिया जाता है, और ह्रासव्यय वार्षिक ४ प्रतिशत के हिसाब से लगाया जाता है। मेज, कुर्सी आदि सामानों का ह्रासव्यय ६$\frac{2}{3}$ प्रतिशत वार्षिक लगाया जाता है।

मृद्-वस्तुओं के भण्डार-व्यय प्राय वस्तु के मूल्य के १० प्रतिशत लगाये जाते हैं। यह व्यय इसलिए इतना अधिक रखा जाता है कि एक तो भण्डार की निर्मित वस्तुओं पर रुपया फँस जाता है, दूसरे भण्डार-गृह का हिसाब रखनेवाले एवं उसके सहायक को वेतन देना पड़ता है, तीसरे भण्डार-गृह में वस्तुओं की टूट-फूट भी होती है। मृद्-उद्योग के मुख्य यन्त्रों तथा करणों का जीवन-काल और उनके ह्रासव्यय का विवरण नीचे दिया जाता है—

नाम यन्त्र	जीवन-काल वर्षों में	ह्रास
चूर्णक	१५	६ २/३ प्रतिशत
बॉल यन्त्र	१५	६ २/३ ,,
मिश्रक यन्त्र	१२	८ १/३ ,,
पग यन्त्र	१४	७ ,,
जल-निष्कासन यन्त्र	१५	६ २/३ ,,
जिगर यन्त्र	१०	१० ,,
मिट्टी घोला पम्प	१०	१० ,,
ईंट बनाने का यन्त्र	१२ १/२	८ ,,
टाली यन्त्र	१७	६ ,,
चलनियाँ	८	१२ १/२ ,,
साँचे	५	२० ,,
भट्ठियाँ	१५	६ २/३ ,,

पैकिङ्ग व्यय प्राय वस्तु के मूल्य का एक प्रतिशत लगाया जाता है। परन्तु जब वस्तु अधिक टूटनेवाली हो और दूर भेजनी हो, तो ५ प्रतिशत तक हो जाता है। अच्छे पैकिङ्ग के लिए सावधानी और निरीक्षण आवश्यक है। उचित पैकिङ्ग के अभाव में रास्ते में सामान नष्ट हो सकता है।

गोदाम पर या उससे बाहर सीमित क्षेत्र में निर्मित माल पहुँचाने का व्यय माल के मूल्य का १ से २ प्रतिशत लगाया जाता है।

विभिन्न मृद्-वस्तुओं के मूल्य-निर्धारण के लिए विभिन्न देशों के कुछ आँकड़े दिये जाते हैं। ये आँकड़े काफी पुराने हैं, जिन्हें लेखक ने स्वयं देश विदेश के इन कारखानों में जाकर शिक्षा प्राप्त करते समय इकट्ठा किया था। परन्तु इससे गणना-विधि में कोई अन्तर नहीं आता।

(१) जर्मनी के एक कारखाने में J, प्रकार के ६″ ऊँचे डबल कटोरेवाले १००० विद्युत् रोधकों की निर्माण-मूल्य-गणना—

इस प्रकार का प्रत्येक रोधक सूखी अवस्था में लगभग एक किलोग्राम भारी होता है। पकाने के लिए उसी मिश्रण-पिण्ड से बने हुए प्रत्येक आधार का भार लगभग ०·१५ किलोग्राम होता है। अत १००० रोधकों को बनाने के लिए आवश्यक मिश्रण-पिण्ड की मात्रा ११५० किलोग्राम होगी।

मिश्रण-पिण्ड का औसत मूल्य ६३ राइस मार्क (R. m) प्रति हजार किलोग्राम मान लेने पर हम देखते हैं कि—

मिश्रण-पिण्ड का मूल्य	७२ ४५	रा० मा०
रोधक बनाने का व्यय	२७·००	,, ,,
प्रलेप और उसमें डुबोने का व्यय	२·३५	,, ,,
पकाने का व्यय	१४० ००	,, ,,
	२४१ ८०	,, ,,
पकाने में हानि (५%)	१२·१०	,, ,,
	२५३ ९०	,, ,,
ऊपरी व्यय, शक्तिव्यय और भण्डार-व्यय (२०%)	५०·८०	,, ,,
पैकिङ्ग और माल पहुँचाने का व्यय (५%)	१२ ७०	,, ,,
कार्यालय तथा अन्य ऊपरी व्यय (३०%)	७६ २०	,, ,,
सम्पूर्ण निर्माण तथा ऊपरी व्यय	३९३ ६०	,, ,,

३० वर्ष पूर्व जब ये आँकड़े लिये गये थे, तो उस समय एक रा० मा० का मान भारतीय १२ आने के बराबर था।

(२) इँग्लैण्ड के श्वेत मृत्पात्र कारखाने में चाय के प्याले, प्याली के १००० जोड़े बनाने की व्यय-गणना—

प्याले और प्याली के प्रत्येक जोड़े का भार लगभग ११ औंस होता है। अत· १००० जोड़ों के लिए ११००० औंस मिश्रण-पिण्ड की आवश्यकता होगी।

इँग्लैण्ड में मिश्रण-पिण्ड का मूल्य ६ २५ पौंड प्रति टन लगाने पर—

मिश्रण-पिण्ड का मूल्य	३९ २८	शि०
१००० जोड़े बनवाने का व्यय	३८००	,,

हैंडिल लगाने और सफाई का व्यय	३० ००	शि०
प्रारम्भिक पकाव व्यय	७५ ००	,,
	१८२ २८	,,
प्रारम्भिक पकाव भट्ठी में हानि (१०%)	१८ २०	,,
प्रलेपन व्यय	५ ५०	,,
प्रलेप पकाव व्यय	८५ ००	,,
	२९१ ००	,,
प्रलेप पकाव भट्ठी में हानि (१५%)	४३ ६०	,,
	३३४ ६०	,,
शक्ति तथा निरीक्षण आदि ऊपरी व्यय (२०%)	६६ ९२	,
कार्यालय आदि का ऊपरी व्यय (३०%)	९० ३८	,,
पैकिङ्ग व सामान पहुँचाने का व्यय (५%)	१६ ७३	,,
सम्पूर्ण निर्माण तथा ऊपरी व्यय	५०१ ६३	,,

इँग्लैण्ड के एक शिलिंग को भारतीय १२ आने के बराबर मानने से इँग्लैण्ड के कारखाने में चाय के प्याले प्याली के १००० जोड़े बनाने में ३८१ रु० ७ आ० व्यय होंगे।

(३) भारतीय कारखाने में अर्द्ध पोरसिलेन प्रकार के चाय के प्याले, प्याली के १००० जोड़े की निर्माण-मूल्य-गणना—

भारत में मिश्रण-पिण्ड का मूल्य ५५ रु० प्रति टन और १००० जोड़ों का भार ११००० औंस लेने पर हम देखते हैं कि—

	रु०	आ०
मिश्रण-पिण्ड का मूल्य	१६	१४
१००० जोड़े बनवाने का व्यय	२	८
हैंडिल लगाने और सफाई का व्यय	२	०
प्रारम्भिक पकाव व्यय	२०	०
	४१	६
प्रारम्भिक पकाव में हानि (१५%)	६	४
प्रलेपन व्यय	२	६
प्रलेप पकाव व्यय	३०	०
	८०	०

प्रलेप पकाव हानि (२०%)	१६	०
	९६	०
भण्डार आदि के ऊपरी व्यय (२०%)	१९	४
कार्यालय तथा अन्य ऊपरी व्यय (३०%)	२८	१२
पैकिङ्ग तथा माल भेजने का व्यय (५%)	४	१२
सम्पूर्ण निर्माण तथा ऊपरी व्यय	१४८	१२

आजकल कच्चे माल का मूल्य तथा मजदूरी की दर बढ गयी है। परन्तु उपर्युक्त गणना विधि से वर्तमान मूल्य तथा मजदूरी के आधार पर आधुनिक निर्माण-मूल्य निर्धारित करने में कोई कठिनाई नही होगी।

आधुनिक विज्ञापन—किसी कारखाने की सफलता मुख्य रूप से उसके निर्मित माल की बिक्री पर निर्भर करती है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि कारखाने की सफलता का केवल २५%भाग माल के सफल निर्माण तथा शेष ७५% भाग पूर्ण रूप से माल की बिक्री पर निर्भर करता है। निश्चित रूप से यह स्पष्ट हो चुका है कि किसी वस्तु की अधिक बिक्री नियमित तथा वैज्ञानिक विज्ञापन के बिना नही चल सकती। विज्ञापन उन वस्तुओं की माँग बढाता है, जिनसे अब तक ग्राहक या तो अपरिचित था या नवीन ग्राहक की उनके प्रति अच्छी धारणा न थी। नियमित विज्ञापन से माल की माँग दो प्रकार से बढती है—एक तो उससे वस्तु का विज्ञापन होता है, ग्राहक वस्तु से परिचित हो जाता है। दूसरे उन लोगों में वस्तु की माँग उत्पन्न करता है, जो अब तक उस वस्तु का व्यवहार ही नही करते थे। इस प्रकार विज्ञापन पुराने ग्राहकों को स्थायी ग्राहक बनाता है और नवीन ग्राहक उत्पन्न करता है। विज्ञापन तुरन्त बिक्री भले ही न बढा सके, परन्तु ग्राहक को उस वस्तु का नाम, चिह्न, विशेष गुण आदि बताकर उसको भविष्य में उस प्रकार की वस्तु की आवश्यकता पडने पर इसी वस्तु के खरीदने को तैयार करता है। उदाहरणार्थ कल्पना कीजिए कि एक कारखाना साधारण मिट्टी से श्रेष्ठ प्रकार के अम्लरोधक प्रलेप-युक्त पात्र बनाता है, जो बाजार के इस प्रकार के दूसरे पात्रों से श्रेष्ठ है। यदि कारखाना नियमित विज्ञापन द्वारा जनता को अपने पात्रों के विशेष गुण और लाभ बताता है तो इन पात्रों के प्रति ग्राहक की रुचि बढेगी और उसे आवश्यकता पड़ने पर यह नवीन अम्लरोधक पात्र खरीदने की प्रेरणा देगी, यद्यपि वह साधारण मिट्टीपात्रों के प्रयोग का विरोधी था। नवीन निर्मित वस्तु

की विशेषताएँ विज्ञापन व प्रचार द्वारा ग्राहकों को स्पष्ट बता देनी चाहिए। भारतीय चाय और काफी की 'सेस' कमेटी के विज्ञापन और प्रचार से हम लोग भली भाँति परिचित हैं। लगभग ४० वर्ष पूर्व चाय को मानव मस्थान के लिए एक मन्द विष समझा जाता था और उत्तरी भारत में काफी को जनता जानती तक न थी। परन्तु इसी विज्ञापन और प्रचार के कारण आज शहरों तथा बहुत से गावों में भी शायद ही कोई घर ऐसा होगा जहाँ चाय या काफी का प्रयोग न होता हो।

अधिकाशत देखा जाता है कि किसी सुपरिचित वस्तु की बिक्री की गति भी उसके लिए किये गये विज्ञापन के अनुपात में होती है। विज्ञापन ढीला करते ही बिक्री घट जाती है और विज्ञापन बढाने पर बिक्री पुन बढ जाती है। निर्माणकर्ता द्वारा किया जानेवाला वैज्ञानिक विज्ञापन इस सीमा तक विस्तृत हो चुका है कि पहले की भाँति साधारण ग्राहक के लिए दूकानदार अब विज्ञापक का काम नहीं कर पाता, वरन् प्राय ग्राहक स्वय पूर्व निश्चय करके दूकान पर आता है कि उसे किस कारखाने की कौन-सी वस्तु लेनी है। परिणाम-स्वरूप दूकानदार भी उसी प्रकार की वस्तुओं को अपनी दूकान में अधिक रखता है जिनका विज्ञापन अधिक होता है। दूकानदार कम विज्ञापनवाली और ग्राहकों से अपरिचित वस्तुओं को अपनी दूकान मे रखने का साहस ही नहीं कर पाता। ग्राहक जिस वस्तु को खरीदना चाहता है उसके गुण और उपयोगिता मे वह निर्माणकर्ता द्वारा किये गये विज्ञापन की सहायता से पूर्व-परिचित होता है। अत दूकान आने से पूर्व ही वह निश्चय कर लेता है कि उसे कौन वस्तु खरीदनी है।

इस प्रकार विज्ञापन करना व्यय नहीं, वरन् लाभ हेतु लगी हुई पूँजी है। नियमित विज्ञापन से धीरे-धीरे ग्राहकों मे वस्तु के प्रति जो आकर्षण और सद्भावना पैदा होती है, वह कभी-कभी अमूल्य सिद्ध होती है। अत यह सोचना भूल है कि विज्ञापन से वस्तु का मूल्य बढता है, जो अन्त मे ग्राहक को ही देना पड़ता है। बल्कि दूसरी ओर विज्ञापन से वस्तु की माँग बढती है, जिससे निर्माणकर्ता व्यापारिक मात्रा में अपेक्षाकृत कम मूल्य मे अधिक वस्तुओं को बना सकता है। विज्ञापन के कारण माँग बढ जाने से थोक व्यापारियों की भी आवश्यकता नहीं रहती है और व्यापारिक कटौती भी कम की जा सकती है, जिससे ऊपरी विक्रय-व्यय में काफी कमी आ जाती है। नियमित विज्ञापन के विषय मे सबसे प्रमुख बात यह है कि विज्ञापित वस्तु उत्तम गुणों की ही हो, जिससे अन्त में सफलता ही मिले। वस्तु के विषय में विज्ञापन मे कही गयी विशेषताएँ व गुण वस्तु मे अवश्य रहने चाहिए। सन्तुष्ट ग्राहक सर्वोत्तम और निरन्तर विज्ञापनकर्ता होते हैं, कारण वे दूसरों से उस वस्तु के प्रयोग करने का अनुरोध करते हैं।

एक सफल विज्ञापनकर्ता के अन्दर असाधारण निरीक्षण-प्रतिभा होनी चाहिए, जिससे वह प्रतिदिन की घटनाओं को जान सके और उनका लाभ उठा सके। उसे जानना चाहिए कि विज्ञापन को किस प्रकार आकर्षक और प्रभावकारी बनाया जा सकता है। सर्वप्रसिद्ध अजन्ता चित्रकारी पर आधारित विज्ञापन-चित्रों ने भारतीय विज्ञापन-क्षेत्र में एक नया मोड़ ला दिया है। ये शिक्षित वर्ग की सुन्दरता की कल्पनाओं के अनुसार होते हैं और नवीन चित्रों से ग्राहकों को आकर्षित करते हैं। एक कुशल वैज्ञानिक विज्ञापनकर्ता का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि वह अपने विषयों को इस प्रकार प्रदर्शित करे कि उनमें ध्यान आकर्षित करने की शक्ति हो। विज्ञापन का प्रदर्शन-मूल्य कई प्रकार से बढ़ाया जा सकता है, जैसे चित्रों के द्वारा, रंगीन नक्शों व हाशियों के द्वारा, आकर्षक शीर्षकों व नारों के द्वारा, नियान प्रकाश तथा अन्य रंगीन प्रकाशों के प्रभाव आदि के द्वारा। विज्ञापन की एक नयी विधि है, जिसमें आकाश में वायुयान द्वारा धुएँ से वस्तु के विषय में कुछ लिखा जाता है। यह सभी वर्गों के मनुष्यों को बहुत ही आकर्षक होता है। यद्यपि इस प्रकार के विज्ञापन क्षणिक होते हैं, परन्तु ये युवा, वृद्ध सभी के मस्तिष्कों में स्थायी प्रभाव डालते हैं। आजकल सिनेमा-गृहों में रंगीन चित्र द्वारा विज्ञापन काफी लाभकर सिद्ध हो रहे हैं।

जब बाजार में कोई नयी वस्तु लानी हो या पुरानी वस्तु के प्रति ग्राहकों की बुरी धारणा को दूर करना हो, तो ऐसी दशा में विज्ञापन शिक्षात्मक और उपदेशात्मक होना चाहिए। इस प्रकार एक नये टूथपेस्ट को बाजार में लाते समय विज्ञापन में दाँतों तथा मसूढ़ों का स्वच्छता सम्बन्धी विज्ञान संक्षेप में रहना चाहिए तथा इस टूथपेस्ट की दैनिक प्रयोग सम्बन्धी विशेषताओं को रखना चाहिए। धार्मिक हिन्दुओं के हृदय से चीनी मिट्टी पात्रों और काँच-कलई पात्रों के प्रति घृणा को सुव्यवस्थित शिक्षात्मक विज्ञापन और प्रचार द्वारा दूर किया जा सकता है। उन्हें अच्छी प्रकार समझा देना चाहिए कि देशी चीनी पात्रों और काँच कलई पात्रों के बनाने में हड्डी की राख का प्रयोग अब नहीं किया जाता, जैसा कि कुछ प्रकार के विदेशी पात्रों में होता है। जहाँ एक बार इस धार्मिक हिन्दू वर्ग की जनता को इस बात का विश्वास हो गया और उसने इन भारतीय पात्रों को खरीदना प्रारम्भ कर दिया, तो अनुमान लगा लीजिए कि हमारे पोरसिलेन और काँच कलई पात्रों की माँग कितनी बढ़ जायगी।

जैसा कि हम जानते हैं, वैज्ञानिक विज्ञापन का उद्देश्य बिक्री बढ़ाना तथा परिणाम-स्वरूप व्यापार का लाभ बढ़ाना होता है। अतः विज्ञापन-व्यय को ऊपरी उत्पादन-व्यय,

बीमाव्यय आदि की भाँति उत्पादन का ही एक अंग समझना चाहिए और इसकी मात्रा का निर्धारण कुछ निश्चित बातों के आधार पर होना चाहिए। परन्तु कोई ऐसा निश्चित नियम नही बनाया जा सकता जिसके आधार पर विज्ञापन-व्यय वास्तविक उत्पादन-व्यय के प्रतिशत के रूप में सदैव निकाला जा सके, कारण विभिन्न प्रकार की वस्तुओं में विभिन्न अवस्थाएँ होती हैं। इसके अतिरिक्त बाजार में पहले से बिक रहे माल का विज्ञापन-व्यय नये माल के विज्ञापन-व्यय से कम होगा। उदाहरण-स्वरूप मोटर-कार कारखाने में कार के मूल्य का एक प्रतिशत विज्ञापन के लिए पर्याप्त होगा, परन्तु मृद्-वस्तुओं को बाजार में लाने के लिए मूल्य का १० प्रतिशत भी अपर्याप्त हो सकता है।

प्रत्येक वस्तु के विज्ञापन का व्यय उस वस्तु के प्रकार पर निर्भर करता है। इसकी गणना करने की एक विधि में विज्ञापन-व्यय गत वर्ष की बिक्री का कुछ प्रतिशत रखा जाता है। दूसरी विधि में यह व्यय भावी उतने समय की अनुमानित बिक्री के आधार पर रखा जाता है, जितने समय विज्ञापन चलाना है। प्रथम विधि यद्यपि अधिक सुरक्षित है, परन्तु नयी वस्तु के लिए उपयोगी नहीं है। द्वितीय विधि की उपयोगिता अनिश्चित है, जो अनुमानित बिक्री होने या न होने पर लाभकर व हानिकर सिद्ध हो सकती है।

इसमें सन्देह नहीं कि किसी विशेष वस्तु के लिए विज्ञापन-व्यय का निर्धारण केवल अनुभव के आधार पर ही किया जाता है, परन्तु गणना का आधार निम्नलिखित तथ्यों पर होना चाहिए —

(१) विज्ञापित वस्तु का प्रकार—वस्तु बाजार में पहले से ही बिक रही है या प्रथम बार आ रही है।

(२) विज्ञापन का उद्देश्य—केवल प्रदर्शन के लिए या शिक्षात्मक साहित्य के लिए।

(३) बिक्री बाजार—वस्तु जन-साधारण के लिए है या केवल कुछ विशेष वर्ग के व्यक्तियों के लिए है।

(४) बाजार की दशा—बाजार में इस वस्तु को इस प्रकार की दूसरी वस्तुओं से स्पर्धा करनी होगी या नहीं ?

(५) कारखाने की उत्पादन-क्षमता।

घरेलू उपयोग के साधारण पात्र बनानेवाले मृद्-उद्योग कारखाने को साधारण विज्ञापन में अधिक रुपया नहीं व्यय करना चाहिए, वरन् ऐसे व्यापारियों व दुकानदारों

से सम्पर्क स्थापित करना चाहिए, जो इस प्रकार की वस्तुओं का व्यापार करते हैं और जिनका काम ऐसी वस्तुओं की बाजार में बिक्री बढाना है। परन्तु इसके लिए वस्तुएँ श्रेष्ठ प्रकार की होनी चाहिए। भारत में बहुत ही कम कारखाने श्वेत स्वास्थ्य सम्बन्धी मृत्पात्र बनाते हैं। अत. इन पात्रों को बनानेवाले कारखाने को, जनता को विज्ञापन या सूचना पत्रो द्वारा यह सूचित कर देना चाहिए कि अमुक कारखाना इस प्रकार के इन आकारो, आकृतियों तथा गुणोंवाले पात्र बनाता है। भारतवर्ष में अभी रासायनिक पोरसिलेन पात्रो का निर्माण बहुत ही कम होता है। अत जो कारखाना इस नवीन वस्तु को बाजार मे लायेगा उसे उन आयात रासायनिक पोरसिलेन वस्तुओं से काफी टक्कर लेनी होगी जिनकी प्रसिद्धि बाजार में पहले से ही हो गयी है। इस नवीन वस्तु का विज्ञापन व्यय अन्य व्यय-विषयो के साथ विचारपूर्वक प्रारम्भ में ही निश्चित कर लेना चाहिए।

इन रासायनिक पोरसिलेन वस्तुओं के विज्ञापन का उद्देश्य केवल इनके विशेष उपयोगकर्ताओं को जैसे, स्कूल तथा कालिज की गवेषणा एवं प्रयोगशालाओं को इन वस्तुओं की प्राप्यता की सूचना दे देना है। इन वस्तुओं का विज्ञापन समाचारपत्रों में छपवाने, पोस्टर छपवाने, विज्ञापन लगवाने आदि के द्वारा करने से अधिक लाभ नही होगा, वरन् वैज्ञानिक पत्रिकाओं मे इनका विज्ञापन अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। व्यावहारिक ज्ञान सम्बन्धी सूचनापत्र स्कूल तथा कालिज प्रयोगशालाओं में भेजे जाने चाहिए, जो कि इन वस्तुओं के सबसे बडे प्रयोगकर्ता हैं। नवीन ग्राहकों का विश्वास प्राप्त करने के लिए सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों के कुछ प्रमाणपत्र इन सूचना-पत्रों के साथ हो तो अधिक उपयोगी सिद्ध होगें। नवीन ग्राहकों में विश्वास उत्पन्न करने के लिए ऐसे सुप्रसिद्ध व्यक्तियों के प्रमाणपत्र, जो वस्तु के प्रकार और उसकी विशेषताओं के बारे में ज्ञान रखते हैं, काफी सहायक होते हैं। इन प्रमाणपत्रों से नवीन वस्तु बाजार में बिकने भी लगती है।

भारतवर्ष के बाजार में, विशेषत द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात्, सभी प्रकार की मृद्-वस्तुओं की माँग इतनी बढ गयी है कि उच्च स्तर पर विज्ञापन की आवश्यकता सम्भवत: कभी ही पडती है। परन्तु वस्तु बाजार के लिए नयी हो या पुरानी, ग्राहक को किसी भी प्रकार के विज्ञापन या सूचना-पत्रों द्वारा यह बता देना आवश्यक एवं बुद्धिमत्ता-पूर्ण होता है कि अमुक वस्तु बाजार में प्राप्य है।

यदि कारखाना छोटा है, तो इतना विज्ञापन नहीं करना चाहिए कि माँग इतनी बढ़ जाय, जो वह पूरी न कर सके। ऐसी अवस्था में विज्ञापन के कारण कारखाने की बदनामी होती है।

प्रदर्शन-कक्ष—आधुनिक मृद्-वस्तुओं के लिए एक अच्छी तरह सजा हुआ प्रदर्शन-कक्ष बहुत ही आवश्यक है। यह प्रदर्शनकक्ष कारखाने की वस्तुओं के प्रकार का विज्ञापन करता है। इस कक्ष में वस्तुएँ ऐसे ढंग से सजायी जानी चाहिए, कि वस्तुओं की सुन्दरता वास्तविक सुन्दरता से अधिक प्रतीत होने लगे और इस बात का ध्यान रखा जाय कि पास-पास रखी दो वस्तुओं की सुन्दरता में अत्यधिक अन्तर न हो। प्रदर्शन-कक्ष ऐसा सजाया जाय कि भावी ग्राहक उसमें घुसते ही अपने से कह उठे "कितने सुन्दर पात्र हैं!" वस्तुएँ इस प्रकार रखी गयी हों कि विभिन्न वर्ग तथा प्रकार की वस्तुएँ एक दूसरे से अलग रहें और प्रकाश का प्रबन्ध ऐसा हो कि दर्शक की आँखों में चकाचौंध न उत्पन्न हो। सस्ती वस्तुएँ मूल्यवान् वस्तुओं के पास न रखी जायँ वरन् उन्हें अलग-अलग रखना उचित होता है। प्रभावकारी मृद्-वस्तु प्रदर्शन कक्ष के सजाने में वास्तव में किसी कलाकार की सहायता अपेक्षित होती है, विशेष कर उस समय जब कि सजावट की वस्तुएँ रखी गयी हों।

परिशिष्ट

सारणी—१ मृद्-उद्योग में प्रयुक्त होनेवाले पदार्थ, उनके अणु सूत्र, अणु भार तथा द्रवणाक—

वि० = विच्छेदन   ऊ० पा० —ऊर्ध्वपातन (Sublimation)

ग० = गलनशील

अग० = अगलनशील

रू० = रूपान्तर   (Transition)

पदार्थ नाम	अणु सूत्र	अणु भार	द्रवणाक सेण्टीग्रेटो में
अलाबास्टर	$CaSO_4 . 2H_2O.$	१७२	१४५०
आल्बाइट	$Na_2O.Al_2O_3 . 6SiO_2.$	५२४	१२००
पोटाश फिटकरी	$Al_2(SO_4)_3 . K_2SO_4 . 24H_2O.$	९४८	९२
एल्यूमिना	$Al_2O_3.$	१०२	२०४५
एल्यूमिनियम	Al.	२७	६५९
एल्यूमिना हाइड्रेट	$Al_2O_3 . 3H_2O.$	१५६	३००
ऐनोरथाइट	$CaO\ Al_2O_3 . 2SiO_2.$	२७८	१३००
ऐण्टीमनी	Sb.	१२०	६३०
ऐण्टीमनी आक्साइड	$Sb_2O_3.$	२८८	६५५
आरसीनियस आक्साइड	$As_2O_3.$	१९८	३१३
आरसैनिक आक्साइड	$As_2\ O_5.$	२२९ ९	३१५
बेरियम कार्बोनेट	$BaCO_3.$	१९७ ४	१७४०
बेरीटा	BaO.	१५३·४	१९२३
बेराइटीज	$BaSO_4.$	२३३·४	१५८०
बौक्साइट	$Al_2O_3 . 2Al_2(OH.)_6\ XFe_2(OH)_6$	—	१८२०
बिस्मिथ नाइट्रेट	$Bi(NO_3)_3 . 5H_2O.$	४८४	वि०—३०

पदार्थ नाम	अणु सूत्र	अणु भार	द्रवणांक सेन्टीग्रेड में
कापर सल्फेट	$CuSO_4.5H_2O.$	२४९	वि०-११० ($-4H_2O$)
क्राईओलाइट	$AlF_3.3NaF.$	२१०	१०००
डोलोमाइट	$CaMg(CO_3)_2$	परिवर्तन-शील	वि०
फेल्सपार	$RO.Al_2O_3.2—6SiO_2$		१२००
फैरिक क्लोराइड	Fe_2Cl_6	३२५	२८२
फैरिक हाइड्रौक्साइड	$Fe_2(OH)_6.$	२१४	—
फैरिक आक्साइड	Fe_2O_3	१६०	१५६०
फैरिक सल्फेट	$Fe_2(SO_4)_3.9H_2O.$	५६२	वि०
फैरस आक्साइड	FeO	७२	१३८०
फैरस सल्फेट	$FeSO_4.7H_2O.$	२७८	वि०-३०० ($-6H_2O$)
फैरस सल्फाइड	$FeS.$	८८	११९३
फ्लोरस्पार	CaF_2 (प्राकृतिक)	७८	१३६०
गैलेना	PbS (अशुद्ध)	२३९.२८	१११४
ग्लौबर का लवण	$Na_2SO_4.10H_2O.$	३२२	१५०
सोना	$Au.$	१९७	१०६३
गोल्ड क्लोराइड	$AuCl_3.$	३०३.५	वि०-२५४
जिप्सम	$CaSO_4.2H_2O.$	१७२	१४५०
हैवी स्पार	बेराइटीज	२३३.४	१५५०
लौह पाइराइटीज	FeS_2	११९.९८	वि०-४५०
सीसा	$Pb.$	२०७	३२७
लैड एसीटेट	$Pb(CH_3COO)_2.3H_2O.$	३७९	—
लैड एन्टीमोनिएट	$Pb_3(SbO_4)_2.$	९८९	—
लैड क्रोमेट	$PbCrO_4.$	३२३	८४४
लैड सिलीकेट	$PbO.SiO_2.$	२८३	७६६
लीथिया	$Li_2O.$	३०	१७००
लिथार्ज	$PbO.$	२२३	८९०
मैगनीसिया	$MgO.$	४०.३	२८००
मैगनेसाइट	$MgCO_3$ (प्राकृतिक)	—	वि०-३५०
मैलाकाइट ग्रीन	$CuCO_3.Cu(OH)_2.$(प्राकृतिक)	—	वि०-२००
मैंगनीज	Mn	५५	१२२०
मैंगनीज डाई आक्साइड	$MnO_2.$	८७	वि०-५३५ ($-O$)

पदार्थ नाम	अणु सूत्र	अणु भार	द्रवणांक सेन्टी ग्रेडो में
सोडियम क्रोमेट	$Na_2CrO_4 \cdot 10H_2O$.	३४२	१९.९२
सोडियम डाई क्रोमेट	$Na_2Cr_2O_7 \cdot 2H_2O$	२९८	वि-१०० ($-2H_2O$)
सोडियम सिलीकेट	$Na_2O.\ SiO_2$	१२२	१०८८
स्टैनिक क्लोराइड	$SnCl_4$.	२६१	-३३
स्टैनिक आक्साइड	SnO_2.	१५१	वि-११२७
स्टीअटाइट	टाल्क देखो	३७८	१५००
टाल्क	$3MgO.4SiO_2\ H_2O$	३७८	१५००
टिन	Sn.	११९	२३२
टिंकाल	प्राकृतिक बोरैक्स	—	—
टिटैनियम	Ti.	४८	१८००
टिटैनियम आक्साइड	TiO_2	८०	१८२५
यूरेनियम	U	२३८	१६८८
यूरेनियम आक्साइड	$UO_2,\ U_3O_4$.	२७०, ८४२	२१७६ वि०
श्वेत सीसा या सफेदा	$2PbCO_3.\ Pb(OH)_2$.	७७५	वि०
खड़िया	$CaCO_3$. (मृदु प्राकृतिक रूप)	१००	वि०
विलेमाइट	$2ZnO.SiO_2$.	२२२	—
विदेराइट	$BaCO_3$ प्राकृतिक	१९७.४	वि०
वोलास्टोनाइट	$CaO.SiO_2$ प्राकृतिक	११६	१५४०
जस्ता	Zn.	६५.४	४१९.५
जिंक आक्साइड	ZnO.	८१	१९७५
जिंक सल्फेट	$ZnSO_4.7H_2O$.	२८७	२०–३९
जिरकोन	$ZrSiO_4$.	१८३	२५५०
जिरकोनिया	ZrO_2.	१२३	२७१५

नोट—ये द्रवणांक निम्नलिखित दो पुस्तकों से लिये गये हैं।

१. Metallurgical Problems by Allison Butts

२ Handbook of Chemistry and physics 1952 Edition, Edited by Charles D. Hodgman. (U. S. A)

(२) मृत्तिका-उद्योग के लिए कुछ उपयोगी सम्बन्ध—

(अ) एक घनफुट विभिन्न पदार्थों का भार—

पानी	६२ २७८	पौण्ड	
अग्निमिट्टी	८५	पौण्ड	(लगभग)
साधारण रेत	१०४	,,	,,
जिप्सम प्लास्टर	१०९	,,	,,
साधारण मिट्टी	१३६	,,	,,
ढोल मिट्टी	१६२	,,	,,
बिना बुझा चूना	५०	,,	,,
अग्नि-ईंट	१२३	,,	,,
ग्रेनाइट	१६५	,,	,,

(आ) भार समानताएँ—

एक तोला = ११ ५७ ग्राम
,, औंस = २८·३५ ग्राम
,, पौण्ड = ४५३ ५९ ग्राम
,, टन = २२४० पौंड
= १०१६·०५ किलोग्राम
,, किलो ग्राम = २ २३५ पौंड

(इ) आयतन समानताएँ—

एक पाइण्ट = २० औंस
एक लिटर = १ ७६ पाइण्ट
= ६१ ०३ घन इंच
= १००० घन सेण्टी मीटर

(ई) लम्बाई समानताएँ—

एक इंच = २ ५४ सेण्टीमीटर
एक मीटर = ३९·३७ इंच
,, किलोमीटर = ० ६२१ मील

(उ) अग्नि-ईंटों के प्रामाणिक आकार—

(i) $९'' \times ४\frac{१}{२}'' \times ३''$

(ii) $९'' \times ४\frac{१}{२}'' \times २\frac{३}{४}''$

(iii) $९'' \times ४\frac{१}{२}'' \times २\frac{१}{२}''$

चपटी पड़ी हुई ३२ अग्नि-ईंटे एक वर्ग गज या ९ वर्गफुट स्थान घेरेंगी।

किनारो (लम्बाई व ऊँचाई के तल पर) पर पड़ी हुई प्रथम प्रकार की ४८ अग्नि-ईंटे एक वर्ग गज स्थान घेरेंगी।

—

पारिभाषिक शब्दावली

शब्द	समानार्थी अंग्रेजी शब्द	संक्षिप्त व्याख्या
अंशांकन	Graduation	
अकाँचीयभवन	Devitrification	काच की वस्तुओं में केलास बन जाना।
अणु-एकत्रीकरण	Polymerisation	जिस क्रिया में किसी पदार्थ के कई अणु मिलकर एक नये पदार्थ का अणु बनाते हैं।
अतिशीतित	Supercooled	
अधोदृश्य	Plan	
अनुज्ज्वल श्वेत	Dull white	
अनुप्रस्थ काट	Cross-Section	
अपकेन्द्र पम्प	Centrifugal pump	
अपद्रव्य	Impurity	
अभिदृश्य लेंस	Objective lens	
अभिलेखी यन्त्र	Recorder	
अमोनिया द्राव	Ammonia liquor	
अम्ल	Acid	
,, नमक का	Hydrochloric Acid	
,, शोरे का	Nitric Acid	
,, गन्धक का	Sulphuric Acid	
अम्लराज	Aqua Regia	नमक तथा शोरे के अम्लों का विशेष मिश्रण।
अयस्क	Ore	धातुओं का प्राकृतिक रूप।
अवकरण	Reduction	जिस क्रिया द्वारा आक्सीजन का अनुपात कम हो जाता है तथा हाइड्रोजन का अनुपात बढ़ जाता है।

शब्द	समानार्थी अंग्रेज़ी शब्द	संक्षिप्त व्याख्या
अवक्षेप	Precipitate	
अवक्षेपण	Precipitation	
अवशोषण	Absorption	
आकीर्णन	Dispersion	किसी पदार्थ के सूक्ष्म कणों का दूसरे पदार्थ में समान रूप से फैल जाना।
आकुंचन	Contraction	किसी पदार्थ की लम्बाई, क्षेत्रफल या घनफल में कमी आ जाना।
आक्सीकरण या ओषदीकरण	Oxidation	यह क्रिया अवकरण की उलटी है जिसमें आक्सीजन का अनुपात बढ़ जाता है तथा हाइड्रोजन का अनुपात कम हो जाता है।
आन्तरिक दहन इंजिन	Internal-combustion engine	यथा मोटरकार का इंजिन, डीज़ल इंजन आदि।
आपेक्षिक घनत्व (आ० घ०)	Relative density (R.D.)	किसी पदार्थ के तथा ४ सें० वाले पानी के घनत्वों का अनुपात।
आभा	Tinge or shade	
आर्द्रता	Humidity	
आर्द्रताग्राही	Hygro scopic	जो पदार्थ वातावरण से नमी अवशोषित कर लेते हैं।
आलम्बन	Suspension	किन्हीं ठोस कणों का पानी में बिना घुले तैरते रहना।
आवृत्ति	Frequency	एक विशेष वैद्युतिक गुण।
आवेश	Charge	विद्युत् के प्रकार का सूचक।
आसंजक बल	Adhesive force	जिस बल के कारण एक पदार्थ दूसरे पदार्थ से चिपका रहता है।
आसवन	Distillation	किसी द्रव को वाष्पीभूत करके पुनः द्रवीभूत करने की क्रिया।
आसुत	Distillate	आसवन क्रिया से प्राप्त पदार्थ।

शब्द	समानार्थी अंग्रेजी शब्द	संक्षिप्त व्याख्या
उत्क्रमणीय	Reversible	जो रासायनिक क्रियाएं दोनों दिशाओं में हो सकती हैं।
उत्तापदर्शी या उत्तापदर्शक	Pyroscope	उत्ताप के अनुमान करने का यन्त्र।
उत्तापमापी या उत्तापमापक	Pyrometer	उत्ताप नापने का यन्त्र।
उत्पादक गैस	Producer gas	
उत्सर्जक शक्ति	Emissive power	
उदासीन	Neutral	जो न अम्लीय हो न क्षारीय।
उद्योग-परिकल्पना	Factory Scheme	
उपजात	Byproduct	इच्छित उत्पादित पदार्थ के अतिरिक्त प्राप्त होनेवाले पदार्थ।
ऊपरी व्यय	Overhead charges or Oncost	
,, उत्पादन पर	Production On-cost	
,, विक्रय पर	Commercial On-cost	
ऊर्जा	Energy	
ऊर्णन	Flocculation or Agglomeration	
ऊर्ध्वाधर	Vertical	
ऊष्मा क्षेपक	Exothermic	जिस रासायनिक क्रिया में ताप उत्पन्न होता है।
ऊष्मा शोषक	Endothermic	जिस रासायनिक क्रिया के लिए ताप देने की आवश्यकता होती है।
ऊष्मीय मान	Calorific-Value	एक ग्राम पदार्थ के जलने पर उत्पन्न ताप की मात्रा।
एन्जाइम	Enzymes	विशेष प्रकार के कीटाणु।
ऐसिड वेल्यू	Acid Value	पदार्थों में अम्लता का परिमाण।

शब्द	समानार्थी अंग्रेजी शब्द	संक्षिप्त व्याख्या
ओह्म	Ohm	विद्युत प्रतिरोध की इकाई।
औटोक्लेव	Autoclave	वाष्प दवाव की उपस्थिति में पदार्थों के पकाने का उपकरण।
कज्जल	Soot or lamp-black	
कण सूक्ष्मता	Fineness	
करण	Tool	
कलिल	Colloidal or colloid	
काँच कलई	Enamel	किसी धातवीय वस्तु पर काँचीय प्रलेप।
काँचीय	Vitrified	
काट दृश्य	Sectional-View	
काठ कोयला	Charcoal	
कारीगर प्रधान	Foreman	
कुंड	Tank	
केओलीनीकरण	Kaolinization	खनिजों से प्राकृतिक क्रिया द्वारा केओलिन बनना।
केलास	Crystal	
केलासीकरण	Devitrification	अकाँचीयकरण देखिए।
केशिका	Capillary	
क्रातिक	Critical	
क्षारीय	Alkaline	
क्षैतिज	Horizontal	
गणना	Calculation	
गन्ध तेल	Essential oils	
गलन ताप	Fusion heat	
गलनशील	Fusible	
गलनशील, सहज	Easily Fusible	अल्प ताप द्वारा गलनीय पदार्थ।
गलन सहायक	Flux	जो पदार्थ दूसरे पदार्थों के अल्पताप

शब्द	समानार्थी अंग्रेजी शब्द	संक्षिप्त व्याख्या
		म ही गलने म सहायक होता है, जैसे सुहागा सोने का गलन सहायक है।
गलनांक	Fusion temperature	
गलित स्फटिक चूर्ण		गलित स्फटिक को ठडा करने पर प्राप्त चूर्ण।
गैस	Gas	
गैस, उत्पादक	Producer-gas	
गैस, कोक भट्ठी	Coke oven-gas	
गैस, कोयला	Coal-gas	
गैस, जल	Water-gas	
गैस, तेल	Oil-gas	
गैस-धारक	Gas Holder	
गैस-नालियाँ	Flues	
गैस, वात्त भट्ठी	Blast furnace gas	
घरिया	Crucible	
घोल	Solution	यथा शर्बत, चीनी का पानी मे घोल होता है।
घोला	Slip or Slurry	जैसे मिट्टी को पानी मे मिलाने पर घोला बनाता है।
चकमक पत्थर या चकमकी	Flint	
चमक	Lusture	
चमकहीन	Dull or Matt	
चाप	Pressure	
चालकता	Conductivity	
चिकन प्रलेप	Glaze	
चित्राकन	Painting	
चित्रित टालियाँ	Encaustic or Inlaid tiles	

शब्द	समानार्थी अंग्रेजी शब्द	संक्षिप्त व्याख्या
चिमनी	Stack or chimney	
चूल्हे	Furnace	
चूल्हे की जाली	Grate bars	
छर्री	Grog	पकी हुई मिट्टी तथा खनिजों के चूर्ण।
छादनी	Scum	
छादनी नियन्त्रण मिश्रण	Anti-scum mixture	
छापना	Printing	
जबड़ा चूर्णक यन्त्र	Jaw crusher	
जलचित्र विधि	Chromolitho-graphy process for decoration	
जल-निष्कासक	Filter press	
जल निष्कासन यन्त्र	Filter press	
जलयोजित	Hydrated	
जल-विश्लेषण	Hydrolysis	
ज्वलनशील	Inflammable	
ज्वालक	Burner	
टाली	Tile	
टेरा-कोटा	Terra-cotta	प्रलेप-रहित पके हुए मृत्पात्र।
तनन क्षमता	Tensile strength	
तनाव	Tension	
तनु	Dilute	
तल-अङ्क	Surface factor	चूर्ण खनिजों के समस्त कणों के तल क्षेत्रफल को तल अङ्क कहते हैं।
तल-तनाव	Surface tension	द्रवों का वह गुण जिसके कारण उनका तल तनी हुई झिल्ली की भाँति कार्य करता है।

शब्द	समानार्थी अंग्रेजी शब्द	संक्षिप्त व्याख्या
ताप जनन गुणक	Power factor	
ताप जनन शक्ति	Heating power	
ताप जनित रासायनिक क्रियाएँ	Pyrochemical reactions	
ताप पृथक्करण	Heat insulation	
ताप शोषण	Soaking	
तापसह	Refractory	
तापीय युग्म	Thermocouple	
तारत्व	Pitch of sound	
दण्ड चक्री	Rack and pinion	
दमकांक	Flash-point	किसी द्रव की वाष्प जलाने के लिए आवश्यक न्यूनतम तापक्रम।
दहन	Combustion	
दीप्ति	Sheen	
दुर्गल	Refractory	
दूरबीन	Telescope	
द्रव घनत्वमापी	Hydrometer	
द्रवणांक	Melting point	
द्रावक	Flux	गलन सहायक देखिए।
द्रावण	Melting	किसी ठोस को गरम करके द्रव में परिवर्तित करना।
द्विक-विच्छेदन	Double-decomposition	
धातुमल	Slag	प्राकृतिक खनिजों में शुद्ध धातु प्राप्त करने की क्रिया में अलग होनेवाले अपद्रव्य।
ध्रुवायित प्रकाश	Polarised light	
नतोदर दर्पण	Concave mirror	

शब्द	समानार्थी अंग्रेजी शब्द	संक्षिप्त व्याख्या
नमक प्रलेपन	Salt glazing	
नियताक	Constant	
निरपेक्ष	Absolute	
निर्जलन	Dehydration	
निर्देश	Chart	
निस्तापन	Calcination	
पकाव	Firing	
पजावा	Clamp	
पटिया	Slab	
परावर्त्तन	Reflection	
परास	Range	
परिपथ	Circuit	
परिवर्तक	Converter	
पायस	Emulsion	
पारगमित प्रकाश	Transmitted light	
पारगम्य	Permeable	
पार-भासकता	Transluscency	अल्प पारदर्शकता।
पारविद्युत् नियताक	Dielectric constant or puncture Voltage	विद्युत् का वह न्यूनतम दवाव तथा वोल्टता जिस पर विद्युत् प्रतिरोधक पदार्थ से भी पार हो जाय।
पार्श्व दृश्य	End View	
पिण्ड	Body	मिट्टी तथा खनिज चूर्णों मे पानी मिलाकर जो पिंड बनाया जाता है उसी को अग्रेजी में बॉडी कहते हैं।
पुनरुत्पादक	Regenerator	भट्ठी से जानेवाली गैसो के व्यर्थ ताप को उपयोग में लाने की एक भिन्न विधि।
पुनर्जीवक	Recuperator	भट्ठी से जानेवाली गैसों के व्यर्थ

शब्द	समानार्थी अंग्रेजी शब्द	संक्षिप्त व्याख्या
		ताप को उपयोग मे लाने की एक विधि ।
पूँजी	Capital	
पूँजी, गतिशील	Liquid capital	
पूँजी, मूल्यह्रास	Depreciation fund	
पूँजी, व्ययित	Blocked capital	
पूँजी, स्थायी	Reserve capital	
पेपण	Paste	
प्रकाश जनन शक्ति	Illuminating power	
प्रकोष्ठ	Chamber	
प्रक्रम	operation	
प्रतिबल	Stress	
प्रतिरोध	Resistance	
प्रत्यावर्ती धारा	Alternating current (A.C.)	
प्रत्यास्थता	Elasticity	
प्रदर्शन कक्ष	Show room	
प्रद्रावण	Smelting	खनिज मिश्रण को गलाकर उसमे से कोई शुद्ध धातु निकालने की क्रिया।
प्रमापी	Meter	
प्रलेप	Glaze	
प्रलेप पकाव	Glost firing	प्रारम्भिक पकाव से प्राप्त मृद्-वस्तुओ पर प्रलेप लगाने के पश्चात् द्वितीय पकाव।
प्रसार	Expansion	
प्रस्फुटन	Efflorescence	पुरानी ईंटों पर लगनेवाली सुई आकार कणो की नोनी।
प्राकृतिक प्रभाव	Weathering	
प्रामाणिक	Standard	

शब्द	समानार्थी अंग्रेजी शब्द	संक्षिप्त व्याख्या
प्रारम्भिक पकाव	Biscuit firing	मृत्पात्र को कड़ा करने के लिए प्रथम पकाव।
प्लवन	Floatation	
फट्टी	Cleats	
बामे	Be'	द्रवों के घनत्व नापने की एक विशेष विधि।
बालू-कागज	Sand-paper	
बौद्धारीकरण	Automisation	
भट्ठा	Clamp	
भट्ठी	Kiln	
भट्ठी, अविराम	Continuous Kiln	
भट्ठी, विराम	Periodic Kiln	
भट्ठी, ऊर्ध्वगति	Up-draught kiln	
भट्ठी, अधोगति या निम्नगति	Down draught kiln	
भट्ठी, क्षैतिज गति	Horizontal draught kiln	
भट्ठी, घूर्णक	Rotary Kiln	
भट्ठी, सुरंग	Tunnel kiln	
भाप ऊष्मक	Steam bath	
भास्मिक	Basic	
मध्यमान	Average	
मापी	Meter	
मिश्रण-पिण्ड	Body	पिण्ड देखिए।
मिश्रधातु	Alloy	
मृत मैगनीशिया	Dead burnt magnesia or Periclase	
मृदुकरण	Annealing	धातुओं तथा काँच पात्रों में तनाव

शब्द	समानार्थी अंग्रेजी शब्द	संक्षिप्त व्याख्या
		दूर करने की एक विधि।
मोरम	Moram, *i e* laterite clays	प्लेटफार्म आदि पर पटनेवाली लाल कंकड़ी।
म्हो	Mho (Inverse of ohm)	ओह्म का व्युत्क्रम।
यथार्थता	Accuracy	
यान्त्रिक शक्ति	Mechanical strength	
रंग स्थापक	Mordant	
रंजक	Colours	
रंजक, अन्तः प्रलेप	Underglaze colours	
रंजक प्रलेप	Inglaze colours	
रंजक, प्रलेप तल या एनामेल	Overglaze or enamel colours	
रक्त ऊष्मा	Red heat	८००°–१,००° से०
रक्त शिखा	Rouge-flambe	
रूपक ईंटें	Face-Bricks	
रचना	Constitution or Texture	
रजन	Rosin	
रजनीय	Resinous	
रन्ध्रता	Porosity	
रवा	Crystal	
रसद्रव्य	Chemicals	
रिंग	Ring	पक्के पात्रों से निकलनेवाली ध्वनि।
रूपान्तर	Transformation	
रेखाचित्र	Graph	
रेगमाल	Sand-paper	
लचीलापन	Plasticity	

शब्द	समानार्थी अंग्रेजी शब्द	संक्षिप्त व्याख्या
वर्णक	Pigment	
वर्तनाक	Refractive Index	
वायु निष्कासन यन्त्र या वायु निष्कासक	Vacuum pump	
वाष्पशील	Volatile	
वाष्पित्र	Boiler	
वास्तविक उत्पादन मूल्य	Prime cost	
विकिरण	Radiation	
विकृति	Deformation	
विक्षेप	Deflection	
विद्युत् द्वार	Electrode	
विद्युत् धन द्वार	Anode or positive electrode	
विद्युत् ऋण द्वार	Cathode or negative electrode	
विद्युत् ध्रुव	Electric pole	
विद्युत् धन ध्रुव	Positive pole	
विद्युत् ऋण ध्रुव	Negative pole	
विद्युत् रसाकर्षण	Electro-osmosis	
विद्युत्रोधक	Insulator	
विद्युद् वाहक बल	Electro motive force (E. M. F.)	
विद्युद्विश्लेष्य	Electrolytes	
विरजन	Bleaching	
विरल धातु	Rare metals	
विरल मृदा	Rare earths	
विलयन	Solution	घोल देखिए।
विलोडन	*Stirring*	

शब्द	समानार्थी अंग्रेजी शब्द	संक्षिप्त व्याख्या
विश्लेषण	Analysis	
विश्लेषण, चरम	Ultimate Analysis	
विश्लेषण, युक्तिगत	Rational Analysis	
विश्लेषण, सन्निकट	Proximate Analysis	
विसरण	Diffusion of light	
विहनन	Deflocculation or peptizing	ऊर्णन की उलटी क्रिया।
वोल्टता	Voltage	
व्हीट स्टोन सेतु	Wheat stone's Bridge	विद्युत् प्रतिरोध नापने का एक यन्त्र।
शोधन	Purification	
श्यान	Viscous	
श्यानता	Viscosity	
श्लेष	Gelatin	
संकेन्द्र	Concentric	
संकोचन	Shrinkage or contraction	
संक्षारक	Corrosive	
संगठन	Composition	
संघनन कुंडली	Condensing worm	
संघात क्षमता	Impact strength	
संचरण	*Communication*	
संपीडन	Compression	
संवहन धाराएँ	Convection currents	
संवेग शक्ति	Mechanical strength	
संसजक या संसक्ति बल	Cohesive force	पदार्थ कणों का अन्तर्निहित बल जिसके कारण भिन्न कण मिले रहते हैं। यथा पारा गिराने पर उसमें

शब्द	समानार्थी अंग्रेजी शब्द	संक्षिप्त व्याख्या
		ससंक्ति बल के अधिक होने के कारण बूंदों में विभक्त हो जाता है।
सन्निकट	Approximate	
सफेदा	White lead	
समष्टि	Aggregation	
समांग	Homogeneous	
समाई	Space capacity	
सम्पृक्त	Saturated	
सरन्ध्र प्रलेप	Engobe	
सह्य ताप	Pyrometric cone-equivalent (P.C.E.)	
साँचा	Mould	
सान्द्र	Concentrated	
साबुन-पत्थर	Soap-stone	
साबुनीकरण	Saponification	
सारणी	Table	
सीसा-जनित विष	Lead poision	
सुग्राही	Sensitive	
सुद्राव मिश्रण	Eutectic mixture	दो या दो से अधिक पदार्थों का ऐसे अनुपात में मिश्रण जो न्यूनतम तापक्रम पर गल जाय।
सूक्ष्मता	Accuracy	
सूक्ष्मदर्शी	Microscope	
सूचक	Indicator	
सूचना पट्ट	Notice-board	
सूची स्तम्भ	Pyramid	
सूत्र	Formula	
सूत्र, आणविक	Molecular formula	
सूत्र, व्यावहारिक	Recipe	

शब्द	समानार्थी अंग्रेजी शब्द	संक्षिप्त व्याख्या
सैगर शङ्कु	Seagar cone	एक विशेष उत्तापदर्शी ।
स्कंदन	Coagulation or flocculation	
स्तर	Stage	
स्नेहक तेल	Lubricating oil	
स्फटिक	quartz	
स्वास्थ्य सम्बन्धी मृत्पात्र	Sanitary wares	
हल्लित्र	Shaking apparatus	
हाइड्रोकार्बन	Hydrocarbon	कार्बन तथा हाइड्रोजन के यौगिक यथा—मिट्टी का तेल, पेट्रोल, बेन्ज़ीन आदि ।